अपभ्रंश - साहित्य

अनुसन्धान परिषद् का आठवाँ ग्रन्थ

अपभ्रंश-साहित्य

(दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत निबन्ध)

प्रो० हरिवंश कोछड़,
एम० ए० (हिन्दी तथा संस्कृत),
पी-एच० डी०
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गवर्नमैण्ट कॉलेज, नैनीताल

हिन्दी अनुसन्धान परिषद्
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
की ओर से
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा - दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

एस० चंद एंड कंपनी

आसफअली रोड	—	नई दिल्ली
फव्वारा	—	दिल्ली
माई हीरां गेट	—	जलधर
लालबाग	—	लखनऊ

मूल्य १०)

गौरीशंकर शर्मा, भारती साहित्य मदिर, फव्वारा, दिल्ली–६ द्वारा प्रकाशित एव
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्राइवेट लि०, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

हमारी योजना

'अपभ्रंश साहित्य' हिन्दी अनुसन्धान परिषद् ग्रन्थमाला का आठवाँ ग्रंथ है। हिन्दी अनुसन्धान परिषद् हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय की सस्था है जिसकी स्थापना अक्तूबर सन् १९५२ मे हुई थी। परिषद् के मुख्यत दो उद्देश्य है—हिन्दी वाड्मय विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रथो का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रथ दो प्रकार के ह—एक तो वे जिनमे प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रथो का हिन्दी रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओ के साथ प्रस्तुत किया गया ह; दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच. डी की उपाधि प्रदान की गई है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रथ है—'हिन्दी काव्यालकारसूत्र' तथा 'हिन्दी वक्रोक्तिजीवित'। इस वर्ग का आगामी प्रकाशन विस्तृत सैद्धान्तिक भूमिका-युक्त 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' प्रेस मे है। 'अनुसन्धान का स्वरूप' पुस्तक मे अनुसन्धान के स्वरूप पर मान्य आचार्यो के निबन्ध सकलित है जो परिषद् के अनुरोध पर लिखे गये थे। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रथ है—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (२) हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास (३) सूफीमत और हिन्दी-साहित्य। इसी वर्ग का यह चौथा प्रकाशन 'अपभ्रंश साहित्य' आपके सामने प्रस्तुत है।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने मे हमे दिल्ली की कई प्रसिद्ध प्रकाशन सस्थाओ से सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा ह। उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन करते है।

नगेन्द्र

अध्यक्ष,
हिन्दी अनुसन्धान परिषद्,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली—७

आमुख

डा० हरिवंश कोछड की शिक्षा प्रथम गुरुकुल कागडी (हरिद्वार) में हुई । उसके उपरान्त इन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि सम्मानपूर्वक प्राप्त की । एम० ए० की पढाई के लिए आप प्रयाग आए और १९३५ मे सस्कृत विषय लेकर यह उपाधि भी आपने प्रथम श्रेणी मे ली । उसके बाद प्रयाग, गोरखपुर, दिल्ली और नैनीताल मे आप अध्यापन-कार्य करते रहे है। आपने हिन्दी मे भी कई वर्ष पहले एम० ए० कर लिया था ।

डा कोछड स्वभाव से मृदु, मितभाषी और विनयशील है। भारतीय सस्कृति के 'सभेय युवा' का आदर्श आप मे घटित होता है । अध्यापक को सदा अध्ययनशील होना चाहिए इस ध्येय को आपने अपने सामने रक्खा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ को आपने दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए निबन्ध स्वरूप लिखा था । आपके परीक्षको ने इसकी प्रशसा की थी। प्रसन्नता की बात है कि यह प्रकाशित हो रहा है।

इस ग्रन्थ मे अपभ्रश भाषा और साहित्य का विशद वर्णन किया गया है। भाषा-सम्बन्धी सामग्री अन्यत्र भी सुलभ है पर साहित्य-सम्बन्धी सामग्री अब भी अधिकाश मे बिखरी हुई और दुष्प्राप्य ह । इस ग्रन्थ के पढने से पाठक को मालूम होगा कि यह साहित्य भारतीय परम्परा की एक ऐसी कडी है जिसको पकड़े बिना वर्तमान आर्य-भाषाओ का साहित्य ठीक स्वरूप मे नही समझा जा सकता। इसके अतिरिक्त इस साहित्य मे उच्च वर्ग का उतना चित्रण नही है जितना मध्यम श्रेणी के लोगो का । एक प्रकार से यह भी कह सकते है कि यह अपने समय के समाज का सच्चा चित्र है। इस कारण इसका विवेचन उपादेय था ।

लेखक ने आवश्यक परिशिष्ट देकर इसको और भी उपयोगी बना दिया है । विश्वास है कि विद्वत्समाज इस ग्रन्थ-रत्न का आदर करेगा। शुभ भूयात् ।

बाबूराम सक्सेना
अध्यक्ष
सस्कृत-विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

सस्कृत साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ विदेशी विद्वानों मे प्राकृत साहित्य के अध्ययन का भी प्रचलन हुआ। इसी के परिणामस्वरूप विद्वानों का ध्यान अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। वस्तुत इस साहित्य का श्रीगणश पिशेल और याकोबी जसे विद्वानो से ही हुआ। भाषा-विज्ञान तथा साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र मे अपभ्रंश का प्रवेश १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूर्व न हो सका।

रिचर्डस् पिशेल ने हेमचन्द्र के शब्दानशासन और अन्य वैयाकरणो के प्राकृत ग्रन्थो के अध्ययन के अनन्तर 'ग्रमेटिक डेयर प्राकृत स्प्राखन' नामक ग्रन्थ सन् १९०० में प्रकाशित कराया। इसके थोडे समय बाद ही पिशल ने उस समय तक उपलब्ध सम्पूर्ण अपभ्रश सामग्री को एकत्र कर 'मेटिरिएलिन त्सुर केटनिस डेस अपभ्र श' नामक ग्रन्थ सन् १९०२ मे बर्लिन से प्रकाशित कराया। पिशल के समान हेरमन याकोबी न भी अनेक प्राकृत कथाओ का सग्रह और अनेक प्राकृत ग्रन्थो का सम्पादन कर उनका प्रकाशन कराया।

उपरिलिखित विद्वानो के प्रयत्नो के परिणामस्वरूप अनेक भारतीय और अन्य विदेशी विद्वानो का ध्यान भी अपभ्रंश की ओर आकृष्ट हुआ। प्रो पिशेल के व्याकरण ग्रन्थ के विद्वानो के समक्ष आने पर अन्य व्याकरण ग्रन्थो का सम्पादन भी आरम्भ हुआ। श्री चन्द्र मोहन घोष ने सन् १९०२ मे 'प्राकृत पैंगलम्' और देवकरण मूलचन्द ने सन् १९१२ मे हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' का सम्पादन किया। इन ग्रन्थो के प्रकाश मे आने पर अन्य अपभ्रश ग्रन्थो की खोज और सम्पादन भी आरम्भ हुआ। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने १९१६ ई० मे बगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता से 'बौद्धगान ओ दोहा' नाम से बौद्ध सिद्धो के अपभ्रंश दोहों और गानो का बगला अक्षरो मे प्रकाशन कराया। सन् १९१८ मे डा० याकोबी ने धनपाल की 'भविसयत्त कहा' का म्यूनिख 'जर्मनी' से प्रकाशन कराया। भूमिका और अनुवाद जर्मन भाषा में है। सन् १९२१ मे इसी विद्वान् ने हरिभद्र सूरि के नेमिनाथ चरित्र के एक अश सनत्कुमार चरित को, जो अपभ्रंश भाषा मे है, मुशेन 'जर्मनी' से प्रकाशित किया। इसकी भी भूमिका, अनुवाद और टिप्पणी जर्मन भाषा मे है। दोनों ग्रन्थों की भूमिका बडी ही विद्वत्तापूर्ण और उपादेय ह। सन् १९१४ म बडौदा के महाराज सर सयाजी गायकवाड के आदेश से श्री चिमनलाल डाह्याभाई दलाल ने पाटण (पत्तन) के जन ग्रथ भंडार की पुस्तको की छानबीन करके कुछ अपभ्रश ग्रथो का पता लगाया। श्री दलाल ने जैन भडारो में हस्तलिखित अपभ्रंश ग्रथो की खोज से प्राप्त हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर 'भविसयत्त कहा' का एक दूसरा सस्करण प्रकाशित करना प्रारम्भ भी किया किन्तु बीच मे ही उनके स्वर्गवास हो जाने पर डा० पाडुरग दामोदर गणे ने उसे सन् १९२३ मे पूरा कर प्रकाशित किया। इस ग्रथ की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भूमिका मे

लेखक ने अपभ्रश-साहित्य, अपभ्रश साहित्य का इतिहास, अपभ्रश काल, व्याकरण, छन्द एव उसका आभीर-जाति से सम्बन्धादि विषयो पर भी प्रकाश डाला। इस विद्वत्तापूर्ण भूमिका द्वारा डा० गुणे ने अपभ्रंश के भावी विद्वानो के लिए अपभ्रश के अध्ययन का मार्ग सुप्रशस्त कर दिया। इसके बाद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के तत्कालीन रिसर्च स्कालर श्री हीरालाल जैन ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़ भाग १, सन् १९२५ मे 'अपभ्रश लिटरेचर' नामक लेख द्वारा अनेक अपभ्रश ग्रन्थो की सूचना दी। सन् १९२६ मे रा० ब० हीरालाल ने 'कटलोग आफ सस्कृत एड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि सी पी. एड बरार', नागपुर से प्रकाशित करवाया जिससे कुछ और अपभ्रश ग्रन्थ और उनके कवि प्रकाश मे आये। सन् १९२७ मे श्री एल० बी० गाधी ने 'अपभ्रश काव्यत्रयी' तथा 'प्राचीन गुर्जर काव्य-सग्रह' का सम्पादन कर प्रकाशन करवाया। इस से कतिपय अन्य अपभ्रश कवि और उनकी रचनाओ का परिचय मिला। सन् १९२८ मे डा० पी० एल० वैद्य ने 'हेमचन्द्र-प्राकृत व्याकरण' का सम्पादन किया, जिससे अपभ्रश के अध्ययन मे और सहायता मिली।

इस समय तक भारतीय विद्वानो का ध्यान अपभ्रश की तरफ आकृष्ट हो चका था। डा० बाबूराम सक्सेना ने विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' का सम्पादन कर नागरी प्रचारिणी सभा काशी से सन् १९२९ मे उसे प्रकाशित कराया। डा० हीरालाल जैन ने 'सावयधम्म दोहा' (सन् १९३२), 'पाहुड दोहा' (सन् १९३३), 'णाय कुमार चरिउ' (१९३३), 'करकड चरिउ' (१९३४) आदि ग्रथो का सम्पादन कर प्रकाशन कराया। डा० परशराम वैद्य ने पुष्पदन्त के 'जसहर चरिउ' का (सन् १९३१) में और 'महा-पुराण' के तीन भागो का (सन् १९३७, १९४० और १९४१ में) सम्पादन किया। डा० आ० ने० उपाध्ये ने सन् १९३७ मे 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार' का प्रकाशन कराया। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के बाद डा० शहीदुल्ला ने पेरिस से सन् १९२८ मे और डा० प्रबोधचन्द्र बागची न सन् १९३८ मे कलकत्ता से कुछ सिद्धो के दोहे और गान प्रकाशित कराये। श्री राहुल साकृत्यायन ने सिद्धो की रचनाओ के विषय मे तिब्बती ग्रन्थो के आधार पर, पहले गगा पुरातत्वाक द्वारा और पीछे से पुरातत्व निबन्धावली (सन् १९३७) मे 'हिन्दी के प्राचीनतम कवि' नामक लेख द्वारा विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया।

उपरिनिर्दिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त लुडविग आल्सडर्फ, श्री मुनि जिन विजय, श्री भायाणी' डा० हरि दामोदर वेलणकर प्रभृति विद्वान् अब भी अपभ्रश भाषा और साहित्य के अध्ययन मे सलग्न है और अनेक विद्वानो के लेख समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है। सन् १९५० मे श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल ने जयपुर से आमेर शास्त्र भंडार के अनेक हस्तलिखित सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश ग्रंथो की प्रशस्तियो का सग्रह प्रकाशित किया। इससे अनेक अपभ्रश कवियो और उनके ग्रंथो पर प्रकाश पडा।

अपभ्रश की ओर विद्वानो का ध्यान सर्वप्रथम भाषा विज्ञान के कारण गया। तदनतर

विद्वान् इसके साहित्य की ओर भी आकृष्ट हुए। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका नवीन सस्करण भाग २ मे कई वर्ष पूर्व 'पुरानी हिन्दी' नाम का एक प्रबन्ध लिखा था। इसमे उन्होने प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओ के प्रवाह-क्रम में अपभ्रश का महत्त्व दिखाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपभ्रश या प्राकृताभास हिन्दी के नाम से कुछ कवियो और ग्रथो का निर्देश किया। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सन् १९४० मे अपनी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक मे भारतीय भाषा, साहित्य और विचारधारा के पूर्वापर विकास मे अपभ्रश के महत्त्व की ओर निर्देश किया।

अपभ्रश का इतना महत्त्व होते हुए भी अभी तक कोई इस साहित्य का विकासात्मक ग्रथ या इतिहास प्रकाशित न हो सका। प० नाथूराम प्रेमी ने 'जैन साहित्य और इतिहास' सन् १९४२ मे प्रकाशित कराया था। उसमे अनेक सस्कृत, प्राकृत-अपभ्रश के जैन लेखको का परिचय मिलता है। श्री राहुल जी ने सन् १९४५ मे प्रयाग से 'हिन्दी काव्य-धारा' का प्रकाशन करवाकर अनेक अपभ्रश कवियो की रचनाओ का सग्रह प्रस्तुत किया। सन् १९४७ मे श्री कामताप्रसाद जैन ने 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास' लिखा। इसम लेखक ने अपभ्रश काल से लेकर १९ वी सदी तक जैन धर्मानुयायी विद्वानो की हिन्दी साहित्य सम्बन्धी रचनाओ का सक्षिप्त परिचय दिया है। सन् १९५१ मे डा० रामसिंह तोमर ने 'प्राकृत-अपभ्रश-साहित्य और उसका हिन्दी पर प्रभाव' नामक निबन्ध लिखा। यह निबन्ध अतीव परिश्रम और योग्यता से लिखा गया है किन्तु अभी तक अप्रकाशित है। सन् १९५२ म बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्त्वावधान मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषणो मे अपभ्रशकाल के कवियो पर यथेष्ट प्रकाश डाला।

यद्यपि अनेक विद्वानो ने अपभ्रश-साहित्य के अध्ययन को अत्यन्त आवश्यक बताया है तथापि अभी तक एतद्विषयक कोई ग्रंथ प्राप्य नही। हिन्दी ही नही अपितु अन्य प्रातीय भाषाओ के विकास के लिए भी अपभ्रश साहित्य का ज्ञान अतीव आवश्यक है। अपभ्रश के इस महत्त्व को समझते हुए और एतद्विषयक ग्रथ के अभाव का अनुभव करते हुए मैंने इस विषय पर कुछ लिखने का प्रयास किया ह।

इस निबन्ध मे अपभ्रश-साहित्य का अध्ययन विशेषत साहित्यिक दृष्टि से किया गया है। अद्यावधि प्रकाश मे आए हुए अपभ्रश-साहित्य के अनेक ग्रथो का चाहे साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्त्व न हो किन्तु भाषा-विकास की दृष्टि से इनकी उपादेयता कोई अस्वीकार नही कर सकता। अपभ्रश-साहित्य का महाकाव्य, खडकाव्य और मुक्तक काव्यो की दृष्टि से वर्गीकरण करते हुए सक्षेप मे उसकी सस्कृत और प्राकृत से तुलना करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार अपभ्रश ने कौन सी प्रवृत्तियाँ प्राचीन परम्परा से प्राप्त की और कौन सी स्वतत्र रूप से स्वय विकसित की, इसको समझने का प्रयास किया गया है। इतना ही नही अपभ्रश की किन प्रवृत्तियो ने हिन्दी-साहित्य को प्रभावित किया इसकी ओर भी सक्षेप मे निर्देश किया गया है।

अपभ्रश के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है; अनक अभी तक हस्तलिखित प्रतियों के रूप मे अप्रकाशित पड है। कितने ही ग्रथ जैन भण्डारो मे अभी तक लुप्त पडे है। इस सारे साहित्य का गभीर और विवेचनात्मक अध्ययन अद्यावधि सभव नही। इस निबन्ध मे अपभ्रश के प्रकाशित तथा अप्रकाशित मूल ग्रथो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रकाशित और अप्रकाशित प्राप्य अपभ्रश-ग्रथो का साहित्यिक दृष्टि से वर्गीकरण किया गया ह। इस सामग्री के अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित परिणामो की ओर सकेत मिलता है—

१ सस्कृत और प्राकृत काव्यो का वर्णनीय विषय सामान्यत राम कथा, कृष्ण कथा, प्राचीन उपाख्यान, धार्मिक महापुरुष, प्रसिद्ध राजा आदि से सबद्ध कोई विषय होता था, परन्तु अपभ्रश मे इन सबके साथ-साथ सामान्यवर्ग के पुरुषो को भी काव्य मे नायक बनाया गया। इसके अतिरिक्त अपभ्रश-साहित्य मे जन-धर्म सम्बन्धी कथानको का वर्णन विपुल मात्रा मे पाया जाता ह।

२ प्रबन्ध काव्यो मे चरित नायक के वर्णन के साथ-साथ जिन अन्य दृश्यो के वर्णन की परम्परा अभी तक चली आ रही थी उनको मानव-जीवन के दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न अपभ्रश काव्यो से हुआ। यद्यपि प्राकृत म ही इस प्रवृत्ति के बीज विद्यमान थ किन्तु उसका विकास अपभ्रश साहित्य मे ही हुआ।

३ अपभ्रश के अधिकाश काव्यो मे शृगार और वीररस से परिपोषित निर्वेदभाव या शान्त रस की ही प्रधानता है।

४ अपभ्रश साहित्य मे तीन धाराएँ बहती हुई प्रतीत होती है—प्रथम रूढिवादी कवि जिनकी सख्या अल्प ह, द्वितीय क्रातिवादी—जो बहुसख्यक ह और तृतीय मिश्रित—जिनकी सख्या रूढिवादियो से कुछ अधिक है।

५ लौकिक जीवन और ग्राम्य जीवन से सबद्ध वर्णनो का प्रभाव अपभ्रश की मुक्तक काव्य शली मे अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है।

६ प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे या अलकार-विधान मे लौकिक जीवन से सबद्ध उपमानो का प्रयोग अपभ्रश कवियों की विशेषता थी।

७. अपभ्रश मे अनेक नये छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ जिनका सस्कृत मे अभाव है

८. छन्दो के समान नवीन अलकारो को भी अपभ्रश न जन्म दिया। अपभ्रश विषयक अलकार ग्रंथो के अभाव से यद्यपि उन अलकारो का नामकरण भी न हो सका तथापि इस प्रकार के कुछ अलकारो का प्रयोग हिन्दी मे भी पाया जाता है।

९ हिन्दी छन्दो मे मात्रिक छन्दो की अधिकता और उनमे अन्त्यानुप्रास का प्रयोग अपभ्रंश से ही आया। हिन्दी के अनक मात्रिक छन्द अपभ्रश से ही विकसित हुए।

१० हिन्दी के भिन्न-भिन्न काव्य-रूपो, काव्य-पद्धतियो और काव्य-शैलियो को अपभ्रश ने प्रभावित किया।

११. हिन्दी कवियो की विचारधारा पर भी अपभ्रश कवियो का प्रभाव पडा।

१२ भरत खंड मे चिरकाल से भारतीय साहित्य की धारा अविच्छिन्न गति से

प्रवाहित होती चली आ रही है। वह धारा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अनन्तर आज हिन्दी-साहित्य के रूप में हमे दिखाई देती है।

अपभ्रंश ग्रंथो के अध्ययन के लिए मुझे भारतीय विद्या भवन बम्बई, बम्बई म्यूजियम, आमेर शास्त्र भडार, श्री वीर सेवा मदिर सरसावा तथा अन्य जैन भडारों में जाने का अवसर मिला। इन स्थानों के सचालकों ने जिस सौजन्य का परिचय दिया उसके लिए मै उनका सदा कृतज्ञ रहूँगा। मै श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री परमानन्द जैन और श्री पन्नालाल जैन अग्रवाल का विशेष रूप से अनुग्रहीत हूँ जिन्होने समय-समय पर हस्तलिखित ग्रथो को जुटाने का प्रयत्न किया।

सौभाग्य से दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष, महामहोपाध्याय डा० लक्ष्मीधर शास्त्री के निरीक्षण म दीर्घकाल तक इस विषय पर निरन्तर कार्य करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। उनकी सहायता, सतत प्रेरणा और सत्परामर्शों के फलस्वरूप ही यह निबन्ध प्रस्तुत हो सका। उनका आशीर्वाद और वरद हस्त मुझ पर सदा ही बना रहा किन्तु जिस परिश्रम और लगन से इस कार्य में उनका सहयोग मिला है उसके लिए मै उनका सदा कृतज्ञ और ऋणी रहूगा।

जो निबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था उसी को यत्र-तत्र सशोधित कर अब प्रकाशित कराया जा रहा है। इस अवधि मे जो भी हस्तलिखित ग्रथ एव नवीन सामग्री उपलब्ध हो सकी है, उसका भी यथास्थान उपयोग किया गया है। एतदर्थ जिन विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है—जिन लेखको और ग्रथकारो के लेखों एव ग्रंथो का उपयोग किया गया है—उन सब का मै हृदय से आभारी हूँ।

मै श्रद्धेय गुरुवर डा० बाबूराम सक्सेना का परम अनुग्रहीत हूँ जिन्होने अत्यन्त कार्यव्यस्त रहते हुए भी इस ग्रंथ का आमुख लिखने की कृपा की। डाक्टर साहब न ग्रथ को आद्योपान्त पढकर जो सुझाव दिये उनके अनुसार मूल निबन्ध में परिवर्त्तन और परिवर्धन किया गया है। आचार्य चन्द्रबली पाडे न भी अपना बहुमूल्य समय निकालकर जो सत्परामर्श देने की कृपा की उसके लिए मैं उनका हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ।

यह ग्रथ दिल्ली विश्वविद्यालय की हिन्दी-अनुसधान-परिषद् के तत्त्वावधान में प्रकाशित हो रहा है, अत· मै परिषद् के अध्यक्ष डा० नगेन्द्र का अत्यन्त आभारी हूँ। इस के प्रकाशक न बड प्रयास के साथ इस ग्रथ की रूपरेखा को आकर्षक बनाया है अतः मै उन्हे भी धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। अपभ्रश-भाषा से अपरिचित होने के कारण प्रूफरीडरों के यथासभव प्रयत्न करने पर भी ग्रथ मे यत्र-तत्र अशुद्धियाँ रह गई है। इसके लिए मै पाठको से क्षमा चाहता हूँ।

जन्माष्टमी, सवत् २०१३ विक्रमी

हरिवंश कोछड़

विषय-सूची

आमुख		पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन		९ – १३
	प्रथम भाग (अपभ्रंश-भाषा)	
पहला अध्याय	अपभ्रंश-विषयक निर्देश	१ – ७
दूसरा अध्याय	अपभ्रश-भाषा का विकास	८ – १७
तीसरा अध्याय	अपभ्रश और हिन्दी-भाषा	१८ – २४
चौथा अध्याय	अपभ्रश-साहित्य की पृष्ठभूमि	२५ – ३३
	द्वितीय भाग (अपभ्रंश-साहित्य)	
पाँचवाँ अध्याय	अपभ्रश-साहित्य का सक्षिप्त परिचय	३४ – ४८
छठा अध्याय	अपभ्रश महाकाव्य	४९ – १२८
सातवाँ अध्याय	अपभ्रश खंडकाव्य (धार्मिक)	१२९ – २४६
आठवाँ अध्याय	अपभ्रंश खडकाव्य (लौकिक)	२४७ – २६५
नवाँ अध्याय	अपभ्रश मुक्तक काव्य (१) (जैनधर्म)	२६६ – २९९
दसवाँ अध्याय	अपभ्रंश मुक्तक काव्य (२) (बौद्धधर्म)	३०० – ३१८
ग्यारहवाँ अध्याय	अपभ्रश मुक्तक काव्य (३)	३१९ – ३३३
	(विविध-साहित्यिक)	
बारहवाँ अध्याय	अपभ्रश रूपक-काव्य	३३४ – ३३९
तेरहवाँ अध्याय	अपभ्रश कथा-साहित्य	३४० – ३६०
चौदहवाँ अध्याय	अपभ्रंश स्फुट-साहित्य	३६१ – ३७५
पद्रहवाँ अध्याय	अपभ्रश गद्य	३७६ – ३८१
सोलहवाँ अध्याय	एक तुलनात्मक विवेचन	३८२ – ३८६
सत्रहवाँ अध्याय	अपभ्रश-साहित्य का हिन्दी पर प्रभाव	३८७ – ४०८
परिशिष्ट (१) ग्रन्थकार, ग्रन्थ, रचनाकाल तथा विषय		४०९ – ४१३
परिशिष्ट (२) कतिपय प्रसिद्ध सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ तथा वाग्धारायें		४१४ – ४१८
परिशिष्ट (३) संभव जिणणाह चरिउ		४१९ – ४२०
	अनुक्रमाणिका	४२१ – ४२९
	सहायक ग्रन्थों की सूची	४३० – ४३५

* ओ३म् *

पहला अध्याय

अपभ्रंश-विषयक निर्देश

अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख हमे पतजलि (ई० पू० दूसरी शती) से कुछ शताब्दी पूर्व मिलता है। 'वाक्यपदीयम्' के रचयिता भर्तृहरि ने महाभाष्यकार के पूर्ववर्ती 'सग्रहकार' व्याडि नामक आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए अपभ्रंश शब्द का निर्देश किया है[1]।

अपभ्रंश शब्द का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य मे भी मिलता है—

एकस्यैव शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा गौरित्यस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतालिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। म भा. १.१ १

इन शब्दो मे से अनेक शब्द भिन्न-भिन्न प्राकृतों मे मिलते हैं। प्राकृत भाषा के व्याकरणकार चड और हेमचन्द्र ने अपने-अपने व्याकरणो मे उक्त रूपो मे से कुछ प्राकृत के सामान्य रूप स्वीकार किये हैं। जैसे—

"गोर्गाविः", चंड—प्राकृत लक्षण २. १६

"गोणादयः गोः, गोणी, गावी, गावः, गावीओ", हेमचन्द्र—प्राकृत व्याकरण, ८. २. १७४

इससे प्रतीत होता है कि पतंजलि और उनके पूर्व के आचार्य उन सब शब्दों को अपभ्रंश समझते थे, जो शिष्ट-समत सस्कृत भाषा से विकृत या भ्रष्ट होते थे।

भरत अपने नाट्य-शास्त्र मे संस्कृत के अनन्तर प्राकृत पाठ्य का निर्देश करते हुए कहते हैं—

---

१. **"शब्द संस्कार हीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते।**
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थ निवेशिनम्॥

वार्त्तिक—शब्दप्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंशः स्वतंत्रः कश्चिद्विद्यते। सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः। प्रसिद्धेस्तु रूढितामापाद्यमाना स्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृतयोपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते।"

भर्तृहरि—वाक्यपदीयम्, प्रथमकाण्ड, कारिका १४८, लाहौर संस्करण
सं० पं० चारुदेव शास्त्री

नामवरसिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५२ ई०, पृ० २-३ से उद्धृत।

एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम् ।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम् ।।
त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्ययोगे समासतः ।
समान शब्दं विभ्रष्टं देशीगतमथापि च ।।

नाट्य० १७. २-३

अर्थात् प्राकृत तीन प्रकार की होती है—(१) जिसमे सस्कृत के समान शब्दो का प्रयोग हो, (२) सस्कृत से विकृत शब्दो का प्रयोग हो, और (३) जिसमे देशी भाषा के शब्दो का प्रयोग हो। दूसरे शब्दो में प्राकृत मे तीन प्रकार के शब्दो का प्रयोग होता है—तत्सम, विभ्रष्ट या तद्भव और देशी। एव जिसे पतजलि ने अपभ्रंश कहा, भरत के अनुसार वही विभ्रष्ट है।

भरत ने नाट्य-शास्त्र में सात भाषाओ का निर्देश किया है—

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी ।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्त्तिताः ।।

नाट्य० १७ ४६

इन सात भाषाओ के अतिरिक्त उन्होने कुछ विभाषाओ का भी निर्देश किया है—

शकाराभीर चांडाल शबर द्रमिलान्ध्रजाः ।
(शबराभीर चांडाल सचर द्रविडोद्रजाः)
हीना वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृताः ।।

नाट्य० १७. ५०

आगे चलकर इन विभाषाओ का स्थान-निर्देश करते हुए भरत ने बताया है—

हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः ।
उकारबहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ।।

नाट्य० १७. ६२

उत्तरकालीन लेखको ने अपभ्रंश को उकार-बहुला माना है, अत भरत के उपरिलिखित निर्देश से स्पष्ट होता है कि उनके समय यद्यपि अपभ्रंश नाम की कोई भाषा विकसित न थी, तथापि बीज रूप मे वह हिमवत् (हिम-प्रदेश), सिन्धु और सौवीर मे वर्तमान थी।

भरत के भाषा-सम्बन्धी निर्देशो से यही प्रतीत होता है कि उनके समय सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत का प्रचार था। प्राकृत को भाषा कहा जाता था और भिन्न-भिन्न देशो के अनुसार उसे सात प्रकार की माना जाता था। इनके अतिरिक्त शकाराभीर आदि कुछ विभाषाएँ भी थी। अभिनवगुप्त अपनी विवृति में भाषा और विभाषा का भेद स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

"भाषा संस्कृतापभ्रंशः, भाषापभ्रंशस्तु विभाषा सा तत्तद्देश एव गह्वरवासिनां प्राकृतवासिनां च, एता एव नाट्ये तु ।"

भरत नाट्य-शास्त्र, पृ० ३७६

अर्थात् संस्कृत से विकृत या अपभ्रष्ट प्राकृत का नाम भाषा और प्राकृत से विकृत बोली विभाषा कहाती है।

इससे प्रतीत होता है कि ये विभाषाएँ कभी साहित्यिक रूप से प्रचलित न थी। संभवत देश के साथ भी इनका सम्बन्ध आरम्भ मे न था। अशिक्षित वनवासी आदि ही इनका व्यवहार करते थे।

भामह (६ठी शताब्दी) अपभ्रंश को काव्योपयोगी भाषा और काव्य का एक विशेष रूप मानते हैं—

शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा॥

काव्यालंकार, १. १६, २८

दंडी (७ वीं शताब्दी) का विचार है—

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्॥

काव्यादर्श १. ३६

अर्थात् भाषाशास्त्र या व्याकरण मे अपभ्रंश का अर्थ है संस्कृत से विकृत रूप। काव्य में आभीरादि की बोलियाँ अपभ्रंश कहलाती हैं। दंडी ने समस्त वाङ्मय को चार भागो मे विभक्त किया है—

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्॥

काव्या० १. ३२

अपभ्रंश भी वाङ्मय का एक भेद है। इनके समय साहित्यिक नाटको मे निम्न श्रेणी के पात्रो द्वारा ही इसका प्रयोग न होता था अन्यथा वाङ्मय के भेदो मे अपभ्रंश की गणना न होती। दंडी ने अपभ्रंश में प्रयुक्त होने वाले ओसरादि कुछ छन्दों या विभागो का भी निर्देश किया है—

संस्कृतं सर्गबन्धादि प्राकृतं स्कन्धकादि यत्।
ओसरादिरपभ्रंशो नाटकादि तु मिश्रकम्॥

काव्या० १. ३७

उपरिलिखित उद्धरणो से प्रतीत होता है कि अपभ्रंश का आभीरो के साथ संबध बना हुआ था और इसीसे अपभ्रंश 'आभीरोक्ति' या 'आभीरादिगीः' कही गई है। किन्तु आभीरोक्ति होते हुए भी इस समय अपभ्रंश मे काव्य रचना होने लग गई थी।

वलभी (सौराष्ट्र) का राजा धरसेन द्वितीय अपने पिता गुहसेन के विषय मे कहता है कि वह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनो भाषाओ मे प्रबन्ध-रचना में निपुण था।

संस्कृतप्राकृतापभ्रंशभाषात्रयप्रतिबद्ध प्रबन्धरचना निपुणतरान्तःकरणः इत्यादि।[1]

वलभी के धरसेन द्वितीय का दानपत्र

---

१. इंडियन एंटिक्वेरी, भाग १०, अक्तू० १८८१, पृ० २८४।

यद्यपि इस शिलालेख का समय दानपत्र मे ४०० शक सं० मिलता है किन्तु प्रो० व्यूलर इसको जाली समझते हैं।[1] जाली होते हुए भी उनके विचार में यह दानपत्र शक सवत् ४०० के सौ दो सौ वर्ष बाद लिखा गया।[2] उनके कथनानुसार भी इतना तो निश्चित है कि शक सवत् ६०० या ६७८ ई० तक अपभ्रंश मे रचना करना हेय नही समझा जाता था।

कुवलयमाला कथा के लेखक उद्योतन सूरि (वि० स० ८३५) अपभ्रंश को आदर की दृष्टि से देखते हैं और उसके काव्य की प्रशसा भी करते हैं।[3]

नवीं शताब्दी मे रुद्रट अपने काव्यालंकार में काव्य को गद्य और पद्य मे विभक्त करने के अनन्तर भाषा के आधार पर उसका छ भाग में विभाजन करते हैं—

भाषाभेदनिमित्तः षोढा भेदोऽस्य संभवति।

२. ११

प्राकृत संस्कृत मागध पिशाच भाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देश विशेषादपभ्रंशः॥

२. १२

इस प्रकार रुद्रट अपभ्रंश को अन्य साहित्यिक प्राकृतो के समान गौरव का पद देते है और देश-भेद के कारण विविध अपभ्रंश भाषाओ का उल्लेख करते हैं।

पुष्पदन्त (लगभग १० वी शताब्दी) ने अपने महापुराण मे सस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। उस समय सस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश का ज्ञान भी राजकुमारियो को कराया जाता था।[4]

प्राय इसी समय राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमासा में अनेक स्थलो पर अपभ्रंश का निर्देश किया है।[5] अपने पूर्ववर्ती आलकारिको की तरह इन्होने भी सस्कृत, प्राकृत और पैशाची के समान अपभ्रंश भाषा को भी पृथक् साहित्यिक भाषा स्वीकार

---

१. इंडियन एंटिक्वेरी, भाग १०, अक्तूबर, १८८१, पृ० २७७।
२. वही पृ० २८२।
३. ता किं अवहंसं होहिइ ? हूँ। तं पि णो जेण तं सक्कयपाय-उभय सुद्धासुद्ध पयसम तरंग रंगंत वग्गिरं णव पाउस जलय पवाह पूरपव्वालिय गिरिणइ सरिसं सम विसमं पणय कुविय पियपणइणी समुल्लाव सरिसं मणोहरं। लालचन्द भगवानदास गान्धी—अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड् सीरीज, सं० ३७, भूमिका पृ० ९७-९८ से उद्धृत।
४. सवक्कउ पायउ पुण अवहंसउ वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ
महापुराण, ५. १८. ६।
५. काव्यमीमांसा, गायकवाड् ओरियंटल सिरीज, संख्या १, बडौदा, १९२४ ई० अध्याय ३, पृ० ६ पर काव्यपुरुष का वर्णन, अध्याय १०, पृ० ५४-५५, अध्याय ९, पृ० ४८।

किया है। काव्य-पुरुष के शरीर का वर्णन करते हुए राजशेखर कहते हैं—

शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः,
जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम् ॥

अ. ३, पृ० ६

राजशेखर ने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के क्षेत्र का निर्देश करते हुए सकल मरु भू, टक्क और भादानक को अपभ्रंश से मिलती-जुलती भाषा का प्रयोग करने वाला क्षेत्र घोषित किया है।[1] एक दूसरे स्थल पर सुराष्ट्र और त्रवण को अपभ्रंश भाषाभाषी कहा है।[2]

नमि साधु (१०६९ ई०) काव्यालंकार २ १२ पर टीका करते हुए काव्यालकार वृत्ति मे लिखते है—

तथा प्राकृतमेवापभ्रंशः स चान्यैरुपनागराभीरग्राम्यावभेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्तं भूरिभेद इति। कुतो देशविशेषात्। तस्य च लक्षणं लोकोदेव सम्यगवसेयम्।

नमि साधु अपभ्रंश को एक प्रकार से प्राकृत ही मानते हैं। अपने पूर्वकालिक ग्रथकारो के द्वारा निर्दिष्ट तीन प्रकार की अपभ्रंश—उपनागर, आभीर और ग्राम्या—का निर्देश करते हुए स्वीकार करते है कि अपभ्रंश के इससे भी अधिक भेद हैं। इनकी दृष्टि मे अपभ्रंश को जानने का सर्वोत्तम साधन लोक ही है, क्योकि उस समय तक अपभ्रंश लोक भाषा के रूप मे प्रचलित हो गई थी।

नमि साधु ने एक और स्थल पर ऐसा उल्लेख किया है—

आभीरी भाषापभ्रंशस्था कथिता क्वचिन्मागध्यामपि दृश्यते।

पृ० १५

इससे प्रतीत होता है कि अपभ्रंश का कोई रूप इस काल मे मगध तक फैल गया था और उसी की कोई बोली मगध में भी बोली जाने लगी थी।

इसके अनन्तर मम्मट (११ वी शताब्दी), वाग्भट (११४० ई०), विष्णुधर्मोत्तर का कर्त्ता, हेमचन्द्र, नाट्यदर्पण मे रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र (१२ वी शताब्दी) और काव्यलता परिमल मे अमरचन्द्र (१२५० ई०) सब अपभ्रंश को संस्कृत और प्राकृत की कोटि की साहित्यिक भाषा स्वीकार करते है।

वाग्भट अपभ्रंश को देश भाषा कहते हैं—

अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्।

वाग्भटालकार, २ ३

विष्णुधर्मोत्तर के कर्त्ता की दृष्टि मे देशभेदो की अनन्तता के कारण अपभ्रंश भी अनन्त हैं—

---

१. वही, अध्याय १०, पृ० ५१, "सापभ्रंश प्रयोगाः सकल मरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।"

२. वही अध्याय ७, पृ० ३४।

अपभ्रष्टं तृतीयं च तदनन्तं नराधिप।
देशभाषा विशेषेण तस्यान्तो नेह विद्यते ॥[1]

विष्णु ३. ३.

नाट्य-दर्पण मे अपभ्रंश को देशभाषा कहा गया है।[2]

अमरचन्द्र षड् भाषाओ मे अपभ्रंश की भी गणना करते हैं—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शोरसेनी च मागधी।
पैशाचिकी चापभ्रंशं षड् भाषाः परिकीर्त्तिताः॥

काव्यकल्पलतावृत्ति पृ० ८

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग यद्यपि महाभाष्य से भी कुछ शताब्दी पूर्व मिलता है तथापि अपभ्रंश शब्द का व्यवहार भाषा के रूप में कब से प्रयुक्त होने लगा, निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। भाषा-शास्त्र के विद्वानो ने अपभ्रंश-साहित्य का आरम्भ ५०० या ६०० ई० से माना है। किन्तु अपभ्रंश भाषा के जो लक्षण वैयाकरणो ने निर्दिष्ट किये हैं उनके कुछ उदाहरण हमे अशोक के शिलालेखो मे मिलते हैं। उदाहरण के लिए सयुक्त र और उकारान्त पदो का प्रयोग। इसी प्रकार धम्मपद मे भी अनेक शब्दो मे अपभ्रंश-रूप दिखाई देते है। ललित विस्तर और महायान सप्रदाय के अन्य बौद्ध ग्रथो की गाथा सस्कृत मे भी अपभ्रंश रूप दृष्टिगोचर होते हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक तारानाथ ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि बौद्धो के सम्मितीय समुदाय के त्रिपिटक के सस्करण पाली, सस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश मे भी लिखे गये।

अपभ्रंश विषयक इन भिन्न-भिन्न निर्देशो से निम्न-लिखित परिणाम निकलते हैं—

(क) आरम्भ मे अपभ्रंश का अर्थ था, शिष्टेतर या शब्द का बिगडा हुआ रूप और यह शब्द अपाणिनीय रूप के लिए प्रयुक्त होता था।

(ख) भरत के समय मे विभ्रष्ट शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा था। उस काल मे अपभ्रंश बीज रूप से वर्त्तमान थी और इसका प्रयोग शबर, आभीर आदि वनवासियो के द्वारा किया जाता था। साहित्यिक भाषा के रूप मे अपभ्रंश का प्रयोग अभी तक आरम्भ नही हुआ था।

(ग) छठी शताब्दी मे अपभ्रंश शब्द वैयाकरणो और आलकारिको के ग्रथों मे भी प्रयुक्त होने लग गया था और यह शब्द साहित्य की भाषा का सूचक भी बन गया था। उस समय तक अपभ्रँश का स्वतन्त्र साहित्य विकसित हो गया था और भामह तथा दंडी जैसे आलंकारिको की स्वीकृति प्राप्त कर चुका था। इतना होने पर भी अपभ्रंश का आभीरो के साथ सम्बन्ध अभी तक बना हुआ था।

(घ) नवी शताब्दी मे अपभ्रंश का आभीर, शबर आदि की ही भाषा माना

---

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी, भूमिका पृ० ६६।

२. नाट्य दर्पण, भाग १, गायकवाड़ सिरीज़, संख्या ४८, १९२९ ई०, भाग १, पृ० २०९।

जाना बन्द हो गया था। यह सर्वसाधारण की भाषा मानी जाने लगी थी। इस समय तक यह सुराष्ट्र से लेकर मगध तक फैल गई थी। स्थान-भेद से इसमें भिन्नता आ गई थी किन्तु काव्य मे आभीरादि की अपभ्रंश का ही प्रयोग होता था।

(ङ) ग्यारहवी शताब्दी मे आलकारिको, वैयाकरणो और साहित्यिकों ने स्वीकार किया कि अपभ्रंश एक ही भाषा नही अपितु स्थान-भेद से अनेक प्रकार की है। इस समय तक अपभ्रंश व्यापक रूप मे प्रयुक्त होने लग गई थी। इसी का एक रूप मगध में भी प्रचलित था। सिद्धो की रचनाओ से इसकी पुष्टि होती है।

दूसरा अध्याय

अपभ्रंश-भाषा का विकास

आर्यभाषा की भिन्न-भिन्न परम्पराओ में भाषा का प्राचीनतम रूप हमे वैदिक भाषा मे मिलता है। वैदिक वाङ्मय मे ऋग्वेद ही सब से प्राचीन ग्रथ माना गया है। इसमें भी कुछ ऋचाये ऐसी है जिनकी भाषा बहुत प्रौढ एव प्राजल है और कुछ ऐसी हैं जिनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सरल, अधिक सुबोध और चलती हुई है। जिस वैदिक भाषा मे वेद उपलब्ध होते है वह उस समय के शिक्षित और शिष्ट लोगो की भाषा थी। उस काल मे भी इस साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त एक या अनेक विभाषाओ और बोलियो की कल्पना की गई है।[1] वैदिक भाषा मे एक ही शब्द के अनेक रूपो (जैसे गत्वा, गत्वी, गत्वाय) का प्रयोग भी इसी ओर सकेत करता है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने वैदिक काल एव उससे पूर्व की सभी बोलचाल की भाषाओं—बोलियो—को प्रथम प्राकृत (Primary Prakrits)[2] का नाम दिया है। इन प्रथम प्राकृत श्रेणी की विभाषाओ का काल २००० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक माना गया है। इस काल को प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल कहा जा सकता है। स्वर एव व्यजनादि के उच्चारण मे तथा विभक्तियो के प्रयोग में इन प्रथम प्राकृत की विभाषाओ मे समानता थी। ये विभाषाएँ सयोगात्मक और विभक्तिबहुल कही जाती हैं।

वैदिककालीन विभाषाओ—बोलियो—का धीरे-धीरे विकास होने लगा। आर्यों की भाषा भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश से धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली। गौतम बुद्ध की उत्पत्ति के समय तक यह भाषा विदेह (उत्तरी बिहार) और मगध (दक्षिणी बिहार) तक फैल गई थी। इस आर्यभाषा का रूप उत्तरी भारत एव वजीरीस्तान तथा पेशावर प्रदेश, मध्यदेश और पूर्वीय भारत मे बुद्ध के समय तक पर्याप्त परिवर्तित हो गया था। इस परिवर्तन के कारण भारत के इन प्रदेशो की भाषा को क्रमशः उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या कहा गया।

---

१. मैकडोनल—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, १९२८ ई०, पृ० २४; डा० सुनीति कुमार चैटर्जी—इंडो आर्यन एंड हिन्दी, १९४२ ई०, पृ० ४७।

२. ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, जिल्द १, भाग १, सन् १९२७, पृ० १२१।

उदीच्या (अर्थात् आधुनिक पेशावर प्रदेश और उत्तरीय पजाब की भाषा) मे अधिक परिवर्तन नही हुआ। प्राचीन रूढि और आर्यभाषा की परपरा इस देश मे चिरकाल तक प्रचलित रही। ब्राह्मण ग्रथो मे इस प्रदेश की भाषा की उत्कृष्टता और शुद्धता की ओर निर्देश किया गया है। [1]

तस्मादुदीच्यां प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव
यन्ति वाचं शिक्षितुम्, यो वा तत आगच्छति तस्य वा
शुश्रूषन्त इति।

शाखायन-कौषीतकी ७. ६.

प्राच्या के बोलने वाले वैदिक मर्यादा का, ब्राह्मणो की सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पालन न करते थे। उन्हे व्रात्य (सावित्रीभ्रष्ट) कहा जाता था। इन लोगो की और इनकी भाषा की निन्दा की गई है। ब्राह्मणो मे निर्देश है कि ये लोग कठिन शब्द के न होते हुए भी उसे कठिन समझते थे। अदीक्षित होते हुए भी दीक्षितों की वाणी का प्रयोग करते थे। [2]

अदुरुक्त वाक्यं दुरुक्तमाहुः। अदीक्षिता दीक्षित वाचं
वदन्ति।

ताण्ड्य-पचविश ब्राह्मण १७. ४

इस देश में सभवत प्राकृत भाषा के वे लक्षण प्रकट हो गये थे जिनके अनुसार सयुक्त व्यजनो का समीकरण हो जाता है। समस्त शब्दो या सयुक्त व्यजनो के उच्चारण मे भी शिथिलता प्रस्फुटित हो रही थी। प्राच्य देशवासी उदीच्यो के सयुक्त व्यजनो के उच्चारण या अन्य ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताओ से अपने आप को परिचित न कर सके। मध्यदेशीया, उदीच्या और प्राच्या के मध्य का मार्ग था। उदीच्यो के चरम रूढिपालन और प्राच्यो के शिथिल उच्चारण के बीच का मार्ग मध्यदेशीया ने अनुसरण किया।

उदीच्या और प्राच्या मे व्यजन समीकरण के अतिरिक्त र और ल के प्रयोग मे भी भिन्नता थी। उदीच्या मे र के प्रयोग की प्रचुरता थी (जैसे राजा), प्राच्या मे र के स्थान पर ल (राजा=लाजा) और मध्यदेशीया मे र एव ल दोनो का प्रयोग था। इस भेद के अतिरिक्त उदीच्या और प्राच्या मे एक भिन्नता और विकसित हो गई थी। र और ऋ के बाद दन्त्य व्यजन के स्थान पर मूर्धन्य व्यजन के प्रयोग की प्रवृत्ति प्राच्या मे परिलक्षित होने लग गई थी। वैदिक भाषा के कृत, अर्थ, अर्ध आदि शब्द प्राच्या मे कट, अट्ठ, अड्ढ रूप मे प्रयुक्त होने लग गये थे, मध्यदेशीया में कत या कित, अत्थ, अद्ध रूप मे और उदीच्या मे उसी शुद्ध रूप में।[3] उत्तर भारत मे यात्रा के मार्ग ऐसे न थे जिनसे पश्चिम से पूर्व और पूर्व से पश्चिम आने-जाने मे बाधा

---

१. इंडो आर्यन एंड हिन्दी, पृ० ५६ तथा वहीं से उद्धृत।
२. वही पृ० ५६।
३. वही पृ० ५७।

पड़ती । अतएव भाषा-सम्बन्धी विशेषता का आदान-प्रदान निर्बाध रूप से हो सकता था। सभवत. इसी कारण विकट (विकृत), निकट (नि कृत) कीकट (किंकृत) आदि शब्द वैदिक भाषा मे भी प्रवेश पा गये ।

इन भिन्न-भिन्न परिवर्तनो के अनेक कारणो में से एक विशेष कारण भारत के उन आदिम निवासियो का प्रभाव था जो कि आर्यों की श्रेणी में प्रविष्ट हो गये थे और जिन्होने धीरे-धीरे विजेता की भाषा को अपनाया । उन लोगो ने अपने अनेक शब्द विजेता की भाषा मे मिलाये । उन्ही लोगो के सपर्क से तत्कालीन आर्यभाषा मे ध्वनि-सम्बन्धी तथा उच्चारण-सम्बन्धी परिवर्तन हो गये। आर्यभाषा के अनेक सयुक्ताक्षरो का उच्चारण भारत के आदिम निवासियो के लिए कठिन था इसलिए भाषा मे उच्चारण-सम्बन्धी परिवर्तनो का होना स्वाभाविक था ।

इस प्रकार १५०० ई० पू० से लेकर ६०० ई० पू० तक प्रथम प्राकृतो या विभाषाओ मे अनेक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप गौतम बुद्ध के समय भारत में भाषा के निम्नलिखित रूपो की ओर डा० सुनीति कुमार चैटर्जी ने निर्देश किया है—

१ उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या रूप मे तीन विभाषाये विकसित हो गई थी ।

२. वैदिक सूक्तो की प्राचीन भाषा छान्दस । इसका स्वाध्याय ब्राह्मणो मे अभी तक चल रहा था ।

३. छान्दस भाषा के नवीन रूप और उदीच्या विभाषा के प्राचीन रूप से विकसित भाषा । इसमे मध्यदेशीया और प्राच्या विभाषाओ के तत्त्वो का भी मिश्रण था । यही ब्राह्मणो की शिष्ट और परस्पर व्यवहार योग्य भाषा थी । इसी मे वैदिक ग्रथो के भाष्य लिखे गये ।

इसके अतिरिक्त कही-कही पर द्रविड और 'औस्ट्रिक' विभाषाओं का भी प्रयोग होता था ।

गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने अपनी-अपनी बोलचाल की भाषाओ को अपने उपदेशो का माध्यम बनाया । उनके प्रोत्साहन से तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओ (देशभाषाओ) का विकास द्रुतगति से प्रारम्भ हुआ । उनके विकास मे एक क्रान्ति सी पैदा हो गई । भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओ के साहित्यिक विकास का सूत्रपात हो गया । गौतम बुद्ध के समय प्राच्या विभाषा, प्राचीन छान्दस भाषा और उसके नवीन विकसित रूप से इतनी पृथक् हो गई थी कि उदीच्य से आये एक व्यक्ति के लिए प्राच्या समझना सरल न था ।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था मे ब्राह्मणो के कर्म-काण्ड से सामान्य जनता आकृष्ट न हो सकी । बौद्धो के प्रचार के कारण सामाजिक और साहित्यिक विकास मे भी परिवर्तन हुआ । ब्राह्मणो ने अपने विचारो के प्रचार के लिए और प्राचीन रूढि से प्रेम करने वाले समाज का ध्यान रखते हुए अपनी प्राचीन छान्दस या वैदिक भाषा को अपनाना ही ठीक समझा । किन्तु तत्कालीन भाषा-सम्बन्धी परिवर्तनो से ब्राह्मण

भी मुक्त न रहे और उन्होने तत्कालीन भाषा-सम्बन्धी परिवर्तनो को दृष्टि में रखते हुए प्राचीन छान्दस या वैदिक भाषा को आधार मानकर उदीच्य देश मे प्रचलित जन-साधारण की बोलचाल की भाषा का आश्रय लिया। यह बोलचाल की भाषा अभी तक प्राचीन वैदिक भाषा या छान्दस के समान ही थी। इस लौकिक या जनसाधारण की बोलचाल की भाषा को पाणिनि जैसे वैयाकरण ने सस्कृत रूप दिया। यह तत्कालीन शिक्षित ब्राह्मण समाज की सस्कृत भाषा बन गई। यह भाषा भी तत्कालीन बोलियो, प्रान्तीय भाषाओ के शब्दो और वाग्धाराओ (मुहावरो) आदि के प्रभाव से वचित न रह सकी। इस भाषा को उत्तर भारत के सब ब्राह्मणो ने अपनाया। पश्चिम के ब्राह्मणो ने भी इसका स्वागत किया। यह भाषा छान्दस और ब्राह्मण ग्रथो की ब्राह्मी भाषा के अनन्तर विकास मे आई। यह उदीच्य प्रदेशीय साधारण बोलचाल की भाषा के ऊपर आश्रित थी।

सस्कृत, शिक्षित और शिष्ट समुदाय की भाषा थी और वैदिक सस्कृति की पृष्ठ-भूमि पर खडी थी अतएव इसका प्रभाव चिरकाल तक बना रहा। जनसाधारण मे यह आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। धार्मिक एव दार्शनिक ग्रथो के अतिरिक्त अर्थ-शास्त्र, नीति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, काम-शास्त्र-सबन्धी ग्रथों का भी संस्कृत मे प्रणयन इस भाषा के विस्तृत प्रचार एव गौरव का प्रमाण है।

सस्कृत को बौद्धों और जैनो ने पहले तो उदासीनता की दृष्टि से देखा किन्तु पीछे से वे भी इसके प्रभाव से न बच सके। बौद्धो की 'गाथा' भाषा सस्कृत से अत्यधिक प्रभावित हुई। सस्कृत साहित्य मे अनेक बौद्धो और जैनो का सहयोग भी इसी दशा की ओर सकेत करता है।

यहा तक कि सस्कृत धीरे-धीरे भारत से बाहर मध्य एशिया, लका, बृहत्तर भारत तक भी फैल गई। चीन मे प्रविष्ट होकर उसने जापान को भी प्रभावित किया।

ई० पू० छठी शताब्दी से लेकर ईसा की १० वी शताब्दी तक प्रचलित भाषाओं को ग्रियर्सन ने द्वितीय श्रेणी की प्राकृत (Secondary Prakrits)[१] कहा है। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी ने इस काल की भाषा को Middle Indo Aryan Speech कहा है। इस काल को मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा काल कहा जा सकता है। इस काल की भाषा को उन्होने तीन अवस्थाओ मे विभक्त किया है।

१. मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा की प्रारभिक अवस्था (Old or Early M. I A) यह काल ४०० ई० पू० से लेकर १०० ई० तक प्राकृतो की प्रारम्भिक अवस्था का था।
२ मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा की मध्यकालीन अवस्था (Transitional or Second M I A.) यह काल १०० ई० से लेकर ५०० ई० तक साहित्यिक प्राकृतो का काल था।

---

१. ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया, १९२७ ई०, पृ० १२१।

३. मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा की उत्तरकालीन अवस्था (Third or Late M. I A) यह काल ५०० ई० से लेकर १००० ई० तक अपभ्रंश का काल था।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की प्रारभिक अवस्था मे द्विवचन और आत्मनेपद का ह्रास हो गया था। विभक्तियो मे षष्ठी और चतुर्थी का एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग होने लग गया था। सर्वनाम के परप्रत्यय सज्ञा के परप्रत्ययो के लिए प्रयुक्त होने लग गये थे। क्रिया के लकारो मे लुट्, लङ्, लिट्, और लृङ् के रूपो का लोप हो गया था। विधिलिङ् और आशीर्लिङ् का प्राय. एकीकरण हो गया था। गुणो के भेद से उत्पन्न क्रियारूपो की जटिलता और व्यजनान्त सज्ञारूपो की बहुलता प्राय कम हो गई थी। स्वरो मे ऐ, औ, ऋ और लृ विलुप्त हो गये थे। ह्रस्व ए और ओ का आविर्भाव हो गया था। विसर्ग का अभाव, व्यजनो का समीकरण, सयुक्त व्यजनो का बहिष्कार और अनेक स्वरो का साथ-साथ प्रयोग होने लग गया था।[1] मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल की भाषाएँ भी प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल की भाषाओ के समान सयोगात्मक ही बनी रही।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल की प्रारभिक अवस्था मे पाली और अशोक के शिलालेखो की प्राकृत मिलती है। पाली मे तृतीया बहुवचन मे अकारान्त शब्दो का **एभिः** रूप, प्रथमा बहुवचन मे **आसः** का विकल्प से प्रयोग, लङ् और लुङ् लकारो मे अडागम का प्राय. अभाव आदि उदाहरणो से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाली के विकास मे सस्कृत की अपेक्षा वैदिक भाषा और प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल की बोलियो का अधिक प्रभाव है।[2]

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल की मध्यकालीन अवस्था मे जैन प्राकृतो और शौरसेनी आदि साहित्यिक प्राकृतो का प्रचार हुआ। इस काल की भाषाओ मे परिवर्तन की मात्रा और भी अधिक हो गई। सयुक्त व्यजनो के स्थान पर व्यजन समीकरण की प्रवृत्ति इस काल से पूर्व ही आरभ हो गई थी। इस काल मे सयुक्त व्यजनों मे केवल अनुनासिक और उस वर्ग का स्पर्श वर्ण, म्ह, ण्ह और ल्ह दिखाई देते हैं। दो स्वरो के बीच के स्पर्श वर्ण का प्राय लोप इस काल की विशेषता है। (काकः=काओ, कति=कइ, पूप =पूओ, नदी =नई इत्यादि)। विभक्तियो मे चतुर्थी विभक्ति का पूर्ण रूप से लोप हो गया। पचमी का प्रयोग बहुत कम मिलता है। इसी प्रकार क्रियारूपो की जटिलता भी बहुत कम हो गई। क्रिया और सज्ञाओ के बाद परसर्गों का प्रयोग भी इस काल से आरंभ होने लग गया।

पाणिनि ने सस्कृत को व्याकरण से परिष्कृत कर उसके रूप को स्थिर कर दिया। व्याकरण के अध्ययन के विकास के साथ सस्कृत भाषा के प्रयोग और नियम

---

१. डा० बाबूराम सक्सेना—सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, २००६ वि० सं०, पृ० २६१।

२. वही पृ० २६३।

स्थिर एव निश्चित होते रहे। अत जिनका व्याकरण के ज्ञान से निरन्तर सम्बन्ध न था उनके लिए क्रमश. अधिक कठिनता उपस्थित होती गई। व्याकरण-शिक्षित जनता की भाषा ज्यो-ज्यो एक ओर शुद्ध और परिमार्जित होती गई त्यो-त्यों दूसरी ओर व्याकरण की शिक्षा से रहित जनता के अधिकाश भाग के प्रयोग के लिए अनावश्यक होती गई। इस प्रकार शुद्ध और परिमार्जित भाषा ने अपने आपको क्रमश. सामान्य जनता की बोलचाल की भाषाओं से अलग कर लिया। यह व्याकरण सम्मत और शुद्ध भाषा एकमात्र एवं सुशिक्षित लोगो की सपत्ति हो गई। ज्यो-ज्यो सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषाएँ उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रयोग मे आती गईं, इन मे भेद भी क्रमश अधिकाधिक बढता गया।

इसी से मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल की मध्यकालीन अवस्था में सस्कृत भाषा के अतिरिक्त अनेक जैन प्राकृत और साहित्यिक प्राकृतो का उल्लेख तत्कालीन वैयाकरणो और आलंकारिको के ग्रथो मे मिलता है। इनमे से मुख्य प्राकृत निम्न-लिखित हैं—

शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी और पैशाची।

शौरसेनी—सस्कृत के नाटको मे स्त्री-पात्रो तथा मध्य कोटि के पुरुष पात्रो द्वारा शौरसेनी का प्रयोग किया जाता था। यही भाषा साहित्यिक रूप मे चिरकाल तक भारत के विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती रही। दो स्वरो के बीच मे सस्कृत के त् और थ् का क्रमश द् और ध् हो जाना इस भाषा की विशेषता है। दो स्वरो के बीच मे स्थित द् और ध् वैसे ही रहते है। उदाहरणार्थ—

गच्छति=गच्छदि, यथा=जधा, जलदः=जलदो, क्रोधः=कोधो इत्यादि।

महाराष्ट्री—यह काव्य की पद्यात्मक भाषा है। काव्य के पद्यो मे इसी का प्रयोग होता था। हाल रचित गाथा सप्तशती और प्रवरसेन रचित सेतुबन्ध या रावण वध जैसे उत्कृष्ट कोटि के काव्य इसी भाषा में रचे गये। दो स्वरो के बीच के अल्पप्राण स्पर्श वर्ण का लोप और महाप्राण का ह हो जाना महाराष्ट्री की विशेषता है। उदाहरणार्थ गच्छति=गच्छइ, यथा=जहा, जलद =जलओ, क्रोधः=कोहो।

डा० मनमोहन घोष का विचार है कि महाराष्ट्री, महाराष्ट्र की भाषा नही अपितु शौरसेनी के विकास का उत्तरकालीन रूप है। डा० सुनीतिकुमार भी इस आधार पर इसे शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की अवस्था मानते हैं।[1]

मागधी—यह मगध देश की भाषा थी। नाटको के निम्न वर्ग के पात्र इसी भाषा का प्रयोग करते थे। इसके मुख्य ये लक्षण है—

क—सस्कृत ऊष्म वर्णों के स्थान पर श् का प्रयोग। यथा सप्त=शत्त

ख—र् के स्थान पर ल् का प्रयोग। यथा—राजा=लाआ

ग—अन्य प्राकृतो मे य् के स्थान पर ज् का प्रयोग होता है इसमे य् ही रहता है। प्राकृत के शब्द जिनमे ज् और ज्ज् का प्रयोग होता है इसमें य् और

---

१. इंडो आर्यन एंड हिन्दी, पृ० ८६।

य्य् रूप मे ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—यथा=यधा, जानाति=याणादि, अदय=अय्य,

घ—ण्ण् के स्थान पर ञ्ञ् का प्रयोग। यथा—पुण्य=पुञ्ञ्।

ड—अकारान्त सज्ञा के प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे ओ के स्थान पर ए का रूप। यथा देवो=देवे।

मागधी प्राकृत मे साहित्य उपलब्ध नही होता। व्याकरण के ग्रथो और नाटको मे ही इसका प्रयोग मिलता है।[1]

अर्ध-मागधी—शौरसेनी और मागधी प्रदेशो के बीच के कुछ भाग में दोनो भाषाओ का मिश्रित रूप मिलता है। इसको अर्ध-मागधी कहा गया है। जैनादि धार्मिक साहित्य मे मुख्य रूप से इसी का प्रयोग किया गया है। इस मे भी मागधी के समान अकारान्त सज्ञा के प्रथमा का एकवचन मे एकारान्त रूप मिलता है। कही-कही र् के स्थान पर ल् भी प्रयुक्त हुआ है। किन्तु मागधी के समान श् का प्रयोग न होकर स् का ही प्रयोग किया गया है।

पैशाची—गुणाढ्य ने बृहत्कथा इसी भाषा में लिखी थी। यह ग्रथ अब प्राप्त नही। पैशाची की मुख्य विशेषता है कि दो स्वरो के मध्य, वर्गों का तीसरा, चौथा (सघोष स्पर्श) वर्ण, पहला और दूसरा (अघोष स्पर्श) वर्ण हो जाता है। जैसे गगन=गकन, मेघो=मेखो, राजा=राचा, वारिद=वारितो इत्यादि

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओ की उत्तरकालीन अवस्था को अपभ्रंश का नाम दिया गया है। इस काल की भाषा मे परिवर्तन की मात्रा और भी अधिक बढ गई। व्यजन समीकरण जो इस काल से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था अब चरम सीमा पर पहुँच गया था। व्यजन समीकरण से उत्पन्न द्वित्व व्यजन के स्थान पर एक व्यजन की प्रवृत्ति इस काल मे आरम्भ हो गई, यद्यपि इसका पूर्ण विकास आगे चल कर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल मे हुआ। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप व्यंजनो का पूर्व स्वर दीर्घ होने लगा (यथा—सप्त=सत्त=सात, कर्म=कम्म=काम आदि)। ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व के प्रयोग की प्रवृत्ति प्रचुरता से दिखाई देने लगी। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल के अन्दर वैदिक भाषा में और तदुपरान्त सस्कृत में कुछ सीमित अवस्थाओ मे ही दन्त्य व्यंजनों के स्थान पर मूर्धन्य व्यजनों का प्रयोग होता था। यह प्रवृत्ति अब उन नियमो के अतिरिक्त अन्य स्थानों मे भी प्रचुरता से दिखाई देने लगी। (पत्=पड, दुल=डोल, त्रुट्=टुट्ट इत्यादि)।

इस काल मे षष्ठी विभक्ति के स्य=स्स के स्थान पर और सप्तमी के स्मिन्=स्सि के स्थान पर ह का प्रयोग होने लगा। (यथा पुत्रस्य=पुत्तस्य=पुत्तह, तस्मिन्=तस्सिं=तहिं आदि)। सुबन्त और तिङन्त पदो मे प्रत्ययांशों के न, ण, म के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होने लग गया (देवेन=देवेण=देवे, धरामि=धरउ)।

---

१. इंडो आर्यन एण्ड हिन्दी, पृ० २६६।

प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे ओ के स्थान पर उ का और सप्तमी के एकवचन मे ए के स्थान पर इ का व्यवहार चल पडा (देवो=देवु, देवे=देवि आदि)। सज्ञा रूपो और धातुरूपो की जटिलता और अनेकरूपता इस काल मे और भी कम हो गई। प्रथमा और द्वितीया विभक्ति का रूप एक समान हो गया। पचमी, षष्ठी और सप्तमी के बहुवचन के रूप भी समान से हो गये। (पचमी बहु० गिरिहु, षष्ठी बहु० गिरिह—गिरिहु, सप्तमी बहु० गिरिहु आदि)। विभक्तिरूपो की समानता के कारण शब्दो के अर्थ-ज्ञान मे कठिनता होने लगी और परिणाम-स्वरूप अनेक परसर्गो का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। (मणमहि=मन मे, मइतणि=मेरा इत्यादि)। धातु रूपो मे भी भिन्न-भिन्न कालो को सूचित करने वाले अनेक लकारो का अभाव हो गया। वर्त्तमान काल (लट्), सामान्य भविष्य (लृट्) और आज्ञा (लोट्) के ही रूप अधिकता से प्रयुक्त होने लगे। भूतकाल सूचक भिन्न-भिन्न लकारो के स्थान पर क्त प्रत्यय या निष्ठा का ही प्रयोग चल पडा। इस प्रवृत्ति का पूर्ण विकास आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल की भाषाओ मे दिखाई देता है, जैसा हम आगे चल कर स्पष्ट रूप से देख सकेंगे।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल में सस्कृत के अतिरिक्त द्राविड और 'आस्ट्रिक' भाषाओ से भी शब्द लेने मे सकोच न रहा। इन भाषाओ के प्रभाव के कारण अनेक अनुरणनात्मक शब्द (यथा तडि, तड, यडइ, फणि फुप्फुयंतु आदि) इस काल की भाषाओ मे आ गये। सस्कृत-भाषा भी मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल की भाषाओ से प्रभावित हुई, जिससे मनोरथ,=मनोर्थ भट्टारक=भर्त्ता, वट, नापित, पुत्तलिका आदि शब्द सस्कृत में प्रवेश पा गये।

समय पाकर साहित्यिक प्राकृतो के व्याकरण बने। वैयाकरणो के आग्रह में बंध जाने के कारण इन प्राकृतो का स्वाभाविक विकास रुक गया। इनकी भी वही अवस्था हुई जो सस्कृत की हुई थी। इधर तो साहित्यिक प्राकृतो मे साहित्य रचा जा रहा था और उधर सर्व साधारण की बोल-चाल की भाषाएँ व्यवहार मे आगे बढ रही थी। साहित्यिक प्राकृतो के विकास के रुक जाने पर ये बोलचाल की भाषाएँ और भी आगे बढी और अपभ्रंश के नाम से ख्यात हुईं। धीरे-धीरे अपभ्रंश ने भी साहित्य के क्षेत्र मे स्थान पाया और अपभ्रश मे भी साहित्य रचा जाने लगा।

आरम्भ मे अपभ्रश को आभीरो की भाषा माना जाता था। 'आभीरोक्ति' या 'आभीरादिगिर' का यही अभिप्राय है कि अपभ्रंश वह भाषा है जिसका काव्य मे आभीरादि निम्नवर्ग के लोग प्रयोग करते थे। इसका यह अभिप्राय नहीं कि अपभ्रश आभीर लोगो की निजी भाषा थी। या आभीरादि लोग इस भाषा को अपने साथ कही से लाये। वास्तव मे आभीर या उनके साथी जहाँ-जहाँ गये, उन्होने तत्तत्स्थानीय प्राकृत को अपनाया और उसमे निज स्वभावानुकूल स्वर या उच्चारण-सबन्धी परिवर्तन कर दिये। आभीर स्वभाव के कारण इसी परिवर्तित एव विकृत या विकसित

भाषा को ही अपभ्रंश का नाम दिया गया।[1]

आजकल प्रत्येक प्राकृत के एक अपभ्रंश रूप की कल्पना की गई है किन्तु व्याकरण के प्राचीन ग्रंथो मे इस प्रकार का विभाग नही दिखाई देता। हाँ, रुद्रट ने अपने काव्यालकार मे देश भेद से अपभ्रंश के अनेक भेदो की ओर निर्देश किया है।[2] शारदा तनय (१३ वी शताब्दी) ने अपभ्रंश के नागरक, ग्राम्य और उपनागरक भेदों का उल्लेख किया है।[3] पुरुषोत्तम देव (१२ वी शताब्दी) ने अपने प्राकृतानुशासन मे अपभ्रंश के नागरक, व्राचट और उपनागरक इन तीनो भेदो का उल्लेख किया है और इन तीनो मे से नागरक को मुख्य माना है। मार्कंडेय (१७ वी शताब्दी ई० के लगभग) ने अपने प्राकृत सर्वस्व मे भी नागर, व्राचड और उपनागर तीन भेद बताये है।

अतएव इन वैयाकरणो के आधार पर नही कहा जा सकता कि इन्होने अपभ्रंश भाषा का कोई देशगत विभाजन किया है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि इन्होने अपभ्रंश का विभाजन उसके संस्कार या प्रसार को दृष्टि मे रख कर किया है।

भाषा-शास्त्रियो ने मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा काल की मध्यकालीन अवस्था की साहित्यिक प्राकृतो का समय ५०० ई० तक और उत्तरकालीन अवस्था की अपभ्रंशों का समय ५०० ई० से १००० ई० तक माना है। किन्तु प्राकृत का साहित्य ५०० ई० के बाद भी लिखा गया मिलता है। गौडवहो का समय ७वी–८वी सदी माना जाता है। कौतूहल कृत लीलावती-कथा भी निस्सदेह उत्तरकाल की रचना है। प्राकृत व्याकरण के अध्ययन के फलस्वरूप दक्षिण भारत में १८वी शताब्दी तक प्राकृत काव्यो की रचना होती रही।[4]

अपभ्रंश का उदयकाल ईसा की प्रथम सहस्री का लगभग मध्य माना गया है। भामह ने अपभ्रंश को भी काव्योपयोगी भाषा माना है।[5] किन्तु इस समय का लिखा कोई अपभ्रंश ग्रंथ उपलब्ध नही। कालिदास के विक्रमोर्वशीय के अपभ्रंश पद्य भी

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, १९४८ ई०, पृ० २४-२५।

२. षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः। २. १२

३. एता नागरक ग्राम्योपनागरकभेदतः।
त्रिधा भवेयुरेतासां व्यवहारो विशेषतः॥
भावप्रकाशन, गायकवाड़, ओरियटल सिरीज, सख्या ४५, ओरियटल इस्टिट्यूल, बड़ौदा सन् १९३०, पृ० ३१०।

४. डा० रामसिंह तोमर ने डा० आ. ने. उपाध्ये द्वारा संपादित रामपाणिवाद की उसाणिरुद्ध और कंसवहो नामक दो रचनाओं का निर्देश किया है। रामपाणिवाद १८ वीं शताब्दी का कवि था।

५. शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।
संस्कृतं प्राकृत चान्यद् अपभ्रंश इति त्रिधा॥
काव्या० १. १६

विवादग्रस्त हैं। डा० उपाध्ये ने योगीन्दु के परमप्पयासु और योगसार का समय ईसा की छठी शताब्दी के लगभग माना है किन्तु अन्य विद्वान् इस काल से सहमत नही। लगभग ईस्वी सन् ८०० से लेकर १३०० या १४०० तक अपभ्रंश साहित्य का विशेष प्रचार रहा था। यद्यपि भगवतीदास का मृगांकलेखा चरित्र या चन्द्रलेखा वि० स० १७०० मे लिखा गया। इस प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश मे रचना कुछ काल तक समानान्तर चलती रही, उसी प्रकार जिस प्रकार कुछ दिनो तक हिन्दी अथवा आधुनिक देश-भाषाओ के साथ अपभ्रंश चलती रही। सभवतः यही कारण है कि रुद्रट ने सस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश को भी साहित्यिक भाषा स्वीकार किया। नमि साधु अपभ्रँश को प्राकृत ही मानते हैं। लक्ष्मीधर ने अपनी षड्भाषा चन्द्रिका मे अपभ्रंश को प्राकृत ही स्वीकार किया है।[1]

द्वितीय श्रेणी की प्राकृत भाषाओ से भिन्न-भिन्न प्रादेशिक अपभ्रंशो का जन्म माना जाता है। ये अपभ्रंश सन् ८०० ईस्वी से लेकर १५वी शताब्दी तक स्वतंत्र रूप से या पूर्वकाल मे सस्कृत और उत्तरकाल में आरम्भिक हिन्दी के साथ या राजस्थानी पिगल के साथ मिलकर प्रयोग मे आती रही।

सस्कृत और प्राकृत व्याकरणो के समान हेमचन्द्र, त्रिविक्रम (१४०० ई० के लगभग), लक्ष्मीधर (१५वी शताब्दी ई० का उत्तरार्ध), मार्कण्डेय (१७वी शताब्दी ई० के लगभग) आदि वैयाकरणो ने अपभ्रंश को भी व्याकरण के नियमो से बाँधने का प्रयत्न किया। फलत. अपभ्रंश की वृद्धि भी अवरुद्ध हो गई। कालान्तर में अपभ्रंश से ही भिन्न-भिन्न वर्त्तमान-भारतीय-प्रान्तीय-साहित्यों का विकास हुआ।

---

१. षड्विधा सा प्राकृती च शौरसेनी च मागधी।
पैशाची चूलिका पैशाच्यपभ्रंश इति क्रमात्॥
१. २६.

तीसरा अध्याय

अपभ्रंश और हिन्दी

भारतीय आर्य भाषाओ के विकास मे मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल के अनन्तर वर्तमान काल की देश-भाषाओ का काल आता है। डा० सुनीति कुमार ने इसको New Indo Aryan Period कहा है।[1] इस काल को आधुनिक आर्य-भारतीय आर्यभाषा काल कह सकते हैं।[2] इस काल मे भारत की वर्तमान प्रान्तीय भाषाओ की गणना की गई है।

वर्तमान प्रान्तीय आर्यभाषाओ का विकास अपभ्रंश से हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा, खडी बोली, राजस्थानी, पजाबी, गुजराती और पहाडी भाषाओ का सम्बन्ध है। इनमें से गुजराती और राजस्थानी का सम्बन्ध विशेषतया शौरसेनी के नागर अपभ्रंश रूप से माना जाता है। मागध अपभ्रंश से भोजपुरी, उडिया, बंगाली, आसामी, मैथिली, मगही का विकास हुआ और अर्ध-मागधी से पूर्वी हिन्दी—अवधी आदि का। महाराष्ट्री से मराठी का सम्बन्ध जोडा जाता था[3] किन्तु आजकल विद्वान् इसमे सन्देह करने लगे हैं और इन दोनो मे परस्पर सम्बन्ध नही मानते।[4] सिन्धी का व्राचड अपभ्रंश से सम्बन्ध कहा गया है। पजाबी, शौरसेनी अपभ्रंश से प्रभावित समझी जाती है।

इन भिन्न-भिन्न भाषाओ का विकास, तत्कालीन अपभ्रंश के साहित्यिक रूप धारण कर लेने पर, तत्कालीन प्रचलित सर्वसाधारण की बोलियो से हुआ। इन का आरम्भ काल १००० ईस्वी माना गया है। इस काल के बाद १३ वी १४ वी शताब्दी तक अपभ्रंश के ग्रथो की रचना होती रही। इन प्रान्तीय भाषाओं के विकास

---

१. डा० सुनीति कुमार चैटर्जी— इडो आर्यन एड हिन्दी, पृष्ठ ६७

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९४०, भूमिका, पृष्ठ ४८

३. स्टेन कोनो—महाराष्ट्री एण्ड मराठी, इडियन एटिक्वेरी जिल्द ३२, १९०३, पृ० १८०—१९२

४. वही, जिल्द ३०, १९०१, पृ० ५५३ और जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लैटर्स, कलकत्ता, जिल्द २३, १९३३।

के पूर्वकाल मे ये सब भिन्न-भिन्न अपभ्रशो से प्रभावित हुई दिखाई देती हैं। उत्तरकाल का अपभ्र श साहित्य भी इन प्रान्तीय भाषाओ से प्रभावित होता रहा। इस प्रकार प्रान्तीय भाषाओ के प्रारम्भिक रूप में और अपभ्र श काल के उत्तर रूप मं दोनो के साहित्य चिरकाल तक समानान्तर रूप से चलते रहे।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल में आकर भाषाएँ सयोगात्मक से वियोगात्मक या विश्लेषात्मक हो गई थी। इस काल की सभी भाषाएँ अपभ्रंश से प्रभावित हैं। इस अध्याय मे हिन्दी को दृष्टि मे रख कर उसका अपभ्रंश से भेद निर्दिष्ट किया गया है।

हिन्दी मे ध्वनियाँ प्राय वही है जो मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल मे मिलती थी। स्वरो मे ऋ का प्रयोग सस्कृत के तत्सम शब्दो मे मिलता है किन्तु इसका उच्चारण रि होता है। ऐ और औ का उच्चारण सस्कृत के समान अइ, अउ न हो कर अए, (ऐसा) अओ, (औरत) रूप मे परिवर्त्तित हो गया है। अग्रेजी के प्रभाव से फुटबॉल कॉलिज आदि शब्दो मे व्यवहृत ऑ ध्वनि हिन्दी के पढे लिखे लोगो में प्रचलित हो गई है। व्यंजनो मे श् और ष् मे भेद नही रहा। ष् का उच्चारण भी प्राय श् के समान ही होता है। सयुक्ताक्षर ज्ञ का उच्चारण ग्यँ, दयँ, ग्य, ज्यँ आदि रूपों मे स्थान भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता। व्यजनों मे ड और ढ नई ध्वनियाँ हैं। इसी प्रकार अरबी और फारसी के प्रभाव से क़् ख़् ग़् ज़् फ़् आदि ध्वनियो का भी विकास हुआ। इन का प्रयोग अरबी और फारसी के तत्सम शब्दो मे होता है किन्तु रूढिवादी इनका उच्चारण देशी ध्वनियो के समान क् ख् ग् फ् ज् ही करते हैं। (यथा काग़ज के स्थान पर कागज)।

अपभ्र श में शब्दो के बीच मे व्यजनो के लोप हो जाने से स्वरो की बहुलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लग गई थी। इन स्वरो की बहुलता से स्वरो के संयोग से उत्पन्न सयुक्त ध्वनियाँ भी उस भाषा मे उत्पन्न हो गई थी। इसी के परिणामस्वरूप स्वरो का लोप भी होने लग गया था, जिसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। आदि स्वर लोप के उदाहरण अपि=पि या वि, अरण्य=अरण्ण=रण्ण आदि शब्दो मे दिखाई देते हैं। हिन्दी मे इसके उदाहरण भीतर=अभ्यतर, भी=अपि, रु=अरु आदि शब्दों मे दिखाई देते हैं।

आदि स्वर लोप के अतिरिक्त मध्यस्वर लोप और अन्त्य स्वर लोप भी हिन्दी के शब्दो मे दिखाई देता है। चलना, कमरा आदि शब्दो का उच्चारण चल्ना, कम्रा रूप से और चल, घर, केवल आदि शब्दो का उच्चारण चल् घर्, केवल् रूप से किया जाता है। यद्यपि लिखने में यह परिवर्तन नही दिखाया जाता।[1]

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल मे व्यजन-समीकरण अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया था। अनुस्वारस्थान-वर्त्ती वर्ग का पचम अक्षर ही अधिकतर संयुक्ताक्षर रूप मे दिखाई देता है (पङ्क, अञ्चल इत्यादि)। हिन्दी मे बहुधा वर्ग

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० १४६.

का पचम अक्षर प्रयुक्त न होकर केवल अनुस्वार का ही प्रयोग होता है (यथा पंक, चचल, दत आदि)।

व्यजन समीकरण के चरम सीमा पर पहुँच जाने के परिणाम-स्वरूप द्वित्व व्यजन के स्थान पर एक व्यजन की प्रवृत्ति अपभ्र श काल के उत्तर भाग मे ही प्रारम्भ हो गई थी। दो व्यजनो के स्थान पर एक व्यजन होने से पूर्व स्वर अधिकतर दीर्घ किया गया।

णीसरन्ति=निस्सरन्ति प० च० ५६ २

तासु=तस्स=तस्य, नीसास=निस्सास प० सि० च० १ १३

दीह=दिग्घ=दीर्घ इत्यादि।

इस प्रवृत्ति का पूर्णरूपेण विकास आधुनिक काल की भारतीय आर्यभाषाओ में दिखाई देता है। पजाबी भाषा मे इस प्रवृत्ति का अभाव है।

सस्कृत		पजाबी		हिन्दी
अद्य	=	अज्ज	=	आज
कर्म	=	कम्म	=	काम
हस्त	=	हत्थ	=	हाथ

इत्यादि

सयुक्त वर्णों मे से एक को ही रख कर भी पूर्ववर्त्ती स्वर को लघु बनाये रखने की प्रवृत्ति भी अपभ्र श मे दिखाई देती है।' थक्कइ, विषमत्थण के साथ-साथ थकइ, विषमथण भी प्रयुक्त किये गये। इसी प्रकार उन्मुक्त=उम्मुक्क=उमुक्क, उच्छ्वास= उसास आदि शब्दरूप भी अपभ्र श ग्रथो मे मिलते हैं। हिन्दी मे इसी प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप उछाह=उच्छाह=उत्साह, भगतबछल=भगतवच्छल=भक्तवत्सल, समुद=समुद्द=समुद्र आदि शब्द प्रचलित हो गये। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी इस प्रकार के शब्द-रूपो के प्रचलन मे पंजाबी भाषा की प्रवृत्ति का प्रभाव मानते हैं। पंजाबी मे व्यजन समीकरण तो मिलता है किन्तु सयुक्त वर्णों मे से एक को ही रख कर पूर्ववर्त्ती स्वर को दीर्घ करने की प्रवृत्ति का अभाव है। पजाबी की इस प्रवृत्ति ने हिन्दी के अनेक शब्दो को प्रभावित किया है।[1] हिन्दी मे सत्य=सच्च=सच, कल्य=कल्ल=कल आदि शब्द इसी प्रवृत्ति के कारण साच और काल न बन पाये।

अपभ्र श भाषा मे स्वार्थ मे अ, ड़, अल, इल्ल, उल्ल आदि प्रत्ययो का प्रयोग अनेक शब्दो में मिलता है। इस प्रकार के प्रत्ययो का प्रयोग कदाचित् छन्द के अनुरोध से किया जाता होगा। 'अलकृत' शब्द का अपभ्र श रूप 'अलकियु' होगा किन्तु स्वार्थ सूचक अ प्रत्यय लगने पर 'अलकियउ'। इसी प्रकार 'सुत' के स्थान पर अपभ्र श मे सुत्तु और सुत्तउ दोनो रूप मिलते हैं।

तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महि मडल। प० च० ७६ ३

इसी प्रकार के गयउ, चलियउ आ[illegible]र्ती ब्रजभाषा की कविता मे

1. चैटर्जी—इंडो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ११४

प्रचुरता से पाये जाते है। जायसी के सदेसडा और कबीर के जियरा आदि शब्दो मे भी स्वार्थ-सूचक ड प्रत्यय का रूप ही दृष्टिगत होता है।

अपभ्रंश मे ह्रस्व और दीर्घ स्वर के व्यत्यय के नियम का हेमचन्द्र ने निर्देश किया है। इसके अनेक उदाहरण अपभ्रंश शब्दो मे मिलते है। जैसे—

सरस्वती=सरसइ, माला=माल, ज्वाला=जाल, हुअ=हुआ, मारिअ=मारिआ आदि।

छन्द-पूर्ति के लिये इस प्रकार स्वर व्यत्यास प्राय करना पडता था।

"तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरदरु" प० च० ७६·३

एक ही चरण मे पडिउ और पडिऊ (पतित) दो रूपो का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार का स्वर व्यत्यास शब्द के अन्त मे और चरण के अन्त मे किया जाता था। हिन्दी कविता में भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। कवित्त और सवैया जैसे छन्दो मे प्राय अनेक शब्दो मे ए और ओ को ह्रस्व रूप मे पढना पडता है। इसी प्रकार तुलसी, जायसी आदि कवियो के काव्य मे चरण के अन्त मे हाथा, फूला, नहाइ, विरोघू, हारू आदि ऐसे शब्द मिलते हैं जिन मे छन्द के अनुरोध से ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर का प्रयोग किया गया है।

अपभ्रंश मे यह स्वरव्यत्यास चरण के बीच शब्द के मध्य मे भी कही-कही मिल जाता है। जैसे गभीर=गहिर, प्रसाधन=पासाहण, पूरिस आदि। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि 'सभवत इस प्रथा का पुराना अवशेष सस्कृत के 'पद्मावती' जैसे शब्दो मे खोजा जा सकता है जिस के तौल पर 'कनकावती' 'मुग्धावती' जैसे शब्द हिन्दी मे चल पडे।'[1]

अपभ्रंश मे प्राकृत परम्परा के प्रभाव से शब्द रूपो मे तीनो लिग चले आ रहे थे। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण मे नपुसक लिग मे शब्दो के रूप का विधान किया है। हिन्दी में नपुसक लिग का विधान नही है। हिन्दी, पजाबी, राजस्थानी तथा सिधी मे दो लिंग ही होते हैं। बगाली, आसामी, बिहारी तथा उड़िया मे, सभवत समीपवर्ती तिब्बत और बर्मा प्रदेशो की अनार्य भाषाओ के या कोल भाषाओ के प्रभाव के कारण, लिगभेद बहुत शिथिल हो गया है।[2] गुजराती, मराठी, सिहली तथा पश्चिमोत्तर हिमालय की कुछ बोलियो मे नपुसक लिग के कुछ चिह्न अब भी मिलते हैं।[3]

अपभ्रंश मे विशेषण और सज्ञा का लिग साम्य चला आ रहा था। जैसे—

'रावणु दहमुहु वीस हत्थु' प० च० ११०।

'रोवइ अवरा इव रामजणणि' प० च० ६६ १३।

---

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९५२ ई०, पृष्ठ ४४।

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २५१।

३. डा० बाबूराम सक्सेना—सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० २६९।

'ए घरगिरि वासिरिए जक्खपत्ति' म० पु० २०६।

हिन्दी मे प्राचीन परम्परावादी ही विशेषरण और सज्ञा मे लिग साम्य का प्रयोग करत हैं (जैसे सुन्दरी बालिका), किन्तु अन्य लोग इस प्रकार का प्रयोग नही करते।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल मे सज्ञा की आठ विभक्तियाँ हुआ करती थी और इस सज्ञा के २४ रूप हुआ करते थे, जिनमे से कुछ समान होते थे। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल मे विभक्तियो की सख्या घट गई और उनके रूपो मे समानता और भी बढ गई। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल मे हिन्दी में सज्ञा के केवल तीन रूप ही रहे (यथा घोडा, घोडे, घोडो) और कही-कही दो ही (जैसे विद्वान्, विद्वानों आदि)। शेष रूपो के अर्थ ज्ञान के लिए पर-सर्गों का प्रयोग प्रचुरता से चल पडा।

क्रिया रूपो की जटिलता और लकारो की विविध-रूपता अपभ्र श में ही कम हो गई थी। हिन्दी मे आते-आते मुख्यतया चार लकार रह गये—सामान्य लट् (वर्त्तमान काल), सामान्य भूत, सामान्य लृट् (भविष्य काल) और लोट्। इनमें से सामान्य भूत के लिए क्त प्रत्यय—भूतकालिक कृदत—का प्रयोग ही अधिकता से हिन्दी मे दिखाई देता है और सामान्य लट् के लिए शतृप्रत्ययरूप के साथ 'होना' क्रिया का प्रयोग होता है। क्रिया के सूक्ष्म भेदो का अर्थ बोध कराने के लिए सयुक्त क्रियाओ का प्रयोग हिन्दी मे पाया जाता है।

सस्कृत मे क्रियारूपो मे धातु के साथ कृ, भू और अस् धातु का अनुप्रयोग, परोक्षभूत—लिट् लकार—मे कुछ बडी-बडी धातुओ के साथ होता था। इन मे से कृ का अनुप्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ। छादस भाषा में कृ धातु का अनुप्रयोग अन्य स्थलो पर भी होता था। यह अनुप्रयोग का सिद्धान्त अपभ्र श मे भी चला। जैसे—

कवलु किउ—खा लिया। जस० च० २ ३७ ५

हल्लोहलि हूयउ—विक्षुब्ध हुआ। कर० च० ७ १० ६

सुखु करतु—सुख देता हुआ। कर० च० ४ ७ ३

इत्यादि अनेक प्रयोग अपभ्र श मे मिलते है। अपभ्र श के बाद हिन्दी मे भी यही परम्परा अधिकता से दिखाई देती है (चोरी करना, स्नान करना आदि)।

शतृरूप—वर्तमान कालिक कृदत—के साथ इस कृ के अनुप्रयोग के कारण हिन्दी में क्रिया रूपो मे भी लिग भेद चला। शुद्ध धातु रूपो मे यह लिग-भेद नही दिखाई देता। वर्तमानकालिक कृदत रूपो मे लिंग-भेद सस्कृत और प्राकृत मे ही वर्तमान था अतएव वह हिन्दी मे भी उसी रूप मे दिखाई देता है (जैसे सस्कृत मे गच्छन्–गच्छन्ती, हिन्दी में जाता है, जाती है इत्यादि)।

अपभ्र श और हिन्दी की पद-योजना मे मुख्य भेद यह है कि अपभ्र श म संस्कृत और प्राकृत के तद्भव रूपो का प्रयोग प्रधानतया मिलता है। हिन्दी मे प्राकृत के तद्भव शब्दो के स्थान पर सस्कृत के तत्सम शब्दों का ही प्रचुरता से प्रयोग पाया जाता है। हिन्दी मे यह प्रवृत्ति चाहे मुसलमानो के धार्मिक आक्रमण की प्रतिक्रिया के

रूप में आई चाहे किसी और कारण से किन्तु यह प्रवृत्ति स्पष्ट है और अपभ्रंश के तद्भव शब्दो के स्थान पर तत्सम शब्दो के प्रयोग से अपभ्रंश भाषा के उद्धरणों को स्पष्टतया हिन्दी मे परिवर्त्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए—

सो सिव संकरु विण्हु सो, सो रुद्दवि सो बुद्ध।
सो जिणु ईसरु बम्भु सो, सो अणंतु सो सिद्ध॥

योगसार १०५

इस दोहे का हिन्दी रूप होगा—

सो शिव शंकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो बुद्ध।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनन्त सो सिद्ध॥[1]

अनेक अपभ्रंश पद्य, जो अपभ्रंश ग्रथो मे मिलते हैं, परवर्ती हिन्दी ग्रथो मे भी कुछ परिवर्तित रूप मे पाये जाते हैं। इन से दोनो भाषाओ की मध्यवर्ती शृंखला का रूप देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड़त्ति॥

हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण, ८.४ ३५२

इसी पद्य का उत्तरकाल में राजपूताने मे निम्नलिखित रूप हो गया—

काग उड़ावण जांवती पिय दीठो सहसत्ति।
आधी चूड़ी काग गल आधी टूट तड़िति॥

इसी प्रकार हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण (८ ४ ३९५) मे एक दोहा इस प्रकार है—

पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवण मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥

इसका परिवर्तित रूप निम्नलिखित प्रकार से दिखाई देता है—

बेटा जायाँ कवण गुण अवगुण कवण धियेण।
जो ऊभाँ धर आपणी गंजीजै अवरेण॥[2]

इसी प्रकार हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण (८ ४ ४३९) में एक दोहा निम्नलिखित रूप में उद्धृत मिलता है—

बाह-बिछोडवि जाहि तुँह, हउं तेवइँ को दोसु।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउं मुंज सरोसु॥

अर्थात् हे मुंज! तुम बाँह छुडाकर जा रहे हो, मैं तुम्हे क्या दोष दू ? हे मुंज! मैं तुम्हे तब क्रुद्ध समझूँगी जब हृदय स्थित तुम निकल सको।

---

१. इस प्रकार के अन्य उद्धरणों के लिए देखिए राहुल सांकृत्यायन, हिंदी काव्यधारा, प्रयाग।

२. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—प्राचीन हिन्दी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् २००५, पृष्ठ १५-१६ से उद्धृत।

इसी का आगे चल कर सूरदास के यहाँ निम्नलिखित रूप हो गया—

बांह छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे सबल जाँनुगो तोहि॥

इस पद से प्रतीत होता है कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास तक अपभ्रंश की चेतना बनी थी। इसी प्रकार के अन्य पद भी खोजने से हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध हो सकेंगे इसमे कोई सन्देह नही।

प० केशव प्रसाद मिश्र ने अपभ्रंश भाषा के साथ पूर्वी हिन्दी का सम्बन्ध दिखाते हुए हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अनेक दोहो को पूर्वी हिन्दी मे परिणत करके दिखाया है।[1]

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहो बलि कीसु।
तसु दइवेणवि मुण्डिअउं जसु खल्लिहडउं सीसु॥
हेम० ८.४ ३८९

इसका हिन्दी रूप होगा—

आछत भोग जे छोड़य तेह कन्ताक बलि जावँ।
तेकर देवय (से) मूंडल जेकर खल्लड़ सीस॥

अपभ्रंश भाषा के शब्दो और हिन्दी के शब्दो मे समानता की सूचना अपभ्रंश ग्रथो मे प्राप्त अनेक शब्दो से मिलती है। ऐसे शब्दो का निर्देश आगे अपभ्रंश ग्रथो के प्रकरण मे कर दिया गया है।

---

१. केशव प्रसाद मिश्र—डा० कीथ ऑन अपभ्रंश, इंडियन एंटिक्वेरी, भाग ५९, सन् १९३० ई०, पृ० १।

चौथा अध्याय

अपभ्रंश-साहित्य की पृष्ठभूमि

अपभ्रंश-साहित्य के निर्माण मे जैनियो और बौद्धो का विशेष योग है अतः उस मे धार्मिक साहित्य की ही प्रचुरता है। साहित्य के रचयिताओ का धार्मिक दृष्टिकोण होने के कारण इस साहित्य की पृष्ठभूमि में धार्मिक विचारधारा अधिक स्पष्ट दिखाई देती है। यद्यपि इस साहित्य में राजनीतिक चेतना का अभाव ही है तथापि अपभ्रंशकालीन इस परिस्थिति का विवरण अपभ्रंश-साहित्य के अध्ययन मे सहायक ही होगा अत एव पहिले इसी का सक्षेप मे विवेचन किया गया है।

राजनीतिक अवस्था

गुप्त साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर ईसा की छठी शताब्दी मे मगध पर गुप्तो का ही राज्य था और मध्यदेश मे मौखरियो का आधिपत्य स्थापित हो गया था। इसी शताब्दी मे पजाब । गुजरात—काठियावाड—तक गुर्जर जाति का भी बोल बाला हो गया था। पजाब मे गुजरात और गुजरावाला प्रान्त, दक्षिण मारवाड मे भिन्नमाल और भरुच मे गुर्जरत्रा (गुजरात) इन के गढ थे। ये ही तीन बडी शक्तियाँ उत्तर भारत में प्रबल थी। मौखरियो के प्रताप से अब कन्नौज की प्रायः वही स्थिति थी जो इससे पूर्व काल में पटना की थी।

सातवी शताब्दी के आरम्भ मे थानेसर (कुरुक्षेत्र) में प्रभाकर वर्धन ने उत्तरापथ की ओर अपनी शक्ति बढाई। इस शताब्दी मे उसका पुत्र हर्ष ही एक ऐसा बलवान् राजा था जिसने उत्तर भारत की बिखरी राजकीय सत्ता को सभाले रखा। इसने चीन मे भी अपने दूत भेजे और चीन के दूत भी कन्नौज आये। हर्षवर्धन के समान पुलकेशी द्वितीय भी दक्षिण मे शक्तिशाली राजा था। इस के दरबार मे ईरान के राजा खुसरो ने अपने दूत भेजे।

आठवी शताब्दी मे भारत को एक नई शक्ति का सामना करना पडा। बात यह है कि छठी शताब्दी मे हूणो को परास्त कर भारत कुछ काल तक निश्चित हो गया था किन्तु ७१० ई० मे अरबो की सिन्ध विजय से भारत फिर चौकन्ना हुआ। अरबो ने सिन्ध से आगे बढने का भी यत्न किया किन्तु उन्हे सफलता न मिली। आठवी शताब्दी के मध्य तक उनके भिन्नमाल राज्य और सुराष्ट्र पर हमले होते रहे।

अरबो के भारत मे प्रवेश करने से हिन्दु और अरब संस्कृतियो का मेल हुआ। भारत से अनेक हिन्दु विद्वान् बगदाद गये और अनेक अरब विद्यार्थी पढने के लिए भारत आये। संस्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रथो का अरबी मे अनुवाद हुआ। भारत से गणित आदि का ज्ञान अरब लोग ही योरुप में ले गये। पचतन्त्र आदि की कहानियाँ भी उन्ही के द्वारा विदेशो मे पहुची।[1]

नवी शताब्दी मे कन्नौज पर प्रतिहारो का आधिपत्य हुआ। कारण यह था कि हर्ष के साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर उत्तर भारत अनेक राज्यखडो मे विभक्त हो गया था। इनमें से पूर्व मे बिहार-बगाल के पाल, पश्चिम मे गुजरात-मालवा के प्रतिहार और दक्षिण मे मान्यखेट के राष्ट्रकूट मुख्य थे। ये तीनो कन्नौज को हस्तगत करना चाहते थे किन्तु नवी शताब्दी मे भोज और उसके वशजो ने कन्नौज पर आधिपत्य प्राप्त किया। इनके शासन मे कन्नौज भारत के सबसे प्रतापी राजाओ की राजधानी बन गया। इन सब शक्तियो और राष्ट्रो मे से प्रतिहार और राष्ट्रकूट ही भौगोलिक स्थिति के कारण भारत मे बाह्य आक्रमण को रोकने मे समर्थ थे। इनके आधीन अनेक छोटे-छोटे राजा थे। उनमे प्राय परस्पर युद्ध भी होते र ते थे।

दसवी शताब्दी मे छोटे-छोटे राज्य आपस मे लडते रहे, इससे उनमे क्षत्रियोचित वीरता और पराक्रम की भावना सदैव प्रदीप्त रही। राज्य को उन्नत रखने की प्रवृत्ति भी इससे बनी रही। कभी-कभी एक राज्य दूसरे को पराजित करने के लिए विदेशियो की सहायता भी ले लेते थे। अपने देश या प्रान्त की भावना अधिक उद्बुद्ध थी किन्तु इन राज्यो मे सच्ची राष्ट्रियता की लगन न थी। अब भी राजा ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था अत राजा के प्रति आदर-भाव था। राष्ट्र की भावना जागृत न हो पाई थी।

ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ मे महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। मालवा का राजा भोज भारत मे पर्याप्त प्रसिद्ध है। चेदि का राजा कर्ण भी ११ वी शताब्दी के आरम्भ मे बहुत प्रतापी राजा था। इस काल में प्रतिहार शक्ति बहुत कुछ क्षीण हो गई थी और उसके क्षीण होने पर उसके आधीन रहने वाले चन्देल (कालिजर), कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (साभर, अजमेर) स्वतन्त्र होने लगे। ये सब स्वतन्त्र तो हो गये किन्तु किसी मे बाह्य आक्रमण को रोकने की शक्ति न थी।

इसी शताब्दी मे उत्तर भारत मे पालो, गहडवारो, चालुक्यो, चदेलो और चौहानो के अतिरिक्त गुर्जर-सौलकी और मालवा के परमार भी अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर गये। ११वी-१२वी शताब्दी मे उत्तरी भारत की शक्ति और भी अधिक छिन्न-भिन्न हो गई थी। उपरिलिखित सात राज्यो के शासक चक्रवर्ती-रूप प्राप्त करने की चेष्टा मे लगे रहते थे। चक्रवर्ती राजा दूसरे राजाओं के ऊपर शासन नही करना चाहता था, न

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार—इतिहास-प्रवेश, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, सन् १९४१, पृष्ठ १७८

उनके राज्य को हस्तगत करना चाहता था। वह केवल यही चाहता था कि अन्य राजा उसके चक्रवर्तित्व को स्वीकार कर ले। इसी कारण इन भिन्न-भिन्न राज्यो में परस्पर प्रतिस्पर्धा और सघर्ष चलता रहता था। किन्तु इनमें से कोई भी किसी एक बडी शक्ति के आधीन रह कर काम करने के लिए तैयार न था। इन मे से अनेक राज्य इतने विस्तृत थे कि यदि वे सहज ही सगठित हो पाते तो भारतीय स्वतन्त्रता को बनाये रख सकते थे किन्तु तो भी अन्त मे तुर्को और पठानो के आगे झुक गये।

बारहवी शताब्दी मे अजमेर के चौहानो मे से बीसलदेव और पृथ्वीराज ने तुर्कों को दबाने का प्रयत्न कर भारत की प्रतिष्ठा को स्थिर रखने का साहस किया।

तेरहवी शताब्दी से हिन्दुओ की राजशक्ति पूर्ण रूप से अस्त-व्यस्त एव छिन्न-भिन्न हो गई थी। यदि इस काल मे भारतीय राजाओ मे राजनीतिक जागरूकता रहती—वे सब अपने आप को एक राष्ट्र और एक ही आर्य धर्म के सदस्य समझते तो वे मिल कर विदेशी प्रभाव और आक्रमण का मुकाबला कर सकते। इस काल की भारतीय सभ्यता भी पहले सी सजीव और सप्राण न रही जो शको और हूणों की तरह तुर्कों को भी अपने ही रग मे रग लेती। क्योकि इस समय मे जाति-पाति के सकीर्ण क्षेत्र मे हिन्दू जाति भली भाँति विभक्त हो गई थी। खान-पान मे भी सकीर्णता आगई थी। चित्त की उदारता और भ्रातृत्व का व्यापक दृष्टिकोण जाता रहा।

धार्मिक अवस्था

उपर्युक्त विवेचन से इतना अवगत हो गया कि इस अपभ्रंश काल में बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्म के साथ ही इस्लाम धर्म का भी प्रचार हो गया। फलत उक्त धर्मावलम्बियो की भॉति इस धर्म के भी कवियो ने अपभ्रंश मे रचना की। अतएव इन सभी धर्मों की स्थिति का सामान्य परिचय यहा अनावश्यक न होगा।

होते-होते बौद्धधर्म हर्षवर्धन के समय मे ही यहा तक अवनत हो गया था कि उस काल के चीनी यात्री युवानच्वाङ् ने सिन्धु प्रान्त के बौद्धो के विषय मे स्पष्टतया कहा कि वहा के भिक्खु-भिक्खुनी निठल्ले, कर्त्तव्य-विमुख और पतित हो गये थे। पहिले बौद्धधर्म हीनयान और महायान, इन दो विभागो मे विभक्त हुआ था। कालान्तर में महायान भी अनेक उपयानो में विभक्त हुआ। महायान के शून्यवाद और विज्ञानवाद जनता को अधिक प्रभावित न कर सके। इसमे महासुखवाद के समिश्रण से वज्रयान का आविर्भाव हुआ। जिसमे भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वाले लोगो के लिये भिन्न-भिन्न साधन थे—योग, देवपूजा, मन्त्र, सिद्धि, विषय-भोग इत्य दि। वज्रयान में से ही सहजयान का भी आविर्भाव हुआ। इस ने वज्रयान के विभिन्न प्रतीको की दूसरे रूप में व्याख्या की। महामुद्रा, मत्र साधनादि बाह्य साधनाओ की अपेक्षा यौगिक और मानसिक शक्तियो के विकास पर बल दिया। यद्यपि बज्रयान और सहजयान दोनो का लक्ष्य एक ही था—'महासुख' या पूर्ण आनन्द की प्राप्ति तथापि दोनो के दृष्टिकोण मे भेद था।

सहजयान का लक्ष्य था कि सहज मानव की जो आवश्यकताएँ हैं, उन्हे

सहजरूप से पूरा होने दिया जाय। मठो के अप्राकृतिक जीवन से उत्पन्न अनेक बुराइयो को दूर कर मानव को सहज-स्वाभाविक जीवन पर लाने की कामना से सभवत सहजयान का जन्म हुआ किन्तु शीघ्र ही यह सब काम सहज-स्वाभाविक रूप में न हो कर अस्वाभाविक रूप मे होने लगा। इस सहजमार्ग ने शीघ्र ही पाखड मार्ग का आश्रय लिया। यही सहजयान तन्त्र-मन्त्र, भूत-प्रेत, देवी-देवता, जादू-टोना, ध्यान-धारणा, सम्बन्धी हजारो मिथ्या विश्वासो और ढोगो के प्राबल्य का कारण बना। अवनति की ओर बढते हुए बौद्धधर्म के लिए लोगो को आकृष्ट करने के लिए इसके अतिरिक्त और साधन भी क्या था ?

आठवी शताब्दी मे बगाल मे पाल राज्य ही बौद्धधर्म का अंतिम शरणदाता रहा। यहाँ आकर और यहाँ से नेपाल और तिब्बत में जाकर बौद्धधर्म का सम्बन्ध तन्त्रवाद से और भी अधिक बढ गया। चिरकाल तक बगाल, मगध और उडीसा मे अनेक बौद्धविहार मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विद्याओ से और नाना प्रकार के रहस्यपूर्ण तात्रिक अनुष्ठानो से जन समुदाय पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करते रहे। किन्तु बौद्धधर्म का प्रभाव चिरकाल तक न रह सका। नालन्दा एव विक्रमशिला के ध्वस के साथ ही प्राय वह भी ध्वस्त हो गया और उसके पाँच छ पीढियो के बाद भारत मे नाममात्र को ही शेष रह गया।

जैनधर्म का उदय यद्यपि उन्ही परिस्थितियो मे हुआ था जिनमे बौद्धधर्म का तथापि उसमे सयम की मात्रा अधिक थी और फलत कभी उसका पतन भी उतना नही हुआ जितना बौद्धधर्म का। इस काल के राष्ट्रकूट और गुर्जर-सोलकी राजाओ में से कुछ का जैनधर्म पर बहुत अनुराग था, किन्तु इन राजाओं पर जैनधर्म की अहिसा का अधिक प्रभाव न पडा था। जैन गृहस्थ ही नही जैन मुनि भी तलवार की महिमा गाते हुए पाये जाते हैं। बौद्धो की तरह इनमे भी प्रारम्भ मे जाति-पाँति का झगडा न था किन्तु पीछे से वे भी इसके शिकार हो गये। जैनधर्म मे व्यापारी वर्ग भी अधिकता से मिलता है। किन्तु अनेक व्यापार करने वाली जातियो ने, जिन्होने जैनधर्म को स्वीकार किया, इस धर्म के अहिंसा सिद्धान्त को खूब निभाया। इनमे से अनेक जातियो ने, जो पहले क्षत्रिय जातियाँ थी, किसी समय शको और यवनो के दाँत खट्टे किये थे। अब लक्ष्मी की शरण मे जाकर उन्होने अपने क्षत्रियोचित पराक्रम को खो दिया।

जैनो ने अपभ्रंश साहित्य की रचना में और उसकी सुरक्षा में सबसे अधिक सहयोग दिया। जैनों ने केवल सस्कृत मे ही नही लिखा, प्राकृत मे भी उनके अनेक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। जैनियो मे व्यापारी-वर्ग भी था, जिनके लिए पडितो की भाषा का ज्ञान न सरल था न सभव। उनके लिए अनेक ग्रथ देशभाषा में—अपभ्रंश में—लिखे गये। जैनाचार्यों ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तो की व्याख्या के लिए अनेक ग्रथ लिखे। किन्तु दार्शनिक ग्रथो के अतिरिक्त जैन सम्प्रदाय के बाहर काव्य, नाटक, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, कोष, अलकार, गणित और राजनीति आदि विषयो पर भी इन आचार्यों ने लिखा। बौद्धो की अपेक्षा वे इस क्षेत्र मे अधिक उदार हैं। संस्कृत,

प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी, तेलगु, तामिल और विशेष रूप से कन्नडी साहित्य मे भी उनका योग अत्यधिक है।[1]

साहित्य की दृष्टि से जैनो ने साहित्य के सभी अगो पर लेखनी उठाई। महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, नाटक, चम्पू, गद्यकाव्य, कथाकोश आदि सभी अगो पर जैनाचार्यों ने रचनाये की। काव्य-नाटको के अतिरिक्त उन्होने हिन्दू और बौद्ध आचार्यों की भाँति विशाल स्तोत्र-साहित्य की भी रचना की। नीति-ग्रथो की भी जैन साहित्य में कमी नही। जैनाचार्यों ने अपनी भिन्न-भिन्न रचनाओ के लिए हिन्दुओ की रामायण, महाभारत और पुराणो की कथाओ को भी लिया, किन्तु जैन-साहित्य मे इनका रूप परिवर्तित हो गया है।

जैन-धर्म भी धीरे-धीरे दो शाखाओं मे विभक्त हो गया था। दक्षिण मे दिगम्बर और गुजरात-राजपूताना मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय वालो का प्राधान्य था। इस काल से पूर्व दक्षिण मे जैनियो ने अनेक हिन्दू राजाओ को प्रभावित कर उनका आश्रय प्राप्त कर लिया था। तमिल—चेर, पाड्य और चोल—राजाओ ने जैन गुरुओ को दान दिया, उनके लिए मदिर और मठ बनवाये। जैनाचार्य अपने पाण्डित्य से अनेक राजाओ के कृपापात्र बने और उनसे अनेक ग्राम दान रूप में पाये। दक्षिण मे शैव-धर्म के प्रबल होने से जैन-धर्म को धक्का लगा। शैव-धर्म ही जैन-धर्म के दक्षिण से उखाडने का प्रधान कारण है।

गुजरात और राजपूताना मे, जहाँ राजपूत-क्षत्रिय अपनी तलवार और शस्त्र-विद्या के लिए प्रसिद्ध थे, जैन-धर्म का प्रचार होना आश्चर्य ही है। हिंसा और अहिंसा की लहर भारत मे क्रम-क्रम से आती-जाती रही। इस काल मे फिर अहिंसा की लहर जोर से आई, जिससे सारा भारत प्रभावित हो गया। गुजरात, मालवा और राजपूताना में इसी लहर के प्रभाव से जैन-धर्म फिर चमक पडा और इसमे जैनाचार्य हेमचन्द्र जैसे अनेक आचार्यों का भी बहुत कुछ हाथ रहा।

यद्यपि जैन-धर्म उत्तर भारत के अन्य देशो में और बगाल मे न फैल सका, तथापि अनेक जैन व्यापारी इन प्रदेशो मे भी फैले और अहिंसा का प्रचार वैष्णव-धर्म के साथ सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक हो गया। अहिसा के साथ पशु-हिसा और मांस-भक्षण भी रुक गये। वैष्णव-धर्म मे जैनियो के समान तप और त्याग की वह कठोरता न थी, अतएव जन सामान्य ने इसे शीघ्रता और सरलता से अपना लिया।

इस प्रकार ११ वी-१२ वी शताब्दी मे पश्चिम-भारत मे जैन-धर्म, दक्षिण मे शैव-धर्म, पूर्व में और उत्तर मे वैष्णव-धर्म विशेष रूप से फैला हुआ था। वैष्णव और शैव भी अनेक मतो मे बट गये थे। उन सबके अपने-अपने धार्मिक सिद्धान्त, विचार और धारणाएँ बन गई थी। इन्ही से उत्पन्न भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारधाराओ मे विद्वान् उलझ गये। परस्पर भेद-भावना बढ गई। भिन्न-भिन्न देवी-देवताओ की पूजा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के आगम एव तत्र-ग्रथो की उत्पत्ति हो गई। विचार-भेद के

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी-साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २२४।

अनुसार समाज मे भी अनेक परिवर्तन हो गये। समाज की एकता भी इसी कारण नष्ट हो गई। इन सब भिन्न-भिन्न मतो और विचारधाराओ मे एक ही समानता थी—सब में एकान्तसाधना की प्रधानता थी। इस विचारधारा ने भारतीय समाज को, जो कि विचार-भेद से पहले ही शिथिल और निर्बल हो गया था और भी निर्बल कर दिया।

प्राचीन वैदिक-धर्म मे धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहा। परमात्मा के भिन्न-भिन्न नामो को देवता मानकर उनकी पृथक्-पृथक् उपासना आरम्भ हो गई थी। ईश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियो और देवताओ की पत्नियो की भी पूजा होने लगी। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही, नारसिही और ऐंद्री—इन सात शक्तियो को मातृका का नाम दिया गया है। काली, कराली, चामुडा और चडी नामक भयकर और रुद्र शक्तियो की भी कल्पना की गई। आनद-भैरवी, त्रिपुर-सुन्दरी और ललिता आदि विषयविलास-परक शक्तियो की भी कल्पना की गई। इनके उपासक शाक्त, शिव और त्रिपुर-सुन्दरी के योग से ही ससार की उत्पत्ति मानते थे।[1]

क्रमश वैदिक ज्ञान के मद पड जाने पर पुराणो का प्रचार हुआ। पौराणिक संस्कारो का प्रचलन चल पडा। पौराणिक देवताओ की पूजा बढ गई। यज्ञ कम हो गये—श्राद्ध-तर्पण बढ गया। मदिरो और मठो का निर्माण बढता गया। व्रतो, प्रायश्चितो का विधान स्मृतियो मे होने लगा।

बौद्ध और जैन, वैदिकधर्म के प्रधान अग ईश्वर और वेद को न मानते थे। जनता की आस्था इन दोनो पर से उठने लगी। कुमारिल भट्ट ने ७वी शताब्दी के अन्त में पुनः वैदिकधर्म की प्रतिष्ठा बढाने का प्रयत्न किया। यज्ञो का समर्थन और बौद्धो के वैराग्य-सन्यास का विरोध किया।

शकराचार्य ने आठवी शताब्दी मे बौद्धो और जैनो के नास्तिकवाद को दूर करने का प्रयत्न किया किन्तु अपना आधार ज्ञान काड और अहिसा को रखा। सन्यास मार्ग को भी प्रधानता दी। उनका सिद्धान्त जनता को अधिक आकृष्ट कर सका।

ब्राह्मण, बौद्ध और जैन इनकी अवान्तर शाखाये भी हो गई थी। इन मे यद्यपि कभी-कभी सघर्ष भी हो जाते थे तथापि धार्मिक असहिष्णुता का भाव नही था। ब्राह्मण-धर्म की विभिन्न शाखाओ में परस्पर भिन्नता होते हुए भी उनमे एकता थी। पंचायतन पूजा इसी एकता का परिणाम था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी देवता की पूजा कर सकता था। सभी देवता ईश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियो के प्रतिनिधि थे। कन्नौज के प्रतिहार राजाओ मे यदि एक वैष्णव था, तो दूसरा परम शैव, तीसरा भगवती का उपासक, चौथा परम आदित्य भक्त।[2] जैनाचार्यो ने माता-पिता के विभिन्न धर्मावलम्बी होने पर भी उनके आदर-सत्कार आ स्पष्ट उपदेश दिया है।

तेरहवी शताब्दी से पूर्व देवी-देवताओ की मूर्तिया प्रायः भिन्न-भिन्न भावों के

---

१. गौरीशंकर हीराचंद ओझा—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग, सन् १९२८, पृ० २७।

२. वही पृ० ३७।

मूर्त्त प्रतीक के रूप मे प्रतिष्ठित थी। इस के पश्चात् साधारण जनता मे यह मूर्त्ति-पूजा निरी जड-पूजा के रूप मे रह गई। मुसलमानो की धर्मान्धता ज्यो-ज्यो मूर्त्तियो को तोडने मे अग्रसर हुई त्यो-त्यो मूर्त्तियो की रक्षा की भावना भी जड पकड़ती गई और आते-आते प्राय: इस शती के अन्त मे लोग मूर्त्ति को ही सब कुछ समझने लगे। पूजा मे आडम्बर आ गया। अनेक प्रकार के कुत्सित मार्ग धर्म-मार्ग के नाम से चल पड़े। कर्मकाण्ड का जजाल खडा हो गया जिससे धर्म का आन्तरिक रूप लुप्त हो गया और केवल वाह्य-रूप ही प्रधान माना जाने लगा। पौराणिक धर्म के इस अर्थहीन क्रियाकलाप का अनुष्ठान सबके लिए सभव न था। इस प्रवृत्ति के विरुद्ध देश में एक लहर चली जिसके प्रवर्त्तक मुख्यत सन्त लोग थे। इन्होने धर्म के इस क्रिया-कलाप-परक वाह्य-रूप की अपेक्षा भक्ति-भाव-परक आन्तरिक-रूप पर जोर दिया। इस्लाम के सूफी सम्प्रदाय ने भी यही किया। इन सन्तो ने भक्ति के लिए जात-पाँत की सकीर्णता को दूर कर धर्म का मार्ग प्रशस्त किया।

आठवी शती के आरम्भ मे ही अरबो के भारत प्रवेश से भारत और बगदाद में सपर्क स्थापित हो गया था। बगदाद के खलीफाओ के समय अनेक भारतीय विद्वान् बगदाद बुलाये गये और वहां जाकर उन्होने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिष के अनेक ग्रंथो के अरबी अनुवाद मे सहयोग दिया।

यद्यपि ८ वी शताब्दी के आरम्भ में ही अरब भारत में प्रविष्ट हो गये थे तथापि १० वी शताब्दी तक वे सिन्ध और मुल्तान से आगे न बढ पाये थे। किन्तु ११ वीं शताब्दी के आरम्भ मे ही लाहौर मे भी मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया। सूफियो का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव मुस्लिम सस्कृति के भारत मे प्रवेश होने से ही पडा। १२ वी शताब्दी के अत में दिल्ली और कन्नौज भी इस्लाम झडे के नीचे चले गये। मुस्लिम शासकों के आक्रमणो और मदिरों को लूटने का जो परिणाम हुआ उसका प्रभाव हिन्दू सतो पर भी पडा। इस्लाम की प्रतिष्ठा हो जाने पर भी अनेक हिन्दू और मुस्लिम सत ऐसे थे जिन्होन दोनो के भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया। इन्होने परलोकवाद और मानव की सहज-सहृदयता के आधार पर दोनो को, भेदभाव दूर करने का उपदेश दिया।

सामाजिक अवस्था

इस काल मे प्रत्येक वर्ग अनेक जातियो और उपजातियो मे विभक्त हो गया था। यह भेदभाव धीरे-धीरे निरन्तर बढता ही गया। परिणामस्वरूप समस्त जाति इतनी शिथिल हो गई कि वह मुसलमान आक्रान्ताओ का सामना सफलता के साथ न कर सकी।

मुख्यतया प्रत्येक वर्ण स्मृति-प्रतिपादित धर्म का ही अनुष्ठान करता था किन्तु ब्राह्मण अपने पुरोहित-कर्म के अतिरिक्त अन्य वर्णों के पेशे को भी स्वीकार करता था और क्षत्रिय भी अपने कर्त्तव्य के साथ-साथ शास्त्र-चिन्तन में लीन था। अनेक राजपूत शासक अपने बलपराक्रम के अतिरिक्त अपनी विद्या और पाण्डित्य मे भी प्रसिद्ध हुए।

इस काल मे अनेक राजाओ ने शस्त्र-विद्या और शास्त्र-विद्या दोनो मे समान रूप से प्रतिभा प्रदर्शित कर अपना नाम अमर कर दिया। भोज पडितो के आश्रयदाता ही न थे स्वयं भी विद्वान् और पडित थे। अलकारशास्त्र पर उनका सरस्वती-कठाभरण, योग पर राजमार्त्तण्ड और ज्योतिष पर राजमृगाक करण ग्रथ प्रसिद्ध ही हैं। भोज के समान गोविन्दचन्द्र, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन, विग्रहराज चतुर्थ, राजेन्द्र चोल आदि अनेक राजा अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध हुए।

कृषि-कर्म प्रारम्भ मे वैश्यो का ही कार्य था, किन्तु अनेक वैश्य बौद्ध और जैन-धर्म के प्रभाव के कारण इस कर्म को हिंसायुक्त और पापमय समझ कर छोड बैठे थे। यह कर्म भी शूद्रो को करना पडा। किन्तु ९वी-१०वी शताब्दी मे कृषि-कर्म का विधान ब्राह्मणो और क्षत्रियो के लिए भी होने लग गया था।[1]

किन्तु खान-पान, छुआ-छूत, अन्तर-जातीय विवाह आदि की प्रथाओ में धीरे-धीरे कट्टरता आने लगी और भेदभाव बढता गया। बाल-विवाह, विशेषकर कन्याओ का बाल्यावस्था मे विवाह भी प्रारम्भ हो गया।[2] इस काल मे राजाओ और धनाढ्यो में बहुपत्नीविवाह की प्रथा प्रचलित थी जैसा कि अनेक अपभ्रंश ग्रथो से सिद्ध होता है।

इस प्रकार १४वी-१५वी शताब्दी तक राजनीतिक-जीवन के साथ-साथ भारतीयो का सामाजिक जीवन भी जीर्ण-शीर्ण हो गया था। यद्यपि समाज का ढाँचा इस प्रकार शिथिल हो गया था तथापि उसमे बाह्य प्रभाव से आक्रान्त न होकर अपनी सत्ता बनाये रखने की क्षमता अब भी आशिक रूप मे बनी रही। हिन्दू-समाज आक्रान्ताओ के हस्ता-वलेप से बराबर टक्कर लेता रहा। समाज ने दृढता से विदेशियो की सभ्यता और संस्कृति का सामना किया।

साहित्यिक अवस्था

गुप्त-युग मे ज्ञान, कला और साहित्य अतीव उन्नत थे। दर्शन, गणित, ज्योतिष, काव्य-साहित्य सभी अगो मे भारतीयो ने गुप्त-युग मे जो उन्नति की उसका क्रम एक-दो शताब्दी बाद तक चलता रहा। नालन्दा और विक्रमशिला के विहार प्रसिद्ध ज्ञान के केन्द्र थे। कन्नौज भी वैदिक और पौराणिक शिक्षा का केन्द्र था। धीरे-धीरे ज्ञान-सरिता का प्रवाह कुछ मन्द हो गया। अलकारो के आधिक्य से काव्यो मे वह स्वाभा-विकता और वह ओज न रहा। भाष्यों और टीका-टिप्पणियो के आधिक्य से मौलिकता का अभाव सा हो गया।

११वी-१२वी शताब्दी मे काश्मीर और काशी ही नही बगाल मे नदिया, दक्षिण भारत मे तजोर और महाराष्ट्र मे कल्याण भी विद्या के केन्द्रो के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। कन्नौज और उज्जैन भी पूर्ववत् विद्या-केन्द्र बने रहे। अलकार-शास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक और सगीत आदि विषय ज्ञान के क्षेत्र थे।

---

१. सी. वी. वैद्य—हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया, भाग २, ओरियंटल बुक सप्लाइंग एजेन्सी पूना, सन् १९२४, पृ० १८३.

२. वही पृष्ठ १८९.

इस प्रकार गुप्त-युग की तरह इस काल मे भी भारतीयो के मस्तिष्क ने काव्यप्रकाश, सिद्धान्तशिरोमणि, नैषधचरित, गीत गोविन्द, राजतरगिणी जैसे अनेक ग्रथ प्रदान किये। इन्हे देखकर हम सरलता से कह सकते हैं कि भारतीय प्रतिभा इस काल में भी अकुंठित रही।

भाषा की दृष्टि से यद्यपि संस्कृत अब उतनी प्रचलित न रही किन्तु तो भी जन-साधारण में उसका गौरव और मान वैसा ही बना रहा। चिरकाल तक संस्कृत भाषा में ग्रथो का प्रणयन इस बात का साक्षी है। ब्राह्मणो ने ही संस्कृत का आश्रय लिया हो ऐसी बात नही, जैनाचार्यों ने भी अपने सिद्धान्तों के प्रचार और अपने तीर्थंकरों की स्तुति के लिए सस्कृत का ही आश्रय लिया। सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृतों का व्यवहार भी इस काल में होता था और साथ ही अपभ्रश में भी ग्रथ रचनायें हो रही थी।

बंगाल मे ८४ सिद्धों ने अपभ्रश में रचनायें की। पाल वशी बौद्ध थे, उन्होंने लोकभाषा को प्रोत्साहित किया। स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे अपभ्रश भाषा के क्रान्त-दर्शी कवियो ने भी राष्ट्रकूट राजाओ के आश्रय में अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध किया। मुंज और भोज प्राकृत के साथ-साथ अपभ्रंश के भी प्रेमी थे। अपभ्रश के इन कवियों ने संस्कृत कवियों का अध्ययन किया था। बाण की श्लेष-शैली पुष्पदन्त में स्पष्ट दिखाई देती है। स्वयंभू ने संस्कृत के पुराने कवियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। किन्तु इन अपभ्रश कवियो को तत्कालीन राजवर्ग का वैसा प्रोत्साहन न मिल सका। राजा लोग अभी तक सस्कृत और प्राकृत की ओर ही अधिक आकृष्ट थे।

१४ वी शताब्दी में भी भानुदत्त जैसे प्रसिद्ध आलंकारिक हुए। इन्ही का लिखा गीत गौरीपति प्रसिद्ध है। इसके बाद भी नलाभ्युदय, कार्त्तवीर्यविजय आदि संस्कृत काव्य १६ वी-१७वीं शताब्दी तक लिखे जाते रहे। अपभ्रंश काव्यो की परम्परा भी १७वी शताब्दी तक चलती रही। इन काव्यों मे भाषा की दृष्टि से वह प्रौढ़ता नहीं। १४ वी-१५वी शताब्दी का साहित्य प्रादेशिक-भाषाओं के काव्यों से प्रभावित होने लग गया था। इस समय प्रादेशिक-भाषायें भी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थी।

पाँचवाँ अध्याय

अपभ्रंश-साहित्य का संक्षिप्त परिचय

अपभ्रंश भाषा का समय भाषा विज्ञान के आचार्यों ने ५०० ई० से १००० ई० तक बताया है किन्तु इसका साहित्य हमें लगभग ८ वी सदी से मिलना प्रारम्भ होता है। प्राप्त अपभ्रंस साहित्य में स्वयंभू सबसे पूर्व हमारे सामने आते है। अपभ्रश-साहित्य का समृद्ध युग ९ वी से १३ वी शताब्दी तक है। इसी काल में पुष्पदन्त, धवल, धनपाल, नयनन्दी, कनकामर, धाहिल इत्यादि अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए है। इनमे से यदि पुष्पदन्त को अपभ्रश-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। पुष्पदन्त की प्रतिभा का मूल्य इसी बात से आका जा सकता है कि इनको अपने महापुराण मे एक ही विषय—स्वप्न दर्शन—को चौबीस बार अंकित करना पड़ा। प्रत्येक तीर्थंकर की माता जन्म सबधी स्वप्न में अनेक पदार्थ देखती है, इसका वर्णन प्रत्येक तीर्थंकर के चरित वर्णन के साथ आवश्यक था। इसी से पुष्पदन्त को स्वप्न का चौबीस बार वर्णन करना पडा[1] किन्तु फिर भी एक-आध स्थल को छोडकर सर्वत्र नवीन छन्दो और नवीन पदावलियो की योजना मिलती है और कही पिष्ट पेषण नही प्रतीत होता। पुष्पदन्त के बाद के कवियो ने इनका आदरपूर्वक स्मरण किया है।

जैनों द्वारा लिखे गये महापुराण, पुराण, चरिउ आदि ग्रथो में, बौद्ध सिद्धो द्वारा द्वारा लिखे गये स्वतन्त्र पदो, गीतो और दोहों में, कुमार पालप्रतिबोध, विक्रमोर्वशीय, प्रबन्ध चिन्तामणि आदि संस्कृत एव प्राकृत ग्रंथो में जहाँ तहां कुछ स्फुट पद्यों में और वैयाकरणो द्वारा अपने व्याकरण ग्रथो में उदाहरणो के रूप मे दिये गये अनेक फुटकर पद्यों के रूप में हमें अपभ्रश साहित्य उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त विद्यापति की 'कीर्तिलता' और अब्दुलरहमान के 'संदेशरासक' आदि

---

१. महापुराण के निम्नलिखित स्थलों की तुलना कीजिये—

३ ५,	३८·१२,	४१·४,	४२·४,	४३·५,
४४·४,	४६ ३,	४७ ७,	४८·६,	४९·६,
५३ ५,	५५·५,	५८ ५,	५९·३,	६३·२,
६४ ४'	६५·३,	६७·४,	६७·५,	६८·४,
८० ६,	८७ १२,	९४·१४,	९६·८,	

काव्य ग्रथो में अपभ्रंश साहित्य उपलब्ध है। सस्कृत और प्राकृत मे लिखे गये अनेक शिलालेख उपलब्ध होते हैं किन्तु अपभ्रश में लिखा हुआ कोई शिलालेख अभी तक प्रकाश मे नही आ सका। बम्बई के सग्रहालय (अजायबघर) मे धारा से प्राप्त एक अपभ्रश शिलालेख विद्यमान है।[1] इसी प्रकार अपभ्रश के एक शिलालेख की ओर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी हिन्दी साहित्य की भूमिका में निर्देश किया है।[2]

अपभ्रश-साहित्य की सुरक्षा का श्रेय वस्तुतः जैन भडारो को है। इन्ही भण्डारो में से प्राप्त अपभ्रश-साहित्य का अधिकाश भाग प्रकाश मे आ सका है और भविष्य मे भी अनेक बहुमूल्य ग्रथो के प्रकाश मे आने की सभावना है। अपभ्रश-साहित्य की पर्याप्त सामग्री इन भडारों में छिपी पड़ी है। किसी ग्रथ की हस्तलिखित प्रति करवाकर किसी भंडार मे श्रावको के लाभ के लिए रखवा देना, जैनियो में परोपकार और धर्म का कार्य समझा जाता था। यही कारण है कि अनेक भडारो में इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रथ मिलते हैं।

जिस प्रकार जैनाचार्यों ने सस्कृत वाङ्मय मे अनेक काव्य लिखे—अनेक पुराण ग्रथों का प्रणयन किया–पार्श्वाभ्युदय, द्विसधान काव्य, शान्ति नाथ चरित्रादि कलात्मक काव्य साहित्य का सृजन किया–चन्द्रदूत, सिद्ध दूतादि अनेक दूतकाव्य और उपमिति भव प्रपच कथा आदि रूपक काव्यो का निर्माण किया—इसी प्रकार इन्होने अपभ्रश में भी इस प्रकार के ग्रंथो का प्रणयन कर अपभ्रश-साहित्य को समृद्ध किया।

जैनियो के अपभ्रश को अपनाने का कारण यह था कि जैनाचार्यों ने अधिकाश ग्रंथ प्रायः श्रावको के अनुरोध से ही लिखे। ये श्रावक तत्कालीन बोलचाल की भाषा से अधिक परिचित होते थे अतः जैनाचार्यों द्वारा और भट्टारको द्वारा श्रावकगण के अनुरोध पर जो साहित्य लिखा गया वह तत्कालीन प्रचलित अपभ्रश में ही लिखा गया। इन कवियो ने ग्रथ के आरम्भ मे अपने आश्रयदाता श्रावकों का भी स्पष्ट परिचय दिया है। कवि के कुल एव जाति के परिचय के साथ साथ इन श्रावको का भी विशद वर्णन ग्रन्थारम्भ की प्रशस्तियो में मिलता है।

जैन, बौद्ध और इतर हिन्दुओ के अतिरिक्त मुसलमानो ने भी अपभ्रंश मे रचना की। संदेशरासक का कर्ता अब्दुर्रहमान इसका प्रमाण है। मुसलमान होते हुए भी इसके ग्रंथ में मंगलाचरण की कुछ पक्तियो को छोडकर अन्यत्र कहीं धर्म का कोई चिह्न भी दृष्टिगोचर नही होता।

संस्कृत मे यद्यपि जैनाचार्यों ने अनेक स्तोत्र, सुभाषित, गद्यकाव्य, आख्यायिका, चम्पू, नाटकादि का भी निर्माण किया किन्तु अपभ्रश में हमें कोई भी गद्य ग्रथ और

१. यह शिलालेख १३वीं शताब्दी के देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ है। इसमें राधे रावल के वंशज राजकुमार के सौन्दर्य का वर्णन है।

२. हिन्दी साहित्य की भूमिका, १९४८ ई., पृ० २२।

नाटक नही उपलब्ध होता।

जैन कवियो ने किसी राजा, राजमन्त्री या गृहस्थ की प्रेरणा से काव्य रचना की है अतः इन कृतियो में उन्ही की कल्याण कामना से किसी व्रत का माहात्म्य-प्रतिपादन या किसी महापुरुष के चरित का व्याख्यान किया गया है। राजाश्रय मे रहते हुए भी इन्हे धन की इच्छा न थी क्योकि ये लोग अधिकतर निष्काम पुरुष थे। और न इन कवियो ने अपने आश्रयदाता के मिथ्या यश का वर्णन करने के लिए या किसी प्रकार की चाटुकारी के लिए कुछ लिखा। सस्कृत साहित्य में यद्यपि अनेक काव्यों का प्रणयन रामायण, महाभारत, पुराण आदि के किसी कथानक या उपाख्यान के आधार पर ही हुआ है तथापि ऐसे भी अनेक काव्य है जिनमे कवि ने अपने आश्रयदाता की विजय और वीरता का वर्णन किया है। जैनो ने सस्कृत मे उपरिलिखित कथानको या उपाख्यानो के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी काव्य लिखे जिनमें किसी तीर्थंकर या जैनों के महापुरुष का जीवन चरित्र अकित किया गया है। हेमचन्द्र का कुमारपाल चरित, वाग्भट का नेमिनिर्वाण, माणिक्य सूरि का यशोधर-चरित्र आदि इसके उदाहरण हैं। जैनो ने तीर्थंकरो और महापुरुषों के वर्णन के अतिरिक्त जैन धर्म के उपदेश की दृष्टि से भी सिद्धर्षिरचित उपमिति भव प्रपच कथा, वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभ चरित आदि कुछ ग्रथ लिखे। अपभ्रश में सस्कृत-प्राकृत की परम्परा न बनी रह सकी। पूर्व भारत में सिद्धो की रचनाये सहजयान के प्रचार अथवा अपने मत का प्रतिपादन करने के लिए लिखी गई। जैनियो के भी अधिकाश ग्रथ किसी तीर्थंकर या जैन महापुरुष का चरित वर्णन करने, किसी व्रत का माहात्म्य बतलाने या अपने मत का प्रतिपादन करने की दृष्टि से लिखे गये। किन्तु ऐसा होते हुए भी जैन कवि धर्मान्ध या कट्टर साम्प्रदायिक न थे। इनमे सामाजिक सहिष्णुता और उदार भावना दृष्टिगत होती है। इनकी सदा यह अभिलाषा रही कि नैतिक और सदाचार सम्बन्धी जैन धर्म के उपदेश अधिक से अधिक जनसाधारण तक पहुँचें। हिन्दुओ के शास्त्रो और पुराणो का अध्ययन उन्होने किया हुआ था, इसका निर्देश इनकी रचनाओ में ही मिलता है।

सभी देशों और सभी युगों में काव्य के प्रधान विषय मानव और प्रकृति ही रहे है। इनके अतिरिक्त मानव से ऊपर और प्रकृति को वश में करने वाले देवी-देवता भी अनेक काव्यो के विषय हुआ करते थे। अधिकाँश संस्कृत काव्यो में किसी महापुरुष के महान् और वीर कार्यों का चित्रण ही दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि कृत रामायण का विषय महापुरुष रामचन्द्र ही है। इस प्रकार प्राचीन काल में किसी महापुरुष का महान् और वीर कार्य ही काव्य का विषय होता था। कालान्तर में कोई देवी देवता या तज्जन्य मानव भी काव्य का विषय होने लगा। कालिदास के कुमारसभव में भगवान् शंकर और पार्वती की अवतारणा है। भारवि के किरातार्जुनीय में भगवान् शंकर और देवसभव अर्जुन का वर्णन है। कालान्तर में जब साहित्य को राजाश्रय प्राप्त हुआ तब उच्चकोटि के कवियों ने महान् और यशस्वी राजाओ को भी काव्य का विषय बना दिया। काव्य का नायक धीरोदात्त क्षत्रिय होने लग गया। अनेक संस्कृत

काव्य इसके प्रमाण हैं। इन काव्यो मे प्रकृति भी स्वतन्त्र रूप से या गौण रूप से वर्णन का विषय रही है। प्रकृति का वर्णन महाकाव्य का एक अग बन गया। महाकाव्यो मे वन, नदी, पर्वत, सध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि के वर्णन आवश्यक हो गये। इन विषयो के अतिरिक्त प्रेम भी कवियो का वर्ण्य विषय रहा। महाकाव्यो में यह तत्व इतना अधिक स्पष्ट नही दिखाई देता जितना कि नाटकों मे। 'स्वप्नवासवदत्ता', 'विक्रमोर्वशीय', 'शकुन्तला', 'मालती माधव', 'रत्नावली' आदि नाटकों में इसी प्रेम तत्व की प्रधानता है। महाकाव्यों के अतिरिक्त अनेक इस प्रकार के मुक्तक काव्य भी लिखे गये जिनमें नीति, वैराग्य या शृंगारादि का वर्णन है। इस प्रकार सस्कृत और प्राकृत के काव्यो का मुख्य विषय—महापुरुष वर्णन, देवी-देवता वर्णन, प्रकृति-वर्णन और प्रेम ही रहा। गौण रूप से नीति, वैराग्य, शृगारादि का भी वर्णन हुआ। इनका सम्बन्ध भी मानव के सा ही है। इन विषयों के कारण काव्य में वीर, शृंगार या शान्त रस ही प्रधान रूप से प्रस्फुटित हुआ।

अपभ्रंश साहित्य में भी संस्कृत और प्राकृत की परम्परा के अनूकूल ही जैनियों ने या तो किसी महापुरुष के अथवा किसी तीर्थंकर के चरित्र का वर्णन या किसी महापुरुष के चरित्र द्वारा व्रतों के माहात्म्य का प्रतिपादन किया है। सिद्धों की कविता का विषय अध्यात्मपरक होने के कारण उपरिलिखित विषयों से भिन्न है। अपनी महत्ता प्रतिपादन के लिए प्राचीन रूढियो का खंडन, गुरु की महिमा का गान और रहस्यवाद आदि इनकी कविता के मुख्य विषय हैं।

जैन प्रबन्ध काव्यो के कथानक की रचना का आधार जैनियो के कर्म विपाक का सिद्धान्त प्रतीत होता है। इसी को सिद्ध करने के लिए जैन कवि इतिहास के इतिवृत्त की उपेक्षा कर उसे स्वेच्छा से तोड़ मरोड़ देता है। इसी कर्म सिद्धान्त की पुष्टि के लिए जैन कवि स्थल-स्थल पर पुनर्जन्मवाद का सहारा लेता है। अपभ्रंश साहित्य की रचना की पृष्ठभूमि प्रायः धर्मप्रचार है। जैनधर्मलेखक प्रथम प्रचारक है फिर कवि।

अपभ्रंश साहित्य मे हमे महापुराण, पुराण और चरित-काव्य के अतिरिक्त रूपक-काव्य, कथात्मक ग्रथ, सन्धि-काव्य रास ग्रथ, स्तोत्र आदि भी उपलब्ध होते हैं। इनमें से महापुराणो का विषय—चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव और नौ प्रतिवासुदेवो का वर्णन है। इस प्रकार ६३ महापुरुषो के वर्णन के कारण ऐसे ग्रथो को त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित या तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार भी कहा गया है। पुराणो मे पद्मपुराण और हरिवंश पुराण के रूप में ही लिखे पुराण मिलते हैं। पद्म पुराण में प्राचीन रामायण कथा का और हरिवश पुराण में प्राचीन महाभारत की कथा का जैन धर्मानुकूल वृत्तान्त मिलता है। ये दोनो कथायें जैनियो ने कुछ परिवर्तन के साथ अपने पुराणों में ली।

जैनियो ने रामकथा के पात्रो को अपने धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। राम, लक्ष्मण और रावण केवल जैन धर्मावलम्बी ही नही माने गये अपितु इनकी गणना त्रिषष्टि महापुरुषों में की गई है। प्रत्येक कल्प के त्रिषष्टि महापुरुषो मे से नौ बलदेव

नौ वासुदेव और नौ प्रति वासुदेव माने जाते है । ये तीनों सदा समकालीन होते हैं । राम, लक्ष्मण और रावण क्रमश. आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रति वासुदेव माने गये है । जैन-धर्मानुसार बलदेव और वासुदेव किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियो के पुत्र होते है। वासुदेव अपने बडे भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव से युद्ध करते है और अन्त में उसे मार देते है । परिणाम-स्वरूप जीवन के बाद वासुदेव नरक मे जाते है। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण दु खाकुल होकर जैनधर्म मे दीक्षित हो जाते है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करते है ।

स्थूल दृष्टि से रामायण में दो संप्रदाय दृष्टिगत होते है–एक तो विमल सूरि की परम्परा और दूसरी गुणभद्राचार्य की । साहित्यदृष्टि से आचार्य गुणभद्र की कथा की अपेक्षा विमल सूरि की कथा अनेक सुन्दर वर्णनो से युक्त है और अधिक चित्ताकर्षक है। अतएव गुणभद्र की कथा की अपेक्षा विमल सूरि की कथा कवियो में विशेषरूप से और लोक में सामान्यरूप से अधिक आदृत हुई । विमल सूरि के पद्मचरिय का संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य ने पद्म चरित नाम से ६६० ई० में किया ।

विमल सूरि की कथा में रावण का चरित्र उदात्त और उज्ज्वल अंकित किया गया है । इसमें रावण सौम्याकार, सौजन्य, दया, क्षमा, धर्मभीरुत्व, गाभीर्य आदि सद्गुणो से युक्त एक श्रेष्ठ पुरुष और महात्मा चित्रित किया गया है ।

विमल सूरि की परम्परा के अनुसार राम कथा का स्वरूप इस प्रकार का है—

राजा रत्नश्रवा और केकसी की चार संतान हुईं—रावण, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण । जब रत्नश्रवा ने प्रथम बार नन्हे पुत्र रावण को देखा तो उसके गले में एक माला पडी हुई थी। इस माला में बच्चे के दस सिर दिखाई दिये, इसलिए पिता ने उसका नाम दशानन या दशग्रीव रखा। विमलसूरि ने इन्द्र, यम, वरुण आदि को देवता न मान कर राजा माना है। हनुमान् ने रावण की ओर से वरुण के विरुद्ध युद्ध करके चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा से विवाह किया। खरदूषण किसी विद्याधरवंश का राजकुमार था (रावण का भाई नही) । उसका रावण की बहिन चन्द्रनखा से विवाह हुआ । इनके पुत्र का नाम शम्बूक था ।

पउमचरिय में बतलाया गया है कि राजा दशरथ की—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा नामक चार रानियो से क्रमश: राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।

राज जनक की विदेहा नामक रानी से एक पुत्री सीता और एक पुत्र भामंडल उत्पन्न हुआ। सीता-स्वयवर, कैकेयी का वर मांगना आदि प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही है किन्तु वनवास का अंश नितान्त भिन्न है ।

विमलसूरि के अनुसार सीताहरण का कारण, सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति के लिए तपस्या करते हुए शम्बूक का लक्ष्मण द्वारा भूल से मारा जाना था। शम्बूक शूद्र न होकर चन्द्रनखा तथा खरदूषण का पुत्र था । रावण यह समाचार सुन वहाँ पहुँचा और सीता को देखकर उस पर आसक्त हो गया । सीताहरण के समय लक्ष्मण

जंगल में थे और राम सीता के पास पर्णकुटी में। लक्ष्मण ने राम को बुलाने के लिये सिंहनाद का सकेत बताया था। रावण ने लक्ष्मण के समान सिंहनाद किया, जिसे लक्ष्मण का सिंहनाद समझकर राम व्याकुल हो सीता को जटायु की रक्षा में छोड़ वहाँ से चल पड़ा। पीछे से रावण ने सीताहरण कर लिया।

रामायण के युद्धकांड की घटनाए भी पउमचरिय मे कुछ परिवर्तित है। समुद्र एक राजा का नाम था, जिसके साथ नील ने घोर युद्ध किया और उसे हराया। जब लक्ष्मण को शक्ति लगी तो द्रोणमेघ की कन्या विशल्या की चिकित्सा से वह अच्छा हुआ और लक्ष्मण ने विशल्या के साथ विवाह कर लिया। अन्त में लक्ष्मण ने रावण का सहार किया।

अयोध्या में लौटकर राम अपनी आठ हजार और लक्ष्मण अपनी तेरह हजार पत्नियो के साथ राज्य करने लगे। लोकापवाद के कारण सीता-निर्वासन और सीता की अग्नि-परीक्षा का प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ही है। अग्नि-परीक्षा में सफल होकर सीता ने एक आर्यिका के पास जैनधर्म में दीक्षा ले ली और बाद में स्वर्ग को सिधारी।

एक दिन दो स्वर्गवासी देवो ने बलदेव और वासुदेव के प्रेम की परीक्षा के लिये लक्ष्मण को विश्वास दिलाया कि राम का देहान्त हो गया। इस से शोकाकुल होकर लक्ष्मण मर गये और अन्त मे नरक को सिधारे। लक्ष्मण की अन्त्येष्टि के पश्चात् राम ने जैनधर्म मे दीक्षा ले ली और साधना करके मोक्ष को प्राप्त किया।

गुणभद्र की परम्परा के अनुसार राम कथा का रूप निम्नलिखित है। वाराणसी के राजा दशरथ की सुबाला नामक रानी से राम, कैकयी से लक्ष्मण और बाद में साकेतपुरी में किसी अन्य रानी से भरत और शत्रुघ्न नामक पुत्र उत्पन्न हुए। गुणभद्र के अनुसार सीता, रावण की रानी मदोदरी की पुत्री थी। सीता को अमंगलकारिणी समझकर इन्होंने उसे एक मंजूषा में डलवाकर मारीच द्वारा मिथिला देश में गड़वा दिया। हल की नोक में उलझी वह मजूषा राजा जनक के पास ले जाई गई। जनक ने उसमें एक कन्या को देखा और उसका नाम सीता रख कर पुत्री की तरह पालन-पोषण किया। चिरकाल के पश्चात् राजा जनक ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को बुलाया। यज्ञ समाप्ति पर राम और सीता का विवाह हुआ। राम-लक्ष्मण दोनो दशरथ की आज्ञा से वाराणसी मे रहने लगे। कैकयी के हठ करने, राम को वनवास देने आदि का इस परम्परा मे कोई निर्देश नही। पंचवटी, दण्डक वन, जटायु, शूर्पणखा, खरदूषण आदि के प्रसगों का भी अभाव है।

राजा जनक ने रावण को अपने यज्ञ में निमन्त्रित नही किया था। इस पराभव से जल कर और नारद के मुख से सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर रावण ने, स्वर्ण मृग का रूप धारण किये हुए मारीच द्वारा, सीता का अपहरण कर लिया। सीताहरण के समय राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट वाटिका में विहार कर रहे थे।

गुणभद्र की कथा में हनुमान ने राम की सहायता की। लंका में जाकर सीता

को सात्वना दी। लंका दहन के प्रसग का निर्देश नही किया गया। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण का सिर काटा।

राम और लक्ष्मण दोनो अयोध्या लौटे। राम की आठ हज़ार और लक्ष्मण की सोलह हज़ार रानियो का उल्लेख किया गया है। लोकापवाद के कारण सीता-निर्वासन की इसमे चर्चा नही। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मर कर रावणवध के कारण, नरक को गये। इससे विक्षुब्ध होकर राम ने लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राज्य पद पर और सीता के पुत्र अजितजय को युवराज पद पर अभिषिक्त करके स्वयं जैन धर्म में दीक्षा ले ली और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की। सीता ने भी अनेक रानियो के साथ जैन धर्म मे दीक्षा ले ली और अन्त मे अच्युत स्वर्ग प्राप्त किया।

जैन-राम कथा मे कई असंभव घटनाओ को सभव रूप मे व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया हैं। इस मे वानर और राक्षस दोनो विद्याधर वश की भिन्न-भिन्न शाखाये मानी गई है। जैनियो के अनुसार विद्याधर मनुष्य ही माने गये हैं। उन्हें कामरूपत्व, आकाशगामिनी आदि अनेक विद्याये सिद्ध थी अतएव उनका नाम विद्याधर पड़ा। वानर वशी विद्याधरो की ध्वजाओं, महलों और छतो के शिखर पर वानरो के चिह्न हुआ करते थे, अतएव उन्हे वानर कहा जाता था।[1]

अपभ्रंश के कवियो ने इन्ही में से किसी परम्परा को लेकर राम कथा रची। स्वयभू ने विमलसूरि के पउम चरिय की और पुष्पदन्त ने गुणभद्र के उत्तर पुराण की परपरा का अपने पुराणो में अनुगमन किया है।

चरित ग्रथों मे किसी तीर्थंकर या महापुरुष के चरित्र का वर्णन मिलता है। जैसे जसहर चरिउ, पासणाह चरिउ, वड्ढमाण चरिउ, णेमिणाह चरिउ इत्यादि। उपरिनिर्दिष्ट ६३ महापुरुषो के अतिरिक्त भी अन्य धार्मिक पुरुषो के जीवन चरित से सबद्ध चरितग्रंथ लिखे गये। जैसे—पउम सिरी चरिउ, भविसयत्त चरिउ, सुदंसण चरिउ इत्यादि। इनके अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य मे अनेक कथात्मक ग्रथ भी मिलते हैं। अपभ्रंश-साहित्य के कवियो का लक्ष्य जनसाधारण के हृदय तक पहुँच कर उनको सदाचार की दृष्टि से ऊँचा उठाना था। जैनाचार्यों ने शिक्षित और पडित वर्ग के लिए ही न लिख कर अशिक्षित और साधारण वर्ग के लिए भी लिखा।[2] जनसाधारण को प्रभावित करने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ कर अच्छा और कोई साधन

---

१ के. भुजबली शास्त्री—जैन रामायण का रावण; जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६, किरण १, पृष्ठ १; नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७९; रेवरेंड फॉदर कामिल बुल्के—राम कथा, प्रकाशक हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रयाग, सन् १९५० ई०, पृष्ठ ६०-७१.

२ Maurice Winternitz, A History of Indian Culture, अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता विश्वविद्यालय, सन् १९३३, भाग २, पृ० ४७५

नही। यही कारण है कि पुराण, चरितादि सभी ग्रंथ अनेक कथाओ और अवान्तर कथाओ से ओतप्रोत है। धार्मिक विषय का प्रतिपादन भी कथाओ से समन्वित ग्रथो द्वारा किया गया है। श्रीचन्द्र का लिखा हुआ 'कथाकोष' अनेक धार्मिक और उपदेशप्रद कथाओ का भडार है। अमरकीर्ति रचित 'छक्कम्मोवएस' (षट् कर्मोपदेश) मे कवि ने गृहस्थों को देव-पूजा, गुरुसेवा, शास्त्राभ्यास, सयम, तप और दान इन षट्कर्मों के पालन का उपदेश अनेक सुन्दर कथाओ द्वारा दिया है। इस प्रकार के कथा ग्रथो के अतिरिक्त भविसयत्त कहा, पज्जुण्ह कहा, स्थूलिभद्र कथा आदि स्वतन्त्र कथा ग्रथ भी लिखे गये। कथाये किसी प्रसिद्ध पुरुष के चरित वर्णन के अतिरिक्त अनेक व्रतादि के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भी लिखी गई।

जैनियो के लिखे चरिउ ग्रंथों मे किसी महापुरुष का चरित अकित होता है। इन ग्रन्थो को कवियो ने रास नही कहा यद्यपि रास ग्रन्थो में भी चरित वर्णन मिलता है जैसे पृथ्वीराज रासो। ये चरिउ काव्य तथा कथात्मक ग्रन्थ प्राय. धर्म के आवरण से आवृत है। अधिकाश चरिउ काव्य प्रेमाख्यानक या प्रेमकथापरक काव्य है। इनमें वर्णित प्रेमकथाएँ या तो उस काल में प्रचलित थी या इन्हे प्रचलित कथाओं के आधार पर कवियो ने स्वयं अपनी कल्पना से एक नया रूप दे डाला। जो भी हो इन सुन्दर और सरस प्रेम कथाओ को उपदेश, नीति और धर्मतत्त्वों से मिश्रित कर कवियों ने धर्मकथा बना डाला। जैनाचार्यों द्वारा प्राकृत में लिखित 'समराइच्च कहा' और 'वसुदेव हिण्डि' जैसी आदर्श धर्म कथाओ की परम्परा इन अपभ्रश के चरित काव्यों में चलती हुई प्रतीत होती है। इन विविध चरित काव्यों में वर्णित प्रेम कथा में प्रेम का आरम्भ प्रायः समानरूप से ही होता है—गुण श्रवण से, चित्र दर्शन से या साक्षा-द्दर्शन से। इस प्रेम की परिणति विवाह में होती है।

नायक और नायिका के समिलन में कुछ प्रयत्न नायक की ओर से भी होता है। अनेक नायको को सिहल की यात्रा करनी पड़ती है और अनेक कष्ट भोगने पडते है। प्रेम कथा म प्रतिनायक की उपस्थिति भी अनेक चरित ग्रथों में मिलती है। प्रतिनायक की कल्पना नायक के चरित्र को उज्ज्वल करने के लिए ही की जाती है किन्तु अपभ्रश काव्यो मे प्रतिनायक का चरित्र पूर्ण रूप से विकसित हुआ नही दिखाई देता। नायक को नायिका की प्राप्ति के अनन्तर भी अनेक बार संकट भोगने पडते है। इसका कारण पूर्व जन्म के कर्मों का विपाक होता है।

इन सब चरित काव्यो में आश्चर्यतत्त्व अथवा चमत्कार बहुलता से दिखाई देते है।[1] विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, देव आदि समय-समय पर प्रकट होकर पात्रो की सहायता

---

१. कालि पाद मित्र—Magic and Miracle in Jain Literature, Jain Antiquary,
भाग ७, संख्या २, पृष्ठ ८८; भाग ८, संख्या १, पृष्ठ ९;
भाग ८, संख्या २, पृष्ठ ५७-६८।

करते रहते हैं। धर्म की विजय के लिए कवि ने इन्ही तत्त्वों का आश्रय लिया है। विद्याधर, देव आदि का समय पड़ने पर उपस्थित हो जाना सभवत: कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होता हो किन्तु इन चरित काव्यो मे उनकी उपस्थिति का सम्बन्ध पूर्व जन्म के कर्मों से बतलाकर उस अस्वाभाविकता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। तन्त्र-मन्त्र में विश्वास, मुनियों की वाणी मे श्रद्धा, स्वप्नफल और शकुनो मे विश्वास करने वाले व्यक्ति भी इन प्रबंध काव्यो मे दिखाई देते है।

अपभ्रश साहित्य मे धर्म-निरपेक्ष लौकिक-कथानक को लेकर लिखे गये प्रबन्ध-काव्यो की सख्या अति स्वल्प उपलब्ध हुई है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' में राजा के चरित का वर्णन है वह ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है। अब्दुल रहमान के सन्देश-रासक में एक विरहिणी का अपने प्रियतम के प्रति सन्देश है। यह सन्देश-काव्य ही पूर्ण रूप से लौकिक प्रबन्ध-काव्य है। इस प्रकार के अन्य प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये होंगे जिनका जैन भण्डारो के धार्मिक ग्रन्थ समुदाय के साथ प्रवेश न हो सका होगा और अतएव वे सुरक्षित न रह सके।

कथात्मक ग्रन्थो के अतिरिक्त अपभ्रश मे 'जीवन-करण सलाप कथा' नामक एक रूपक-काव्य भी लिखा गया। यह सौमप्रभाचार्य कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक प्राकृत ग्रंथ का अंश है। इसमें जीव, मन, इन्द्रियों आदि को पात्र का रूप देकर उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार हरिदेव कृत 'मदन पराजय' भी इसी प्रकार का एक रूपक-काव्य है। इसमें कवि ने काम, मोह, अहंकार, अज्ञान, रागद्वेष आदि भावो को पात्रो का रूप देकर प्रतीक रूपक-काव्य की रचना की है।

अपभ्रश साहित्य मे कुछ रासा ग्रथ भी उपलब्ध हुए है। 'पृथ्वीराज रासो', मूलरूप में जिसके अपभ्रश मे होने की कल्पना दृढ होती जा रही है, और 'सन्देश रासक', जो एक सन्देश काव्य है, को छोडकर प्राय. सभी उपलब्ध रासा ग्रथों का विषय धार्मिक ही है। जिनदत्तसूरि कृत 'उपदेशरसायन' रास मे धार्मिको के कृत्यों का उल्लेख किया है और गृहस्थों को सदुपदेश दिये है। इसके अतिरिक्त जिनप्रभरचित 'नेमि रास' और 'अन्त-रंगरास' नामक दो अन्य अपभ्रश रासग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त 'जंबू स्वामि रास', 'समरा रास', 'रेवंत गिरि रास' आदि कुछ प्राचीन गुजराती से प्रभा-वित अपभ्रंश रास भी लिखे गये। इन सब में राजयश के स्थान पर धार्मिकता का अंश है। रासा ग्रंथों में धार्मिक पुरुष के चरित वर्णन के अतिरिक्त गुरु स्तुति, धार्मिक उपदेश, व्रत दान सम्बन्धी कथाओ का उल्लेख भी मिलता है।

रासा ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य में कुछ स्तोत्र ग्रंथ भी मिलते हैं। इनमें किसी तीर्थंकर, पौराणिक पुरुष या गुरु की स्तुति मिलती है। अभयदेव सूरि-कृत जय तिहुयण स्तोत्र, ऋषभजिन स्तोत्र, धर्मसूरि स्तुति आदि इसी कोटि के ग्रंथ है। धर्मसूरि स्तुति मे कवि ने बारह मासों मे गुरु के नामों से स्तुति की है। अपभ्रंश के सन्धि ग्रंथ भी अनेक मिलें है। इनमें एक या दो सन्धियों मे किसी पौराणिक पुरुष या प्रसिद्ध पुरुष का चरित संक्षेप मे वर्णित है।

उपरिनिर्दिष्ट अपभ्रंश ग्रथों के अतिरिक्त चूनरी, चर्चरी, कुलक इत्यादि नामांकित कुछ अपभ्रश ग्रथ भी मिले है। विनयचन्द्र मुनि की लिखी चूनरी में लेखक ने धार्मिक भावनाओं और सदाचारो की रगी चूनरी ओढ़ने का उपदेश दिया है । जिनदत्त सूरि रचित चर्चरी में कृतिकार ने अपने गुरु का गुणगान किया है। सोलण कृत चर्चरिका-चर्चरी में भी स्तुति ही मिलती है । इसके अतिरिक्त चाचरि स्तुति और गुरु स्तुति चाचरि का उल्लेख भी पत्तन भंडार की ग्रथ सूची मे मिलता है । जिनदत्त सूरि कृत काल-स्वरूप कुलक में भी श्रावको-गृहस्थियो के लिए धर्मोपदेश दिये गये हैं । इसके अतिरिक्त भावनाकुलक, नवकार फल कुलक, पश्चात्ताप कुलक आदि कुलक ग्रंथों का निर्देश पत्तन भंडार की ग्रंथ सूची में मिलता है ।

ऊपर अपभ्रंश साहित्य के जिन ग्रंथो का निर्देश किया गया है वे सब अपभ्रंश के महाकाव्य, खंड काव्य और मुक्तक काव्य के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन ग्रंथो में अनेक काव्यात्मक सुन्दर स्थल मिलते है। महाकाव्य प्रतिपादित लक्षण इनमे भी न्यूनाधिक रूप मे पाये जाते है। किसी नायक के चरित का वर्णन, शृङ्गार, वीर, शान्तादि रसो का प्रतिपादन, सन्ध्या, रजनी, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन इत्यादि सब लक्षण इन काव्यों में मिलते हैं । इनमे धार्मिक तत्व के प्रतिपादन द्वारा यद्यपि काव्य पूर्ण रूप से परिस्फुटित नही हो सका तथापि ये सुन्दर काव्य हैं, इसमें कोई सन्देह नही। इन प्रबन्धकाव्यों में से कतिपय प्रबन्धकाव्यो में कवि ने नायक के चरित वर्णन के साथ-साथ उसके पूर्व जन्म की अनेक कथाओ और अवान्तर कथाओ का भी मिश्रण कर दिया है, जिससे उनके कथात्मक सम्बन्ध का भली प्रकार निर्वाह नही हो सका। इसी कारण प्रबन्ध-काव्य के वाह्यरूप संघठन में संस्कृत-प्राकृत प्रबन्ध-काव्यो की अपेक्षा कुछ शिथिलता आ गई है।

उपरिलिखित विषयों के अतिरिक्त अपभ्रंश में अनेक उपदेशात्मक ग्रथ भी मिलते हैं। इन ग्रंथो में काव्य की अपेक्षा धार्मिक उपदेश भावना प्रधान हैं । काव्य-रस गौण है धर्म-भाव प्रधान। इस प्रकार की उपदेशात्मक कृतिया अधिकतर जैन धर्म के उपदेशकों की ही लिखी हुई हैं। इनमें से कुछ मे आध्यात्मिक तत्व प्रधान है कुछ में आधिभौतिक उपदेश तत्व । प्रथम प्रकार की कृतियो मे आत्म-स्वरूप, आत्म-ज्ञान, संसारनश्वरता, विषयत्याग, वैराग्यभावना आदि का प्रतिपादन है। जैसे योगीन्दु का परमात्म प्रकाश और योग सार, मुनि रामसिंह का पाहुड दोहा, सुप्रभाचार्य का वैराग्य सार इत्यादि। दूसरे प्रकार की कृतियों में श्रावकोचित कर्त्तव्यों और धर्मों के पालन का विधान है। नैतिक और सदाचारमय जीवन को उन्नत करने वाले उपदेशों का प्रतिपादन है। इस प्रकार की रचनाओं में देवसेन का सावयधम्मदोहा, जिनदत्त सूरि के उपदेश रसायन रास और कालस्वरूप कुलक, जयदेव मुनि की भावना संधि प्रकरण और महेश्वर सूरि की संयममंजरी आदि रचनाओ का अन्तर्भाव किया जा सकता है।

जैन धर्म सम्बन्धी उपदेशात्मक रचनाओं के समान बौद्ध सिद्धों की भी कुछ फुटकर

रचनायें मिलती है जिनमें उन्होने वज्रयान या सहजयान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इनकी रचनाओ का संग्रह 'दोहा कोष' और 'बौद्ध गान औ दोहा', 'चर्यापद' आदि नामो से हुआ है। इन्होंने अधिकतर दोहो और भिन्न-भिन्न राग रागनियो मे ही लिखा। सिद्धो की रचनायें दो प्रकार की मिलती है कुछ मे सिद्धान्तो का प्रतिपादन है और कुछ मे ब्राह्मणो के कर्मकाण्ड का और प्राचीनरूढि का कटुता से खडन। रहस्यवाद, सहज मार्ग, गुरु महत्ता, मंत्र तंत्रादि खडन, काया तीर्थ, कर्म के बाह्यरूप का खंडन आदि इनकी कविता का मुख्य विषय था।

बौद्व सिद्धो की दोहात्मक और गानबद्ध रचनाओ के अतिरिक्त शैवमतानु-यायियों के शैव सिद्धान्त प्रतिपादक कुछ अपभ्रंश पद्य काश्मीर में लिखे संस्कृत और काश्मीरी भाषा के तन्त्र सार, लल्लावाक्यानि आदि कुछ ग्रन्थो में इतस्तत. विकीर्ण मिले है। जिनसे अपभ्रश के क्षेत्र के विस्तार पर प्रकाश पडता है।

धार्मिक कृतियो का भाषा की दृष्टि से उतना महत्व नही जितना भावधारा की दृष्टि से। इनकी रचनाओ मे भाषा का विचार गौण है और भावधारा विकास का विचार मुख्य है।

इन उपदेशात्मक धार्मिक कृतियो के अतिरिक्त इस प्रकार के फुटकर पद्य भी अन्य प्राकृत के ग्रन्थो मे इतस्तत. विकीर्ण मिलते है, जिनमें प्रेम, शृंगार, वीर आदि किसी भाव की तीव्रता से और सुन्दरता से व्यंजना मिलती है। इनमें से अनेक पद्य सुन्दर सुभाषित रूप में दिखाई देते है। इस प्रकार के मुक्तक पद्य व्याकरण के और छन्दो के ग्रन्थो मे उदाहरणस्वरूप भी पाये जाते है।

रस की दृष्टि से अपभ्रश काव्यो में हमें मुख्य रूप से शृंगार, वीर और शान्त का ही वर्णन मिलता है। सौन्दर्य वर्णन में शृंगार, पराक्रम और युद्ध के वर्णनों में वीर और ससार की असारता नश्वरता आदि के प्रतिपादन मे शात रस दृष्टिगोचर होता है। शृगार और वीर रसो के वर्णन होने पर भी प्रधानता शान्त रस की ही रखी गई है। जीवन में यौवन के सुखभोग तथा सुन्दरियो के साथ भोगविलास के प्रसगों द्वारा शृंगार रस की व्यंजना की गई है। जीवन के कर्म क्षेत्र में अवतरित होकर कर्म-भूमि में पराक्रम के प्रदर्शन द्वारा वीर रस की व्यजना मिलती है। जहा वीरता के प्रदर्शन से चमत्कृत नायिका आत्म समर्पण कर बैठती है, वहा वीर रस, शृंगार रस का सहायक होकर आता है। जहा झरोखे में बैठी सुन्दरी की कल्पना से नायक वीरता प्रदर्शन के लिए सग्रामभूमि में उतरता है, वहा शृंगार-रस वीर-रस का सहायक होकर आता है। दोनों रसों की कोई भी स्थिति हो—दोनो का पर्यवसान शान्त रस मे दिखाई देता है। जीवनकाल में राज्य प्राप्ति के उपरान्त, वीरता से शत्रुओं का उच्छेद कर, विषय सुख का उपभोग करते हुए अन्त में किसी मुनि के उपदेश-श्रवण द्वारा जीवन और ससार से विरक्त हो जाना, यही संक्षेप मे प्राय: सब काव्यो का कथानक है। इसी से इन काव्यों में शान्त रस अगी और शेष रस उसके अंग है।

संस्कृत महाकाव्यो की सर्गबद्ध शैली की तरह अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्य अनेक

सन्धियो मे विभक्त होते हैं। प्रत्येक सन्धि कुछ कडवको से मिलकर बनती है। कडवक की समाप्ति घत्ता से होती है। कही कही पर सन्धि के प्रारम्भ में दुवई या घत्ता भी मिलता है जिसमें सक्षेप से सन्धि का सार दिया होता है। प्रत्येक सन्धि मे कितने कडवक हो ऐसा कोई निश्चित नियम नही मिलता। कड़वक का मूलभाग पज्झटिका, पादाकुलक, वदनक, पाराणक, अलिल्लह आदि छदो से बनता है। कुछ महापुराण और पुराण ग्रथ का डो में भी विभक्त मिलते हैं। प्रत्येक काड कई सन्धियो से मिल कर बनता है।

कृति के आरम्भ में मगलाचरण मिलता है। सज्जन दुर्जन स्मरण, आत्म विनय आदि भी काव्य के आरम्भ में प्रदर्शित किये गये हैं।

अपभ्रश काव्यो मे हमें भाषा की दो धाराएं बहती हुई दिखाई देती हैं। एक तो प्राचीन संस्कृत-प्राकृत परिपाटी को लिये साहित्यिक भाषा है; जिसमें पदयोजना, अलंकार, शैली आदि प्राचीन अलंकृत शैली के अनुसार हैं। दूसरी धारा अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त और स्वछंद है। इसमें भाषा का चलता हुआ और सर्वसाधारण का बोलचाल वाला रूप मिलता है। कुछ कवियों ने एक धारा को अपनाया कुछ ने दूसरी को पसंद किया। पुष्पदंत जैसे प्रतिभाशाली कवियों की रचनाओं में दोनो धारायें बहती हुई दिखाई देती हैं।

अपभ्रंश कवियो की एक विशेषता यह रही है कि इन्होने रूढि का पालन न करते हुए प्रत्यक्ष अनुभूत और लौकिक जीवन से सबद्ध घटनाओ का वर्णन किया है। किमी दृश्य का वर्णन हो कवि की आँखो से यह लौकिक जीवन ओझल नही हो पाता। लौकिक जीवन की अनुभूति उसकी भाषा मे उसके भावो में और उसकी शैली में समान रूप से अभिव्यक्त हुई है। कवि चाहे स्वर्ग का वर्णन कर रहा हो, चाहे पर्वत के उत्तुग शिखर का, चाहे कान्तार प्रदेश का, वह मानव जीवन की—ग्राम्य जीवन की—घटनाओं को नही भूल पाता। यह प्रवृत्ति उसकी भाषा में मिलती है, उसके विषयवर्णन में मिलती है और उसकी अलकार योजना में मिलती है। अलंकारो मे अप्रस्तुत विधान के लिए कवि प्राचीन, परंपरागत उपमानो का प्रयोग न कर जीवन मे साक्षात् अनुभूत और दृश्यमान उपमानों का प्रयोग करता है।

अपभ्रंश भाषो में एक और प्रवृत्ति दिखाई देती है वह है ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग की। भावानुकूल शब्द योजना के लिए इस से अच्छा और कोई साधन नही हो सकता। अर्थ की व्यजना के लिए तदनुकूल ध्वनिसूचक शब्दो का प्रयोग उत्तर काल में जाकर मन्द हो गया।

भाषा को प्रभावमयी बनाने के लिए शब्दों की और शब्द-समूहों की आवृत्ति के अनेक उदाहरण अपभ्रंश काव्यों में मिलते हैं। इसी प्रकार भाषा में अनेक लोकोक्तियों और वाग्धाराओ का प्रयोग इन अपभ्रंश कवियों ने किया है। इनके प्रयोग से भाषा चलती हुई और आकर्षक हो गई है। खेद है कि खड़ी बोली हिन्दी ने अपभ्रश भाषा की इस प्रवृत्ति को न अपनाया। इन वाग्धाराओं के प्रयोग से भाषा सजीव और

सप्राण हो जाती है।

अपभ्रश काव्यो में अनेक छदो का प्रयोग यिलता है। सँस्कृत के वर्णवृत्तो की अपेक्षा मात्रिक छन्दो का अधिकता से प्रयोग पाया जाता है, किन्तु वर्णवृत्तो का पूर्णरूप से अभाव नही। सस्कृत के उन्ही वर्णवृत्तो को अपभ्रश कवियो ने ग्रहण किया है जिनमे एक विशेष प्रकार की गति इन्हे मिली। 'भुजग प्रयात' इन कवियो का प्रिय छन्द था। सस्कृत के वर्णवृत्तो मे भी इन्हो ने अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल परिवर्त्तन कर दिये। छन्दो मे अन्त्यानुप्रास अपभ्रश कवियो की विशेषता है। इस प्रकार छन्दों को गान और लय के अनुकूल बना लिया गया। पद्य की गेयता इस गुण से और भी अधिक बढ गई। सस्कृत के वर्णवृत्तो मे भी इस प्रकार के अन्त्यानुप्रास का प्रयोग इन कवियो ने किया। इतना ही नही कि यह अन्त्यानुप्रास प्रत्येक चरण के अन्त में मिलता हो किन्तु चरण के मध्य में भी इसका प्रयोग मिलत है। सस्कृत के वर्णवृत्तो के नियमानुसार चरण में जहाँ यति का विधान किया गया है वहा भी अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर उस छन्द को एक नया ही रूप दे डाला। छन्द का एक चरण, दो चरणो में परिवर्तित कर दिया।

इतना ही नही कि अपभ्र श कवियो ने एक ही छन्द में नवीनता उत्पन्न की, अनेक नवीन छन्दो की सृष्टि भी उन्होंने की। दो छदो को मिला कर अनेक नये छन्दो का निर्माण अपभ्रश काव्यो में मिलता है। छप्पय, कुंडलिक, चन्द्रायन, वस्तु या रड्डा, रासाकुल इत्यादि इसी प्रकार के छन्द है।

अपभ्रश काव्यो में प्राकृत के गाथा छन्द का भी प्रयोग कवियो ने किया है। अनेक गाथाओ की भाषा प्राकृत सस्कार के कारण प्राकृत से प्रभावित है।

अपभ्रश चरित काव्यो मे निम्नलिखित छन्दों का प्रयोग अधिकता से मिलता है—

पज्झटिका, पादाकुलक, अलिल्लह, घत्ता, अडिला, सिंहावलोक, रड्डा, प्लवंगम, भुजंग प्रयात, कामिनी मोहन, तोटक, दोधक, चौपाई इत्यादि।

पज्झटिका, अलिल्लह आदि छन्दो की कुछ पंक्तियो के अन्त में घत्ता रखने की पद्धति आगे चल कर जायसी, तुलसी आदि हिन्दी कवियो के काव्यो में परिस्फुट हुई।

अपभ्रश के मुक्तक काव्य मे दोहा छन्द का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है। योगीन्दु, रामसिंह, देवसेन आदि सभी उपदेशको ने दोहे ही लिखें है। सिद्धो ने भी दोहो में रचना की जिसके आधार पर उनके सग्रह का नाम दोहा कोष पडा।

अपभ्रश साहित्य अधिकाश धार्मिक आवरण से आवृत है। माला के तन्तु के समान सब प्रकार की रचनायें धर्मसूत्र से ग्रथित है। अपभ्रश कवियो का लक्ष्य था एक धर्म-प्रवण समाज की रचना। पुराण, चरिउ, कथात्मक कृतिया, रासादि सभी प्रकार की रचनाओ में वही भाव दृष्टिगत होता है। कोई प्रेम कथा हो चाहे साहसिक कथा, किसी का चरित हो चाहे कोई और विषय, सर्वत्र धर्मतत्व अनुस्यूत है। इस प्रवृत्ति के कारण कभी कभी इन ग्रंथो में एक प्रकार की एकरूपता और नीरसता दृष्टिगत होने लगती है। अपभ्रंश लेखको ने लौकिक जीवन एव गृहस्थ जीवन से सम्बद्ध कथानक

भी लिखे किन्तु वे भी इसी धार्मिक आवरण से आवृत है। भविसयत्त कहा, पउम-सिरि-चरिउ, सुदसण चरिउ, जिणदत्त चरिउ आदि इसी प्रकार के ग्रंथ हैं। मानो धर्म इनका प्राण था और धर्म ही इनकी आत्मा। इस प्रवृत्ति के होते हुए भी अपभ्रंश प्रबंध-काव्यों में नायको के बहुपत्नीत्व का चित्रण आज कुछ खटकता सा है।

राजशेखर (१०वी सदी) ने राज सभा में संस्कृत और प्राकृत कवियों के साथ अपभ्रंश कवियों के बैठने की योजना बताई है।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उस समय अपभ्रंश कविता भी राजसभा में आदृत होती थी। इसी प्रकरण में भिन्न भिन्न कवियो के बैठने की व्यवस्था बताते हुए राजशेखर ने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश कवियो के साथ बैठने वालो का भी निर्देश किया है। अपभ्रंश कवियो के साथ बैठने वाले चित्रकार, जौहरी, सुनार, बढई आदि समाज के मध्य कोटि के मनुष्य होते थे। इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर के समय संस्कृत कुल थोड़े से पण्डितों की भाषा थी। प्राकृत जानने वालों का क्षेत्र अपेक्षाकृत बडा था। अपभ्रंश जानने वालो का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत था और इस भाषा का सबध जन साधरण के साथ था। राजा के परिचारक वर्ग का 'अपभ्रंश भाषण प्रवण' होना भी इसी बात की ओर सकेत करता है।[2]

श्री मुनि जिन विजय जी द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' नामक ग्रंथ में स्थान स्थान पर अनेक अपभ्रंश पद्य मिलते हैं। इस ग्रंथ से प्रतीत होता है कि अनेक राजसभाओ मे अपभ्रंश का आदर चिरकाल तक बना रहा। राजा भोज या उनके पूर्ववर्त्ती राजा अपभ्रंश कविताओ का सम्मान ही नही करते थे, स्वयं भी अपभ्रंश में कविता लिखते थे। राजा भोज से पूर्व मुज की सुन्दर अपभ्रंश कविताएँ मिलती है। अपभ्रंश कविताओ की परपरा आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं के विकसित हो जाने पर भी चलती रही, जैसा कि विद्यापति की कीर्त्तिलता से स्पष्ट होता है।

अध्ययन के सुभीते के लिये अपभ्रंश साहित्य का विभाजन कर लेना उचित प्रतीत होता है। अतएव यहा कुछ उसका भी विचार कर लेना ठीक होगा। अधिकाश अपभ्रंश साहित्य की रचना विदर्भ, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मिथिला और मगध में हुई। विभिन्न प्रान्तो में प्राप्त अपभ्रंश साहित्य के आधार पर इस साहित्य का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रातो की दृष्टि से किया जा सकता है—

१. पश्चिमी प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य—

---

१. तस्य (राजासनस्य) चोत्तरतः सस्कृताः कवयो निविशेरन्।···
पूर्वेण प्राकृताः कवयः,···। पश्चिमेनापभ्रंशिनः कवयः
ततः पर चित्र लेप्यकृतो माणिक्य बन्धका वैकटिकाः स्वर्णकार-वर्द्धकि लोहकारा अन्येपि तथाविधाः। दक्षिणतो भूतभाषा कवयः, इत्यादि।
काव्य मीमांसा, अध्याय १०, पृ० ५४–५५

२. वही अध्याय १०, पृ० ५०

इसमें स्वयंभू, योगीन्दु, धनपाल, हेमचन्द्र, अब्दुलरहमान आदि लेखकों की कृतियो का अन्तर्भाव होगा।

२. महाराष्ट्र प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य—
इसमें पुष्पदन्त और मुनि कनकामर की कृतियो का अन्तर्भाव होगा।

३. पूर्वी प्रातो का अपभ्रंश साहित्य—
इसमें सिद्धो और विद्यापति की रचनाओं की परिगणना की जा सकती है।

४ उत्तरी प्रदेशों का अपभ्रंश साहित्य—
इसमे नाथ सप्रदाय वालो के अपभ्रंश पदों का समावेश किया जा सकता है।

धर्म या सम्प्रदाय की दृष्टि से भी अपभ्रंश साहित्य का वर्गीकरण किया जा सकता है। अधिकाश अपभ्रंश साहित्य जैनियो द्वारा ही रचा गया इसलिए इस सारे साहित्य का विभाजन दो भागो में किया जा सकता है—जैन अपभ्रंश-साहित्य और जैनेतर अपभ्रंश साहित्य। जैनेतर अपभ्रंश साहित्य मे जैन धर्म से भिन्न धर्मवालो द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य आ जाता है।

इस प्रकार जैनेतर अपभ्रंश साहित्य का भी निम्नलिखित तीन कोटियो में विभाजन किया जा सकता है—

१. ब्राह्मण्यो द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य,
२. बौद्धो द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य,
३. मुसलमानो द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य

तीसरा वर्गीकरण काव्य रूप की दृष्टि से किया जा सकता है। समस्त अपभ्रंश साहित्य को हम प्रबन्धात्मक काव्य और मुक्तक काव्य इन दो भागो में बाट सकते है। प्रबन्धात्मक अपभ्रंश साहित्य भी महाकाव्य और खड काव्य इन दो भागो में विभक्त किया जा सकता है।

इन तीनों प्रकार के वर्गीकरण में प्रदेश की दृष्टि से किया गया वर्गीकरण वैज्ञानिक नही कहा जा सकता। यदि एक प्रान्त का वासी लेखक दूसरे प्रान्त में जाकर रचना करता है तो उसकी रचना में पहले प्रान्त की विशेषताएं ही परिलक्षित होगी, यद्यपि वर्गीकरण की दृष्टि से उसकी रचना का अन्तर्भाव दूसरे प्रान्त में ही किया जायगा। धर्म की दृष्टि से किये गये वर्गीकरण में भिन्न-भिन्न धर्म या सप्रदाय वालों की विचारधारा का सरलता से अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा का अध्ययन करने वाले के लिए यह तीसरे प्रकार का वर्गीकरण ही अधिक संगत और उपयोगी सिद्ध होगा इसलिए इसी तीसरे प्रकार के वर्गीकरण के आधार पर आगामी अध्यायो में अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन का प्रयत्न किया गया है।

छठा अध्याय

अपभ्रंश महाकाव्य

संस्कृत में काव्यों के वर्णनीय विषय प्रायः रामायण, महाभारत या पुराणों से लिए गए। अधिकांश काव्य राम कथा, कृष्ण कथा या किसी पौराणिक कथा को लेकर लिखे गए। इन विषयो के अतिरिक्त इस प्रकार के काव्य गन्थ भी लिखे गये जिनमें किसी राजा के शौर्य या विजय का वर्णन हो या किसी राजा की प्रेम कथा का विस्तार हो। विक्रमांक देव चरित, कुमारपाल चरित और नव साहसांक चरित इसी प्रकार के काव्य हैं। बौद्ध और जैन कवियो ने अपने-अपने धर्म प्रवर्तकों और महापुरुषो के चरित वर्णन को भी काव्य का विषय बनाया। अश्वघोष रचित बुद्ध चरित, कनकदेव वादिराज कृत यशोधर चरित, हेमचन्द्र रचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित आदि इसी प्रकार के काव्य हैं।

प्राकृत में भी प्रबन्ध काव्यों का विकास कुछ तो संस्कृत के ढंग पर हुआ और कुछ स्वतन्त्र रूप से। अनेक कवियो ने सस्कृत के समान प्राकृत मे भी अपनी प्रबन्ध-चातुरी दिखाने का प्रयत्न किया। प्राकृत के भी अधिकांश काव्य राम और कृष्ण की कथा को लेकर ही रचे गये हे। प्रवरसेन का सेतुबन्ध या रावण वध, श्री कृष्णलीलाशुक का श्री चिह्न काव्य (सिरि चिंघ कव्व)[1] क्रमशः राम कथा और कृष्ण कथा पर लिखे गये प्राकृत काव्य हे। राम और कृष्ण की कथा के अतिरिक्त वाक्पतिराज का गौड वहो इन कथाओं से भिन्न एक राजा के जीवन को लेकर रचा गया। कौतूहल कृत लीलावती कथा[2] एक प्रेमाख्यान है।

शैली और काव्य रूप की दृष्टि से प्राकृत प्रबंध काव्यो में से कुछ तो ऐसे मिलते हे जिनमें संस्कृत की परंपरा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रबन्ध काव्य प्राकृत मे लिखे गये जिनका सस्कृत की परपरा से अलग होकर विकास हुआ। इनमें हमें सस्कृत-छंदो से भिन्न छद, एवं

---

१. डा० आ. नें. उपाध्ये—भारतीय विद्या, भाग ३, अंक १, १९४१ ई. पृष्ठ ६, संस्कृत के द्वयाश्रय काव्यों के समान कवि नें १२ सर्गो में गाथा छंद में श्री कृष्ण की लीला और त्रिविक्रम के प्राकृत सूत्रों की व्याख्या की है।

२. डा० आ० नें० उपाध्ये द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन, बम्बई से १९४९ ई. में प्रकाशित।

उपर्युक्त वर्ण्य विषयों से भिन्न ऐहलौकिक दृश्यो और घटनाओ के वर्णन उपलब्ध होते है। यह प्रवृत्ति प्राकृत के गाथा सप्तशती इत्यादि मुक्तक काव्यो में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अपभ्रंश के प्रबध काव्यो मे भी इस ऐहलौकिक प्रवृत्ति के दर्शन होते है।

अपभ्रंश काव्यो मे भी कवियो ने सस्कृत काव्यो की शैली, तदनुकूल काव्यरूप आदि का आश्रय लिया किन्तु यह सारा ढाचा शिथिल सा हो गया था। वर्णनीय विषयो की विविधरूपता के स्थान पर धार्मिक विचार धारा और धार्मिक पुरुषो के चरितो के वर्णन से उत्पन्न एकरूपता द्वारा कुछ नीरसता इन काव्यो में दृष्टिगत होने लग गई थी। अपभ्रश के अनेक "चरित" इस बात के प्रमाण है। वर्ण्य विषय में चाहे एकरूपता बनी रही किन्तु लौकिक भावना और दृश्यो का चित्रण अपभ्रंश काव्यो में नाना रूपो में हुआ। अब्दुलरहमान का संदेश रासक इसी प्रकार का एक प्रबधकाव्य है। सस्कृत काव्यों में भिन्न-भिन्न सर्गों मे, भिन्न-भिन्न छन्दो के विधान की जो प्रवृत्ति पाई जाती है वह प्राकृत काव्यो मे ही बहुत कुछ दूर हो गई थी। अपभ्रंश काव्यो में भी यही प्राकृत की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

अपभ्रंश साहित्य में अनेक ग्रंथ इस प्रकार के उपलब्ध होते है जिनमें घटनाओ और वर्णनो का वही रूप दृष्टिगोचर होता है जो सस्कृत और प्राकृत महाकाव्यों में था— किसी के जीवन की कथा का क्रमश. विस्तार, जीवन के अनेक पक्षो का दिग्दर्शन, प्राकृतिक दृश्यो के सरस वर्णन, प्रात.काल, सध्या, सूर्योदय आदि प्राकृतिक घटनाओं का सजीव रूप प्रदर्शन। इनके आधार पर इन सब ग्रथों को प्रबन्ध काव्य समझा जा सकता है। अपभ्रंश साहित्य के अनेक पुराण, चरितग्रथ, और कथात्मक कृतियां निस्संदेह उच्चकोटि के महाकाव्य कहे जा सकते है। विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में स्पष्ट उल्लेख किया है कि इन अपभ्रंश-महाकाव्यो में सर्ग को कुडवक कहते है।[1] इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि उस समय अपभ्रंश-महाकाव्य सस्कृत-महाकाव्यो के ढग पर ही लिखे जाते थे। अपभ्रंश काव्यो के अध्ययन से सिद्ध होता है कि दोनो के आधारभूत तत्व एक ही है यद्यपि उन तत्वो की अत्यधिक शिथिलता अपभ्रंश महाकाव्यो में दृष्टिगोचर होती है। महाकाव्य की आत्मा मे उच्छ्वास पूर्ववत् था किन्तु उसमें निर्बलता आ गई थी। महाकाव्य के शरीर का ढांचा वैसा ही था किन्तु उसका ओज और सौन्दर्य वैसा न रह गया था।

पहिले निर्देश किया जा चुका है कि इन प्रबन्ध काव्यो में सर्ग के लिए सन्धि का प्रयोग होता था जिसके लिये साहित्यदर्पणकार ने कुडवक का निर्देश किया है।

---

१. साहित्य दर्पण, निर्णय सागर प्रेस, सन् १९१५,

अपभ्रंश निबद्धे स्मिन्सर्गाः कुडवकाभिधाः।
तथापभ्रंश योग्यानि छदांसि विविधान्यपि ॥

६. ३२७

प्रत्येक सन्धि अनेक कडवकों से मिलकर बनती थी। प्रत्येक कडवक पज्झटिका आदि अनेक छन्दो से मिलकर बनता था जिसकी समाप्ति घत्ता से होती थी। सन्धि में कितने कडवक हो ऐसा कोई निश्चित नियम न था। सन्धि का आरम्भ ध्रुवक के रूप में घत्ता से होता था जिसमे सधि का सार सक्षेप से अभिव्यक्त होता था। कुछ महाकाव्य काडों मे विभक्त किये गये है। प्रत्येक कांड अनेक सधियो से मिल कर बनता है। काडो में विभाजन की यह शैली वाल्मीकि रामायण मे पाई जाती है और हिंदी में भी बनी दिखाई देती है यहा तक कि रामचरित मानस को भी सोपानों के साथ ही काडो में विभाजित करके देखा जाता है। साहित्य दर्पणकार के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अपभ्रश महाकाव्यो में संस्कृत और प्राकृत से स्वतन्त्र छंदों का प्रयोग भी प्रचुरता से आरम्भ हो गया था।

काव्य की रचना यदि किसी हृद्गत भाव की अभिव्यक्ति के लिए हो तो उसकी भावानुभूति में स्वाभाविकता और सुन्दरता का समावेश हो ही जाता है। काव्यरचना यदि प्रचार दृष्टि से हो तो उसमें वह तीव्रता और सुन्दरता स्पष्टतया अकित नहीं हो सकती। कलाकार—कलाप्रदर्शन, कला प्रचार, यश की प्राप्ति आदि भाव निरपेक्ष होकर, यदि हृदय की तीव्रानुभूति को तीव्रता से अभिव्यक्त करना ही अपना लक्ष्य समझता है तो उसकी कला में एक विशेष सौदर्य दिखाई देता है। जैनाचार्यों के ग्रंथों मे प्रचार भावना के कारण काव्यत्व कुछ दब सा गया है और काव्यत्व की मात्रा की अपेक्षा कथा-की मात्रा कुछ अधिक हो गई है।

जैनाचार्यों ने प्रचार दृष्टि से जिन ग्रथो की रचना की वे अधिकतर सर्वसाधारण अशिक्षित वर्ग के लिए थे। कुछ ग्रथ शिक्षित वर्ग को अपना मत स्वीकार कराने की दृष्टि से भी रचे गये किन्तु अधिकता प्रथम प्रकार के ग्रथो की ही है।

प्रबन्ध कव्यो का भेद करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विषय की दृष्टि से तीन प्रकार के प्रबन्ध काव्य बताये—वीर गाथात्मक, प्रेम गाथात्मक और जीवन गाथात्मक। उन्होंने प्रथम में पृथ्वीराज रासो आदि, द्वितीय में जायसी की पद्मावत आदि प्रेमाख्यानक काव्य, और तृतीय में रामचरित मानस आदि काव्यों का अन्तर्भाव किया है। अपभ्रंश में हमें चरिउ रूप में अनेक जीवनगाथात्मक काव्य मिलते है। इनमें किसी तीर्थ कर या महापुरुष का चरित्र वर्णित है। इन काव्यो में हमें जीवन के उन विविध पक्षों का वह विस्तार दृष्टिगोचर नही होता जो तुलसीदास ने राम के जीवन में अकित किया है।

अपभ्रश के चरितकाव्यों में कथा की मात्रा अधिक स्पष्ट है। अनेक चरित काव्य तो पद्यबद्ध उपन्यास कहे जा सकते है। आगे चलकर हिन्दी में जिस उपन्यास साहित्य का विकास हुआ उसका आभास इन चरित काव्यो में दिखाई पड़ता है। भिन्न-भिन्न चरितकाव्यो के कथानक को पढ़ कर यह कथन संभवतः अधिक स्पष्ट हो सके। प्राचीन काल में हस्तलिखित पुस्तको की असुविधा और कमी के कारण उस समय की प्रायः सभी रचनाए इस दृष्टि से की जाती थीं कि वे लोगों की स्मृति

में जीवित रह सकें। पद्य आसानी से कठस्थ किये जा सकते है अतएव प्राय दर्शन, धर्म, नीति, ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि सभी विषयो के ग्रथ पद्य मे लिखे गये। अपभ्रंश की अनके रचनाएँ भी इसी लिये पद्य में मिलती है। यदि अपभ्रंश रचनाओ के समय गद्य की वही सुविधा होती जो आजकल है तो संभवत हमे अनेक उपन्यास अपभ्रश गद्य में भी उपलब्ध हो सकते और आज का उपन्यास साहित्य अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध होता।

अपभ्रश महाकाव्य जितने भी उपलब्ध हो सके है सबके सब धार्मिक दृष्टि से लिखे गये प्रतीत होते है। यद्यपि महाकाव्यों का विषय धर्मभावनानिरपेक्ष ऐहिकता परक भी हो सकता है जैसा कि संस्कृत और प्राकृत के काव्यो में दिखाई देता है किन्तु अपभ्रश में इस प्रकार के महाकाव्य नही दिखाई देते। संभवत जैनेतर कवियों ने इस प्रकार के महाकाव्य रचे होगे किन्तु उनकी सुरक्षा न हो सकी। जैन भडारो में धार्मिक साहित्य ही प्रवेश पा सका और वही आजतक सुरक्षित रह सका। जो हो इस प्रकार के धार्मिक साहित्य को लेकर रचे गये महाकाव्यों की परपरा में कवि स्वयंभू सबसे पूर्व हमारे सामने आते है। स्वयंभू की रचनाओ में उनसे पूर्ववती कुछ कवियो के निर्देश मिलते है।[1] इनकी प्रौढ़ और परिपुष्ट रचना को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अपभ्रंश की यह प्राजल परपरा सहसा स्वयभू से प्रकट न होकर उनसे पूर्वकाल में उत्पन्न हुई होगी, जिसका विकास स्वयंभू की रचना मे आकर हुआ।

स्वयंभू की तीन कृतियां उपलब्ध है—

पउम चरिउ (पद्म चरित या रामायण), रिट्ठणेमि चरिउ (हरिवश पुराण) और स्वयंभू छन्द[2]। इन्होने पंचमी चरिउ भी लिखा जो अप्राप्त है।[3] किसी व्याकरण ग्रंथ की रचना भी इन्होंने की, ऐसा निर्देश मिलता है।[4]

---

१. चउमुहएवस्स सद्दो सयम्भुएवस्स मणहरा जीहा।
भद्दासय-गोग्गहण अज्जवि कइणो ण पावन्ति॥ पउम चरिउ
छवडिय दुवइ धुवएहि जडिय, चउमुहेण सम्मप्पिय पद्धडिय।
रिट्ठणेमि चरिउ

२. प्रो० एच० डी० वेलणकर ने ग्रन्थ का संपादन किया है। पहले तीन अध्याय रायल एशियाटिक सोसायटी बॉम्बे के जर्नल सन् १९३५ पृष्ठ १५-५८ में और शेष बॉम्बे युनिवर्सिटी जर्नल, जिल्द ५, संख्या ३, नवम्बर १९३६ में प्रकाशित हुए है।

३. पउम चरिउ की अन्तिम प्रशस्ति में निम्नलिखित पद्य मिलता है—
चउमुह-सयंभुएवाण वण्णियत्थं अचक्खमाणेण।
तिहुयण-सयंभु-रइयं पंचमि-चरियं महच्छरियं॥

४. तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भस-मच्च-मायगो।
जाव ण सयभु-वायरण-अंकुसो पडइ॥
सच्छंद्द-वियड-दाढो छंदालकार-णहर-दुप्पिच्छो।
वायरण-केसरड्ढो सयभु-पचाणणो जयउ॥ पउम चरिउ की प्रारम्भिक प्रशस्ति

स्वयभू की कृतियो मे कुछ उल्लेख ऐसे है जिनसे कवि के जीवन पर अच्छा प्रकाश पडता है। स्वयभू मारुत और पद्मिनी के पुत्र थे। स्थूलकाय, चौडी नाक वाले और विरल दातो वाले थे।[१] इनकी अमृताम्बा और आदित्याम्बा नामक दो पत्नियां थी।[२] त्रिभुवन इनके पुत्र थे और उन्होने स्वयभू की अधूरी कृतियों को पूरा किया और उनमें कुछ सन्धियाँ जोड़ी। स्वयभू ने पउम-चरिउ की रचना धनजय और हरिवंश पुराण की रचना धवल के आश्रय में की थी। त्रिभुवन ने स्वयंभू को छंदश्चूड़ामणि, कविराज चक्रवर्ती आदि कह कर सबोधित किया है किन्तु कवि अपने आपको सबसे बड़ा कुकवि मानता है।[३] स्वयंभू के ग्रन्थो से और इनकी प्रख्याति से सिद्ध होता है कि यह एक विद्वान् कवि थे। अपनी प्रतिभा और कवित्व शक्ति के कारण ही इन्होने कविराज चक्रवर्त्ती, छन्दश्चूड़ामणि आदि उपाधियां प्राप्त की। अपने दूसरे ग्रन्थ 'रिट्ठणेमि चरिउ' (१.२) में निर्दिष्ट कवियों और आलंकारिकों के प्रसग से ज्ञात होता है कि यह छद शास्त्र, अलकार शास्त्र, नाट्यशास्त्र सगीत, व्याकरण, काव्य, नाटकादि से पूर्ण अभिज्ञ थे। अपने 'स्वयंभू छन्दस्' मे दिये प्राकृत और अपभ्रश के लगभग ६० कवियों के उद्धरणो से सिद्ध होता है कि यह इन दोनों भाषाओं के पूर्ण पंडित थे। यही कारण है कि इनके परवर्त्ती प्रायः सभी कवियो ने इनका बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। पुष्पदन्त ने स्वयभू का उल्लेख किया है और स्वयंभू ने स्वय बाण, नागानन्दकार श्रीहर्ष, भामह, दंडी, रविषेणाचार्य की रामकथा (वि० सं० ७३४) का। अत. स्वयभू का समय ७०० वि० सं० के पश्चात् और पुष्पदन्त से पूर्व ही कभी माना जा सकता है।

पउम चरिउ

संपूर्णग्रंथ अभी तक प्रकाशित नही हो सका। इसके प्रथम तीन कांडों का डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी ने संपादन किया है और यह दो भागो में प्रकाशित भी हो गया है।[४] इस की एक हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार जयपुर में वर्तमान है।[५] जैनाचार्यो द्वारा संस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओं में पद्मचरित या राम चरित लिखा गया। सस्कृत मे रविषेणाचार्य लिखित पद्मपुराण और प्राकृत मे विमलसूरि कृत पउम चरिय।[६] इनमे रामायण कथा का रूप जैनधर्म के अनुसार है। कथा पूर्णरूप से ब्राह्मणो की कथा से मेल नही खाती। राम कथा का जैन रूप पउम

---

१. पउम. १. ३. अइतणुएण पईहरगतें, छिव्वरणासें पविरल वतें।

२. पउम. ४२ अन्त

३. बुह यण सयंभु पइ विन्नवइ। मइ सरिसउ अण्णु णत्थि कुकइ। पउम. १. ३

४. सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ, भारतीय विद्या भवन, बंबई, वि. सं. २००९.

५. प्रशस्ति संग्रह, वि. सं. २००६, पृ० २८२

६. डा० याकोबी द्वारा संपादित, जैन धर्म प्रजारक सभा भाव नगर से १९१४ ई०, में प्रकाशित।

चरिउ में उपलब्ध होता है।

पउम चरिउ पाँच काँडों में विभक्त है—विद्याधर काँड, अयोध्या काँड, सुन्दर-काँड, युद्ध काँड और उत्तर काँड। पहले कांड में २०, दूसरे में २२, तीसरे में १४, चौथे में २१ और पाचवें में १३। इस प्रकार कुल ९० सन्धियाँ हैं।[1] कवि राम-कथा वर्णन में प्राचीन रविषेण की कथा से प्रभावित हुआ है।[2]

विद्याधर कांड में सन्धि की समाप्ति कहीं केवल संख्या से सूचित की गई है और कहीं पर्व शब्द से।[3] पूरे कांड की समाप्ति पर कवि ने बीस संधियो के स्थान पर "बीसहिं आसासएहिं" लिख कर सन्धियो के लिये आश्वास शब्द का प्रयोग किया है।[4] विद्याधर कांड के पश्चात् अयोध्या कांड में कही कही सन्धि शब्द का उल्लेख मिलता है। अन्यथा संधि की समाप्ति केवल सख्या से ही कर दी गई है। इस के पश्चात् कहीं कही संधि के लिये सग्ग (सर्ग) शब्द का भी प्रयोग मिलता है। ग्रंथ की समाप्ति "णवतिमो सग्गो" से की गई है।

इस से प्रतीत होता है कि स्वयंभू के समय सर्गसमाप्ति सूचक 'सन्धि' शब्द अपभ्रंश काव्यों के लिये रूढ न हो पाया था। सस्कृत काव्यो के 'पर्व' और 'सर्ग' शब्दो के साथ साथ प्राकृत काव्यों के 'आश्वास' शब्द का प्रयोग भी 'संधि' के लिये चल रहा था।

प्रत्येक संधि की समाप्ति पर स्वयंभू ने 'सयंभुअवलेण', 'सयंभुंजंतउ' इत्यादि शब्दों द्वारा अपने नाम का उल्लेख किया है।

---

१. सिरि-विज्जाहर-कंडे संधीओ हुंति बीस परिमाणं।
उज्झा कंडम्मि तहा बावीस मुणेह गणणाए॥
चउदह सुन्दर कंडे एक्काहिय बीस जुज्झ कंडे य।
उत्तर कंडे तेरह संधीओ णवइ सव्वाउ॥छ॥
पउम चरिउ अन्तिम प्रशस्ति

२. पुंणु रविं सेणायरिय-पसाएं, बुद्धिए अवगाहिय कइराएं। प० च० १. २
१३वीं सन्धि की समाप्ति—

३. इय एत्थ पउम चरिए, धणंजयासिअ सयंभुएव कए,
कइलासुद्धरण मिणं तेरसमं साहिय पव्व॥
१८वीं सन्धि की समाप्ति—
इय राम चरिए धणंजयासिय सयंभुएव कए, पवणंजणा-विवाहो अट्ठारहमं इमं पव्वं॥

४. इय विज्जाहर कंडं, बीसहिं असासएहिं मे सिट्ठं।
एण्हि उज्झा कंडं, साहिज्जंतं निसामेह॥

ग्रन्थ का आरम्भ निम्नलिखित वन्दना से होता है—

घत्ता—जे काय वायमणे निछिरिया, जे काम कोहदुन्नय तिरिया।
ते एक्कमणेण सयंभुएण, वंदिय गुरु परमायरिय॥

इसके अनन्तर निम्नलिखित संस्कृत का मालिनी पद्य मिलता है—

भवति किल विनाशो दुर्मतेः संगताना—
मिति वदति जनो यं सर्वमेतद्धि मिथ्या।
उरगफणिमणीनां किं निमित्तेन राज—
न्न भवति विषदोषो निर्विषो वा भुजगः॥ १.१.

कवि ने राम कथा की सुन्दर नदी से तुलना की है और इसके लिये एक सुन्दर रूपक बांधा हैं।[1] इसके पश्चात् (१·३) कवि ने आत्म विनय और अज्ञता का प्रदर्शन करते हुए सज्जन दुर्जन स्मरण की परिपाटी का भी पालन किया हैं।

रामकथा का आरम्भ लोक प्रचलित कुछ शकाओं के समाधान के साथ होता है। मगध नरेश श्रेणिक जिनपर से प्रश्न करतें हैं।

जइ राम हो तिहुयणु उयरि माइ, तो रामणु कहिं तिय लेवि जाइ।
अण्णु विखरदूसण समरि देव, पहु जुज्झइ मुज्झइ भिच्चु केव॥
किह वाणर गिरिवर उव्वहंति, बंधिवि मयरहरु समुत्तरंति।
किह रावणु दहमुहु बीसहत्थु, अमराहिव भुव बंधण समत्थु॥ १.१०

अर्थात् यदि राम के उदर में तीनो भुवन है—वह इतने शक्तिशाली है तो कैसे रावण उनकी स्त्री को हर ले गया? कैसे वानरों ने पर्वतों को उठाया, समुद्र को बांध कर उसे पार किया? कैसे दशमुख और बीस हाथो वाला रावण अमराधिप इन्द्र को बाधने में समर्थ हुआ?

कथा के प्रधान पात्र सब जिन भक्त हैं। वर्णन की दृष्टि से काव्यानुरूप अनेक सुन्दर से सुन्दर वर्णन इसमें उपलब्ध होते हैं।

६ १ में कवि ने चौसठ सिंहासनों एव राजाओ का सस्कृत-शब्द-बहुल भाषा में वर्णन किया हैं। इसी प्रकार १६·२ में तीन शक्तियो, चार विद्याओं, संधि विग्रह यानादि और अठारह तीर्थादि का सस्कृत में विवेचन किया हैं। स्थान-स्थान पर सस्कृत पद्यो का भी प्रयोग मिलता है।

तावद्गर्ज्जंति तुंगाः करट पट?भाजान धौराद्रं गंडा
?? मातंग दंत क्षत गुरु गिरयो भग्न नाना द्रुमौघा (ः)।
लीलो द्धूतं लताग्रं निज युवति करैः सेव्यमाना यथेष्टं
यावन्नो कुंभि कुंभ स्थल दलन पटुः केसरी संप्रयाति॥ १७·१

महाकाव्य के अनुकूल अनेक ऋतुओ का वर्णन कवि ने किया है। पावस मे मेघो के

---

१. राम कहा सरि एह सोहंती प.च.१.२

प्रसार का वर्णन देखिये—

सीय स-लक्खणु दासरहि, तरुवर मूले परिट्ठिय जावेंहिं।
पसरइ सुकइहे कव्वु जिह, मेह जालु गयणंगणे तावेंहि॥

पसरइ जेम तिमिरु अण्णाण हो, पसरइ जेम बुद्धि बहु जाण हो।
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहो, पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहो।
पसरइ जेम जोन्ह मयवाहहो, पसरइ जेम कित्ति जगणाहहो।
पसरइ जेम चिंत धणहीणहो, पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहो।

× × ×

पसरइ जेम सद्दु सूतूरहो, पसरइ जेम रासि नह सूरहो।
पसरइ जेम दवग्गि वणंतरे, पसरइ मेह जालु तह अंबरे॥

प० च० २८.१

अर्थात् जैसे सुकवि का काव्य, अज्ञानी का अंधकार, ज्ञानी की बुद्धि, पापिष्ठ का पाप, धार्मिक का धर्म, चन्द्र की चन्द्रिका, राजा की कीर्त्ति, धनहीन की चिंता, सुकुलीन की कीर्त्ति, निर्धन का क्लेश और वन में दावाग्नि सहसा फैल जाती है इसी प्रकार मेघजाल आकाश में सहसा फैल गया।

उपमानो के द्वारा कवि ने क्रिया की तीव्रता अभिव्यक्त की है। उपमान ऐसे हैं जिनका जनसाधारण के साथ अत्यधिक परिचय है अतएव कविता सरल और प्रसाद गुण युक्त है।

महान् इन्द्र धनुष को हाथ में लेकर मेघरूपी गज पर सवार होकर पावस राज ने ग्रीष्म राज पर चढ़ाई कर दी। दोनो राजाओ के युद्ध का वर्णन देखिये—

धग धग धग धगंतु उद्धाइउ, हस हस हस हसंतु संपाइउ।
जल जल जल जलंतु पजलंतउ, जालावलि फुलिंग मेल्लंतउ।
धूमावलि धय दंडु झेप्पिणु, वरवाउलिखग्गु कड्ढेप्पिणु।
झड झड झड झडंतु पहरंतउ, तरुवर रिउ भड भज्जंतउ।
मेहमहागयघड विहडंतउ, ज उन्हालउ दिट्ठु भिडंतउ।

घत्ता

धणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि टंकार फार दरिसंते।
चोइवि जलहर हत्थि हड, णीर सरासणि मुक्क तुरंते।

प० च० २८. २.

पावसराज ने धनुष का आस्फालन किया, तडित्रूप में टंकार-ध्वनि प्रकट हुई, मेघ-गजघटा को प्रेरित किया और जलधारा रूप में सहसा बाण वर्षा कर दी। युद्ध के दृश्य की भयंकरता कवि ने अनुरणनात्मक शब्दो के प्रयोग से प्रकट की है।

पावसराज और ग्रीष्मराज के युद्ध में ग्रीष्मराज युद्ध भूमि मे मारा गया। पावस-राज के विजयोल्लास का वर्णन, उत्प्रेक्षालकार में कवि ने सुन्दरता से किया है—

दद्दुर रडेवि लग्ग णं सज्जण, ण णच्चन्ति मोर खल दुज्जण।
ण पूरंत सरिउ अक्कंदें, ण कइ किल किलन्ति आणंदें।
ण परहुय विमुक्कु उग्घोसें, ण विरहिण लवंति परिऊसें।
णं सरवर बहु अंसु जलोल्लिय, णं गिरिवर हरिसें गंज्जोल्लिय।
णं उण्हविय दवग्गि विऊएँ, ण णच्चिय महि विविह विणोए।
णं अत्थविउ दिवायर दुक्खें, णं पइसरिउ रयणि सइ सोक्खें।
रत्त पत्त-तरु-पवणाकंपिय, केण वि वहिउ गिंभुण जपिय।

प० च० २८. ३.

पावस में दादुरो का रटना, मोरो का नाचना, सरिताओ का उमड़ना, बदरों का किलकिलाना, पर्वतो का हर्ष से रोमांचित होना आदि तो सब स्वाभाविक और संगत है किन्तु कोकिल का बोलना कवि सप्रदाय के विरुद्ध है।

स्वयभू जलक्रीड़ा वर्णन में प्रसिद्ध है।[1] सहस्रार्जुन की जलक्रीड़ा का दृश्य निम्न-लिखित उद्धरण में देखिये—

अवरोप्परु जलकील करंतहु।
घण पाणिय पहयर मेल्लतहुं॥
कहि मि चंद कुंदुज्जल तारेंहि।
धवलिउ जलु दुद्धतिहि हारेंहि॥
कहि मि रसिउ णेउरहिं रसतिहिं।
कहि मि फुरिउ कुंडलहि फुरंतहि॥
कहि मि सरस तंबोलारत्तउ।
कहि मि बउल कायंबरि मत्तउ॥
कहि मि फलिह कप्पुरेंहि वासिउ।
कहि मि सुरहि मिग मय वामीसिउ॥
कहि मि विविह मणि रयणु जलियउ।
कहि मि धोय कज्जल सवलियउ॥
कहि मि बहल कुंकुम पंजरिअउ।
कहि मि मलय चंदण रस भरिअउ॥
कहि मि जक्ख कद्दमेण करबिउ।
कहि मि भमर रिंछोलिहिं चुंबिउ॥

---

१. जल-कीलाए सयंभू चउमुह पवग गोग्गह कहाए।
भद्दं च मच्छ वेहें अज्ज वि कइणो ण पावंति॥

घत्ता ।

विद्दुम मरगय, इंदणील सय, चामियर हार सघायहिं ।
बहु वण्णुज्जलु, णावइ णहयलु सुरधणु घण विज्ज बलायहिं ।।
१४·६

अर्थात् परस्पर जल क्रीडा करते हुए और सघन जल बिन्दुओ को एक दूसरे पर फेंकते हुए राजा और रानियो के चद्र और कुंद के समान शुभ्र और उज्ज्वल टूटते हारो से कही जल धवल हो गया, कही शब्दायमान नूपुरो से शब्दयुक्त हो गया, कही चमकते कुण्डलो से चमकीला, कही सरस ताम्बूल से आरक्त, कही बकुल मदिरा से मत्त, कही स्फटिक शुभ्र कर्पूर से सुवासित, कही कस्तूरी से व्यामिश्रित, कही विविध मणि रत्नो से उज्ज्वल, कही धौत (धुले) कज्जल से सवलित, कही अत्यधिक केसर से पिंजरित, कही मलय चन्दन रस से भरित, कही यक्ष-कर्दम से कर्बुरित और कही भ्रमरावलि से चुंबित हो उठा। सैकडों विद्रुम, मरकत इन्द्रनील मणियों और सुवर्णहार समूहों से जल इस प्रकार बहु वर्ण रजित हो गया जैसे इन्द्र धनुष, विदयुत् और सघन बादलो से आकाश विविध राग रंजित हो जाता है ।

एक ही प्रकार के शब्दो की पुनरावृत्ति चारणों में अत्यधिक प्रचलित थी । वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काड में पपा सरोवर के वर्णन में और रघुवश में प्रयाग के गंगा यमुना सगम में (१३. ५४-५७) इस शैली का अंश परिलक्षित होता है ।

इसी प्रकार वसत वर्णन (७१ १-२), सन्ध्या वर्णन (७२ ३) समुद्र वर्णन (२७. ५, ६९ २-३), गोला नदी वर्णन (३१.३), वन वर्णन (३६ १), युद्ध वर्णन (५६. ४, ५३ ६-८, ६३ ३-४, ७४. ८-११) आदि काव्योपयुक्त प्रसग बड़ी सुन्दरता से कवि ने अकित किये है ।

पउम चरिउ में घटना बाहुल्य के साथ-साथ काव्य प्राचुर्य भी दृष्टिगत होता है । घटना और काव्यत्व दोनो की प्रचुरता इसमें विद्यमान है । घटना की प्रचुरता तो विषय के कारण स्पस्ट ही है काव्यत्व की प्रचुरता भी उपरि निर्दिष्ट स्थलो में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

रस—

रस की दृष्टि से पउम चरिउ में हमें वीर, शृंगार, करुण और शान्त रस ही मुख्य रूप से दिखाई देते हैं। वीर रस के साथ साथ शृंगार रस की अभिव्यक्ति वीर रसात्मक काव्यो में दृष्टिगत हो ही जाती है। अपभ्रंश के काव्यो में तो यह प्रवृत्ति प्रचुरता से परिलक्षित होती है । किसी सुन्दरी को देखकर, उस पर रीझ कर उसके लिए प्राणो की बाजी लगा देना या इस कल्पना से ही कि हमारी वीरता को देखकर अमुक सुन्दरी मुग्ध हो जायगी, युद्ध क्षेत्र में अपने प्राणो की परवाह न करना—स्वाभाविक ही है। जैन अपभ्रंश परपरा में धार्मिक भावना विरहित काव्य की कल्पना नही की जा सकती। अतएव संसार की अनित्यता, जीवन की क्षणभगुरता और दुःख बहुलता दिखाकर विराग उत्पन्न कराना—शान्त रस में काव्य एव जीवन का पर्यवसान ही कवि को अभीष्ट था। वीरता के साथ युद्ध क्षेत्र में प्रणयीजन के विनाश से करुण रस की उत्पत्ति स्वाभाविक सी हो जाती है। इनके अतिरिक्त अन्य रस भी स्थल-स्थल पर परिलक्षित होते हैं। उदाहरण के लिए वीर रस देखिए—

युद्ध के लिए प्रस्तुत सैनिकों के उत्साह का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

केवि जस लुद्ध । सण्णद्ध कोह । केवि सुमित्त-पुत्त ।
सुकलत्त-चत्त-मोह ।
के वि णीसरंति वीर । भूधरव्व तुंग धीर ।
सायरव्व अप्पमाण । कुजरव्व दिण्णदाण ।
केसरिव्व उद्धकेस । चत्त सव्व-जीवियास ।
के वि सामि-भत्ति-वंत । मच्छरग्गि-पज्जलंत ।
के वि आहवे अभग । कुंकुमं पसाहिं-अंग ।

प० च० ५९, २.

छंद का प्रयोग भी कवि ने इस कुशलता से किया है कि पढ़ते ही सैनिकों के प्रयाण की पग-ध्वनि कानो में गूंजने लगती है। शब्द योजना से ही सैनिकों का उत्साह अभिव्यक्त होता है।

करुण रस की अभिव्यक्ति युद्ध स्थल में अनेक उद्धरणों द्वारा कवि ने की है। लक्ष्मण के लिए अयोध्या में अन्त पुर की स्त्रियां विलाप करती हैं—

दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ । णं चप्पिवि चप्पिवि भरिउ सोउ ।
रोवइ भिच्च-यणु समुद्द-हत्थु । णं कमल-संडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्केक्कय वाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।

घत्ता— रोवंतिए लक्खण-मायरिए, सयल लोउ रोवावियउ ।।
कारुण्णइ कव्व कहाए जिह, कोय ण अंसु मुआवियउ ।।

प० च० ६९. १३.

अर्थात् दु:खाकुल सब लोग रोने लगे। दबा-दबा कर मानो सर्वत्र शोक भर दिया हो। भृत्यगण हाथ उठा-उठा कर रोने लगे मानो कमलवन हिम-पवन से विक्षिप्त हो उठा हो। राम माता एक सामान्य नारी के समान रोने लगी। सुन्दरी ऊर्मिला हतप्रभ हो रोने लगी। सुमित्रा व्याकुल हो उठी। रोती हुई सुमित्रा ने सब जनो को रुला दिया—कारुण्य-पूर्ण काव्य-कथा से किसके आसू नही आ जाते ?

रावण के लिए मन्दोदरी का विलाप भी इसी प्रकार करुण-रस-परिपूरित है। मन्दोदरी विलाप करती हुई विगत शृंगारिक घटनाओ का स्मरण कर और भी अधिक व्याकुल हो जाती है (प० च० ७६. १०)। यह भावना कुमारसभव में काम के लिए विलाप करती हुई रति का स्मरण करा देती है।

इसी प्रकार अजना सुन्दरी के लिये विलाप करते हुए पवनजय के कारुण्य-व्यजन में भी कवि कालिदास से प्रभावित हुआ प्रतीत होता है। निम्नलिखित वर्णन कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में उर्वशी के लिये विलाप करते हुए पुरूरवस् का स्मरण करा देता है—

पवणंजय वि पडिवक्ख खउ,　　काणणु पइसरइ विसायरउ।
पुच्छइ अहो सरोवर दिट्ठ धण,　　रत्तुप्पल दल कोमल चलण।
अहो रायहंस हंसाहिवइ,　　कहि कहिमि दिट्ठ जइ हंसगइ।
अहो दीहर णहर मयाहिवइ,　　कहि कहिमि] णियंविणि दिट्ठ जइ।
अहो कुंभि कुंभ सारिच्छथण,　　किसहे वि दिट्ठ सइ मुद्धमण।
अहो अहो असोय पल्लव व पाणि,　　कहिं गय परहुय परहुयवाणि।
अहो चंद चंद चंदाणणिय,　　मिग कहिंमि दिट्ठ मिग लोयणिय।
अहो सिहि कलाव सण्णिह चिहुर,　　ण णिहालिय कहिंमि विरहविहुर।

प० च० १९. १३.

लक्ष्मण के लिए विलाप करते हुए राम का दृश्य भी करुणापूर्ण है। राम सब प्रकार के कष्टों को सहने के लिए तत्पर है किन्तु भ्रातृ वियोग उनके लिए असह्य है—

घत्ता—वरि दंति दंते मुसलग्गेहिं, विणिभिन्दाविउ अप्पणउ।
वरि णरय दुक्खु आयामिउ, णउ विओउ भाइहिं तणउ॥

प० च० ६७. ४.

लक्ष्मण के आहत हो जाने पर भरत भी अत्यधिक व्याकुल है। उनकी दृष्टि में भर्तृ विरहिता नारी के समान आज पृथ्वी अनाथ हो गई—

घत्ता—हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि॥

जैन कवियों का धार्मिक उपदेश तो प्राय सभी ग्रथों में पाया जाता है। संसार को तुच्छ, नश्वर और दु:ख-बहुल बतला कर, शरीर की क्षण-भगुरता का प्रतिपादन कर, संसार के मिथ्यात्व का उपदेश देते हुए इन्होंने उसके प्रति विरक्ति पैदा करने का प्रयत्न

किया है। ऐसे निर्वेद भाव के स्थलों मे ही पउम चरिउ के कवि ने शान्त रस अभिव्यक्त किया है। उदाहरणार्थ—

"विरहाणल - जाल - पलित्त - तणु, चिंतेवए लग्गु विसण्णमणुं।
सच्चउ संसारि ण अत्थि सुहु, सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु।
सच्चउ जर-जम्मण-भउ, सच्चउ जीविउ जलबिंदु सउ।
कहो घरु कहो परियणु बंधु जणु, कहो माय बप्पु कहो सुहि-सयणु।
कहो पुत्तु-मित्तु कहो किर घरिणि, कहो भाय सहोयरु कहो बहिणि।
फलु जाव ताव बंधव सयण, आवासिय पायवि जिह सउण।"

प० च० ३९. ११

अर्थात् विरहानल-ज्वाला से ज्वलित और विषाद युक्त मन वाले राम इस प्रकार सोचने लगे—सत्य ही संसार में कही सुख नही, सच है कि मेरु पर्वत के समान अपरिमित दुःख है। सच ही जरा जन्म मरण का भय लगा रहता है और जीवन जल-विन्दु के समान है। कहाँ घर, कहाँ परिजन, बंधु बाधव, कहाँ माता पिता, कहाँ हितैषी स्वजन ? कहाँ पुत्र मित्र, कहाँ गृहिणी, कहाँ सहोदर, कहाँ बहिन ? जब तक संपत्ति है तभी तक बंधु स्वजन है। ये सब वृक्ष पर पक्षियो के वास के समान अस्थिर है।

इसी प्रकार २२·५ में भी शान्त रस की अभिव्यक्ति कवि ने की है।

शृंगार रस में कवि ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए परंपरागत उपमानों का प्रयोग किया है—

थिर कलहंस-गमण गइ-मंथर। किस मज्झारे णियंबे सुवित्थर।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी। णं पिंपिलि-रिंछोलि विलिण्णी।
. . . .
रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ। णं माणस-सर विअसिउ पंकउ।
. . . .
घोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि। चंदण लयहिं ललइ णं णायणि।

घत्ता—
किं बहु जंपिएण तिहिं भुयणिहिं जं जं चंगउ।
तं तं मेलवेवि णं, दइवें णिम्मिउ अंगउ॥

प० च० ३८. ३

उपर्युक्त वर्णन में कलहंसगमना, कृशमध्या, विशालनितंबा आदि विशेषण परपरा-भुक्त हैं। मुख को कमल से, पीठ पर लहराती वेणी को चंदनलता पर लिपटी नागिनी से उपमा देकर जहाँ परपरा का पालन किया है वहाँ रोमावलि की पिपीलिका पंक्ति से उपमा देकर कवि ने लौकिक निरीक्षण-पटुता का भी परिचय दिया है। इन सब विशेषणो से सीता के स्थूल अंगो का चित्र ही हमारी आखो के सामने खिचने लगता है, उसके आन्तरिक सौन्दर्य का कुछ आभास नही मिलता। अन्तिम घत्ता मे कालिदास के शकुन्तला वर्णन का आभास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

चित्ते निवेश्य परिकल्पित सर्व योगान्
रूपोच्चयेन विधिना विहिता कृशांगी।
अभिज्ञान शाकुन्तल २. १०

किन्तु कालिदास की शकुन्तला विधाता का मानसिक चित्र है और स्वयंभू की सीता का निर्माण दैव ने तीनो लोको की उत्कृष्ट वस्तुओ को लेकर किया। यह सीता का चित्र लौकिक ही है अतएव मानसिक चित्र की समता नही कर सकता।

प्रकृति वर्णन—कवि ने अनेक प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन किया है जिसका निदेश ऊपर किया जा चुका है। प्रकृति वर्णन की एक परिपाटी सी चल पड़ी थी और प्रकृति-वर्णन महाकाव्य का एक अंग बन गया था।

स्वयंभू का प्रकृति वर्णन प्राचीन परपरा को लिये हुए है। इसका निर्देश ऊपर पावस वर्णन के प्रसंग में किया जा चुका है। कवि ने अलकारों के प्रयोग के लिए भी प्रकृति का वर्णन किया है—

णव-फल-परिपक्ककाणणे काणणे। कुसुमिय साहारए साहारए।

इसी प्रकार मगध देश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जहि सुय-पतिउ सुपरिट्ठिआउ। ण वणसिरि-मरगय-कंठियाउ।
जहिं उच्छु-वणइं पवणाहयाइं। कंपति व पीलणभय गयाइं।
जहिं णंदण-वणइं मणोहराइं। णच्चति व चल-पल्लव-कराइं।
जहिं फाडिय-वयणइं दाडिमाइं। नज्जति ताइं न कइ-मुहाइं।
जहिं महुयर-पतिउ सु दराउ। केयइ-केसर-रय-धूसराउ।
जहिं दक्खा-मडव परियलति। पुणु पथिय रस-सलिलइं पियन्ति।[1]
प० च० १. ४

अर्थात् जहाँ वृक्षो पर बैठी शुक-पक्ति वनश्री के कठ में मरकतमाला के समान प्रतीत होती है। जहा पवन से प्रेरित इक्षु वन काटे जाने के भय से भीत हो मानो काँप रहे है। जहाँ चंचल पल्लव रूपी करो वाले मनोहर नन्दन वन मानो नाच रहे है। प्रस्फुटवदन वाले दाडिम फल बन्दर के मुखो के समान दिखाई देते हैं। जहाँ सुन्दर भ्रमरपक्ति केतकी केसर रज से धूसरित है। जहाँ द्राक्षामडप के हिलने से पथिक मधुर रस रूपी सलिल का पान कर रहे है।

इस प्रकार के वर्णन मे अलंकार प्रियता के साथ-साथ कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और परंपरा से ऊपर उठ कर लोक दर्शन की भावना भी अभिव्यक्त हो रही है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन न कर आलबनात्मक रूप में कवि ने वर्णन किया है।

समुद्र का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

घत्ता—गण-गमणेंहि गयणि पयट्टेहि, लक्खिउ-लवण समुद्द किह।

---

१. आमेर शास्त्र भंडार जयपुर की हस्त लिखित प्रति में संयुक्त अक्षरों के बीच में 'हंश' नहीं। अर्थ सुविधा के लिये यत्र तत्र लगा दिये गये हैं।

नहि-मंडयहो णहयल-रक्खसेण, फाडिउ जठर-पयेसु जिह ॥

अर्थात् समुद्र क्या है मानो नभतल राक्षस ने महिमंडल के जठर प्रदेश को फाड़ दिया हो। फटे हुए जठर प्रदेश मे रक्त के बहने से एक तो समुद्र का रग रक्तवर्ण होना चाहिए दूसरे इस उपमा से समुद्र की भयकरता का भाव उतना व्यक्त नही होता जितना जुगुप्सा का भाव। इसी प्रकरण मे कवि ने श्लेष से समुद्र की तुलना कुछ ऐसे पदार्थो से की है जिनमे शब्द-साम्य के अतिरिक्त और कोई साम्य नही। इस प्रकार के प्रयोग बाण की कादम्बरी में प्रचुरता से उपलब्ध होते है।

उदाहरण के लिए—

सुहड-पुरिसोव्व सलो-णसीलु।.......

दुज्जण पुरिसोव्व सहाव-खारु।

णिद्धण आलाउव अप्पमाण। जोइसुव मीण-कक्कडय-थाणु।

महकव्व-णिबन्धुव सद्द-गहिरु। इत्यादि

प० च० ४९. ३

अर्थात् समुद्र सत्कुलोत्पन्न पुरुष के समान है क्योंकि दोनों सलोणशील है अर्थात् समुद्र सलवणशील और सत्कुलोत्पन्न पुरुष सलावण्यशील। इसी प्रकार समुद्र दुर्जन पुरुष के समान स्वभाव से क्षार हैं। निर्धन के आलाप के समान अप्रमाण है। ज्योतिमंडल के समान मीन कर्कट निधान है। महाकाव्य निर्बन्ध के समान शब्द गभीर है।

कवि प्रकृति के शान्त रूप की अपेक्षा उसके उग्ररूप का वर्णन करने मे अधिक रुचि दिखाता है। भवभूति के समान धीमे-धीमे कल-कल ध्वनि से बहती हुई नदी की अपेक्षा प्रचड वेग से उत्तंग तरगावाली युक्त गरजती हुई नदी कवि को अधिक आकर्षित करती है।[1] कवि का गोदावरी नदी वर्णन देखिए—

थोवंतरे मच्छुत्थल्लदिंति। गोला णइ दिट्ठ समुव्वहंति।
सुंसुयर घोरघुरु-घुरु-हुरंति। करि-मय-रुड्डोहिय डुहु-डुहंति।
डिंडीर-सड-मडलिय दिंति। डेडयर-रडिय डुरु-डुरु-डुरति।
कल्लोलुल्लोलहिं उव्वहति। उग्घोस–घोस–घव–घव–घवति।
पडि खलण-वलण खल-खल-खलंति। खल-खलिय खडक्क झडक्क दिंति।
ससि-संख-कुंद-धवलो झरेण। कारडुड्डाविय डवरेण।

---

१. एते ते कुहरेषु गद्गद नदद्गोदावरी वारयो
मेघा लम्बित मौलि नील शिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः।
अन्योन्य प्रतिघात संकुल चलत् कल्लोल कोलाहलै–
रुत्तालास्त इमे गभीर पयसः पुण्याः सरित्संगमाः ॥ ॥

उत्तर राम चरित, २. ३०

घत्ता—फेणावलि वंकिय, वलयालंकिय, णं महि कुल बहुय हेतणिय ।
जलनिहि भत्तारहो, मोत्तिय-हारहो, बाह पसारिय दाहिणिय ।।

प० च० ३१. ३.

भाषा अनुप्रासमयी है । भावानुकूल शब्द योजना है । शब्दो की ध्वनि नदी-प्रवाह को अभिव्यक्त करती है । घत्ता में बडी सुन्दर कल्पना है ।

प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते हुए उनकी भिन्न-भिन्न दृश्यो या घटनाओ से तुलना करना या प्रकृति को उपमेय मान कर उसके अन्य उपमानों के प्रयोग की प्रणाली भी कवि ने अपनाई है । वन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है :—

कत्थ वि उड्डाविय सउण-सया, णं अडविहे उड्डे विणंणगया ।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे, णावइ णट्टावा जुयइ-जणे ।
कत्थइ हरिणइ भय-भी याइ, ससारहो जिह पावइ याइं ।
कत्थवि णाणाविह रुकख राइ, ण महि कुल बहुअहि रोम राइं ।

प० च० ३६. १

सागरा मिमुख प्रवाहित होती हुई नर्मदा का अलकृत वर्णन निम्नलिखित उद्धरण में देखिये—

णम्मयाइ मयर-हरहो जंतिए, णाइ पसाहण लइउ तुरंतिए ।
घव घवंति जे जल पब्भारा, ते जि णाइ णेउर-झंकारा ।
पुलिणइ बे वि जासु सच्छायइ, ताइ जि ऊडणाइ णं जायइ ।
जं जलु खलइ बलइ उल्लोलइ, रसणा दाम भंति णं घोलइ ।
जे आवत्त समुट्ठिय चगा, ते जि णाइ तणु तिवलि तरगा ।
जे जल हत्थि सयल कुंभिल्ला, ते जि णाइ थण अध्धुम्मिल्ला ।
जे डिंडीर णियरु अंदोलइ, णावइ सो जि हारु रखोलइ ।
जं जलयर रण रगिउ पाणिउ, त जि णाइ तमोलु सवाणिउ ।
मत्त हत्थि मय मइलिउ ज जलु, त जिणाइ किउ अक्खिहु कज्जलु ।
जाउ तरंगिणीउ अवर उहउ, ताइ जि भंगुराउ णं भउहउ ।
जाउ भमर पंतिउ अल्लीणउ, केसावलिउ ताउ णं विणणउ ।।

१४. ३

इस कडवक में कवि ने नदी का प्रियतम से मिलन के लिये जाती हुई साज सज्जा युक्त एक स्त्री के रूप मे वर्णन किया है ।

अर्थात् नर्मदा के शब्द करते हुए जल प्रवाह नूपुर झंकार के सदृश हे, दोनो सुन्दर पुलिन उपरितन वस्त्र के सदृश हे, स्खलित और उच्छलित जल रशनादाम की भ्रान्ति को उत्पन्न करता है, उसके आवर्त्त शरीर की त्रिवलि के समान हैं, उसमे जल हस्तियो के सजल गण्डस्थल अर्धोन्मीलित स्तनो के समान है, आदोलित फेनपुज लहराते हार के समान प्रतीत होता है,""इत्यादि ।

भाषा—भाषा की दृष्टि से कवि ने साहित्यिक अपभ्रंश का प्रयोग किया है। अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग अपभ्रंश कवियों की विशेषता रही है। स्वयभू ने भी इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। उदाहरणार्थ—

तड़ि तड़-तड़इ पड़इ घणु गज्जइ। जाणइ रामहो सरणु पवज्जइ।

अर्थात् तड़ित् तड़-तड़ शब्द करती है, घन गर्जन करता है। जानकी राम की शरण में आती है।

पावस में बिजली की चमक और मेघो के गर्जन की ध्वनि कानों में गूंजने लगती है। इसी प्रकार गोदावरी नदी के उत्ताल तरंगमय प्रवाह का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। युद्ध में धनुष टकार और खड्गों की खनखनाहट निम्नलिखित शब्दों में सुनी जा सकती है—

हण-हण-हणंकार महारउद्दु। छण-छण-छणतु गुणपि-पछि-सद्दु।
कर-कर-करंतु कोयंड पवरु। थर थर थरंतु णाराय-णियरु।
खण-खण-खणतु तिक्खग्ग खग्गु। हिल-हिलि-हिलंतु हय चंचलग्गु।
गुलु-गुलू-गुलंत गयवर विसालु। "हणु हणु" भणतु णर वर विसालु।

प० च० ६३. ३

भावानुकूल शब्द योजना का कवि ने ध्यान रखा है। युद्ध वर्णन में यदि कठोर वर्णों का प्रयोग किया है तो सीता के वर्णन में सुकुमार वर्णों का।

राम-विऊएं दुम्मणिया। अंसु-जलोल्लिय-लोयणिया।
मोक्कल केस कवोलु भुआ। दिट्ठ विसंठुल जणय-सुया॥

....

लक्खिय सीया एवि किह। वियसिय सरिया होइ जिह।
णं मय-लंछण ससि-जोण्हा इव। तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव।[1]

......

स पउहर पाउस-सोहा इव। अविचल सव्वंसह वसुहा इव।
कंति-समुज्जल-तडिमाला इव। सुट्ठु सलोण उयहि-वेला इव।
णिम्मल-कित्तिव रामहो केरी। तिहुयणु मिवि परिट्ठिय सेरी।

प० च० ४९.१२

शब्दो में समाहार शक्ति के दर्शन होते हैं। मेघवाहन और हनूमान् के युद्ध का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

वेण्णिवि राहव-रावण पक्खिय। वेण्णिवि सुर-बहु-णयण-कडक्खिय।

अर्थात् हनूमान् और मेघवाहन दोनो क्रमश राघव और रावण के पक्ष में थे। दोनों पर सुरागनाओ के नयन कटाक्ष गिर रहे थे। 'कडक्खिय' शब्द कई शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

---

१. तृप्ति विरहित ग्रीष्म तृष्णा के समान।

कवि की भाषा अलकारमयी है। उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनन्वय, तद्गुण आदि अनेक अलकारो का भाषा में स्वाभाविकता से प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ—

यमक— णव-फल-परिपक्कणणे काणणे कुसुमिय साहारए साहारए।

....

मधुकर महु मज्जंतएं जंतएं, कोइल वासतए वासंतए।

इत्यादि।

उत्प्रेक्षा—

तुंगभद्रा नदी के विषय में कवि कहता है—

घत्ता— असहंते वण-दव-पवण-झउ, दुसह-किरण-दिवायरहो।
णं सज्झें सुट्ठु तिसाएण, जीहे पसारिय सायरहो॥

अनन्वय—

मदोदरी की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—

घत्ता— किं बहुं जंपिएण उवमिज्जइ काहे किसोयरि।
णिय-पडिछंदइ णा थिय, सइं जेणाइं मदोयरि॥

तद्गुण—

किष्किन्धा पर्वत का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जहि इंदणील-कर-भिज्जमाणु, ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु।
जहि पउम रायं-कर-तेय-पिंडु, रत्तुप्पल-सण्णिहु होइ चंदु।
जहि मरगय खाणिवि विप्फुरति, ससि बिंबु भिसिणि पत्तुव करंति।

प० च० ६९. ५

अर्थात् जिस किष्किन्धा पर्वत पर इंद्रनील मणियो की किरणो से भिद्यमान चन्द्रमा जीर्ण दर्पण के समान बना रहता है, पद्मराग मणियो की किरणो के तेज पुंज से चन्द्रमा रक्त कमल के समान हो जाता है और मरकतमणि की चमकती खानें चन्द्रबिंब को कमल के समान बना देती है।

अपन्हुति—

अयोध्या के अन्तःपुर का वर्णन करता हुआ कवि अन्त पुर की स्त्रियो के अगो का—प्रकृत उपमेय का—प्रतिषेध करता हुआ—अप्रकृत उपमान की स्थापना करता है। यथा—

किं चलण तलग्गइ कोमलाइ। णं णं अहिणव-रत्तुप्पलाइ।

....

किं तिवलिउ जठर पए थाविआउ। णं णं कामे उरिहि लाइआउ।
किं रोमावलि घण-कसण एहु। णं ण मयणाणल-धूम-लेहु।

....

किं आणणु, णं णं चंद बिंब। किं अहरउ णं णं पक्क-बिंबु॥

प० च० ६९. २१

इसी प्रकार रावण की मृत्यु पर विभीषण विलाप करता है—

तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडुण भग्गु भग्गु गिरि कंदरु।
हारु णं तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियवण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
जीउण गउ गउ आसा पोट्टल। तुहुण सुत्तु सुत्तउ महि मंडल॥

प० च० ७६. ३

इनके अतिरिक्त उपमा, श्लेष आदि अलकारो का भी कवि ने प्रयोग किया है जिनकी ओर पहले ही निर्देश किया जा चुका है।

अलंकारो में कही कही हलकी सी उपदेश भावना भी दृष्टिगत हो जाती है। जैसे—

लक्खण कांहि वि गवेसहि तं जलु, सज्जण हियउ जेम जं निम्मलु।
दूरागमणे सीय तिसाइय, हिम हय नव नलिणिव विच्छाइय।

अर्थात् लक्ष्मण कही जल खोजते है जो सज्जन के हृदय के समान निर्मल हो। दूर-गमन से सीता तृषार्त्त हो हिमहत नलिनी के समान हतप्रभ हो गई।

छन्द—कवि ने ग्रथ मे गन्धोदकधारा, द्विपदी, हेला द्विपदी, मजरी, शालभंजिका, आरणाल, जभेटिया, पद्धड़िका, वदनक पाराणक, मदनावतार, विलासिनी, प्रमाणिका, समानिका, भुजंग-प्रयात इत्यादि अनेक छन्दों का प्रयोग किया है।[1]

रिट्ठणेमि चरिउ (रिष्टनेमिचरित) या हरिवंश पुराण

यह ग्रथ अभी तक प्रकाशित नही हुआ। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बंबई के ऐ. पन्नालाल सरस्वती भवन मे, एक भडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीट्यूट पूना मे और एक प्रति प्रो० हीरालाल जैन के पास है। एक खडित प्रति शास्त्र भंडार श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, छोटा दीवाण जी, मे भी वर्त्तमान है। यह महाकाव्य पउम चरिउ से भी बड़ा है। इसमें ११२ सन्धियाँ है और १९३७ कड़वक है। इनमें से ९२ सन्धियाँ निस्सदेह स्वयंभू रचित है और ९३ से ९९ तक की संधियाँ भी संभवतः स्वयंभू ने ही लिखी। अवशिष्ट अधिकांश संधियाँ त्रिभुवन स्वयभू ने रची और अन्त की कुछ सन्धियो में मुनि जसकित्ति का भी हाथ है।

इसमे चार काड है—यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर काड। यादव काड मे १३, कुरु कांड में १९, युद्ध कांड में ६० और उत्तर काड में २० संधियाँ हैं। इनमें से पहली ९२ संधियो को रचने मे कवि को छः वर्ष तीन मास और ग्यारह दिन लगे।[2]

---

१. पउम चरिउ—डा. हरिवल्लभ भायाणी द्वारा सपादित, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, पृ० ७८।

२. तेरह जाइव कंडे कुरु कंडे कूणवीस संधीओ,
तह सट्ठि जुज्झय कंडे एवं वाणउदि संधीओ॥
छव्वरिसाइं तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स।
वाणवइ-संधि करणे वोलीणो इत्तिओ कालो॥
९२वीं संधि की समाप्ति

ग्रंथ का प्रारम्भ कवि ने विषय की महत्ता और अपनी अल्पज्ञता का प्रदर्शन करते हुए किया है। अपनी अल्पज्ञता और असमर्थता के कारण चिन्तातुर कवि को सरस्वती से प्रोत्साहन मिलता है—

चिंतवइ सयभु काइँ करमि हरिवसमहण्णउ कें तरमि।
गुरुवयण तरंडउ लद्धुणवि जम्महो वि ण जोइउ को वि कवि।
णउ णाइउ बाहत्तरि कलाउ एक्कु विण गयु परिमोक्कलउ।
तहि अवसरि सरसइ धीरवइ करि कव्वु दिण्ण मइ विमलमइ।

रि० च० १. २.

अर्थात् जब हरिवश-महानद को पार करने में कवि चिन्तातुर था—न मैंने गुरुवचन-नौका प्राप्त की, न जन्म से किसी कवि के दर्शन किये, न ७२ कलाओ का ज्ञान प्राप्त किया और न किसी भी ग्रंथ का चिन्तन किया—तब सरस्वती ने उसे धैर्य बधाया और कहा—हे कवि! काव्य करो, मैंने तुम्हें विमल मति दी।

इसी प्रसग में स्वयभू ने अपने पूर्ववर्ती कवियो और आलकारिको का आभार प्रदर्शन किया—

इंदेण समप्पिउ वायरणु, रसु भरहें वासें वित्थरणु।
पिंगलेण छद पय पत्थारु, भम्मह वडिणिहिं अलकारु।
बाणेण समप्पिउ घणघणउ, त अक्खर डंबरु अप्पणउ।
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय।
पारंभिय पुणु हरिवंस कहा, ससमय पर समय वियार-सहा॥

रि० च० १. २

यादव कांड की १३ सधियों में कवि ने कृष्ण जन्म, कृष्ण बाल लीला, कृष्ण विवाह सबन्धी कथाएँ, प्रद्युम्न आदि की कथाएँ और नेमि जन्म कथा दी है। इन सधियो में नारद कलह प्रिय साधु के रूप में हमारे सामने आता है। कुरु काड की १९ संधियो में कौरव पाडवो के जन्म, बाल्य काल, शिक्षा आदि का वर्णन, उनके परस्पर वैमनस्य, युधिष्ठिर का जूआ खेलना और उसमें सब कुछ हार जाना, एव पांडवो के बारह साल तक वनवास की कथा दी गई है। युद्ध काड में कौरव पाडवो के युद्ध का सजीव वर्णन है, पांडवो की विजय और कौरवो की पराजय का चित्र कवि ने अंकित किया है।

कवि ने कथा का आधार महाभारत और हरिवंश पुराण को ही रखा है किन्तु कही कही पर समयानुकूल परिवर्त्तन भी कर दिये है। उदाहरण के लिए द्रौपदी स्वयम्बर में मत्स्य वेध की प्रतिज्ञा के स्थान पर केवल धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा का कवि ने उल्लेख किया है। इस परिवर्तन में जैनधर्म की अहिंसा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[1]

---

१. डा० रामसिंह तोमर—प्रा[redacted]भ्रश-साहित्य और इसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव।

वर्ण्य विषय के विस्तार की दृष्टि से ग्रथ में वर्णन बाहुल्य का होना स्वाभाविक ही था। किन्तु वर्णन इस प्रकार के नही जो ऐतिहासिक दृष्टि से इतिवृत्तात्मक मात्र हों। वर्णनों में अनेक स्थल ऐतिहासिक नीरसता से रहित हैं और काव्यगत सरसता से आप्लावित है। युद्ध काड मे अनेक प्रसग योद्धाओं का सजीव चित्र उपस्थित करते है। शस्त्रो की झकार को कर्ण-गोचर करने वाले ध्वन्यात्मक शब्दो का प्रयोग कवि ने अनेक स्थलो पर किया है। कवि की कल्पना के चमत्कार को प्रदर्शित करने वाले भी अनेक स्थल है।

नेमि जन्माभिषेक के समय बजने वाले अनेक वाद्य यन्त्रो की ध्वनि, निम्नलिखित उद्धरण में सुनाई देती है—

अप्फालिउ णवणारंभ तूरु, पडिसद्दें तिभुवण भवण पूरु।
धुमु दुमु धुमंत दुंदुहि व मालु, धुमु धुमु धुमंत धुम्मुक्क तालु।
भिं भिं करंति भिंकिरि णिणाउ, सिमि सिमि सिमंत झल्लरि णिहाउ।
सल सल सलंत कंसाल हुयलु, गुं गुंजमाण गुंजंतु मुहलु।
कण कण कणंतु कणइ कोसु, डम डम डमंत डमरु वणि घोसु।
दों दों दों दों तमउंदणद्दु, त्रां त्रां परिछित्तउ डुकसद्दु।
टं टं टटि विलुउंडंत डक्क, भं भंत भंभुउंडंत ठक्क।
८.९.

एक वन और सलिलावर्त्त कमल सर का सरस और मधुर पदावलि युक्त वर्णन देखिये—

हरिवंसुभावेण हरि विक्कम सारवलेण रण्णयं।
दीसइ देव दारु तल ताली तरल तमाल छण्णयं।
लवलि लवंग लउय जंबु वर अंब कवित्थ रिट्ठयं।
सम्मलि सरल साल सिणि सल्लइ सीस वस मिस मिट्ठयं।
चंपय चूय चार रवि चंदण वंदण वंद सुंदरं।
पत्तल वहल सीयल छाय लया हर मय मणोहरं।
मंथर मलय मारुयंदोलियं पायव पडिव पुप्फयं।
पुप्फ प्फोथ सकल भसलावलि णाविय पहिय गुप्फयं।
केसरि णहर पहर खर दारिय करि सिर लित्त मोत्तियं।
मोत्तिय पंति कंति धवलीकय सयल दिसा वहंतियं।
खोल्ल जलोल्ल तल्ल लोलंत लोल कोल उल भीसणं।
वायस कंक सेण सिव जंवुवधूय विमुक्क णीसणं।
मय गय मय जलोह कद्दम संखुभंत वणयर।
फुरिय फणिंद फार फणि मणि गण किरण करालियंवरं।
गिरि गण तुंग सिंग आलिंगिय चंदाइच्च मंडलं।
तछ भयावणे वणे दीसइ णिम्मल सीयलं जलं।

णामें सलिलावत्तु लक्खिज्जइ मणहरु कमलसरु ।
घत्ता— णाइं सुमित्तें मित्तु अवगाहिउ णयणाणंदयरु । २.१
जत्थ सछ विछलाइं, मछ कछ विछुलाइं ।
राय हंस सोहियाइं, मत्त हत्थि डोहियाइं ।
भीतरंगु भंगु राइं, तार हार पंडुराइं ।
पउमिणी करंवियाइं, मारुयप्पवेवियाइं ।
चक्कवाय सेवियाइं, णक्क गाह माणियाइं ।
एरिसाइं पाणियाइं, सेयणील लोहियाइं ।
सूर रासि वोहियाइं, मत्त छप्पयाउलाइं ।
जत्थ एरिसुप्पलाइं . . . ॥
२. २

युद्ध का सजीव वर्णन निम्नलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है। छन्द की गति द्वारा कवि ने स्थान-स्थान पर युद्ध की गति का भी साक्षात् चित्र उपस्थित कर दिया है।

उत्थरंतिसाहणाइं, चाउरंग वाहणाइं ।
सुद्ध बद्ध मच्छराइं, तोसियामरच्छराइं ।
एकमेक्क कोक्किराइं, कुंभकोडिवोक्किराइं ।
वाण जाल छाइयाइं, चूरणाय णाइयाइं ।
धूलि वाउ धूसराइं, आउ होइ जज्जराइं ।
दंते दंत पेल्लियाइं, सोणियं वरे ल्लियाइं ।
घोर घाइ भिभलाइं, णित्त अंत चोंभलाइं ।
तिक्ख खग्ग खंडियाइं, भल्लु यार वाउलाइं ।
घोर गिद्ध संकुलाइं, सोह विक्कमे विवक्खे ।
हीयमाण, एस चक्खे ।
३. ७

भज्जंत समाउहइं । जुज्झंत सुहडाइं । णिग्गंत अंताइं ।
भिज्जंत गत्ताइं । लोटंत चिंधाइं । तुट्टंत छत्ताइं ।
७. ६

रथ टूट रहे हैं, योद्धा युद्ध करते जा रहे हैं, प्रहार से आंतें बाहर निकल पड़ती हैं, गात्र रुधिर से भीग रहे हैं, ध्वजायें भग्न हो पृथ्वी पर लोट रही हैं और छत्र टूटते जा रहे हैं। कितना स्पष्ट वर्णन है।

कवि के युद्ध वर्णन का एक उदाहरण और देखिये—

तो भिडिय परोप्पर रण-कुसल विण्णि वि णव-णायसहास-बल ।
विण्णि वि गिरि-तुंग-सिंग-सिहर विण्णि वि जलहर-रव-गहिर-गिर ।
विण्णि वि दट्ठोट्ठ रुट्ठ-वयण विण्णि वि [illegible]-सम-णयण ।
विण्णि वि णह-यल-णिह-वच्छ-यल विण्णि वि [illegible]-भ ये-जयल ।

बिण्णि वि तणु-तेयाहय-तिमिर बिण्णि वि जिण-चरण-कमल-णमिर।
बिण्णि वि मंदर-परिभमण-चल बिण्णि वि विण्णाण-करण-कुसल।
बिण्णि वि पहरंति पहरक्खमिहिं भुय-दंडिहिं वज्ज-दंड-समिहिं।
पय-भारिहिं भारिय विहि मि महि- महि-पडण-पेल्लणाहित्य महि।

रि० च० २८. १६

अर्थात् इसके बाद नवनाग सहस्र बल वाले, रण कुशल दोनो भीम और कीचक परस्पर युद्धार्थ भिड गये। दोनो पर्वत के उत्तुंग शिखर के सदृश थे, दोनो मेघ के गम्भीर गर्जन के समान वाणी वाले थे, दोनो के नेत्र गुंजाफल सदृश थे, दोनो आकाश सदृश विशाल वक्षस्थल वाले थे, दोनो परिघा-सदृश भुजाओ वाले थे, दोनो ने शरीर के तेज से अन्धकार को नष्ट कर दिया, दोनो जिन चरणो में नमनशील थे, दोनो मन्दराचल-परिभ्रमण के समान गति वाले और क्रियात्मक विज्ञान में कुशल थे, दोनो वज्रदड के समान प्रहारक्षम भुजदंडों से प्रहार करने लगे। दोनो ने पृथ्वी को अपने चरण भार से पूरित कर दिया।

कवि के वर्णनो में सस्कृत की वर्णन शैली का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

अनेक स्थलों पर कवि की अद्भुत कल्पना के भी दर्शन होते हैं। विराट नगर का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

घत्ता— पट्टणु पइसरिय जं धवल-धरालंकरियउ।
केण वि कारणेण णं सग्गखंडु ओयरियउ॥

रि० च० २८.४

अर्थात् पांचो पांडव उस नगर में प्रविष्ट हुए, जो धवल गृहो से अलकृत था और ऐसा सुन्दर प्रतीत होता था मानो किसी कारण स्वर्ग खंड पृथ्वी पर उतर आया हो।

कवि के इस वर्णन में कालिदास के निम्नलिखित कथन की झलक है। उज्जयिनी के विषय में कालिदास कहते हैं—

स्वल्पी भूते सुचरित फले स्वर्गिणां गां गतानां।
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खंडमेकम्॥

मेघदूत १ ३०

वाल्मीकि रामायण में भी कवि ने लका को पृथ्वी पर गिरा हुआ स्वर्ग कहा है—

"महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णम्"

५. ७. ६

काव्य की भाषा साहित्यिक है और व्याकरणानुमत है। स्थान-स्थान पर अलंकारों के प्रयोग से भाषा अलंकृत है। अलंकारो के प्रयोग में उपमान भी धार्मिक-भावना युक्त हैं। उदाहरण के लिए—

घत्ता— सहुं दुमय-सुयाए कोक्काविय ते वि पइट्ठा।
जीवदयाए सहिय परमेट्ठि पंच णं दिट्ठा॥

रि० च० २८. ५

अर्थात् द्रुपदसुता के साथ आहूत वे पाँचो पाँडव भी प्रविष्ट हुए। जैसे जीव दया के साथ पच परमेष्ठी—अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—प्रविष्ट हुए हो।

काव्य में सूक्तियो का भी प्रयोग मिलता है—

"सीहहो हरिणि जिहं णिय पुण्णेहिं केम वि चुक्की"

२८. ७

अर्थात् जैसे सिह (के मुख) से हरिणी किसी प्रकार निज पुण्यो से छूटी हो।

"जहिं पहु दुच्चरिउ समायरइ तहिं जणु सामण्णु काइं करइ"

अर्थात् जहाँ प्रभु दुश्चरित करेगा तो सामान्य जन क्या करेगा ?

हेला— **वरि सुसइ समुद्दु वरि मंदरो णमेइ।**
ण वि सव्वण्हु भासियं अण्णहा हवेइ॥ १०३. १५

अर्थात् चाहे समुद्र सूख जाय, चाहे मदर झुक जाय किन्तु सर्वज्ञ का कथन अन्यथा नही हो सकता।

कवि ने यद्यपि स्वय इस बात को स्वीकार किया है कि बाण से उसने बडे-बडे समासो और शब्दाडबर वाली भाषा ली[1] किन्तु उसकी भाषा इस प्रकार के समासों से रहित, सरल और सीधी है। कवि को पज्झटिका छन्द बहुत प्रिय था।[2] उसने इसी छन्द का अपनी कृतियो में उपयोग किया हो ऐसी बात नही। इस छन्द के अतिरिक्त भुजंग प्रयात, मत्त मात्तंग, कामिनी मोहन, नाराचक, केतकीकुसुम, द्विपदी, हेला, पारणक आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

महापुराण

महापुराण या तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार पुष्पदन्त द्वारा रचा हुआ महाकाव्य है। पुष्पदन्त काश्यप गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशव भट्ट तथा माता का नाम मुग्धादेवी था।[४] जीवन के पूर्वकाल में शैव थे पीछे से जाकर दिगबर जैन हो गये। दुष्टो से सताये जाने पर यह मान्यखेट पहुँचे। वहाँ

---

१ **"बाणेण समप्पिउ घणघणउ तं अक्खर-डंबर अप्पणउ"**

रि० च० १. २

२. **"चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय"**

रि० च० १. २

भरत के आश्रय में रह कर इन्होने तिसट्ठपुरिसगुणालंकार या महापुराण की रचना की और उसके बाद भरत के पुत्र नन्न के आश्रय मे णायकुमारचरिउ और जसहर-चरिउ की रचना की। भरत और नन्न दोनो मान्यखेट मे राष्ट्र कूट वश कृष्णराज तृतीय या वल्लभराज के मत्री थे। मान्यखेट, आजकल हैदराबाद राज्य मे मल्खेड के नाम से प्रसिद्ध है। पुष्पदन्त के समय यह नगर एक अच्छा साहित्यिक केन्द्र था।

पुष्पदन्त धनहीन और दुर्बल शरीर थे। उन्हें अपने कवित्व का अभिमान था। इन्होंने अपने को कव्व-पिसल्ल, अभिमान-मेरु, कविकुलतिलक, काव्य-रत्नाकर, सरस्वती-निलय[1] आदि उपाधियो से विभूषित किया है। पुष्पदन्त का समय अन्त साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर विद्वानो ने ईसा की १० वी सदी माना है।[2]

महापुराण या तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार तीन खंडो मे विभक्त है। प्रथम खंड जिसे आदि पुराण कहते हैं, द्वितीय खड—उत्तर पुराण का प्रथमार्ध और तृतीय खड उत्तरपुराण का द्वितीययार्ध। तीनो खडो में १०२ संधियाँ हैं। प्रथम खड मे ३७, द्वितीय में ३८ से ८० और तृतीय में ८१ से १०२ तक। प्रथम खड में कवि ने प्रथम तीर्थ कर और प्रथम चक्रवर्ती भरत के जीवन का वर्णन किया है। इस महाकाव्य की रचना कवि ने राष्ट्रकूट राज कृष्ण तृतीय के मन्त्री भरत के आश्रय में रह कर की। ग्रन्थ का आरम्भ भरत के प्रोत्साहन से ९५९ ई० में हुआ। आदि पर्व के अनन्तर कवि कुछ हतोत्साह हो गया था किन्तु सरस्वती के प्रोत्साहन[3] और भरत की प्रेरणा से कवि ने अवशिष्ट ग्रन्थ को आरम्भ कर ९६५ ई० में समाप्त किया।[4]

महापुराण का अर्थ—दिगंबर मतानुसार श्री महावीर स्वामी की वाणी जिन ग्यारह 'अंगों' और चौदह 'पूर्वो' में ग्रथित थी वे सब विच्छिन्न हो गये। जो श्वेताम्बर अग अब पाये जाते हैं उन्हें दिगम्बर समाज स्वीकार नही करता। वह अपना धार्मिक साहित्य प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगो

---

१. तं णिसुणेवि भरहें वुत्तु ताव, भो कइकुल तिलय विमुक्कगाव
म० पु० १. ८. १
भो भो केसव तणुरुह णवसररुह मुह कव्व रयण रयणायर
म पु. १. ४. १०
अग्गइ कइ राउ पुप्फयंतु सरसइ णिलउ।
देवियहि सरूउ वण्णइ कइयण कुल तिलउ॥
जसहर चरिउ १. ८. १५

२. पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास,
बम्बई, १९४२, पृष्ठ ३२९

३. णिव्विण्णउ थिउ जाय महाकइ ता सिविणंतरि पत्त सरासइ
म० पु० ३८. २. २.

४. वही ३८. ४–५

में विभक्त करता है। प्रथम अनुयोग में तीर्थंकरो या प्रसिद्ध महापुरुषों का जीवन एवं कथा साहित्य, द्वितीय में विश्व का भूगोल, तृतीय में गृहस्थो और भिक्षुओ के लिए आचार एवं नियम और चतुर्थ अनुयोग में दर्शनादि का वर्णन पाया जाता है। इस प्रथम महापुराण प्रथमानुयोग की एक शाखा है।[1]

जैन साहित्य में 'पुराण' प्राचीन कथा का सूचक है। महापुराण का अभिप्राय प्राचीन काल की एक महती कथा से है। पुराण में एक ही धर्मात्मा पुरुष या महापुरुष का जीवन अंकित होता है महापुराण में अनेक महापुरुषो का। महापुराण में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव, इन ६३ महापुरुषो—शलाका पुरुषो—के चरित्र का वर्णन किया जाता है। अतएव पुष्पदन्त ने इस ग्रन्थ को 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार' नाम भी दिया है। जिनसेन ने अपने महापुराण को त्रिषष्टि लक्षण और हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित कहा है।

प्रचलित पुराण साहित्य पर विशेषता दिखाने के लिए महापुराण शब्द का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है।

कथानक—कवि दुर्जनो के भय से महापुराण का आरम्भ करने में सकोच का अनुभव करता है किन्तु भरत प्रोत्साहित करता है कि दुर्जनों का तो स्वभाव ही दोषान्वेषण होता है उस पर ध्यान न दो। कुत्ता पूर्ण चन्द्र पर भौकता रहे उसका क्या बिगडेगा ?[2] महापुराण आरम्भ करो। परपरागत सज्जन प्रशंसा और दुर्जन निन्दा के बाद कवि आत्म विनय के साथ ग्रन्थ आरम्भ करता है।[3] कालिदास रघुवंश का आरम्भ करते हुए अनुभव करता है कि सूर्य वशी राजाओं का वर्णन उडुप—छोटी नौका—से विशाल समुद्र को पार करने के समान उपहासास्पद होगा।[4] पुष्पदन्त के लिये भी महापुराण उडुप द्वारा समुद्र को मापने के समान है।[5]

मगधराज श्रेणिक के अनुरोध करने पर श्री महावीर के शिष्य गौतम, महापुराण की कथा सुनाते है।

नाभि और मरुदेवी से अयोध्या में ऋषभ का जन्म होता है (३)[6] ऋषभ क्रमशः युवावस्था प्राप्त करते है। जसवई और सुणंदा नामक राजकुमारियों से उनका

---

१. महापुराण, भूमिका, पृष्ठ ३२

२. भुक्कउ छणयंदहु सारमेउ म० पु० १. ८. ७

३. वही, १. ९.

४. क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्प विषयामतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
रघुवंश, प्रथम सर्ग

५. अइ दुग्गमु होइ महापुराणु कुडएण मवइ को जल णिहाणु, म पु. १. ९. १३

६. कथावस्तु के प्रसंग में जहाँ पर भी कोष्ठक के अन्दर संख्या सूचक अंक होगा वहाँ उससे सन्धि संख्या का अभिप्राय समझना चाहिए।

विवाह होता है। जसवई से भरह—भरत—आदि सौ पुत्र और बम्भी नामक कन्या तथा सुणंदा से बाहुबलि नामक पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या उत्पन्न हुई। राजकुमार और राजकुमारियों को उनके योग्य अनेक प्रकार की शिक्षा दी जाती है।[1] क्रमशः ऋषभ संसार से विरक्त हो जाते है और भरत राजगद्दी पर बैठते हैं (६–७)। ऋषभ तपस्या द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं (८–११)। इसके बाद कवि ने चक्रवर्ती भरत के दिग्विजय का वर्णन किया है (१२–१९)। फिर २७ वी संधि तक ऋषभ ने अपने साथियो के और अपने पुत्रों के पूर्वजन्मों का, अनेक पौराणिक कथाओं से और अलौकिक घटनाओं से ग्रथित, वर्णन किया है। सुलोचना, स्वयंवर में जय को चुनती है। जय और सुलोचना के पूर्वजन्म की कथाओं का, अनेक अलौकिक घटनाओ और चमत्कारो से युक्त, वर्णन है। इन घटनाओं और चमत्कारो के मूल में जिन भक्ति ही प्रधान कारण है (२८–३६)। रिसह निर्वाण पद को प्राप्त करते है (३७)। भरत भी अयोध्या में चिरकाल तक राज्य करते हुए अन्त में निर्वाण पद पाते है (३७)।

उत्तर पुराण के प्रथमार्थ या द्वितीय खड में ३८ से लेकर ८० तक सधियाँ हे। इनमें २० तीर्थ करो, ८ बलदेवो, ८ वासुदेवो, ८ प्रतिवासुदेवों, और १० चक्रवर्तियों का वर्णन है। इसी खंड में ३८ से ६८ सधि तक अजितादि तीर्थ करों की कथा है। ६९ से ७९ संधि तक रामायण की कथा है। इसी को जैनी पउम चरिउ—पद्म पुराण-कहते हैं। श्रेणिक के मन में रामायण-कथा के संबंध में अनेक शंकायें होती है एवं गौतम से उनके समाधान की प्रार्थना करते हैं। कवि की दृष्टि में वाल्मीकि और व्यास के वचनो पर विश्वास करते हुए लोग कुमार्ग कूप में गिरे।[2] अतएव कवि ने जैन धर्म की दृष्टि से रामकथा का उल्लेख किया है।

जैन धर्म में राम कथा का रूप वाल्मीकि रामायण मे कुछ भिन्न है। इस राम कथा के विषय में कवि का कथन है कि राम और लक्ष्मण पूर्व जन्म में क्रमशः राजा प्रजापति और उसके मंत्री थे। युवावस्था में वे श्रीदत्त नामक व्यापारी की स्त्री कुबेरदत्ता का अपहरण करते है। राजा क्रुद्ध हो मंत्री को आज्ञा देता है कि इन्हें जंगल में ले जाकर मार दो। मंत्री जगल में ले जाकर उन्हे एक जैन भिक्षु के दर्शन कराता है। वे भी भिक्षु हो तपस्या से जीवन बिताने लगते हैं। दोनो भिक्षु मरणोपरान्त मणिचूल और सुवर्णचूल नामक देवता बनते हैं। अगले जन्म में वे वाराणसी के राजा दशरथ के घर उत्पन्न होते हैं। राजा की सुबला नाम की रानी से राम (पूर्व जन्म का सुवर्णचूल और विजय) और कैकेयी से लक्ष्मण (पूर्व जन्म का मणिचूल और चन्द्रचूल) उत्पन्न होते है (६९. १२)। इस प्रकार जैन धर्मानुसार राम की माता का नाम सुबला और कैकेयी के पुत्र का नाम लक्ष्मण माना जाता है। राम का वर्ण श्वेत और लक्ष्मण का श्याम था।

---

१. म० पु० ५. १८ में कवि ने संस्कृत, प्राकृत भाषाओं की शिक्षा के साथ अपभ्रंश भाषा की शिक्षा का भी उल्लेख किया है।

२. वम्मीय वास वयणिहिं णडिउ अण्णाणु कुमग्ग कूवि पडिउ म० पु० ६९.३.११

सीता भी रावण नामक विद्याधर और उसकी स्त्री मदोदरी की लड़की थी। इस भविष्यवाणी से कि यह अपने पिता पर आपत्ति लायेगी रावण एक मजूषा मे डालकर उसे किसी खेत मे गाड देता है। वह जनक को वही से प्राप्त होती है और वही उसका पालन-पोषण कर राम के साथ उसका विवाह करता है। सीता के अतिरिक्त राम की ७ और पत्नियो ('अवराउ सत्त कण्णाउ तासु' ७० १३ ९) तथा लक्ष्मण की १६ पत्नियों की कल्पना की गई है (७०. १३. १०.)।

नारद के मुख से सीता की प्रशंसा सुन कर रावण उसका हरण करता है। दशरथ स्वप्न देखते है कि चन्द्र की पत्नी रोहिणी को राहु ले गया और इससे वह राम पर विपत्ति की कल्पना करते है। दशरथ सीताहरण पर जीवित थे। सीता लका मे लाई जाती है। रावण उसका चित्त आकृष्ट न कर सका। सुग्रीव और हनूमान् राम को सहायता का वचन देते है और बालि के राज्य को प्राप्त करने के लिए उनकी सहायता मागते है। हनूमान् लका से सीता का समाचार लाते है। इसी बीच लक्ष्मण बालि को मार कर उसका राज्य सुग्रीव को दे देते है।

रावण के ऊपर आक्रमण करने से पूर्व राम और लक्ष्मण माया युक्त अस्त्र विद्याओं को प्राप्त करने के लिए उपवास करते है। राम और रावण का भयकर युद्ध होता है। लक्ष्मण रावण को मारते है। लका का राज्य विभीषण को दे दिया जाता है। लक्ष्मण अर्ध-चक्रवर्ती बन जाते है और चिरकाल तक राज्य सुख भोग कर नरक में जाते है। राम भाई के वियोग से, विरक्त हो भिक्षु जीवन बिताते है और अन्त में निर्वाण प्राप्त करते हैं।

राम, लक्ष्मण और रावण जैन धर्म के अनुसार क्रमशः ८ वें बलदेव, वासुदेव और प्रति वासुदेव है। ८०वी सधि में नमि की कथा है। ८१वी सधि से उत्तर पुराण का द्वितीयार्ध या महापुराण का तृतीय खण्ड प्रारम्भ होता है। इस खड में ८१ से लेकर १०२ तक सधियाँ है। ८१ से ९२ तक मुख्य रूप से महाभारत की कथा है जिसे कवि ने हरिवश पुराण भी कहा है। महाभारत की कथा से सबद्ध पात्रों के पूर्व जन्म की अनेक कथाओ का कवि ने वर्णन किया है। इस कथा में अनेक स्थल काव्यदृष्टि से सुन्दर और सरस है। ८५वी सन्धि तो काव्य का सुन्दर निदर्शन है। तृतीय खंड के अन्तिम भाग में पार्श्वनाथ (९३-९४), महावीर (९५-९७), जंबू स्वामी (१००), प्रीतिंकर (१०१) की कथायें है। अन्तिम सन्धि महावीर के निर्वाण के वर्णन से समाप्त होती है।

महापुराण का कथानक पर्याप्त विस्तृत है। ६३ महापुरुषो का वर्णन ही विशाल है फिर उनकी अनेक पूर्व जन्म की कथाओ और अवान्तर कथाओ से कथानक इतना विस्तृत हो गया है कि उसमें से कथा सूत्र को पकड़ना कठिन हो जाता है। महापुराण में जैन धर्मानुकूल ६३ महापुरुषो में कवि ने रामायण और महाभारत की कथा का भी अन्त-र्भाव किया है। संस्कृत साहित्य में इन दोनों मे प्रत्येक कथा के किसी एक खड को या उपाख्यान को लेकर स्वतन्त्र महाकाव्यो की रचना हुई है। इनके भी अन्तर्भाव से कथा-नक की व्यापकता और विशालता की कल्पना सहज में ही की जा सकती है। कवि की दृष्टि मे ये दोनो कथाएँ भिन्न-भिन्न एव महत्त्वपूर्ण थी। दोनों कथाओं को प्रारम्भ करते

हुए कवि ग्रंथ का महत्त्व ग्रन्थ समाप्ति में असमर्थता आदि भाव अभिव्यक्त करता है। अपने से पूर्वकाल के कवियों का उल्लेख करता है।[1] आत्म विनय प्रदर्शित करता है।[2] कथानक में अनेक कथायें अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से परिपूर्ण है। ऐसी घटनाओं के मूल में भी जिन-भक्ति है।[3] पौराणिक कपोल कल्पना का प्राचुर्य है। प्रबन्ध निर्वाह भली भाँति नही हो सका है।

कथानक के विशाल और विशृंखल होने पर भी बीच-बीच में अनेक काव्यमय सरस और सुन्दर वर्णन मिलते है। जनपदों, नगरो और ग्रामो के वर्णन बडे ही भव्य हैं। कवि ने नवीन और मानव जीवन के साथ संबद्ध उपमानों का प्रयोग कर वर्णनों को सजीव बनाया है। उदाहरण के लिए मगध देश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जहिं कोइलु हिंडइ कसण पिंडु वण लच्छिहे णं कज्जल करंडु।
....
जहिं सलिइं मारुय पेल्लियाइं रवि सोसण भएण व हल्लियाइं।
जहिं कमलहं लच्छिइ सहुं सणेहु सहुं ससहरेण वड्ढिउ विरोहु।
किर दो वि ताइं महणु ब्भवाइं जाणंति ण तं जड संभवइं।
....
जुज्झंत महिस वसहुच्छवाइं मंथा मंथिय मंथणि रवाइं।

म० पु० १. १२

अर्थात् जहाँ कृष्ण वर्ण कोयल वनलक्ष्मी के कज्जल पात्र के समान, विचरती है। जहाँ वायु से आन्दोलित जल मानो सूर्य के शोषण-भय से हिल रहे है। जहाँ कमलों ने लक्ष्मी के साथ स्नेह और शशधर के साथ विरोध किया है यद्यपि लक्ष्मी और शशधर दोनो क्षीर सागर के मन्थन से उत्पन्न हुए हैं और दोनो जलजन्मा है किन्तु अज्ञानता से इस बात को नही जानते। जहाँ महिष और वृषभ का युद्धोत्सव हो रहा है। जहाँ मंथन-तत्पर बालाओं के मन्थनी-रव के साथ मधुर गीत सुनाई पड़ते है।

---

१. म० पु० ६९. १. ७-८

२. वही ६९. १. ९-११

३. घत्ता— घित्तउ जलणि जलंति तहि वि परिट्ठिउ अवियलु।
जिण पय पोम रयासु अग्गि वि जायउ सीयलु॥

म० पु० ३३. १०

घत्ता—सतु वि मित्त हवंति विट्ठि वि भल्लउ वासरु।
जिणु सुमिरंतहं होइ खग्गु वि कमलु सकेसरु॥

म० पु० ३३. ११

मगध देश में राजगृह की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

घत्ता—

जहिं दीसइ तहिं भल्लउ णयरु पवल्लउ ससि रवि अन्त विहूसिउ।
उवरि विलंबियतरणिहे सग्गें धरणिहे णावइ पाहुडु पेसिउ॥

म० पु० १. १५

राजगृह मानो स्वर्ग द्वारा पृथ्वी के लिए भेजा हुआ उपहार हो।

इसी प्रकार ९३. २-४ मे पोयण नगर का सुन्दर वर्णन है।

घत्ता—

तहिं पोयण णामु णयरु अत्थि वित्थिण्णउं।
सुर लोएं णाइ धरिणिहि पाहुडु दिण्णउं॥

९२. २. ११-१२

अर्थात् वह इतना विस्तीर्ण, समृद्ध और सुन्दर था मानो सुर लोक ने पृथ्वी को प्राभृत (भेंट) दी हो।

यह उत्प्रेक्षा अपभ्रंश कवियो को बहुत ही आकर्षक थी। स्वयंभू ने भी इसी कल्पना का प्रयोग विराट् नगर का वर्णन करते हुए किया यह ऊपर दिखाया जा चुका है।[1] कालिदास के मेघदूत में और वाल्मीकि की रामायण मे भी इसका प्रयोग मिलता है ऐसा ऊपर निर्देश किया जा चुका है।[2]

नगरों के इन विशद वर्णनो मे कवि का हृदय मानव जीवन के प्रति जागरूक है मानो उसने मानव के दृष्टिकोण से विश्व को देखने का प्रयास किया हो।

कवि मानव हृदय का भी पारखी था। बाह्य जगत् की तरह आन्तरिक जगत् का भी सुन्दर वर्णन काव्य मे मिलता है। ऐसे स्थल जहाँ कवि की भावना उद्बुद्ध होनी चाहिए, वह उद्बुद्ध दिखाई देती है। कवि भावुक है। भावानुभूति के स्थलो पर कवि-हृदय ने इसका परिचय दिया है।

सुलोचना के स्वयंवर में आये हुए राजाओ के हृद्गत भावो का विशद वर्णन इस काव्य में मिलता है।[3] इसी प्रकार वाराणसी में लौटे हुए राम-लक्ष्मण के दर्शनो के लिए लालायित पुरवधुओ की उत्सुकता का चित्रण भी सुन्दर हुआ है।[4] इसी प्रकार वसुदेव के दर्शन पर पुरवधुओ के हृदय की क्षुब्धता का वर्णन भी मार्मिक है।[5]

---

१. पट्टणु पइसन्ति जं धवल-घरा लंकरियउ।
केण वि कारणेन णं सग्ग-खंडु ओयरियउ॥

रिट्ठ० च० २८. ४

२. मेघदूत १. ३०, वाल्मीकि रामायण ५. ७. ६।

३. पउम चरिउ २८. १९।

४. वही, ७०. १६।

५. वही, ८३. २-३।

इनके अतिरिक्त मंदोदरी विलाप[1] तथा अन्य वियोग वर्णनों में[2] भी कवि की भाव व्यञ्जना सुन्दरता से हुई है।

रस—रस की दृष्टि से काव्य में वीर, शृङ्गार और शान्त तीनों रसों की अभिव्यञ्जना दिखाई देती है। प्रायः सभी तीर्थंकर और चक्रवर्त्ती जीवनकाल में सुखभोग में लीन रहते हैं और जीवन के अन्त में संसार से विरक्त हो निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं। जीवनकाल में भोग विलास की सामग्री स्त्री की प्राप्ति के लिए इन्हें अनेक बार युद्ध भी करने पड़ते हैं। ऐसे स्थलों में वीर रस का भी सुन्दरता से चित्रण हुआ है। इनके अतिरिक्त वासुदेवों और प्रतिवासुदेवों के संघर्ष में भी वीर रस के सरस उदाहरण मिल जाते हैं। किन्तु शृङ्गार और वीर दोनों रसों का पर्यवसान शान्त में ही होता है।

शृंगार रस की व्यंजना, स्त्रियों के सौन्दर्य और नखशिख वर्णन में विशेषतया दिखाई देती है।[3] युद्धोत्तर वर्णनों में युद्ध के परिणामस्वरूप करुण रस और बीभत्स रस के दृश्य भी सामने आ जाते हैं। करुण रस का एक चित्र मंदोदरी-विलाप में दिखाई देता है।

घत्ता—

ता तहिं मंदोयरि देवि किसोयरि थण अंसुय धारहिं धुवइ।
णिवडिय गुण जल सरि खग परमेसरि हा हा पिय भणंति रुयइ॥
.... ७८. २१

पइं विणु जगि दसास जं जिज्जइ तं परदुक्ख समूहु सहिज्जइ।
हा पिययम भणंतु सोयाउरु कंदइ णिरवसेसु अंतेउरु॥
७८ २२. १२-१३

शृंगार के संयोग और विप्रलम्भ दोनों रूपों को कवि ने अंकित किया है। शृङ्गार में केवल परम्परा का पालन ही नहीं मिलता जहाँ तहाँ रम्य उद्भावनाओं की सृष्टि भी कवि ने की है। अलका के राजा अतिबल की रानी मनोहरा के प्रसंग में कवि कहता है—

णं पेम्म सलिल कल्लोल माल, णं मयणहु केरी परमलील।
णं चिंतामणि संदिण्ण काम, णं तिजग तरुणि सोहग्गसीम।
णं रूव रयण संघाय खाणि, णं हियय हारि लायण्ण जोणि।
णं थर सरहंसिणि रइ सुहेल्लि, णं घर महिरुह मंडणिय वेल्लि।
णं घरवणदेवय दुरिय संति, णं घर छण ससहर बिंब कंति।

---

१. वही, ७८. २१-२२।
२. वही, २२. ९ तथा २४. ७।
३. म. पु. ५ १७; २८. १३; ७०. ९-११।

णं घरगिरि वासिणि जक्खपत्ति, णं लोय वसंकरि मंत सत्ति।
महएवि तासु घर कमल लच्छि, णामेण मणोहर पंकयच्छि[1]।

२०. ९. १–७

गुणमजरी वेश्या के शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त उसके आन्तरिक सौन्दर्य को भी प्रकट किया है—

दुवई— **मत्त करिंद मंद लीला गइ णर मण णलिण गोमिणी।**
किं वण्णमि णरिंद सा कामिणि कामिणियण सिरोमणी॥
दिस बिंबाहर रंगें रावइ करयह पंति पईवहिं दीवइ।
कुंचियं केसहं कंतिइ कालइ माणिणि माणव महुयर मालइ।
सुललिय वाणि व सुकइहि केरी जहिं दीसइ तहिं सा भल्लारी।[2]

५४.२. २–५

सीता का सौदर्य भी परंपराभुक्त नही।

वड्ढ परमेसरि दिव्व देह णं बीयायंदहु तणिय रेह।
णं ललिय महा-कइ पय पउत्ति णं मयण भाव विण्णाण जुत्ति।
णं गुण समग्ग सोहग्गथत्ति णं णारिरूव विरयण समत्ति।
लायण्ण वत्त णं जलहि वेल सुरहिय णं चंपय कुसुम माल।
थिर सूहव णं सप्पुरिस कित्ति बहुलक्खण णं वायरण वित्ति।[3]

७०. ९. ९.

नखशिख के परपरागत वर्णन में भी कवि ने अपनी अद्भुतकला से अनुपम चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। सुलोचना का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

उसके पैरो को कमल के समान कैसे कहूँ ? वह क्षणभगुर है ऐसा कवियो ने नही सोचा। दिन में नक्षत्र कही नही दिखाई देते, मानो सुलोचना के नखों की प्रभा से नष्ट हो जाते है।[4]

---

१. **रइ सुहेल्लि**—रति सुख युक्त। **दुरिय संति**—दुरित को शान्त करने वाली। **छण ससहर**—क्षण शशधर, पूर्णिमा का चाँद। **जक्खपत्ति**—कुबेर की भार्या।

२. **रावइ**—रंजित करती है। **कालइ**—काला करती है।
ल्लारी—उत्तम स्त्री।

३. **बीया यंदहु तणियरेह** = द्वितीया के चाँद की कला। **पय पउत्ति** = पद प्रयुक्ति। **विरयण समत्ति** = रचना, निर्माण की समाप्ति अर्थात् चरमोत्कर्ष।

४. **पायहु काइं कमलु समु भणियउं खण तं भंगुरु कइहिं ण मुणियउं।**
रिक्खइं वासरि कहिंमि ण दिट्ठइं कण्णा णह पहाहिं णं णट्ठइं।
म० पु० २८. १२. ८–९

सीता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

दिय दित्तिइ जित्तइं घत्तियाइं इयरहह कह विद्धइं मोत्तियाइं ।
मुह ससि जोण्हइ दिस धवल थाइ इयरह कह ससि झिज्जंतु जाइ ।

७० ११. ५–६

अर्थात् सीता के दाँतो की दीप्ति से मोती जीते गये और तिरस्कृत हो गये अन्यथा क्यो वे बीधे जाते ? मुख-चन्द्र-चन्द्रिका से दिशाएँ धवलित हो गई अन्यथा क्यो शशि क्षीण होता ?

वियोग वर्णनो में मस्तिष्क को चमत्कृत करने वाली हाहाकार नही अपितु हृदय को स्पर्श करने वाली करुण वेदना की पुकार है । ऐसे स्थलो मे वियोगी का दुःख उसके हृदय तक ही सीमित नही रहता । प्रकृति भी उसके शोकावेग से प्रभावित दिखाई देती है ।

सीता के वियोग से राम को जल विष के समान, और चन्दन अग्नि के समान दिखाई देता है । (म० पु० ७३ ३-८)

इस प्रकार एक अन्य वियोगिनी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि

मलयाणिलु पलयाणलु भावइ भूसणु सणु करि बद्धउ णावइ ।
....
ण्हाणु सोय ण्हाणु व णउ रुच्चइ वसणु वसणसंणिहु सा मुच्चइ ।
....
चंदणु इंधणु विरह हुयासहु...............

म० पु० २२. ९.

अर्थात् वियोगिनी को मलयानिल प्रलयानल के समान, भूषण सन के बन्धन के समान प्रतीत होता था । स्नान शोक स्नान के समान अच्छा नहीं लगता । वसन को वह व्यसन के समान समझती थी । चन्दन विरहाग्नि के लिए ई धन के समान था इत्यादि ।

वीर रस के वर्णनो मे वीर रस का परिपाक करने के लिए भावानुकूल शब्द योजना की है । वीर रस के कठोर और सयुक्ताक्षरो के प्रयोग की परपरा सर्वत्र नही दिखाई देती । कवि ने छन्द योजना, नाद सौन्दर्य और भाव व्यंजना के द्वारा वीर रस को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है । यथा—

भडु को वि भणइ जइ जाइ जीउ तो जाउ थाउ छुडु पहु पयाउ ।
भडु को वि भणइ रिउ एंतु चंडु मइं अज्जु करेवउ खंड खंडु ।
भडु को वि भणइ जइ मुंडु पडइ तो महुं रुंडु जि रिउं हणवि णडइ ।

म० पु० ५२ १२ २–३

अर्थात् कोई भट यह कहता है कि प्राण जाय तो भले ही जाय किन्तु स्वामी का प्रभाव स्थिर रहे । कोई भट कहता है कि प्रचड शत्रु को आते देख आज मै उसे खड खंड कर दू गा । अन्य भट कहता है कि यदि शिर कट कर गिर गया तो भी धड़ शत्रु को मारने के लिए नाचता फिरेगा ।

टवर्गाक्षरो के प्रयोग के साथ-साथ भटो के हृदय में उत्साह की व्यंजना भी है ।

इसी प्रसग मे कवि कहता है—

वहु कासु वि देइ ण दहिय तिलउ अहिलसइ वइरिरुहिरेण तिलउ ।
वहु कासु थिवइ ण अक्खयाउ खलवइ करि मोत्तिय अक्खयाउ ।
५२. १३. ४–५

अर्थात् किसी युद्धोन्मुख योद्धा की वधू उसे दधि तिलक नही लगाती, वह उसे वैरी के रुधिर से तिलक करना चाहती है । किसी की वधू अपने पति को अक्षत का टीका नही लगाती, वह शत्रु के हाथियो के मोतियो से टीका करना चाहती है ।

भारतीय वीरागना का यह स्वरूप उत्तरकालीन भारत की राजपूत नारी में विशेष रूप से परिस्फुटित होता है ।

इसी प्रकार एक दूसरे की ओर बढती हुई दो सेनाओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

चल चरण चार चालिय धराइं डोल्लाविय गिरि विवरंतराइं ।
हलहलिय घुलिय विर विसहराइं भयतसिर रसिय घण वणयराइं ।
झलझलिय वलिय सायर जलाइं जल जलिय काल कोवाणलाइं ।
पय हय रय छइय णहंतराइं अणलक्खिय हिमयर दिणयराइं ।
करि वाहणाइ सपसाहणाइं हरि हरि गीवाहिव साहणाइं ।
आयइं अण्णण्णहु समुहाइं असिदाढालइ णं जम मुहाइ ।[1]
५२. १४. ८—१३

परपरानुकूल कठोर शब्दों का प्रयोग यद्यपि नहीं तथापि भावव्यजना तीव्रता से हुई है ।

इसी प्रकार युद्ध के लिए चलती हुई सेना के वर्णन मे कवि ने छन्द-योजना द्वारा ही सेना की गति का अकन किया है ।

शीघ्रता से बाण चलाते हुए लक्ष्मण के बाण सधान और बाण प्रहार की शीघ्रता का अनुमान निम्न छन्द की गति से हो जाता है—

कहिं दिट्ठि मुट्ठि कहिं चावलट्ठि ।
कहिं बद्धु ठाणु कहिं णिहिउ बाणु । ७८. ९. ३—४

निर्वेद भाव को जागृत करने वाला ससार की असारता का प्रतिपादक एक उदाहरण लीजिये—

खडयं—इह संसार दारुणे बहु सरीर सघारणे ।
वसिऊण दो वासरा के के ण गया णरवरा ।।

---

१. पय हय रय ·· पादाघात से उत्पन्न धूलि से जिसने आकाश भर लिया था । सपसाहणाइं—प्रसाधन, अलंकरण सहित । हरि—कृष्ण । जम मुहाइ—यम मुख ।

पुणु परमेसरु सुसमु पयासइ धणु सुरधणु व खणद्धे णासइ।
हय गय रह भड धवलइ छत्तइ सासयाइ णउ पुत्त कलत्तइ।
जंपाणइं जाणइं धय चमरइं रवि उग्गमणे जंति णं तिमिरइं।
लच्छि विमल कमलालय वासिणि णवजलहर चल बुह उवहासिणि।
तणु लायण्णु वण्णु खणि खिज्जइ कालालि मयरंदु व पिज्जइ।
वियलइ जोव्वणु करयलजलु णिवडइ माणुसु णं पिक्कउ फलु।[1] ७१.

अर्थात् इस दारुण ससार में दो दिन रह कर कौन से राजा यहाँ से न गये? इसमें धन इन्द्रधनुष के समान क्षण में नष्ट हो जाता है। हाथी, घोड़े, रथ, भट, धवल छत्र, पुत्र, कलत्र कुछ भी स्थायी नही। पालकी, यान, ध्वजा, चामर सब सूर्योदय पर अन्धकार के समान विलीन हो जाते है। विद्वानो का उपहास करने वाली कमलालया जलधर के समान अस्थिर है। शरीर, लावण्य और वर्ण सब क्षण मे क्षीण हो जाता है, काल भ्रमर से मकरद के समान पी लिया जाता है। करतलस्थित जल के समान यौवन विगलित हो जाता है। मनुष्य पक्वफल के समान गिर पडता है।

इसी प्रकार ससार को असार बताने वाले और निर्वेद भाव को जगाने वाले अनेक स्थल है।

प्रकृति वर्णन—यहा पुराण में चरित नायको के वर्णन के अतिरिक्त अनेक दृश्यों का मनोमुग्धकारी और हृदयहारी वर्णन कवि ने किया है। ऐसे स्थलों से महापुराण भरा हुआ है। सूर्योदय (म० पु० ४. १८. १९, १६.२६), चद्रोदय (४. १६, १६.२४) सूर्यास्त (४. १५, १३.८) सध्या (७३.२), नदी (१२.५–८), ऋतु (२. १३, २८.१३, ७०.१४–१५), सरोवर (८३.१०), गगावतरण (३९.१२–१३) आदि वर्णनो, में कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग प्रदर्शित होता है।

प्राकृतिक दृश्यों में कवि ने प्रकृति का आलम्बन रूप से सश्लिष्ट वर्णन किया है। और इनमें अनेक नवीन और मानव जीवन से संबद्ध उपमानो का प्रयोग हुआ है। अनेक स्थलों पर नवीन कल्पना का परिचय भी मिलता है। उदाहरण के लिये सूर्यास्त का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—[2]

---

१ सुसमु—सुन्दर शमयुक्त। सासयाइं—शाश्वत। जंपाणइं—पालकी। कालालि—काल रूपी भ्रमर से मकरंद के समान पान कर लिया जाता है।

२. रमणिहिं सहुं रमणु णिविट्ठु जाम, रवि अत्थ सिहरि संपत्तु ताम।
रत्तउ दीसइ णं रइहि णिलउ, णं वरुणासा वहु घुसिण तिलउ।
णं सग्ग लच्छि माणिक्कु ढलिउ, रत्तुप्पलु णं णहसरहु घुलिउ।
णं मुक्कउ जिण गुण मुद्धएण, णिय रायपुंजु मयरद्धएण।
अद्धद्धउ जलणिहि जलि पइट्ठु, णं दिसि कुंजर कुंभयलु दिट्ठु।
कुंकुम छवि रंजिय सायरंभु, णं दिण सिरिणारिहि तणउ गब्भु।

रक्त वर्ण सूर्य ऐसा प्रतीत होता है, मानो रति का निलय हो, या पश्चिमाशावधू का कुकुम तिलक हो, मानो स्वर्ग लक्ष्मी का माणिका ढलक गया हो, या नभ-सरोवर का रक्त-कमल गिर पड़ा हो, अथवा जिन के गुणो पर मुग्ध हुए मकरध्वज ने अपना राग-पुज छोड दिया हो, या समुद्र में अर्ध प्रविष्ट सूर्य-मडल दिग्गज के कुम्भ के समान प्रतीत हो, निज छवि से सागर जल को रजित करता हुआ सूर्य मानो दिनश्री-नारी के पतित गर्भ के समान गोचर हो । रक्तमणि भुवनतल मे भटकते-भटकते वास को न पाकर मानों पुन रत्नाकर की शरण में गया हो, अस्तगत सूर्य ऐसा जान पडता है मानो जल भरती हुई लक्ष्मी का कनकवर्ण कलश छूट कर जल मे डूब गया हो। सध्या के राग से रजित पृथ्वी ने पृथ्वीपति के विवाह पर धारण किया हुआ कुसुभी रग का वस्त्र मानो अब उतारा हो।

निम्नलिखित सूर्यास्त वर्णन मे कवि ने प्रकृति के साथ मानव जीवन का कैसा संश्लेष किया है—

जिह फुरियउ दीवय दित्तिउ तिह कंताहरणह दित्तियउ।
जिह संझा राएं रंजियउ तिह वेसा राएं रंजियउ।
जिह दिसि दिसि तिमिरइं मिलियइं तिह दिसि दिसि जारइं मिलियइं।
जिह रयणिहि कमलइं मउलियइं तिह विरहिणि वयणइं मउलियइं।
१३.८

अर्थात् जैसे दीपको की दीप्ति स्फुरित हुई वैसे ही स्त्रियो के आभरणो की दीप्ति । जैसे सध्या राग से रजित हो गई वैसे ही वेश्या भी । जैसे सब दिशाओं में अधकार-मिलन होने लगा वैसे ही जार-मिलन । जैसे रात्रि के कमल मुकुलित हुए वैसे ही विरहिणी के मुख कमल ।

निम्नलिखित सन्ध्या वर्णन में प्रकृति और मानव का बिंब प्रतिबिंब भाव से वर्णन है—

दुवई— माणव भवण भरह खेत्तोवरि वियरण गमिय वासरो।
सीया राम लक्खणाणंदु व जामत्थमिओ दिणेसरो।
७३.२

कवि कहता है कि सीता हरण के अनन्तर सीता राम और लक्ष्मण के आनन्द के अस्त हो जाने के समान सूर्य भी अस्त हो गया ।

आहिंडिवि भुवणु अलद्ध वासु, णं गयउ रयण रयणायरासु।
लच्छीहि भरंतिहि कणयवण्णु, णिच्छुट्टवि कलसु व जलि णिमण्णु।
घत्ता—पुण संझा देवयस दिस महि, रंजिवि राएं विप्फुरिय।
कोसंभु चीरु णं पंगुरिवि, णाह विवाहइ अवयरिय ।।
म० पु० ४–१५

मानव जगत् और प्राकृतिक जगत् का बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप से चित्रण निम्नलिखित उद्धरण मे बहुत ही रम्य हुआ है। इस उद्धरण मे अस्त होते हुए सूर्य और अस्त होते हुए शूरवीरो का वर्णन करते हुए सायकाल और युद्धभूमि में साम्य प्रदर्शित किया गया है।

एत्तहि रणु कय सूरत्थवणउं एत्तहि जायउं सूरत्थवणउं।
एत्तहि वीरहं वियलिउ लोहिउ एत्तहि जगु संझारुइ सोहिउ।
एत्तहि कालउ गयमय विब्भमु एत्तहि पसरइ मंदु तमीतमु।
एत्तहि करिमोत्तियइं विहत्तइं एत्तहि उग्गमियइं णक्खत्तइं।
एत्तहि जयणरवइ जसु धवलउ एत्तहि धावइ ससियर मेलउ।
एत्तहि जोह विमुक्कइं चक्कइं एत्तहि विरहें रडियइं चक्कइं।
कवणु णिसागमु किं किर तहिं रणु एउ ण बुज्झइ जुज्झइ भडयणु।

२८. ३४. १–७

अर्थात् इधर रणभूमि में सूर-शूरवीरो–का अस्त हुआ और उधरसाय काल सूर-सूर्य-का। इधर वीरो का रक्त विगलित हुआ और उधर जगत् सन्ध्या-राग से शोभित हुआ। इधर काला गजो का मद और उधर धीरे-धीरे अन्धकार फैला। इधर हाथियो के गडस्थलो से मोती विकीर्ण हुए और उधर नक्षत्र उदित हुए। इधर विजयी राजा का धवल यश बढा और उधर शुभ्र चन्द्र। इधर योधाओं से विमुक्त चक्र और उधर विरह से आक्रन्दन करते हुए चक्रवाक। उभयत्र सादृश्य के कारण योद्धागण निशागम और युद्धभूमि मे भेद न कर पाये और युद्ध करते रहे।

इस सायकाल और युद्ध भूमि के साम्य प्रतिपादन द्वारा कवि ने युद्धभूमि में सैनिकों, हाथियों, घोडो और अस्त्रो आदि की निविडता और तज्जन्य अन्धकार सदृश धूलिप्रसार का अंकन भी सफलता के साथ किया है।

गगा नदी के विषय में कवि कहता है—

घत्ता—पंडुर गंगाणइ महियलि घोलइ किंणर सर सुह भंतहों।
अवलोइय राएं छुडु छुडु आएं साडी णं हिमवंतहो।

१२. ५. २९–३०

णं सिहरि घरारोहण णिसेणि ण रिसहणाह जसरयण खाणि।
....

ण विसम विडप्प भउत्तसंति धरणियलि लीणी चंदकंति।
ण णिद्ध धोय कल होय कुहिणि णं कित्तिहि केरी लहुय बहिणि।
गिरि राय सिहर पीवर थणाहि ण हारावलि बसुहंगणाहि।
....

सिय कुडिल तहु जिणं भूइरेह णं चक्कवट्टि जय विजय लीह।
....

णिग्गय णयवम्मीयहु सवेय विस पउर णाइं णाइणि सुसेय।
हंसावलि वलय विइण्णसोह उत्तर दिसि णारिहि णाइबाहु।

घत्ता—बहु रयण णिहाणहु सुट्ठु सुलोणहु धवल विमल मंथरगइ।
सायर भत्तारहु सइं गंभीरहु मिलिय गंपि गंगाणइ।

१२. ६

जहिं मच्छ पुच्छ परियत्तियाइं सिप्पि उडुच्छलियइं मोत्तियाइं।
घेप्पंति तिसाहय गीयएहिं जल बिन्दु भणिवि बप्पीहएहिं।
जल रिट्ठहिं पिज्जइ जलु सुसेउ तम पुंजहिं णावइ चंद तेउ।
जहिं कीरउलइं कीलारयाइं दहि कुट्टिमि णावइ मरगयाइं।

१२. ७.

झसणयणी विब्भमणाहि गहिर णव कुसुम विमीसय भमर चिहुर।
मज्जंत कुंभि कुंभत्थणाल सेवाल णाल णेतंचलाल।
तड विडवि गलिय महु घुसिण पिंग चल जल भंगावलि वलितरंग।
सिय घोलमाण डिंडीर चीर पवणुद्धय तार तुसार हार।[1]

१२. ८.

अर्थात् शुभ्र गगा नदी को महीतल में बहते हुए राजा ने देखा। वह हिमाचल की साडी के समान प्रतीत होती थी। वह गगा मानो पर्वतशिखर-गृह पर चढने के लिए सीढी हो, मानो ऋषभनाथ के जय की रत्नखान हो, मानो कठोर राहु के भय से डरती हुई चद्र कान्ति भूमितल में आ गई हो।

·········मानो कीर्त्ति की छोटी बहिन हो, गिरिराज शिखर रूपी पीवरस्तनी वसुधा-नारी का हार हो, मानो श्वेत और कुटिल भस्म रेखा हो, चक्रवर्ती राजा की जय विजय रेखा हो, मानो वल्मीक पर्वत से सवेग विष प्रचुर श्वेत नागिनी निकली हो, मानो उत्तर दिग्वधू की बाहु हो जिस पर हस पक्ति रूपी वलय शोभा दे रहा हो। धवल विमल मथर गति वाली गगा मानो बहुरत्न निधान, सुन्दर गम्भीर सागर भर्त्ता से मिलने के लिए जा रही हो।

जिस गगा में मत्स्यों के पुच्छ से अभिहत और उच्छलित सिप्पियाँ मोतियो के समान प्रतीत होती है, जहाँ तृष्णा से शुष्क कठ वाले पपीहे गगा जल को साधारण जल बिन्दु कह कर फेंक देते है, जहाँ तमपुज के चन्द्रतेज के पान के समान, जल काक शुभ्र जल पीते है, जहाँ क्रीडारत शुककुल दही के फर्श पर मरकत मणियो के समान प्रतीत होते हैं।

मत्स्य रूपी नयनों वाली, आवर्त्त रूपी गभीर नाभि वाली, नवकुसुम-मिश्रित भ्रमर रूपी केशपाश वाली, स्नान करते हुए हाथियों के गडस्थल के समान स्तन

---

१. विडप्प·—राहु के भय से डरती हुई। णय वम्मीयहु—वल्मीक पर्वत से। सवेय—सवेग। परियत्तियाइं—प्रताडित। तिसाहयगीयएहिं—प्यास से सूखे कंठ वाले। जलरिट्ठेहिं—जल काकों से। झसणयणी—मत्स्य रूपी आँखों वाली।

वाली, शैवाल रूपी नील चचल नेत्र वाली, तटस्थित वृक्षो से पतित मधु रूपी कुंकुम से पिंग वर्ण वाली, चचल जलतरग रूपी वलिवाली, श्वेत बहते हुए झाग रूपी वस्त्र वाली, पवनोद्धत शुभ्र तुषार रूपी हार वाली गंगा शोभित होती है।

कवि ने २. १३ में पावस का वर्णन किया है। कवि पावस के नाद और वर्णजन्य प्रभाव से अधिक प्रभावित हुआ है। पावस का वर्णन आँखों में कालिमा और कानों में गर्जन उपस्थित करता है। विष और कालिंदी के समान कृष्ण मेघो से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया है। गज गडस्थल से उडाए मत्त भ्रमरसमूह के समान काले-काले बादल चारो ओर छा रहे हैं। निरन्तर वर्षा धारा से भूतल भर गया है। विद्युत् के गिरने के भयंकर शब्द से द्युलोक और पृथ्वीलोक का अन्तराल भर गया है। नाचते हुए मत्त मयूरो के कलरव से कानन व्याप्त हैं। गिरि नदी के गुहा-प्रवेश से उत्पन्न सर-सर नाद से भयभीत वानर चिल्ला रहे हैं। आकाश इन्द्र धनुष से अलकृत मेघ रूपी हस्तियों से घिर गया है। बिलो में जलधारा प्रवेश से सर्प क्रुद्ध हो उठे हैं। पी पी पुकारता हुआ पपीहा जलबिन्दु याचना करता है। सरोवरो के तटो पर हस पक्ति कोलाहल करने लगी। चंपक, चूत, चदन, चिंचिणी आदि वृक्षो में प्राण स्फुरित हो उठा।[1]

शब्द योजना से एक प्रकार की ऐसी ध्वनि निकलती सी प्रतीत होती है कि बादलो के अनवरत शब्द से आकाश दिन और रात भरा हुआ है और रह रह कर बिजली की चमक दिखाई दे जाती है। वर्षा की भयकरता और प्रचडता का शब्दो में

---

१. विस कालिंदि कालणव जलहर पिहिय णहंतरालओ।
घुय गय गंड मंडलुड्डाविय चल मत्तालिमेलओ।
अविरल मुसल सरिस थिर धारा वरिस भरंत भूयलो।
······

पडु तडि वडण पडिय विघडायल रुंजिय सीह दारुणो।
णच्चिय मत्त मोर गल कलरव पूरिय सयल काणणो।
गिरि सरि दरि सरंत सरसर भय वाणर मुक्कणीसणो।
·········

घण चिक्खल्ल खोल्ल खणि खेड्डय हरिण सिलिंब कयवहो।
·········

सुरवइ चाप तोरणालंकिय घणकरि भरिय णह हरो।
विवर मुहोयरंत जल पवहारोसिय सविस विसहरो।
पिय पिय पियलवंत बप्पीहय मग्गिय तोय बिंदुओ।
सरतीखल्ललंत हंसावलि झुणि हल बोल संजुओ।
चंपय चूय चार चव चंदण चिंचिणि पीणियाउ सो।

म० पु० २—१३.

अभाव है।

वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने जहाँ अन्य पदार्थों का अकन किया है वहाँ एक ही घत्ता मे वसन्त के प्रभावातिशय का ऐसा मनोहारी चित्रण किया है जो लम्बे-लम्बे वर्णनो से भी नही हो पाता। कवि कहता है—

घत्ता—अंकुरियउ कुसमिउ पल्लविउ महु समयागमु विलसइ।
वियसंति अचेयण तरु वि जहिं तहिं णरु किं णउ वियसइ॥

२८. १३ १०-११

अर्थात् अकुरित कुसुमित पल्लवित बसन्तागम शोभित होता है। जिस समय अचेतन वृक्ष भी विकसित हो जाते है उस समय क्या चेतन नर विकसित न हो?

प्रकृति को चेतन रूप में भी कवि ने (५.३.१२–१४) लिया है। प्रकृति का परपरागत वर्णन करता हुआ भी कवि प्रकृति को जीवन से सुसबद्ध देखता है अतएव ऐसे दृश्य जो मानव जीवन से सम्बद्ध है कवि की दृष्टि से ओझल नही हो पाते।

वैत्ताढ्य पर्वत का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

निसि चंदयंत सलिलेहिं गलइ वासरि रवि मणि जलणेण जलइ
माणिक्क पहा दिण्णावलोउ जहिं चक्कवाय ण मुणंति सोउ।

८. ११. ९–१०

अर्थात् यह पर्वत रात्रि के चन्द्रकान्त मणियो से झरते जलो से आप्लावित रहता है, दिन मे सूर्यकान्त मणियो से उत्थित अग्नियो से प्रज्वलित रहता है, माणिक्य प्रभा से आलोकित इस प्रदेश मे रात्रि के अभाव से चक्रवाक पक्षियो को वियोग दु ख का अनुभव ही नही होता।

इसी प्रसग मे सहसा कवि कह उठता है—

जहिं दक्खामंडव यलि सुयंति पहि पंथिय दक्खा रसु पियंति।
धवलूढ जंत पी लिज्जमाणु पुंडुच्छु खंड रसु पवहमाणु।
कह कव्व रसु व जण पियइ ताम तित्तीइ होइ सिर कंपु जाम।
जहिं पिक्क कलम कणिसइं चरंति सुय दूयत्तणु हलिणिहिं करंति।
घत्ता—सिरि सयणहिं णं वहुवयणहिं विलसंती दिणि रायइ।
जहिं पोमिणि कलमहुयर झुणि णं भाणुहि गुण गायइ।

८. १२. १२–१७

अर्थात् जहाँ पथिक द्राक्षा मडप के नीचे सोते है और मार्ग में द्राक्षारस पीते है, जहाँ वृषभ-वाहित-यंत्र से पेरे जाते हुए पौडे गन्ने के बहते हुए रस को लोग कवि-काव्यरस के समान तब तक पीते है जब तक कि तृप्ति से सिर झूम नही पडता। जहाँ पके धान के कणो को शुक खाते है और कृषक कन्याओ के लिए दूतत्व का काम करते है। जहाँ कमलिनी अनेक पद्म रूपी मुखो से दिन में शोभित होती है और मधुर-मधुकर गुंजार ध्वनि से मानो सूर्य के गुण गाती है।

भिन्न-भिन्न प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते हुए कवि ने बीच में कही कही ऐसे

दृश्य भी रख दिये हैं जो ग्लानि या उद्वेग उत्पन्न करते हैं और जिनका प्रयोग खटकता है।

सन्ध्या वर्णन के प्रसंग में सागर तल पर फैली लालिमा के विषय मे कवि कहता है—

"णं दिण सिरि णारिहि तणउ गब्भु"

४. १५. ९

अर्थात् मानो दिवसश्रीनारी का गर्भ गिरा हो। इसी प्रकार सूर्य के लिए भिन्न-भिन्न उपमानो का प्रयोग करता हुआ कवि एक स्थान पर कहता है—

"णं दिसि णिसियरि मुह मास गासु"

४. १९. ६

मानो दिशा रूपी निशाचरी के मुख में मास का ग्रास हो।

इसी प्रकार गंगा का वर्णन करते हुए कवि ने जहाँ अनेक उपमानो का प्रयोग कर गंगा के सौन्दर्य की व्यजना की है वहाँ गगा को वल्मीक से सवेग निकलती हुई जहरीली श्वेत नागिनी कह कर हृदय को भयभीत कर यिया है—

णिग्गय णय वम्मीयहु सवेय विसपउर णाइ णाइणि सुसेय।

१२. ६. १०

अलकार योजना—कवि ने अपनी भाषा को भिन्न-भिन्न अलकारो से अलकृत किया है। शब्दालंकारो में यमक, श्लेष, अनुप्रास और अर्थालकारो मे उपमा, व्यतिरेक, विरोधाभास, भ्रान्तिमान्, अपह्नुति, अनन्वय आदि अलकारो के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

उपमा अलंकार में बाण के समान, शब्द साम्य के आधार पर दो वस्तुओं में साम्य प्रदर्शन भी मिलता है। यथा—

"सुर भवणु व रंभाइ पसाहिउ उज्झाउ व सुयम सत्यहिं सोहिउ"

९. १४. ६

वन का वर्णन करता हुआ कवि करता है कि वन सुरभवन के समान रभा—कदली वृक्ष—से अलकृत था। उपाध्याय के समान सुय सत्य अर्थात् श्रुतगास्त्र शिष्यो—शुक सार्थ—से अलकृत था।

कुछ अन्य अलंकारो के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

अनन्वय **रूवें विक्कमेण गोत्तें बलेण णय जुयत्तें।**
तुज्झु समाण तुहं किं अण्णें माणुस मेत्तें॥

१५. ७. १७-१८

यमक

उववणइं विविहवच्छं कियाइं गोउलइं धवलवच्छं कियाइं।
जहिं मंडव दक्खाहल वहंति घरि घरि करिसणयहं हल वहंति।

३९. १. ८-९

व्यतिरेक

णउ मयकलंक पडलें मलिणु ण धरइ खय वंकत्तणु ।
मुहुं मुद्धहि चंदें समु भणमि जइ तो कवणु कइत्तणु ।।

५४ १. १४-१५.

यदि उस सुन्दरी का मुख मै चन्द्र के समान कहूँ तो मेरा क्या कवित्व ? उसके मुख मे न मृगाक के समान कलक है व मलिनता, वह मुख क्षय (खय) रहित है और न उसमें वक्रता है ।

विरोध

घत्ता—कुवलय बंधु विणाहु णउ दोसायरु आयउ ।
जो इक्खाउहि वंसि णरवइ रूढिइ आयउ ।।

६९. ११

राजा दशरथ, कुवलय बन्धु होते हुए भी दोषाकर—चन्द्रमा—न था अर्थात् दशरथ कुवलय—पृथ्वी मंडल—का बन्धु होते हुए भी दोषों का आकर नहीं था ।

भ्रान्तिमान्

रंधायार थियउ अंधारइ दुद्धसंक पयणइ मज्जारइ ।
रइ पासेय विंदु तेणुज्जलु दिट्ठु भुयंगहि णं मुत्ताहलु ।
....
मोरें पंडुरु सप्पु वियाप्पिवि मुद्धें कहं व ण गहिउ झडप्पिवि ।

१६. २४. ९-१२

अर्थात् जहाँ बिल्ली छिद्रो से प्रवेश करती हुई चन्द्र किरणों से शुभ्र हुए अंधकार को दूध समझ कर पी रही है । रति—प्रस्वेद—बिन्दुओं को भुजंग मुक्ताफल समझता है ।...रध्रो से प्रवेश करती हुई चन्द्र किरणो को श्वेत सर्प समझ कर मूढ़ मयूर ने कितनी बार झपट कर नहीं पकड़ा ?

परिसंख्या—जहिं हयवरु हरि णउ णारीयण वंसु जि छिद्दसहिउ णउ पुरयण ।
अंजणु णयणि जेत्थु ण तवोहणि णायभंगु गारुडि ण धणज्जणि ।
जहिं कुंजरु भण्णइ मायंगउ णउ माणवु कइ वि मायं गउ ।।[1]

२२. ३.

अलंकारो के प्रयोग में कवि ने एक विशेष प्रकार के अलंकरण से काम लिया है । इसमें दो वस्तुओ या दृश्यों का साम्य प्रदर्शित किया गया है । उपमा में एक उपमेय के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपमानों का प्रयोग होता ही रहा है । रूपक में उपमेय और उपमान के अत्यधिक साम्य के कारण एक का दूसरे पर आरोप कर दिया जाता है। साग रूपक में यह आरोप अगो सहित होता है । कवि ने एक उपमेय और एक उपमान

---

१. हयवर—हत है वर जिसका । अंजणु—अजन, पाप । णायभंगु—नाग भंग, न्याय भंग । मायं गउ—माया को प्राप्त ।

को लेकर उपमेय के भिन्न-भिन्न अंगो और उपमान के भिन्न-भिन्न रूपों का साम्य प्रदर्शित करते हुए दो वस्तुओ का अलग-अलग पूर्ण चित्र उपस्थित किया है। इस प्रकार का साम्य कभी श्लिष्ट शब्दो द्वारा, कभी उपमेय और उपमानगत साधारण धर्म द्वारा और कभी उपमेय और उपमानगत क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित उद्धरण में कवि ने गंगा नदी और नारी सुलोचना का साम्य प्रदर्शित किया है—

चमु चालिय पुणु दिण्णउं पयाणु पत्तउ सुर सरि जल मज्झ ठाणु।
जोयवि गंगहि सारसहं जुयलु जोयइ कंतहि थणकलस जुयलु।
जोयवि गंगहि सुललिय तरंग जोयइ कंतहि तिवली तरंग।
जोयवि गंगहि आवत्तभवंणु जोयइ कंतहि वरणाहि रमणु।
जोयवि गंगहि पप्फुल्ल कमलु जोयइ कंतहि पिउ वयणकमलु।
जोइवि गंगहि वियरंत मच्छ जोयइ कंतहि चलदीहरच्छ।
जोइवि गंगहि मोत्तियह पंति जोयइ कंतहि सियदसण पंति।
जोइवि गंगहि मत्तालिमाल जोयइ कंतहि धम्मेल्ल णील।
घत्ता—णियगेहिणि वम्मह वाहिणि देवि सुलोयण जेही।
मंदाइणि जग सुह दाइणि दीसइ राएं तेही॥ २९. ७.

अन्तिम घत्ता में कवि ने गृहिणी को काम-नदी कह कर उसमें अत्यधिक प्रेम रस की व्यंजना भी कर दी है।

नदी और सेना की तुलना करता हुआ कवि कहता है।

सरि छज्जइ उग्गय पंकयहिं बलु छज्जइ चित्त छत्त सयहिं।
सरि छज्जइ हंसहिं चलयरहिं बलु छज्जइ धवलहि चामरहि।
सरि छज्जइ संचरंत झसहिं बलु छज्जइ करवालहिं झसहिं।
सरि छज्जइ चक्कहिं संगयहिं बलु छज्जइ रह चक्कहिं गयहिं।
सरि छज्जइ सर तरंग भरहिं बलु छज्जइ चल तुरंगवरहिं।
सरि छज्जइ कीलिय जल करिहिं बलु छज्जइ चल्लिय मयकरिहिं।
सरि छज्जइ बहुमाणुसहिं बलु छज्जइ किंकर माणुसहिं।
सरि छज्जइ सयडहिं सोहियहिं बलु छज्जइ सयडहिं वाहियहिं।
घत्ता—जिह जलवाहिणिय तिह महिवइवाहिणि सोहइ।
.... १५. १२. ५-१३

इसी प्रकार के वर्णन सूर्यास्त वर्णन (१३·८), पर्वत और रिसह का साम्य (३७·१९), वन और सीता का यौवन (७२·२) इत्यादि अनेक स्थलों पर मिलते है।

इस प्रकार के वर्णनों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार अपभ्रंश कवियो ने अनेक छन्दो का निर्माण किया[1] इसी प्रकार उन्होने अनेक अलकरणों की भी सृष्टि की। अपभ्रंश

---

१. देखिये अन्तिम अध्याय—अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी पर प्रभाव।

में छन्द शास्त्र के ग्रन्थ होने के कारण ऐसे छन्दो के विषय में प्रकाश पडा किन्तु अलकार विषयक कदाचित् कोई ग्रन्थ न होने के कारण इस प्रकार के अलकारो का नामकरण भी न हो सका। यद्यपि हिन्दी के वीर काव्यो मे भी इस प्रकार के वर्णन मिलते है।[1] लेखक का विश्वास है कि इस प्रकार के अन्य अलकार भी अपभ्रंश ग्रन्थो मे मिल सकते है। यदि साहित्यिको को रुचिकर हो तो इस विशेष अलकार को ध्वनित रूपक कह सकते है।

भाषा—ग्रन्थ की भाषा मे वाग्धाराओ, लोकोक्तियो और सुन्दर सुभाषितो का प्रयोग किया गया है—

"भुवकउ छणयंदहु सारमेउ" १. ८. ७

पूर्णिमा चन्द्र पर कुत्ता भौके उसका क्या बिगाडेगा ?

"उट्ठाविउ सुत्तउ सीहु केण" १२. १७. ६

सोते सिंह को किस ने जगाया ?

"माणभंगु वर मरणु ण जीविउ"

१६. २१. ८

अपमानित होने पर जीवित रहने से मृत्यु भली।

"को तं पुसइ णिडालइ लिहियउ" २४. ८. ८

मस्तक में लिखे को कौन पोछ सकता है ?

"भरियउ पुणु रित्तउ होइ राय"

३९. ८. ५

भरा खाली होगा।

लूयांसुत्तें वज्झइ मसउ ण हत्थि णिरुज्झइ।

३१. १०. ९

मकडी के जाल सूत्र से मच्छर तो बाँधा जा सकता है हाथी नही रोका जा सकता।

जो गोवालु गाइ णउ पालइ सो जीवंतु दुद्धु ण णिहालइ।
जो मालारु वेल्लि णउ पोसइ सो सुफुल्लु फलु कंव लहेसइ॥

५१. २. १

जो ग्वाला गौ नही पालेगा वह जीवन में दूध कहाँ से देखेगा ? जो मालाकार लतादि का पोषण नही करेगा वह सुन्दर फल फूल कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

अणुरणनात्मक अथवा ध्वन्यात्मक शब्दो का प्रयोग अपभ्रंश कवियो की विशेषता है। महापुराण भी इस प्रकार के शब्दो से खाली नही।

तडि तड यडइ पडइ रुंजइ हरि तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि।

१४. ९. ७

---

१. देखिये वही।

फणि फुप्फुयंतु ८६. २. ६

कवि ने जहाँ पर भी वर्णनो मे प्राचीन परपरा का आश्रय लिया है वहाँ उसकी शैली समस्त, अलंकृत और कुछ क्लिष्ट हो गई है। जहाँ पर परपरा को छोड स्वतन्त्र शैली का प्रयोग किया है वहाँ भाषा अधिक स्पष्ट, सरल और प्रवाहमयी दिखाई देती है। ऐसे स्थलो पर छोटे-छोटे प्रभावोत्पादक वाक्यो द्वारा कवि की भाषा अधिक बलवती हो गई है। प्राचीन परम्परा पर आश्रित भाषा के उदाहरण ऊपर दिये हुए अनेक वर्णनो में देखे जा सकते हैं। प्राचीन परपरा से उन्मुक्त स्वतन्त्र भाषा शैली का उदाहरण निम्नलिखित उद्धरण में देखिये—

पत्थरेण किं मेरु दलिज्जइ, किं खरेण मायंगु खलिज्जइ।
खज्जोएं रवि णित्तेइज्जइ, किं घुट्टेण जलहि सोसिज्जइ।
गोप्पएण किं णहु माणिज्जइ, अण्णाणें किं जिणु जाणिज्जइ।
वायसेण किं गरुडु णिरुज्झइ, णवकमलेण कुलिसु किं विज्झइ।
करिणा किं मयारि मारिज्जइ, किं वसहेण वग्घु दारिज्जइ।
किं हंसें ससंकु धवलिज्जइ, किं मणुएण कालु कवलिज्जइ।

१६. २०. ३-८

अर्थात् क्या पत्थर से मेरु दलित किया जा सकता है? क्या गधे से हाथी पीडित किया जा सकता है? क्या जुगनू से सूर्य निस्तेज किया जा सकता है? क्या घूट घूट से समुद्र सुखाया जा सकता है? क्या गोपद आकाश की समता कर सकता है ?अज्ञान से क्या जिन भगवान् का ज्ञान हो सकता है? क्या कौआ गरुड को बाधा पहुँचा सकता है? एक नव कमल से क्या कुलिश विद्ध किया जा सकता है? हाथी से क्या सिंह मारा जा सकता है? वृषभ से क्या व्याघ्र विदीर्ण किया जा सकता है? इत्यादि

इस प्रकार की शैली में श्लिष्ट शब्दो के प्रयोग से भी भाषा की सरलता और गति नष्ट नही हुई—

खग्गें मेहें किं णिज्जलेण, तरुणा सरेण किं णिप्फलेण।
मेहें कामें किं णिद्दवेण, मुणिणा कुलेण किं णित्तवेण।
कव्वें णडेण किं णीरसेण, रज्जें भोज्जें किं पर वसेण।

५७. ७. १-३

अर्थात् पानी रहित मेघ से और खड्ग से क्या लाभ? फल रहित वृक्ष और वाण से क्या प्रयोजन? द्रवित न होने वाला मेघ और काम व्यर्थ है। तप रहित मुनि और कुल किस काम का? नीरस काव्य और नट से क्या लाभ? पराधीन राज्य और भोजन से क्या?

ग्रन्थ की भाषा में अनेक शब्द रूप ऐसे है जो हिन्दी के बहुत निकट है।[1]

---

१. उदाहरण के लिए कुछ शब्द नीचे दिये जाते है—
अवसें—अवश्य १५. २२. १७। **कप्पड**—कपड़ा ३६. ८. ९

छंद—कवि ने महाकाव्यानुकूल प्रत्येक सन्धि में भिन्न प्रकार के छन्द का प्रयोग किया है। यद्यपि सन्धि के प्रत्येक कडवक में छन्द योजना परिवर्तित नही तथापि कड़वक के आदि का छद प्रायः प्रत्येक सन्धि मे भिन्न है। ८वी सन्धि के ७ वें कडवक में कवि ने दुवई युग्म का प्रयोग किया है जिसमें दाम यमक श्रृंखला यमक भी प्रयुक्त है। दुवई युग्म जिस शब्द से समाप्त होता है उसी शब्द से दूसरा दुवई युग्म प्रारम्भ होता है (जैसे म० पु० पृष्ठ १२८)। कवि ने मात्रिक छन्दो का अधिकता से प्रयोग किया है। छन्द चाहे मात्रिक हो चाहे वर्णिक सब मे अन्त्यानुप्रास (तुक) का प्रयोग मिलता है।

कसेरु—तृण १. ३. १२
गिल्ल—गीला २९. ५.३
चक्खइ—खाता है, चखता है २. १९. ४
चडइ—चढता है २. १६. १
चंग—अच्छा ९. ४. १४
चुक्कइ—चूकता है ४. ८. ५
छंडइ—छोडता है ७. १९. १५
छिवइ—छूता है ४. ५. १३
छिंक—छिक्का २६. ४. २
जेंवइ—खाता है १८. ७. ११
जोक्खइ—तोलता है ४. ५. ५
झंपउ—आँखे बन्द करना १२. १२. ५
डर—भय २५. ८. ९
डंकिय—दष्ट ३०. १२. ८
डाल—शाखा १. १८. २
डोल्लइ—काँपना ४. १८. २. १५. १८. ३
पत्तल—पतला १७. १०. १
पलट्टिअ—परिवर्तित ३३. ६. १३
पासुलिया—पसलियाँ ७. १२. ४
पाहुण—पाहुना २४. १०. ७
बुक्करइ—भौंकता है ७. २५. ५
बुड्डइ—डूबता है ३३. ११. ११
बोल्लइ—बोलता है ८. ५. १७
भंउहा—भौं ५२. ८. २
भल्ल—भद्र ४. ५. ७
रहट्ट—अरहट २७. १. ४
रंगइ—रीगता है ४. १. ११
रंडिय—विधवा हुई १७. ९. १०
रोल—कोलाहल १४. ५. ९
लीह—रेखा, पजाबी लीख १२. ६. ७
लुक्क—छिपना, पजाबी लुकना ९. १४. १२
ढलइ—गिरता है ८. ९. १२
ढंकइ—ढाँकता है १. १३. १०
ढिल्लीहूय—शिथिल, ढीला होकर ३२. ३. ५
तिया—स्त्री १. १५. ४
तोंद—उदर २०. २३. ३
दाढा—दंष्ट्रा १८. १. १५
दोर—सूत्र, डौरा २. १६. २
पच्छाउहुं—पश्चान्मुख ३३. ११. ३
भिडिअ—सामने भिड़ा १७. १. १
भुक्कइ—भौंकता है १. ८. ७
भोल—भोला २. २०. ७
साडी—साड़ी १२. ५. ३
सिप्पि—सीप ४. ६. ११
सोण्णार—सुनार ३१. ७. २
हट्ट—हाट पंजाबी १. १६. १
हल्लइ—काँपता है, हिलता है १४. ५. ११

सन्धियों में न तो कड़वकों की संख्या निश्चित है और न कड़वकों मे चरणों की संख्या।

भविसयत्त कहा[1]

इस ग्रन्थ का लेखक धनपाल धक्कड़ वैश्य वंश में उत्पन्न हुआ था। उसके पिता का नाम माएसर (मायेश्वर) और माता का नाम धणसिरि (धनश्री) था।[2] वैश्य कुल मे उत्पन्न होते हुए भी इसे अपनी विद्वत्ता का अभिमान था और इसने बड़े गौरव के साथ अपने आप को सरस्वती पुत्र कहा है (सरसइ बहुलद्ध महावरेण भ० क० १.४)

डा० याकोबि के अनुसार धनपाल १०वी सदी से पूर्व नही माना जा सकता। श्री दलाल और गुणे ने भविसयत्त कहा की भूमिका में यह सिद्ध किया है कि धनपाल की भाषा हेमचन्द्र की अपभ्रंश से प्राचीन है। इसमें शब्द रूपों की विविध रूपता और व्याकरण की शिथिलता है जो हेमचन्द्र की भाषा मे नही। हेमचन्द्र ने अपने छन्दोनुशासन में अनेक प्रसिद्ध पिंगल शास्त्रज्ञो के साथ स्वयंभू का नाम भी लिया है और हेमचन्द्र ने अनेक स्थल स्वतन्त्र या परिवर्तित रूप से स्वयभू से लिये हैं।[3] भविसयत्त कहा और पउम चरिउ के शब्दो में समानता दिखाते हुए प्रो० भायाणी ने निर्देश किया है कि भविसयत्त कहा के आदिम कड़वकों के निर्माण के समय धनपाल के ध्यान मे पउम चरिउ था।[4] इसलिए धनपाल का समय स्वयंभू के बाद और हेमचन्द्र से पूर्व ही किसी काल में अनुमित किया जा सकता है।

इस महाकाव्य की कथा लौकिक है। इस काव्य को लिखकर कवि ने परम्परागत ख्यातवृत्त नायक पद्धति को तोड़ा। अपभ्रंश में लौकिक नायक की परम्परा का एक प्रकार से सूत्रपात सा किया। इसकी रचना श्रुत पचमी व्रत का माहात्म्य प्रतिपादन करने के लिए की गई।

कथा—इस महाकाव्य की कथा तीन अंगों या खण्डो में विभक्त की जा सकती है, यद्यपि ग्रन्थ में इस प्रकार का कोई विभाग नही।

१. एक व्यापारी के पुत्र भविसयत्त की सम्पत्ति का वर्णन।

---

१. श्री दलाल और गुणे द्वारा संपादित, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, ग्रंथांक २०, १९२३ ई० में प्रकाशित।

२. धक्कड वणि वंसे माएसरहो समुब्भविण
धण सिरि हो वि सुवेण विरइड़ सरसइ संभविण। भ० क० १. ९

३. स्वयभु एंड हेमचन्द्र—एच. सी. भायाणी, भारतीय विद्या, (अंग्रेजी) भाग ८, अंक ८–१०, १९४७, पृ० २०२–२०६।

४. दि पउम चरिउ एंड दि भविसयत्त कहा—प्रो० भायाणी भारतीय विद्या (अंग्रेजी) भाग ८, अंक १–२, १९४७, पृ० ४८–५०।

भविसयत्त अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त से दो बार धोखा खाकर कष्ट सहता है किन्तु अन्त मे उसे जीवन मे सफलता मिलती है।

२. कुरुराज और तक्षशिलाराज मे युद्ध होता है। भविसयत्त भी उसमे मुख्य भाग लेता है और अन्त में विजयी होता है।

३. भविसयत्त के तथा उसके साथियो के पूर्वजन्म और भविष्य जन्म का वर्णन।

विद्वानो और दुर्जनो के स्मरण एवं आत्म विनय के साथ कथा का आरम्भ होता है। संक्षेप मे कथा इस प्रकार है—

गजपुर मे धनपाल नामक एक व्यापारी था जिसकी स्त्री का नाम कमलश्री था। उनके भविष्यदत्त नामक एक पुत्र था। धनपाल सरूपा नामक एक सुन्दरी से दूसरा विवाह कर लेता है और परिणामस्वरूप अपनी पहली पत्नी और पुत्र की उपेक्षा करने लगता है। धनपाल और सरूपा के पुत्र का नाम बधुदत्त रखा जाता है। युवावस्था में पदार्पण करने पर बधुदत्त व्यापार के लिए कचनद्वीप निकल पड़ता है। उसके साथ ५०० व्यापारियो को जाते देख भविष्यदत्त भी अपनी माता की अनुमति से, उनके साथ हो लेता है। समुद्र मे यात्रा करते हुए दुर्भाग्य से उसकी नौका आँधी से पथ-भ्रष्ट हो मैनाक द्वीप पर जा लगती है। बधुदत्त धोखे से भविष्यदत्त को वही एक जगल मे छोड़ कर स्वय अपने साथियो के साथ आगे निकल जाता है। भविष्यदत्त अकेला इधर उधर भटकता हुआ एक उजडे हुए किन्तु समृद्ध नगर मे पहुँचता है। वही एक जिन मदिर मे जाकर वह चन्द्रप्रभ जिन की पूजा करता है। उसी उजडे नगर मे वह एक दिव्य सुन्दरी को देखता है। उसी से भविष्यदत्त को पता चलता है कि वह नगर जो कभी अत्यन्त समृद्ध था एक असुर द्वारा नष्ट कर दिया गया। कालान्तर में वही असुर वहाँ प्रकट होता है और भविष्यदत्त का उसी सुन्दरी से विवाह करा देता है।

चिरकाल तक पुत्र के न लौटने से कमलश्री उसके कल्याणार्थ श्रुत-पचमी व्रत का अनुष्ठान करती है। उधर भविष्यदत्त भी सपत्नीक प्रभूत सम्पत्ति के साथ घर लौटता है। लौटते हुए उनकी बंधुदत्त से भेंट होती है जो अपने साथियो के साथ यात्रा में असफल हो विपन्न दशा में था। भविष्यदत्त उसका सहर्ष स्वागत करता है। वहाँ से प्रस्थान के समय पूजा के लिए गये हुए भविष्यदत्त को फिर धोखे से वही छोड कर स्वय उसकी पत्नी और प्रभूत धनराशि को लेकर साथियो के साथ नौका मे सवार हो वहाँ से चल पडता है। मार्ग में फिर आँधी से उनकी नौका पथभ्रष्ट हो जाती है और वे सब जैसे तैसे गजपुर पहुँचते है। घर पहुँच कर बधुदत्त भविष्यदत्त की पत्नी को अपनी भावी पत्नी घोषित कर देता है। उनका विवाह निश्चित हो जाता है। कालान्तर में दुःखी भविष्यदत्त भी एक यक्ष की सहायता से गजपुर पहुँचता है। वहाँ पहुँच वह सब वृत्तान्त अपनी माता से कहता है। उधर बन्धुदत्त के विवाह की तैयारियाँ होने लगती है और जब विवाह होने ही वाला होता है वह राजदरबार में जाकर बन्धुदत्त के विरुद्ध शिकायत करता है और राजा को विश्वास दिला देता है कि

वह सच्चा है। फलत बन्धुदत्त दण्डित होता है और भविष्यदत्त अपने माता-पिता और पत्नी के साथ राजसम्मान पूर्वक सुख से जीवन व्यतीत करता है। राजा भविष्य-दत्त को राज्य का उत्तराधिकारी बना अपनी पुत्री सुमित्रा से उसके विवाह का वचन देता है।

इसी बीच पोदनपुर का राजा गजपुर के राजा के पास दूत भेजता है और कहल-वाता है कि अपनी पुत्री और भविष्यदत्त की पत्नी को दे दो या युद्ध करो। राजा उसे अस्वीकार करता है और परिणामत. युद्ध होता है। भविष्यदत्त की सहायता और वीरता से राजा विजयी होता है। भविष्यदत्त की वीरता से प्रभावित हो राजा भविष्यदत्त को युवराज घोषित कर देता है, अपनी पुत्री सुमित्रा के साथ उसका विवाह भी कर देता है, भविष्यदत्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगता है।

कथा के तृतीय खण्ड मे भविष्यदत्त की प्रथम पत्नी के हृदय में अपनी जन्मभूमि मैनाक द्वीप को देखने की इच्छा जागृत होती है। भविष्यदत्त, उसके माता-पिता और सुमित्रा सब द्वीप मे जाते है। वहाँ उन्हें एक जैन भिक्षु मिलता है जो उन्हे सदा-चार के नियमों का उपदेश देता है। कालान्तर में वे सब घर लौटते है। वहाँ विमल-बुद्धि नामक एक मुनि आते है। भविष्यदत्त को अनेक उपदेश देकर उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाते है। भविष्यदत्त अपने पुत्र पर राज्यभार सौप कर विरक्त हो जाता है। वह जगल में जाता है और उसकी पत्नियाँ तथा माता भी उसके साथ तपस्या में लीन हो जाती है। अनशन द्वारा प्राण त्यागकर वह फिर उच्च जन्म धारण करता है और अन्त में निर्वाण को प्राप्त करता है। श्रुत पचमी के माहात्म्य के स्मरण के साथ कथा समाप्त होती है।

इस ग्रन्थ में घटना-बाहुल्य के होते हुए भी घटना-वैचित्र्य उच्च कोटि का नहीं। घटनाओं से एक उपन्यास की रचना हो सकती थी। घटना-बाहुल्य होते हुए भी ग्रन्थ में अनेक काव्यानुरूप सुन्दर स्थल है।

इस काव्य में कवि ने लौकिक आख्यान के द्वारा श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित किया है। कथा के आरम्भ मे इसी व्रत की महत्ता की ओर निर्देश है (भ० क० १. १. १-२) और समाप्ति भी इसी व्रत के स्मरण से होती है। कथा मे भविष्यदत्त को यक्ष की अलौकिक सहायता का निर्देश है। धार्मिक विश्वास के साथ अलौकिक घटनाओं का सम्बन्ध भारतीय विचार-धारा में पुरातन काल से ही चला आ रहा है। कथा में गृहस्थ जीवन का स्वाभाविक चित्र है। बहु-विवाह से उत्पन्न अनिष्ट की ओर कवि ने सकेत किया है। भविष्यदत्त अपनी सौतेली माता और सौतेले भाई से सताया जाकर भी अपनी धर्मनिष्ठ भावना के कारण अन्त में सुखी होता है। कथा में यथार्थ और आदर्श दोनो का समुचित मिश्रण है।

कथानक में कवि ने साधु और असाधु प्रवृत्ति वाले दो वर्गों के व्यक्तियो का चरित्र चित्रित किया है। भविष्यदत्त और बन्धुदत्त, कमला और सरूपा दो विरोधी प्रवृत्तियो के पुरुष और स्त्रियो के जोड़े है। उनका कवि ने स्वाभाविक चित्रण किया

है। सरूपा में सपत्नी-सुलभ ईर्ष्या के साथ स्त्री-सुलभ दया का भी कवि ने चित्र अंकित किया है। इन विरोधी प्रवृत्ति वाले पात्रो के समावेश से कवि ने नायक और प्रति-नायकादि पात्र के प्रयोग का प्रयत्न किया है। पात्रो के स्वभावानुकूल उनके जीवन का विकास दिखाई देता है।

वस्तु वर्णन—कवि ने जिन वस्तुओ का वर्णन किया है उनमें उसका हृदय साथ देता है। अतएव ये वर्णन सरस और सुन्दर है। देशो और नगरो का वर्णन करता हुआ कवि उनके कृत्रिम आवरणो से ही आकृष्ट न होकर उनके स्वाभाविक, प्राकृत अलकरणो से भी मुग्ध होता है। कुरु जागल देश की समृद्धि के साथ-साथ कवि वहाँ के कमल प्रभा से ताम्रवर्ण एव कारंड-हंस-वकादि चुम्बित सरोवरों को और इक्षु रस पान करने वालो को भी नही भूलता।[1]

गजपुर का वर्णन करता हुआ कवि उसके सौन्दर्य से आकृष्ट हो कहता है—

तहिं गयउरु णाउं पट्टणु जण जणियच्छरिउ।
णं गयणु मुएवि सग्ग खंडु महि अवयरिउ॥

भ० क० १. ५.

अर्थात् वहाँ गजपुर नाम का नगर है जिसने मनुष्यो को आश्चर्य में डाल दिया है। मानो गगन को छोड़ कर स्वर्ग का एक खड पृथ्वी पर उतर आया हो। कवि ने थोड़े से शब्दो मे गजपुर की समृद्धि और सुन्दरता को अभिव्यक्त कर दिया है। कवि के इन विचारों में वाल्मीकि रामायण के लंका वर्णन एव कालिदास के मेघदूत में उज्जयिनी वर्णन का आभास स्पष्टरूप से दिखाई देता है।[2] स्वयभू के हरिवंश पुराण मे विराट नगर के और पुष्पदत के महापुराण में पोयण नगर के वर्णन में भी यही कल्पना की गई है।[3]

---

१ जहिं सरइं कमल पह तंबिराइं कारंड हंस वय चुंबिराइं।
........................पुंडुच्छुरसइ लीलइ पियंति॥
भवि० क० पृष्ठ २

२. महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णम्। वा० रामा० ५. ७. ६.
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानाम्।
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खंडमेकम्॥
मेघदूत १. ३०.

३. घत्ता—पट्टणु पइसरिय जं धवल-घरालंकरियउ।
केण वि कारणेण णं सग्ग खंडु ओयरियउ॥
/ रिट्ठ० च० २८. ४.
तहिं पोयण णामु णयरु अत्थि वित्थिण्णउं।
सुर लोएं णाइ धरिणिहि पाहुडु दिण्णउं॥
म० पु० ९२. २. ११-१२

रस—कथा में तीन खड है जिनका ऊपर निर्देश किया जा चुका है। तीनों खंड प्राय. अपने आप मे पूर्ण है। प्रथम खड मे शृङ्गार रस है, द्वितीय में वीर रस और तृतीय में शान्त रस। प्रतीत होता है कि तीनों रसो के विचार से ही कवि ने तीनो खडों की योजना की है।

कमलश्री की शोभा के वर्णन मे कवि ने (भ० क० पृष्ठ ५ पर) नारी के अंग सौन्दर्य के साथ उसकी धार्मिक भावना की ओर भी संकेत किया है। उसके अनुपम सौन्दर्य और सौभाग्य को देख कर कामदेव भी खो जाता है। "सोहग्गे मयरद्धउ खोहइ" इस एक वाक्य में ही कवि ने उसके अतिशय सौन्दर्य और सौभाग्य को अंकित कर दिया।

एक और स्थल (भ० क० पृष्ठ २३-३३) पर भी कवि ने नारी के सौन्दर्य को अकित किया है। नखशिखवर्णन प्राचीन परंपरा के अनुकूल ही है। कवि की दृष्टि बाह्य सौंदर्य पर ही टिकी रही। उसके आन्तरिक सौंदर्य की ओर कवि का ध्यान नही गया। सुमित्रा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है मानो वह लावण्य जल में तिर रही थी (भ० क० १५ १. ७, पृष्ठ १०६)। इस एक वाक्य से कवि ने उसके चचल सौंदर्य का चित्र खड़ा कर दिया है।

कथा के द्वितीय खंड मे वीर रस को कवि ने अंकित किया है। गजपुर और पोयणपुर के राजाओ का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

तो हरि खर खुरग्ग संघट्टिं छाइउ रणु अतोरणे।
णं भडमच्छरग्गि संधुक्कण धूम तमंधयारणे॥

भ० क० पृष्ठ १०२-१०३

अर्थात् घोड़ों के तीक्ष्ण खुराग्रों के संघर्षण से उद्भूत रज से तोरण रहित युद्ध-भूमि आछन्न हो गई। वह रज मानो योद्धाओं की क्रोधाग्नि से उत्पन्न धुआं हो। युद्ध-वर्णन मे सजीवता है।

कथा का तृतीय खंड शान्त रस से पूर्ण है। संसार की असारता दिखाता हुआ कवि कहता है।

अहो नरिंद संसारि असारइ तक्खणि दिट्ठपणट्ठ वियारइ।
पाइवि मणुअजम्मु जण वल्लहु बहुभव कोडि सहासि दुल्लहु।
जो अणुबंधु करइ रइ लंपडु तहो परलोए पुणुवि गउ संकडु।
जइ वल्लह विओउ नउ दीसइ जइ जोव्वणु जराए न विणासइ।
जइ ऊसरइ कयावि न संपय पिम्मविलास होंति जइ सासय।
तो मिल्लिवि सुवण्णमणिरयणइं मुणिवर किं चरंति तवचरणइं।
एम एउ परियाणिवि बुज्झहि जाणंतो वि तो वि मं मुज्झहि।

१८. १३. १

प्रकृति वर्णन—काव्य में अनेक सुन्दर प्राकृतिक वर्णन है ।[१] कवि ने प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप मे किया है । गहन वन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"दिसा मंडलं जत्थ णाइं अलक्खं पहायं पि जाणिज्जइ जम्मि दुक्खं"

वन की गहनता से जहाँ दिशा मंडल अलक्ष्य था। जहाँ यह भी कठिनता से प्रतीत होता था कि यह प्रभात है।

भाषा—ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक अपभ्रंश है। शब्दो मे य श्रुति और व श्रुति का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है (जैसे कलकल = कलयल, दूत = दूव)। विशेषण विशेष्य के समान बचन के नियम का व्यत्यास भी अम्हह बसतहो (३. ११ ७) मे दिखाई देता है।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, विरोधाभास आदि अलकारो का प्रयोग स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। उपमा मे मूर्त्त और अमूर्त दोनो रूपो मे उपमान का प्रयोग किया गया है।

दिक्खइ णिग्गयाउ गयसालउ णं कुलतियउ विणासियसीलउ ।
पिक्खइ तुरय वलत्थ पएसइं पत्थण भंगाइ व विगयासइं ॥

४. १० ४.

अर्थात् उसने गजरहित गजशालाओ को देखा—वे शीलरहित कुलीन स्त्रियों के समान प्रतीत हुई। अश्वरहित अश्वशालायें ऐसी दिखाई दी जैसे आशारहित भग्न प्रार्थनायें।

नारी सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"ण वम्मह भल्लि विंधणसील जुवाण जणि"

५. ७ ९

अर्थात् वह सुन्दरी युवको के हृदयो को बीधने के लिए कामदेव के भाले के समान थी। उपमा का प्रयोग कवि ने केवलमात्र अलंकार प्रदर्शन के लिए न कर गुण और क्रिया की तीव्रता के लिए किया है। इस उपमा से प्रतीत होता है कि वह सुन्दरी अत्यधिक आकर्षणशील थी।

उपमा का प्रयोग कवि ने संस्कृत में बाण के ढंग पर भी किया है। ऐसे स्थलो में शब्दगतसाम्य के अतिरिक्त अन्य कोई साम्य दो वस्तुओ मे नही दिखाई देता। उदाहरणार्थ—

दिढ बंधइं जिह मल्लरगणाइ णिल्लोहइं जिह मुणिवर मणाइ ।
णिबिभिण्णइ जिह सज्जणहियाइं अकियत्थइं जिह दुज्जणकियाइं ॥

३.२३. १.

वहाँ वाहन अर्थात् नौकाएँ मुनिवरों के मन के समान णिल्लोह—लोहरहित—

---

१. भवि० क० ३. २४. ५ में अरण्य का वर्णन, ४. ३ १ में गहन वन का वर्णन, ४. ४. ३ में सन्ध्या का वर्णन, ८. ९. १० में वसन्त का वर्णन।

लोभरहित थी, सज्जन हृदयो के समान निर्विभिन्न—टूटी-फूटी—कोमल थी और दुर्जनो के कृत्यो के समान अकियत्थ—धनरहित—व्यर्थ एव निष्प्रयोजन थी।

विरोधाभास का उदाहरण निम्नलिखित स्थल में मिलता है—

असिरिव सिरिवत्त सजल वरंग वरंगणवि।
मुद्धवि सवियार रंजणसोह निरंजणवि॥

११. ६. १२

अर्थात् निर्धन (असिरि) होते हुए भी वह सिरिवत्त अर्थात् श्रीमती थी। वरांग न होते हुए भी सजल वराग थी अर्थात् स्त्री श्रेष्ठ (वरागना) थी और प्रस्वेदयुक्त श्रेष्ठ अंगो वाली थी। मुग्धा (मूर्खा) होते हुए भी विचारशील थी अर्थात सीधी सादी थी और विचारशील भी। निरंजन होते हुए भी रजन-शोभा अर्थात् अजन रहित आंखों वाली थी और मोहक शोभा वाली थी।

भाषा—अलंकारो के अतिरिक्त भाषा में लोकोक्तियो और वाग्धाराओं का भी प्रयोग मिलता है—

"किं घिउ होइ विरोलिए पाणिए" २. ७. ८.

क्या पानी मथने से घी हो सकता है ?

"जंतहो मूलु वि जाइ लाहु चितंतहो" ३. ११. ५.

लाभ का विचार करते हुए प्राणी का मूल भी नष्ट हो जाता है।

"कलुणइ सुमीस करयल मलंति विहुणंति सीस" ३ २५. ३

करुणा से ओतप्रोत हो, हाथ मलते है और सिर धुनते है।

शब्द योजना द्वारा कवि की भाषा में शब्द-चित्र खडा करने की क्षमता है—

"सोहइ दप्पणि कील करंती चिहुर तरंग भंग विवरंति"

में नारी की शृंगार सज्जा का और "सलावण्य लावन्न नीरे तरती" में नारी की चंचलता का चित्र अंकित किया है।

सुभाषित—काव्य मे अनेक सूक्तियो और सुभाषितो के प्रयोग से भाषा बलवती हो गई है।

'दइवायत्तु जइ वि विलसिव्वउ तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ"

यद्यपि सब कर्म दैवाधीन है तथापि मनुष्य को अपना कार्य करना ही चाहिए।

अणइच्छियइं होंति जिम दुक्खइं सहसा परिणवंति तिह सोक्खइं

३. १७. ८

जैसे यदृच्छया दुःख आते है वैसे ही सहसा सुख भी आ जाते हैं।

जोव्वण वियार रस वस पसरि सो सूरउ सो पंडियउ।
चल मम्मण वयणुल्लावएहिं जो परतियहि ण खंडियउ॥

३. १८. ९

वही शूर है और वही पंडित है जो यौवन के विषय-विकारो के बढने पर परस्त्रियों के चचल कामोद्दीपक वचनो से प्रभावित नही होता।

"परहो सरीरि पाउ जो भावइ तं तासइ वलेवि संतावइ"

६. १०. ३

जो किसी दूसरे प्राणी के प्रति पापाचरण का विचार करता है वह पाप पलटकर उसे ही पीड़ित कर देता है।

"अहो चंदहो जोन्ह कि मइलज्जइ दूरि हुअ"

२१. ३. ५७

क्या दूर होने पर चन्द्र की चन्द्रिका मलिन की जा सकती है?

जहा जेण दत्तं तहा तेण पत्तं इमं सुच्चए सिट्ठलोएण वुत्तं।
सुपायन्नवा कोद्दवा जत्त माली कहं सो नरो पावए तत्थसाली॥

पृष्ठ ८४

जो जैसा देता है वैसा ही पाता है यह शिष्ट लोगो ने सच कहा है। जो माली कोदव बोएगा वह शाली कहाँ से प्राप्त कर सकता है?

इस ग्रंथ की भाषा में बहुत से शब्द इस प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं जो प्राचीन हिन्दी कविता में यत्र तत्र दिखाई दे जाते हैं और कुछ तो वर्तमान हिन्दी में सरलता से खप सकते है।[1]

छन्द—ग्रंथ मे कवि ने वर्णवृत्त और मात्रिक वृत्त दोनों के छन्दो का प्रयोग किया है किन्तु अधिकता मात्रिक वृत्तो की है। वर्णवृत्तो मे भुजगप्रयात, लक्ष्मीधर, मंदार, चामर, शंखनारी आदि मुख्य है। मात्रिक वृत्तो में पज्झटिका अडिल्ला, दुवई, काव्य, प्लवंगम, सिहाँवलोकन, कलहंस, गाथा मुख्य हैं।[2]

विचारधारा—जन्मान्तर और कर्म सिद्धान्त पर कवि को पूरा विश्वास है (३. १२. १२)। शगुनो में लोग विश्वास करते है। प्रेमी के दूरदेशस्थ होने पर कौए को उड़ा कर उसके समाचार जानने का भाव पृ० ३९ में मिलता है।

लोग अलौकिक घटनाओ में विश्वास करते है। कथा मे बहु-विवाह के प्रति अनास्था प्रकट की गई है। पोयणपुर के राजा का चरित्र तत्कालीन सामन्तो की विचार-धारा का प्रतीक है।

हरिवंश पुराण

प्रो० हीरालाल जैन ने "इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज" भाग १, सन् १९२५ में

---

१. चाहइ, चुणंति—चुनना, इंदिय खंचहु, छडउ रस रसोइ (पृ० ४७), सालि दालि सालणय पियल्लउ (चावल दाल और सब्जी) पृ० ४७, पच्छिल्ल पहरि (पृ० ५९), तहु आगमो चाहहो (पृ० ५९) उसे आना चाहिए, राणी, तज्जइ—तजना, चडिउ विमाणु (पृ० ६३), तुरंतउ (पृ० ६४), जं वित्तउ—जो बीता (पृ० ६५), पप्पड़ा—पापड़ (पृ० ८४), विहाणि—विहान—प्रातःकाल (पृ० ९३)।

२. छन्दों के लक्षण के लिए देखिये भविसयत्त कहा की भूमिका।

धवल कवि द्वारा १२२ सन्धियों एवं १८ हजार पद्यों में विरचित हरिवंश पुराण का निर्देश किया था। कैटेलॉग आफ सस्कृत एंड प्राकृत मेनुस्क्रिप्ट्स इन दि सी० पी० एंड बरार, नागपुर सन् १९२६ में (पृ० ७६५ पर) भी इस ग्रंथ का कुछ उल्लेख मिलता है। श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल जी की कृपा से श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा तेरह पंथियों का जयपुर में वर्त्तमान इस महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति हमें देखने को मिली। उसी के आधार पर यहां इस महाकाव्य का कुछ परिचय दिया जाता है।

धवल कवि के पिता का नाम सूर और माता का नाम केसुल्ल था। इनके गुरु का नाम अंबसेन था। धवल ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए किन्तु अन्त में जैन-धर्मावलम्बी हो गये थे।[1] कवि द्वारा निर्दिष्ट उल्लेखों के आधार पर कवि का समय १० वीं-११वीं शताब्दी के अन्दर माना गया है। कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में अनेक कवियों और उनके काव्यों का उल्लेख किया है।[2]

---

१. मइं विप्पहु सूरहु णंदणेण, केसुल्लउ यरि संभवहुएण।

....

कुतित्थ कुधम्म विरत्तएण, णामुज्जलु पयडु वहंतएण।
हरिवंसु सुयस्तु सुललिय पएहिं, मइं विरयउ सुद्दु सुहावएहिं।
सिरि अंबसेण गुरवेण जे(म)ण, वक्खारणि किउ अणुकसेणतेण॥ १. ५

२. कवि चक्कवइ पुव्वि गुणवंतउ धीरसेणु हुंतउ णयवंतउ।
पुणु सम्मत्तहं धम्म सुरंगउ जेण पमाण गंथु किउ चंगउ।
देवणंदि बहु गुण जसभूसिउ जें वायरणु जिणिंदु पयासिउ।
वज्जसूरु सुपसिद्धउ मुणिवरु जें णयमाणगंथु किउ सुंदरु।
मुणि महसेणु सुलोयणु जेणवि पउमचरिउ मुणि रविसेणेण वि।
जिणसेणें हरिवंसु पवित्तुवि जडिल मुणीण वरंगचरित्तु वि।
दिणयरसेणें चरिउ अणंगहु पउमसेण आयरियइ पसंगहु।
अंबसेणु जें अमियाराहणु विरइय दोस विवज्जिय सोहणु।
जिण चंदप्पह चरिउ मणोहरु पावरहिउ धणयत्तु ससुंदरु।
अण्णमि किय इमाइं तुह पुत्तइ विण्हसेण्ण रिसहेण्ण चरित्तइं।
सीहणदि गुरवें अणुपेहा णरदेवेणवकांतु सुणेहा।
सिद्धसेणु जें णेए आगउ भविय विणोउ पयासिउ चंगउ।
रामणदि जें विविह पहाणा जिण सासणि बहु रइय कहाणा।
असगु महाकइ जेंसुमणोहरु वीर जिणिंदु चरिउ किउ सुंदरु।
कित्तिय कहमि सुकइ गुण आयर गेय कव्व जहिं विरइय सुंदर।
सणकुमार जें विरयउ मणहरु कय गोविंद पवरु सेयंबरु।
तह जक्खइ जिणरक्खिय सावउ जें जय धवलु भुवणि विक्खाइउ।
सालिहद्दु कि कइ जीय उवेदउ लोयइ चउमुहुं दोणु पसिद्धउ।

निर्दिष्ट कवियो में से असग को छोडकर सब ९वी शताब्दी के लगभग या उससे पूर्व हुए। असग ने अपना वीर चरित ९१० शक सम्वत् अर्थात् ९८८ ई० में लिखा था।[1] अत कल्पना की जा सकती है कि धवल भी १०वी शताब्दी के बाद ही हुआ होगा।

ऊपर निर्देश किया जा चुका है कि ग्रथ मे १२२ सन्धिया है। सन्धियो मे कडवकों की कोई सख्या निश्चित नही। ७वी सन्धि मे २१ कडवक है और १११वी सन्धि में केवल ४। सन्धियो के अन्तिम घत्ता मे धवल शब्द का प्रयोग मिलता है। प्रति में प्रायः प्रत्येक सन्धि की समाप्ति पर 'भाषा वर्ण्णः', 'पंचम वर्ण्णः', 'मालवेसिका वर्ण्णः', 'कौह वर्ण्णः,' इत्यादि शब्दो का प्रयोग किया है। इस प्रकार के शब्दो में मंगलपंच, टकार, पंचम, हिंदोलिका, वकार, कोलाह इत्यादि शब्दो का प्रयोग भी मिलता है।

ग्रंथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्यो से होता है—

स्वरित। आदि जिनं प्रणम्य।

लोयाण दीह णालं णेमि हली कण्ह केसर सुसोह।
मह पुरिस तिसट्ठिदलं हरिवंस सरोरुहं जयउ ॥१॥
हरिपंडु सुआण कहा चउमुह वासेहि भासिया जह या।
तह विरयमि लोय पिया जेण ण णासेइ दंसणं पउरं ॥२॥

....

जह गोत्तमणे भणियं सेणिय राएण पुछियं जह या।
जह जिणसेणेण कय तह विरयमि किं पि उद्देसं ॥४॥
सुव्वउ भवियाणंदं पिसुण चउक्का अभव्व जण सूल।
धण्णय धवलेण कयं हरिवंम सुसोहणं कव्वं ॥८॥

....

जिण णाहहु कुसुमंजलि देविणु णिब्भूसण मुणिवर पणवेप्पिणु।
पवर चरिय हरिवंस कवित्तो अप्पउ पयडिउ सूरहो पुत्तो ॥१०॥

उपरिलिखित पद्यो मे कवि ने हरिवश पुराण को सरोरुह (कमल) कहा है और यह भी निर्देश किया है कि इसकी कथा चतुर्मुख और व्यास ने भी पूर्व काल में कही।

इक्कहि जिणसासणि उच्चलियउ सेढु महाकइ जसु णिम्मलियउ।
पउमचरिउ जें भुवणि पयासिउ साहुणरहि णरवरहि पसंसिउ।
हउ जडु तो वि किंपि अब्भासमि महियलि जें णियबुद्धि पयासमि।
घत्ता—सहसकिरणु रइवेवि गयणि चडेवि तिमिरु असेसु पणासइ।
णियसत्तें मणिदीवउ जइवि सुथोवेउ तुवि उज्जोउ पयासइ।

१. ३.

१ कैटेलोग आफ संस्कृत एंड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि सी. पी. एंड बरार, नागपुर सन् १९२६, भूमिका पृष्ठ ४९.

इसके पश्चात् कवि मंगलाचार के रूप में २४ तीर्थंकरों का स्तवन करता है। वह क्षणभंगुर शरीर की नश्वरता का वर्णन करता हुआ स्थायी अविनाशी काव्यमय शरीर रचना का विचार करता है—

घत्ता— जो णवि मरइ ण छिज्जइ णवि पीडिज्जइ,
अक्खउ भुवणि अँ भीरुवि।
करमि सुयण सँभावउ, कुखल सतावउ, हउ कव्वमउ
सरीरुवि ॥१. २

१. ४ में कवि ने हरिवंश पुराण को नाना पुष्प-फलो से अलकृत और बद्धमूल महातरु कहा है। इसी प्रसंग मे कवि ने आत्मविनय प्रदर्शित किया है। सज्जन दुर्जन स्मरण और आत्मविनय के पश्चात् कथा आरम्भ होती है।

हरिवंश पुराण की कथा का रूप वही ही है जो कि स्वयंभू इत्यादि प्राचीन कवियो के काव्यों में मिलता है। स्थान-स्थान पर अलकृत और सुन्दर भाषा मे अनेक काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते है।

राजा सिद्धार्थ का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

घत्ता—बहु धणु बहु गुणु बहु सिय जुत्तउ, तहि णिवसइ जिण कमलव्व रत्तउ।
णिच्च पसाहिय तह णर णारिउ, णं सुर लोड महिहि अवयरिउ २. १.

निम्नलिखित रानी का वर्णन परंपरागत उपमानो से अलंकृत है—

घण कसण केस दीहरणयणा, सुललिय तणु सुअकर ससिवयणा।
णं सिय णव जुव्वण घण थणा, कलहंस गमन कोमल चलणा॥ २. ३.

भौगोलिक वर्णन प्राय. सामान्य कोटि के है। कवि कौशाम्बी नगरी का वर्णन करता है—

जण धण कंचण रयण समिद्धी, कउसंवी पुरि भुवणपसिद्धी।
तहि उज्जाण सुघण सुमणोहर, कमलिणि संडिहिं णाइं महासर।
बाविउ देवल तुंग महाघर, मणि मंडिय णं देवह मंदिर।
खाइय वेढिय पासु पयारहो, लवणोवहि णं जंबू दीवहो।
तहि जणु बहुगुण सिय सपुण्णउ, भूसिउ वर भूसणहि रवण्णउ।
कुसुम वत्थ तंबोलहि सुंदर, उज्जल वंस असेस वि तह णर।
णर णारिउ सुहेण णिच्चतइ, णिय भवणिहि वसंति विलसंतइ॥ १७ १

वर्णनो मे एकरूपता होते हुए भी नवीनता दिखाई देती है। कवि, सुमुख (सुमुहु) नामक राजा का वर्णन करता है—

कि ससहउ ण ण सकलकउ, क्षीण सरीर होइ पुणु वंकउ।
कि व कमलु णं णं कंटालउ, कि खगवइ णं ण परवालउ।
कि अणगु त अग विहूणउ, कि सुरवइ ण णं बहु णयणउं।
कि रयणारु ण णं खारउ, कि जलहरु णं णं अधारउ। १७. २

कवि ने राजा की प्रशंसा मे परपरागत उपमानो को उसके अयोग्य बताया है।

स्थान-स्थान पर प्रकृति-वर्णन भी उपलब्ध होते हैं। निम्नलिखित मधुमास का वर्णन देखिये—

फग्गुणु गउ महुमासु परायउ, मयणुछलिउ लोउ अणुरायउ।
वण सय कुसुमिय चारु मणोहर, बहु मयरंद मत्त बहु महुयर।
गुमुगुमंत रुणरुणइं सुहावहिं, अहवणट्ठ पेम्मुउक्कोवहिं।
केसु व वर्णाहि धणारुण फुल्लिय, णं विरहग्गें जाल पमिल्लिया।
घरि घरि णारिउ णिय तणु मंडहिं, हिंदोलहिं हिंडहि उग्गायहिं।
वणि परपुट्ठ महुरु उल्लावहिं, सिहिउलु सिहि सिहरेहिं पहावइ। १७. ३

अर्थात् फाल्गुन मास समाप्त हुआ और मधुमास (चैत्र) आया मदन। उद्दीप्त होने लगा। लोक अनुरक्त हो गया। वन नाना पुष्पों से युक्त, सुन्दर और मनोहर हो गया। मकरन्द पान से मत्त मधुकर गुनगुनाते हुए सुन्दर प्रतीत हो रहे है ······ घरो में नारियां अपने शरीर को अलंकृत करती हैं, झूला झूल रहीं हैं, विहार करती हैं, गातीं वन में कोयल मधुर आलाप करती है। सुन्दर मयूर नृत्य कर रहे है।

ग्रन्थ में श्रृङ्गार, वीर, करुण और शान्त रसों के अभिव्यंजक अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं। ५६ १ में कंसवध पर स्त्रियों के शोक का वर्णन मिलता है। युद्ध के वर्णन सजीव है। ऐसे स्थलो पर छन्द परिवर्त्तन द्वारा कवि ने शस्त्रों और सैनिको के गति-परिवर्त्तन की व्यंजना की हैं। स्थल-स्थल पर अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा अनेक चेष्टाओं को रूप देने का प्रयत्न किया गया हैं। उदाहरणार्थ—

रहवउ रहहु गयहुगउ धाविउ, धाणुक्कहु धाणुक्कु परायउ।
तुरउ तुरंग कुखग्ग विहत्थउ, असिवक्खरहु लग्गु भय चत्तउ।
वज्जहिं गहिर तूर हय हिंसहिं, गुलु गुलत गयवर बहु दीसहिं।
···
···

हणु हणु मारु भारु पभणंतहिं।
कुलिय अवत्ति केणु णहिं धायउ, लहु पिसलुद्धउ लुद्धउ धायउ।
फिक्कारउ करंति सिवदारुणु, सुम्मइं सुहड भमंति रुहिरारुणु।
भलहल सेल कुंतसर भिण्णा, गय वर हय करवालहिं छिण्णा।
णर वर णाह पडिय दो खडिय, घर तक्खणि ण करं कहि मडिय।।
विधहिं तडातडा, मुट्ठिहिं भडा भडा।
कुंत घाय भारिया, खग्गहिं वियारिया।
जीव आस मेल्लिया, कायरा विचल्लिया।
···
खग्ग हत्थ हुक्कही, सोहणाइं चुक्कहिं।

८९. १०

भडा के वि जीवेण मुक्का विगत्ता। भडा के वि दीसंति धम्मेण चत्ता।
भडा के वि दुप्पिच्छ आरत्तणेत्त। भडा के वि जुज्झे ललंता विसंत।
भडा के वि दोखंड गत्ता पडंता। भडा के वि दुग्घट दंतेहि भिण्णा।
भडा के वि तिक्खेहिं खग्गेहिं छिण्णा। भडा के वि रोमंचगत्तें भमंत।
भडा के वि मुट्ठिक्क चप्पेड देंता। भडा के वि वग्गंति वाहुत्थलेण।
भडा के वि जुज्झंति केसग्गहेण।

८९. १२.

अभिट्ट कोह पूरिया विरुद्ध पुव्व वइरिया।
हकंति धंतिवुक्कहिं हरिसीयाल वुक्कहिं।
महाभडा धणुद्धरा मुतिक्ख मिल्लहिं सरा।
विभिण्ण सेल्ल दारुणा, पडंति कायरा जणा।
....
वजंति तूर भीसण्ण, डरंति कायरा जणा।

९० २

महा चंड चित्ता, भडा छिण्णगत्ता।
धनू वाण हत्था, सकुंता समत्था।
पहारंति सूरा, ण भज्जंति धीरा।
सरोसा सतोसा, सहासा स आसा॥

९०. ४

अर्थात् रथिक रथ की ओर, गज गज की ओर दौड़ा। धानुष्क धानुष्क की ओर भागा। घोड़ा घोड़े से, निस्त्रास निस्त्रास से, और असि निर्भय हो कवच से जा भिडी। बाजे जोर जोर से बज रहे है, घोड़े हिनहिना रहे है और हाथी चिंघाड़ते हुए दिखाई दे रहे है।

......'मारो मारो' सैनिक चिल्ला रहे है ? पदद्लित धूलि आकाश में फैल रही है। शीघ्र ही पिशाच घिर जाते है। शृगाल भयकर शब्द कर रहे है। रक्तरंजित योद्धा इतस्ततः घूम रहे हैं, शस्त्र भिन्न हो रहे हैं, हाथी और घोडे तलवारो से छिन्न हो रहे है, राजा द्विधा विभक्त हो गिर रहे है......।

योद्धा विद्ध हो रहे हैं, भट मूर्छित हो रहे है, कोई भालों के प्रहार से विदीर्ण हो रहे है, कोई खड्ग से छिन्न भिन्न हो रहे है, जीवन की आशा को छोड कायर भाग रहे है......

कोई योद्धा प्राण-विमुक्त हो रहे है, कोई धर्म से परित्यक्त दिखाई दे रहे हैं, कोई आरक्त नेत्र और दुष्प्रेक्ष्य हो रहे हैं,......कोई योद्धा तीक्ष्ण तलवार से छिन्न हो रहे हैं, कोई रोमांचित गात्र से घूम रहे है, कोई घूसा और चपेड़ लगा रहे हैं, कोई बाहु युद्ध कर रहे है, कोई बाल पकड़ कर घसीट रहे है।

प्रचण्ड क्रोध से भरे हुए, पूर्व वैर से परस्पर विरोधी योद्धा एक दूसरे को ल‌ल-

कार रहे हैं……धनुर्धारी महा भट तीक्ष्ण बाण छोड़ रहे हैं, दारुण भालों से विभिन्न हुए रक्त रंजित योद्धा गिर रहे हैं, कायर भयभीत हो रहे हैं।

प्रचण्ड चित्त वाले योद्धाओं के गात्र टूक टूक हो रहे हैं। धनुष बाण हाथ में लिये भाला चलाने में समर्थ शूर प्रहार कर रहे हैं, क्रोध, सतोष, हास्य और आशा से युक्त धीर विचलित नहीं होते।

ग्रन्थ में कई स्थलों पर करुण रस की अभिव्यजना भी दिखाई देती है। कंस वध पर परिजनों के करुण-विलाप का एक प्रसग देखिये—

हा दइय दइय पाविट्ठ खला, पइ अम्हं मणोहर किय विहला।
हा विहि णिहीण पइं काइकिउ, णिहि दरिसिवि तक्खणि चक्खु हिउ।
हा देव ण बुल्लहि काइं तुहुं, हा सुन्दरि दरसहि किण्णु मुहु।
हा धरणिहि सगुण णिलयट्ठाहि, वर सेज्जहि भरभवणेहिं जाहि।
पइ विणु सुण्णउं राउलु असेसु, अणाहिउ हूवउ दिव्व देसु।
हा गुण सायर हा रूवधरा, हा वइरि महण सोहग्ग घरा।
घत्ता—हा महुरालावण, सोहियसदण, अम्हहं सामिय करहि।
दुक्खहिं संतत्तउ, करुण रुवतउ, उट्ठिवि परियणु संथवहि॥

५६.१

मोह वश लोग युद्ध इत्यादि कुत्सित कर्मों में प्रवृत्त होते है। इसी प्रसंग में कवि ने सुन्दर शब्दों मे संसार की नश्वरता का वर्णन किया है—

वलु रज्जु वि णासइ तक्खणेण, किं किज्जइ वहुएण वि धणेण।
रज्जु वि धणेण परिहीणु होइ, णिविसेण वि दीसइ पयडु लोउ।
सुहि वंधव पुत्त कलत्त मित्त, ण वि कासुविदीसहिं णिच्चहंत।
जिम हुंति मरंति असेस तेम, वुव्वु व जलि घणि विरिसंति जेम।
जिम सउणि मिलिवि तरुवरवसंति, चाउद्दिसि णिय वसाणि जन्ति।
जिम वहुपंथिय णावइं चडंति, पुणु णियणिय वासहु ते वलंति।
तिम इट्ठ समागमु णिव्वडणु, धणु होइ होइ दालिद्दु पुणु।
घत्ता—सुविणासउ भोउ लहो वि पुणु, गव्वु करंति अयाण णर।
संतोसु कवणु जोव्वण सियइं, जहिं अत्थइ अणुलग्गजरा॥९१.७.

अर्थात् सबल राज्य भी तत्क्षण नष्ट हो जाता है, अत्यधिक धन से क्या किया जाय ?……सुखी बाधव, पुत्र, कलत्र, मित्र नित्य किसके बने रहते हे ? जैसे उत्पन्न होते हैं वैसे ही मेघ वर्षा से जल में बुलबुलो के समान, सब नष्ट हो जाते है। जिस प्रकार एक वृक्ष पर बहुत से पक्षी आकर एकत्र हो जाते हैं और फिर चतुर्दिक् अपने अपने वास स्थानों को चले जाते हैं अथवा जिस प्रकार बहुत से पथिक (नदी पार करते समय) नौका पर आकर एकत्र हो जाते हैं और फिर अपने अपने घरों को चले जाते हैं, इसी प्रकार क्षणिक प्रियजन समागम होता है। कभी धन आता है कभी दारिद्र्य। भोग आते हैं और नष्ट हो जाते है फिर भी अज्ञ मानव गर्व करते हैं।

जिस यौवन के पीछे जरावस्था लगी रहती है उससे कौन सा सन्तोष हो सकता है ?

ग्रन्थ में सामान्य छन्दों के अतिरिक्त नागिनी (८९.१२), सोमराजी (९०.४), जाति (९०.५), विलासिनी (९०.८) इत्यादि अनेक छदों का प्रयोग मिलता है। कुछ कडवको में चौथाई का प्रयोग भी मिलता है। इन कडवको के अन्त में प्रयुक्त घत्ता दोहा छन्द में नही। उदाहरण के लिये—

कण्हह घरिणि णाउं गंधारी, छट्ठि णाम महएवि पियारी।
वियसिय कमल वयणि सुमणोहर, पीणुण्णयर घण घढिण पहर।
पणविवि पभणइं णेमि जिणेंदहु, भवियण तारायण जिम चंदहु।
सामिय अक्खहि मज्झभु भवंतरु, फेडहि ससउ मज्झु णिरतरु।

११०. १

इस कड़वक के अन्त मे घत्ता का प्रयोग नही है।

जिण पभणिउ थिरु कण्णधरिज्जहिं, कहमि भवंतरु तुहुं णिसुणिज्जतहिं।
भरह खित्ति कोसल वर देसें, आउज्झहिं सुणिउ तहिं आसें।
विणय सीय णामें तहुपत्ती, कंचण रयणहिं सा विप्पती।

......

घत्ता—सील धरहं मुणिबलण णवेप्पिणु, भावविसुद्धु दाणु तहु देविणु।
तहिं सुरभोय धरत्तिजाएप्पिणु, भोयवि तिण्णि पल्ल भुंजेविणु॥

११०. २

विज्जवेय णामें तहु पत्ती, बहु लक्खण घरणिरु गुणवंती।
विणय सीय णामें तहु धीय, उप्पण्णिय तहु उवरिविणीया।

११०. ४

कही-कहीं पर कडवक में यद्यपि चौपाई छन्द का प्रयोग नही मिलता तथापि अन्तिम घत्ता का रूप कही दोहा के समान और कही साक्षात् दोहा है। उदाहरणार्थ—

घत्ता—जइ ण रमिय मुहुतेण, सहु परि सेसिय गव्वु।
अजगल सिहु णवि जिम विहलु जुव्वण रूउ वि सव्वु। ८१८
घत्ता—चक्कु महंता णरवरहं, ताहमि लोयहं णरवर।
आयइ णीयइं पुहविपहु, ते भुंजति सयलधर॥ ८४१
घत्ता—घाइ कम्मु खउ णेविणु, केवल णाणु लहेवि।
वंति झाणि णिय पच्छिम, तिज्ज चउत्थ इवेवि॥ ९९.१३

पृथ्वीराज रासो

इस ग्रन्थ का रचयिता कवि चन्द वरदायी है जो पृथ्वीराज का कविराज, सामन्त और उसी का समकालीन एक चारण माना जाता है। इसी ने इस महाकाव्य मे चौहान वश के पृथ्वीराज तृतीय का चरित्र वर्णित किया है। इस काव्य का आरम्भिक रूप संक्षिप्त था और राजा के यश-गान के लिए रचा गया था। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन

होता गया। आजकल जो रूप पृथ्वीराज रासो का उपलब्ध है उसे पूर्णतया मूलरूप नहीं माना जा सकता। किन्तु इसका विशुद्ध मूलरूप कदाचित् अपभ्रंश में था ऐसी कल्पना अनेक विद्वानो ने की है[१] जो संगत भी प्रतीत होती है।

अब तक रासो के चार रूप उपलब्ध हो चुके हैं—(१) वृहत् रूप, इसमें लगभग एक लाख पद्य है। काशी नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित संस्करण में यही रूप है। इसमें अध्यायो को समय या प्रस्ताव कहा गया है। इसमें ६८ समय हैं। (२) दूसरा मध्यम रूप जो लगभग दस हजार पद्य का है। इसमें अध्यायो का नाम प्रस्ताव दिया गया है। प्रतिभेद से इसमें छयालीस और बयालीस प्रस्ताव हैं। इसका सपादन लाहौर में हो रहा है। (३) तीसरा लघु रूप बीकानेर का (संस्करण) है। इसमें साढे तीन हजार के लगभग पद्य मिलते हैं। इसमे १९ समय या खड मिलते हैं। इतिहास और भाषा शस्त्रादि प्रस्तावनाओ सहित इसके सपादन का भार डा० दशरथ शर्मा और प्रो० मीनाराम रंगा ने स्वीकार किया था। (४) चौथा लघुतम सस्करण, श्रीयुत अगरचन्द नाहटा की कृपा से प्राप्त हुआ है। इसमे पद्य संख्या तेरह सौ के लगभग है। इसमें अध्यायो का विभाजन नहीं। आदि से अन्त तक एक ही अध्याय है। भाषा सभी प्राप्त रूपो से अपेक्षाकृत प्राचीन प्रतीत होती है।[२] इसका संपादन प्रो० नरोत्तमदास और श्री अगरचन्द नाहटा कर रहे हैं।

कुछ दिन पहिले मुनि कान्तिसागर जी को पृथ्वीराज रासो की एक पुरानी प्रति मिली थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—'विक्रम सवत् १४०३ कार्तिक शुक्ल पंचम्या तुगलक फिरोज शाहि विजय राज्ये ढिल्या मध्ये लिपि कृत...' इत्यादि। सम्पूर्ण ग्रथ छप्पय छन्द में ग्रथित है। भाषा सभी रूपो से प्राचीन प्रतीत होती है। इसे रासो का पाचवाँ रूप कह सकते हैं।[३] इससे इतना तो सिद्ध ही है कि रासो का मूल रूप इस के अधिक निकट रहा होगा और इतनी विविधताओ से मुक्त भी रहा होगा।

पृथ्वीराज रासो के इन प्राप्त रूपों में से किसी को निश्चय से पूर्णतया मूलरूप नही कहा जा सकता। किन्तु पुरातन जैन प्रबन्धो में पृथ्वीराज रासो से कुछ पद्य उदाहरण रूप में दिये गये मिलते हैं जिनसे इस ग्रंथ की प्रामाणिकता और मूलरूप के अपभ्रंश में होने के संकेत मिलते हैं। उपरिलिखित सभी रूपों की प्रतियों में उनके उद्धारकर्ता का निर्देश भी किया गया है। कालवश मूलरूप के अस्त व्यस्त हो जाने के कारण, मूलरूप को अपनी बुद्धि के अनुसार उचित रूप देने का प्रयत्न इन उद्धारको ने किया।

---

१ डा० दशरथ शर्मा और प्रो० मीनाराम रंगा का लेख, राजस्थान भारती, भाग १, अक ४, पृ० ५१।

२. नरोत्तमदास स्वामी, राजस्थान भारती भाग १, अंक १, अप्रैल १९४६, पृ० ३

३. विशाल भारत, नवं, १९४६, पृ० ३३१–३३२

रासो की अप्रामाणिकता का वाद-विवाद इसी कारण उठा कि उसका प्रारम्भिक रूप परिवर्त्तित, परिवर्द्धित और विकृत हो गया है। इसमें अनेक असबद्ध और अनैतिहासिक घटनाओ का समावेश हो गया है। यदि मूलरूप प्राप्त होता तो यह वाद-विवाद कभी का शान्त हो गया होता। रासो के आलोचनात्मक अध्ययन से इसमें से अनेक प्रक्षिप्त अशो को दूर किया जा सकता है और इसके प्रारम्भिक रूप को देखा जा सकता है। कवि राव मोहनसिंह ने इस प्रकार के अध्ययन से रासो के अनेक प्रक्षिप्त और मूल अशो को पृथक् करने का प्रयत्न किया है।[1]

रासो की भाषा डिंगल है या पिंगल, प्राचीन राजस्थानी है या प्राचीन पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा) इस झमेले में पड़े बिना इतना तो निश्चित है कि वर्त्तमान रूप मे प्राप्त रासो के वृहत् रूप की भाषा मिश्रित है। कही प्राचीन राजस्थानी, कही प्राचीन पश्चिमी हिन्दी, कहीं सानुस्वार अक्षरो की भरमार और कही द्वित्व व्यजनो की अधिकता है। कही क्रियाओं के परवर्त्ती रूप मिलते हैं तो कही उत्तरकालीन अपभ्रंश के रूप। रासो का यह भाषा-वैचित्र्य उन परिवर्त्तनो का परिणाम है जो समय समय पर मूल ग्रथ में होते रहे है। मध्य रूप की भाषा के विषय में भी सामान्यत यही कहा जा सकता है। किन्तु लघु और लघुतम रूपो की भाषा अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है और यह अधिकाधिक अपभ्रश के निकट पहुँचती प्रतीत होती है। कई स्थल तो ऐसे हैं जहाँ कि सामान्य परिवर्त्तन से ही भाषा अपभ्रश बन जाती है।[2] कान्तिसागर जी ने जो प्रति ढूढ निकाली है उसकी भाषा मुनि जी के मतानुसार अपभ्रंश है। अतः रासो के मूलरूप की भाषा का अपभ्रंश होना सभव है। लेखक की भी यही धारणा है कि मूलरूप संभवतः अपभ्रंश मे ही था। इसके लिए निम्नलिखित कारण विचारणीय है।

१. १३वी शताब्दी के पुरातन प्रबन्ध सग्रह नामक ग्रन्थ[3] में कुछ पद्य पृथ्वीराज रासो के मिलते हैं। इनमें से दो पद्य पृथ्वीराज प्रबन्ध (प्रबन्ध संख्या ४०) और दो जयचन्द प्रबन्ध (प्रबन्ध सख्या ४१) में उल्लिखित है। इन चार पद्यों में से प्रथम तीन पद्य रासो के भिन्न-भिन्न रूपो में भिन्न-भिन्न रूप मे पाये जाते हैं। ये पद्य इस प्रकार हैं—

---

१ राजस्थान भारती, भाग १, अक २-३ १९४६, पृ० २९

२. डा० दशरथ शर्मा और प्रो० मीनाराम रंगा, दि ओरिजनल पृथ्वीराज रासो, एन अपभ्रंश वर्क, राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, १९४६, पृ० ९४—१००

३. प्रबन्ध चिन्तामणि ग्रंथसंबद्ध पुरातन प्रबन्धसंग्रह, संपादक जिन विजय मुनि, प्रकाशन कर्त्ता, अधिष्ठाता सिंघी जैन विद्यापीठ, कलकत्ता, वि० सं० १९९२

इक्कु वाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण!
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह,
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥

पृ० ८६, पद्य २७५

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुराय खयंकरु,
कूडु मंत्रु मम ठवओ एहु जं बूय मिलि जग्गरु।
सहनामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं बुज्झइं।
जंपइ चंद बलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि,
कइंबास विआस विसट्ठविणु मच्छिबंधि बद्धओ मरिसि॥

पृ० ८६, पद्य २७६

त्रिण्हि लक्ष तुसार सबल पाषरीअइं जसु हय,
चऊदसइं मयमत्त दंति गज्जंति महामय।
बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांह पर।
छत्तीस लक्ष नराहिवइ बिहि बिनडिओ हो किम भयउ,
जइचन्द न जाणउ जल्हुकइ गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

पृष्ठ ८८, पद्य २८७

ये पद्य[1] परिवर्तित रूप मे आधुनिक रासो के संस्करणो मे मिलते हैं। ये अपने प्राचीन और शुद्ध रूप में रासो के मूलरूप मे होगे और उस रासो के मूलरूप की भाषा अपभ्रंश ही होगी ऐसा इन पद्यो को देखने से प्रतीत होता है।

इन पद्यो का रूप जो पृथ्वीराज रासो के वृहत् रूप में मिलता है नीचे दिया

१. जिन प्रबन्धों में से ये पद्य लिये गये है उनमें से कुछ संस्कृत शब्द नीचे दिए जाते हैं—

जाता है[1]—

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौ ॥
उर उप्पर थरहर्यों वीर कष्षंतर चुक्यौ ॥
बियौ बान संधान हन्यौ सोमेसर नन्दन ॥
गाढो करि निग्रह्यौ षनिव गड्यो संभरि धन ॥
थल छोरि न जाइ अभागरौ गाड्यौ गुनगहि अग्गरौ ॥
इम जंपै चंद बरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ ॥

पृथ्वी० रासो पृष्ठ १४९६, पद्य २३६

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराइ षयंकर।
कूरमंत जिन करौ मिले जम्बू बैं जंगर।
मो सहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै ॥
अष्षै चंद बिरद्द बियौ कोइ एह न बुज्झै ॥
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस।
कैंमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बंध बंध्यौ सरिस ॥

पृथ्वी० रासो, पृष्ठ २१८२, पद्य ४७५

असिय लष्ष तोषार सजड पष्षर सायद्दल।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल ॥
पंचकोटि पाइक्क सुफर पारक्क धनुद्धर।
जुध जुधान बर बीर तोन बंधन सद्धनभर ॥
छत्तीस सहस रन नाइबौ विही निम्मान ऐसो कियो।
जैंचंद राइ कविचंद कहि उदधि बुड्डि कै धर-लियौ ॥

पृथ्वी० रासो, पृ० २५०२, पद्य २१६

पृथ्वीराज रासो के लघुरूप बीकानेर की प्रति से कुछ पद्य नीचे दिए जाते हैं—

कलि अछ पय कनउज्ज राउ।
सत सील रत धर धम्म चाउ ॥
पर अछभूमि हय गय अनग्ग।
परठव्या पंग राजसूजग्ग ॥
....
....

---

१. पृष्ठ संख्या और पद्य संख्या नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्करण के अनुसार हैं।

गाथा

के के म गए महि महु ढिल्ली ढिल्लाय दीह होहाय ।

विहुरंत जासु कित्ती तं गया नहिं गया हुंति ॥[1]

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे शब्द-रूप भिन्न है । तो भी इन पद्यो से भी यही प्रकट होता है कि ये पद्य उत्तरकालीन अपभ्रं श के कारण तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओं के प्रभाव से प्रभावित अपभ्रंश रूप ही है ।

२ रासो की शब्द-योजना और अन्य अपभ्रंश काव्यो की शब्द-योजना में इतना साम्य है कि उन्हे एक ही भाषा का मानना असगत नही । अपभ्रंश काव्यो में अनु-रणनात्मक या ध्वन्यात्मक शब्दो का प्रयोग अपभ्रंश कवियो की विशेषता रही है । इस प्रकार की शब्द-योजना से अर्थावबोध का प्रयत्न अपभ्रंश कवियो ने अपने काव्यो में किया है । पृथ्वीराज रासो में भी यह प्रवृत्ति उदग्र रूप से दिखाई देती है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित युद्धस्थल का वर्णन देख सकते है—

हहकंत कूदन्त नंचे कमंधं ।

कडक्कंत बज्जंत कुट्टंत संधं ॥

लहक्कंत लूटंत तूटंत भूमं ।

झुकंते घुकंते दोऊ वथ्य भूमं ॥

दडक्कंत दीसंत पीसत दंतं ।[2]

पद्य सं० २११०

करकंड चरिउ के निम्नलिखित युद्धवर्णन में ध्वन्यात्मक शब्दों की योजना देखिए—

वज्जंति वज्जाइं सज्जंति सेण्णाइं ।

कुंताइं भज्जंति कुंजरइं गज्जंति ।

गत्ताइं तुट्टंति मुंडाइं फुट्टंति ।

. . . .

हड्डाइं मोडंति गीवाइं तोडंति ।

क च. ३· १५

इसी प्रकार पुष्पदन्त के जसहर चरिउ का एक उद्धरण देखिये—

तोडइ तडत्ति तणु बंधणइं मोडइ कडत्ति हड्डइं घणइं ।

फाडइ चडत्ति चम्मइं चलइं घुट्टइ घडत्ति सोणिय जलइं ।

ज च २ ३७ ३–४

---

१. राजस्थान भारती भाग १, अंक १, में डा० दशरथ शर्मा और प्रो० मीना-राम रंगा के लेख से उद्धृत ।

रासो विषयक ऐतिहासिक सामग्री के लिए लेखक डा० दशरथ शर्मा का आभारी है ।

२. रासो के उद्धरणों के निर्देश के लिए लेखक डा० ओमप्रकाश का कृतज्ञ है ।

इस प्रकार के ध्वन्यात्मक शब्दो की वहुलता का हिन्दी कवियो मे प्राय: अभाव है।

३ शब्दो, वाक्यो या वाक्याशो की आवृत्ति से भाषा को बलवती बनाने के अनेक उदाहरण हमे अपभ्रंश काव्यो मे मिलते है। पृथ्वीराज रासो में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। यथा—

इन वेरां हम्मीर, नहीं औगुन बंचीजै।
इन वेरां हम्मीर, छत्रि ध्रम्मह संचीजै।
इन वेरां कै सिंघ, बर विषर जेम उंभारै।
इन वेरां हम्मीर, सूर क्यों स्यार संभारै।

पृथ्वीराज रासो, पद्य २२२२

सो धम्मु सारु जहिं जीव-रक्ख सो धम्मु सारु जहिं नियम-संख।
सो धम्मु सारु जहिं सच्च-वाय सो धम्मु सारु जहिं नत्थि माय।

पउम सिरीचरिउ १. ८. ९६–९७

इसी प्रकार रासो में और अपभ्रंश काव्यो में अनेक स्थल मिलते है जिनमें भाव को प्रबलता से अभिव्यक्त करने के लिए शब्दो या वाक्याशो की आवृत्ति की गई है।

४ पुष्पदन्त के महापुराण का विवेचन करते हुए ऊपर एक नवीन अलंकार की ओर निर्देश किया जा चुका है। इसमे दो दृश्यो, घटनाओ या दो वस्तुओ की तुलना की जाती है। उपमेयगत और उपमानगत वाक्यो की अग-प्रत्यग सहित समता प्रदर्शित की जाती है। इस अलंकार का नाम, 'ध्वनित रूपक' रखा जा सकता है। पुष्पदन्त के महापुराण में इस प्रकार के अनेक दृश्य उपस्थित किये गये है। उदाहरण के लिए साय-काल और युद्धभूमि के दृश्य की समता का प्रदर्शक निम्नलिखित उद्धरण देखिये—

एत्तहि रणु कयसूरत्थवणउं एत्तहि जायउं सूरत्थवणउं।
एत्तहि वीरहं वियलिउ लोहिउ एत्तहि जगु संझारइ सोहिउ।
एत्तहि कालउ गयमय विब्भमु एत्तहि पसरइ मंदु तमीतमु।
एत्तहि करि मोत्तियइं विहत्तइं एत्तहि उग्गमियइं णक्खत्तइं।
एत्तहि जय णरवइ जसु धवलउ एत्तहि धावइ ससियरमेलउ।
एत्तहि जोह विमुक्कइं चक्कइं एत्तहि विरहें रडियइं चक्कइं।
कवणु णिसागमु किं किर तहिं रणु एहुण बुज्झइ जुज्झइ भडयणु।

महापुराण २८ ३४. १–७

अर्थात् इधर रण में शूरो का अस्त हो रहा है उधर सूर्यास्त हो रहा है, इधर वीरो का रक्त विगलित हुआ उधर संसार सध्याराग रंजित हुआ, इधर कृष्ण गज, मद-विलास है उधर कृष्ण अंधकार, इधर हस्तियो के गडस्थल से मोती विकीर्ण हुए उधर नक्षत्रो का उदय हुआ, इधर विजित नरपति के यश से धवलिमा उधर चन्द्र ज्योत्स्ना, इधर योद्धाओ से विमुक्त चक्र उधर भी वियोग से आक्रन्दन करते हुए चकवाक। उभयत्र सादृश्य के कारण उस युद्धभूमि मे निशागम का ज्ञान नही हुआ। सध्या और रणभूमि में भेद न करते हुए योद्धा युद्ध करते रहे।

इसी शैली के उदाहरण पृथ्वीराज रासो मे भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए निम्न-लिखित रति युद्ध का दृश्य देखा जा सकता है।

लाज गट्ठ लोपंत,, बहिम रद सन ढक रज्ज।
अधर मधुर दंपतिय, लूटि अब ईव परज्जं।
अरस प्ररस भरअंक, खेत परजंक पटक्किय।
भूषन टूटि कवच्च, रहै अध बीच लटक्किय।
नीसान थान नूपुर बजिय, हाक हास करषत चिहुर।
रति वाह समर सुनि इछिनिय, कीर कहत बत्तिय गहर॥

पद्य सख्या १९७९

रति और युद्ध मे कुछ क्रियाओ का साम्य प्रदर्शित किया गया है। लाज का लोप हो गया है, एक ओर अधर रस की लूट है दूसरी ओर भी शत्रु द्रव्य की लूट है। एक ओर अक मे भर पर्यंक पर पटकना है दूसरी ओर रणक्षेत्र में पटकना है। एक ओर भूषण टूटते है दूसरी ओर कवच। एक ओर नूपुरो का शब्द है दूसरी ओर बाजो का। इस प्रकार रति और युद्ध मे साम्य प्रदर्शित किया गया है।

५ आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने अपने "हिन्दी साहित्य का आदि काल" नामक ग्रथ मे पृथ्वी राज रासो और सदेश रासक की समानता की ओर निर्देश किया है। सदेश रासक का जिस ढग से आरम्भ हुआ है उसी ढग से रासो का भी आरम्भ हुआ है। आरम्भ की कई आर्याओ मे तो अत्यधिक समानता है।[1] इसी प्रकार सदेश रासक मे कवि ने जिम बाह्य प्रकृति के व्यापारो का वर्णन किया है वह रासो के समान ही कवि प्रथा के अनुसार है। वर्ण्य विषय के लिए वस्तु-सूचि प्रस्तुत करने का ढग दोनो मे मिलता है।[2] इसके अतिरिक्त विविध छदो का प्रयोग भी दोनो ग्रथो में दिखाई देता है।

इस प्रकार भाषा तथा रचना-शैली के भिन्न-भिन्न साम्यो से यह प्रतीत होता है कि रासो का मूल ग्रथ अपभ्रंश भाषा में ही रचा गया, जो कालान्तर में बढते-बढते अनेक भाषाओ के पुट के साथ आधुनिक रूप में परिवर्तित हो गया। इस आधुनिक पृथ्वीराज रासो का समय यद्यपि १५वी, १६वी शताब्दी के लगभग का है किन्तु प्राचीन मूलरूप १२वी १३वी शताब्दी का माना जा सकता है।

पद्म पुराण-बलभद्र पुराण

यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी दो हस्त-लिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भडार में विद्यमान है।

---

१ श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, सन् १९५२ ई०, पृ० ६०।

२. वही, पृ० ८४।

रइधू[1] कवि ने इस ग्रन्थ द्वारा ग्यारह सन्धियो एवं २६५ कडवकों मे जैन मतानुकूल राम कथा का वर्णन किया है। सन्धियो मे कडवको की कोई निश्चित सख्या नही। नवी सन्धि मे नौ और पाँचवी सन्धि मे उनतालीस कडवक पाये जाते है। कृति की पुष्पिकाओ मे ग्रथ का नाम बलभद्र पुराण भी मिलता है। कृति कवि ने हरिसिंह साहु की प्रेरणा से लिखी थी और उसी को समर्पित की गई है। प्रत्येक सन्धि की पुष्पिका मे उसके नाम का उल्लेख है।[2] सन्धियो के प्रारम्भ मे संस्कृत पद्यो द्वारा हरिसिंह की प्रशसा और उसके मगल की कामना की गई है।[3]

कृति मे गोव्वग्गिरि गढ (गोपाचल गिरि) और राजा डूगरेन्द्र के राज्यकाल का निर्देश है।[4] कवि द्वारा लिखित सुकौशल चरित नामक ग्रथ मे बलभद्र पुराण का उल्लेख मिलता है।[5] अत इस काव्य की रचना उक्त कृति के रचना काल (वि सं. १४९६) से पूर्व ही हुई होगी, ऐसी कल्पना की जा सकती है।

ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से होता है—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।
परणय विद्धंसणु, मुणिसुव्वय जिणु, पणविवि बहु गुणगण भरिउ।
सिरि रामहो केरउ, सुक्ख जणेरउ, सह लक्खण पयडमि चरिउ॥

इसके बाद जिन स्तवन किया गया है। तदनन्तर कवि से ग्रन्थ रचना की प्रार्थना की जाती है।

---

१. रइधू के परिचय के लिए सातवां अध्याय देखिए।

२. इस बलहद्द पुराणे, बुहियण विदेहि लद्ध सम्माणे,
सिरि पडिय रइधू विरइए, पाइय बंधेण अथ
विहि सहिए सिरि हरसीह साहुकंठि कंठाभरणे,
उहयलोयसुहसिद्धिकरणे........इत्यादि

३. यः सव्वंदा जिनपदांबु जयो द्विरेफः
सत्पात्रदान निपुणो मदमान हीनः।
दाता क्षतो हि सततं हरसीह नाम
श्री कम्मंसीह सहितो जयतात्स दात्रा (ता)॥

सन्धि ३.

४. गोव्वग्गिरि णामें गढु पहाणु, णं विहिणाणिम्मिउ रयण ठाणु।
अइ उच्चु धवलु नं हिमगिरिंदु, जहिं जम्मु समिछइ मणि सुरिंदु।
तहिं डुंगरेदु णामेण राउ, अरिगण सिरग्गि संन्दिन्नघाउ।

१. २

५. बलहद्दहु पुराण पुणु तीयउ। णियमण अणुराएँ पइं कीयउ।

सुकौशल चरित १. २२

सुकौशल चरित के लिए सातवां अध्याय देखिए।

भो रंधू पंडिय गुणणिहाण पोमावइ वर वंसहं पहाण।
सिरि पाल्ह बम्ह अयरियसीस, महुवयणु सुणहि भो बुहगिरीस ।।
सोढल निमित्त नेमिहु पुराणु, विरयउ जहं पइ जण विहिय माणु।
तहं राम चरित्तु विमहु भणेहि, लक्खण समेउ इउ मणि मुणेहि ।।

प. च १४

रयधू काव्य रचना में अपने को असमर्थ पाते है किन्तु हरसीहु साहु उन्हे प्रोत्साहित करता है।

तुहुं कव्व धुरंधर दोस हारि, सत्थत्थ कुसल बहु विणय धारि।
करि कव्वु चिंत परिहरहिं मित्त, तुह मुहि णिवसइ सरसइ पवित्त।

१.५

इसके बाद जंबु द्वीप, भरत क्षेत्र, मगन देश, राजगृह, सोणिक राजा, रानी चेल्लणा, सब का एक ही कडवक (१६) मे निर्देशमात्र कर दिया गया है।

कथा का आरम्भ गौतम श्रेणिक की आशकाओ से होता है। इंद्रभूति उसके उत्तर में कथा कहते है—

जइ रामहु तिहुवणि ईसरत्तु, रावणेण हरिउ किं तहु कलत्तु।
वणयर पव्वउ किं उद्धरंति, रयणयरु बंधिवि किं तरंति।
......
छम्मास णिद्द किं णउ मरेइ, कुंभयणु पुणुवि किं जायरेइ।

प. च. १.८

काव्य में घटनाओ को चलता करने का प्रयत्न दिखाई देता है। देखिये एक ही वाक्य में कीर्त्ति धवल की रानी लक्ष्मी का वर्णन कर दिया गया है—

...... कित्ति धवलु लंका पुरि राणउ।
तासु लच्छिणामें प्रिय सुन्दरि, चंद वयणि गइ णिज्जय सिंधुर।

१.१०

इसी प्रकार निम्नलिखित ग्रीष्मकाल का वर्णन भी अत्यन्त संक्षिप्त है—

पुणु उण्ह कालि पव्वय सिरेहिं, खर किरण करावलि तप्पिरेहिं।
सिरि रागम चउपहि झाण लीणु, अहणिसु तव तावें गत्त खीणु।

२.१८

इसी प्रकार ७.८-१० मे भी राम-रावण युद्ध सामान्य कोटि का वर्णन है।

पांडव पुराण

यह ग्रथ भी अभी तक प्रकाशित नही हो सका। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भंडार में और एक प्रति देहली के पचायती मदिर में विद्यमान है।

इस ग्रथ के रचयिता यश. कीर्त्ति है। इन्होने पाडव पुराण के अतिरिक्त हरिवंश पुराण की भी रचना की। यशः कीर्त्ति का लिखा हुआ चन्द्रप्रभ चरित नामक खडकाव्य

भी उपलब्ध है ।[1] किंतु उस ग्रथ में कवि ने न तो रचनाकाल का निर्देश किया है और न अपने गुरु के नाम का । अत: निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि पूर्व निर्दिष्ट दोनो ग्रथो के रचयिता और चन्द्रप्रभ चरित के रचयिता एक ही यश कीर्त्ति है या भिन्न भिन्न ।

पाडव पुराण की रचना कवि ने नवगाव नयर (नगर) मे अग्रवाल कुलोत्पन्न वील्हा साहु के पुत्र हेमराज के अनुरोध से की थी ।[2] सन्धिओ की पुष्पिकाओ में भी हेमराज का नाम मिलता है और इन्ही पुष्पिकाओ से प्रतीत होता है कि यश कीर्त्ति गुण कीर्त्ति के शिष्य थे ।[3] प्रत्येक सन्धि के आरम्भ मे कवि ने सस्कृत में हेमराज की प्रशसा और मंगल कामना की है ।[4] प्रत्येक सन्धि की समाप्ति पर सन्धि के स्थान पर कवि ने 'सग्ग' शब्द का प्रयोग किया है । जैसे—

'कुरुवंस गंगेय उप्पत्ति वण्णणो नाम पठमो सग्गो ।'

---

१. चन्द्र प्रभ चरित के लिये देखिये आगे ७वां अध्याय—अपभ्रंश खंड काव्य (धार्मिक)

२. इय चितंतउ मणि जाम थक्कु, ताम परायउ साहु एक्कु ।
इह जोयणि पुरु बहु पुरहं सारु, धण, धण्ण सुवण्ण णरेहिं फारु ।
....
सिरि अयर वाल वंसहं पहाणु, जो संघहं वच्छलु विगयमाणु ।
तही णंदणु वील्हा गय पमाउ, नव गाव नयरे सो सइं जि आउ ।
....
तहो णंदणु णंदणु हेमराउ, जिण धम्मोवरि जमुणिव्वभाउ ।
१·२

३. इय पंडव पुराणे सयल जण मण सवण सुहयरे, सिरि गुण कित्ति सीस मुणि जस कित्ति विरइये, साधु वील्हा पुत्त रायमंति हेमराज णामंकिए ···· इत्यादि ।

४. श्रीमान संताप करोरु धामा, नित्योदयो द्योतित विश्वलोकः ।
कुर्याज्जिना पूर्व्व रविर्मनोज्जे, श्री हेमराजस्य विकाश लक्ष्मं ।।१
दान शृंखलया बद्धा चला ज्ञात्वा हरि प्रिया ।
हेमराजेन तत्कीर्त्ति दूरे दूरे पलायिता ।।२
द्वितीय सन्धि
यस्य द्रव्यं सुपात्रेषु यौवनं स्वस्त्रियां भवेत् ।
भूति य (यं) स्य परार्थेषु स हेमाख्यो तु नंदतु ।।
चतुर्थ सन्धि
कल्पवृक्षा न दृश्यन्ते कामधेन्वादयस्तया ।
दृश्यते हेमराजो हिं एतेषां कार्य कारकः ।।
१६वीं सन्धि

कवि ने कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार वि सं. १४९७ को यह कृति समाप्त की थी ।[1]

कृति मे ३४ सन्धियो द्वारा कवि ने पाडवो की कथा का वर्णन किया है। ग्रन्थ का आरम्भ निम्नलिखित अलकृत पद्य से होता है—

ऊँनमो वीतरागाय।

वोह सुसर धयरद्ठहो गय धयरद्ठहो, सिरि ललामु सो रद्ठहो।
पणवेवि कहमि जिणिद्ठहो णुय वल विद्ठहो, कह पंडव धयरद्ठहो ।[2]

जिन स्तवन के अनन्तर कवि सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि को नमस्कार करता है । पुन. सरस्वती वन्दन के पश्चात् इन्द्रभूति प्रमुख गुरुजनो को नमस्कार करता है । तदनन्तर सज्जनदुर्जन स्मरण और आत्म विनय प्रदर्शित किया गया है ।

वर्णन प्रायः सामान्य कोटि के दृष्टिगत होते है। युद्ध वर्णन में छन्द की एकरूपता दिखाई देती है।

नारी वर्णन परम्परागत उपमानो से युक्त है। कवि ने शरीरगत सौंदर्य का ही अधिकतर वर्णन किया है। "जाहे णियतिहे रइ वि उक्खिज्जइ" (अर्थात् जिसको देख कर रति भी खीज उठती थी) और "लायण्णो वासव पिय जूरइ" (अर्थात् उसके सौंदर्य से वासव प्रिया-इन्द्राणी भी खिन्न होती थी), आदि विशेषणो से कवि ने शारीरिक सौंदर्य की अपेक्षा उसके प्रभाव की ही सूचना दी है। सौंदर्य के हृदय पर पडने वाले प्रभाव की अधिकता 'भल्लि व मारइ' विशेषण से परिलक्षित होती है । देखिये पाचाली का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

आरणालं ।

मणिमय कणि कुंडल रयणमेहला । सीस मउलि सारा ।
करे झण झणिय कंकणा । तोसिया जणा, कंठ मुत्तहारा ।।
चल णिहिं मंजीरय मणि कंठिय, उरि कंचुलिय रयणमय दिट्ठिय।
सिरि खंडहिं कपूरहिं लेविय, कुसुम गंध भमरावलि सेविय।
मुहं तंबोलु णयण किय कज्जलु, मुह सासें मंडउ किउ परिमलु।
रंभ तिलोत्ति मणं सुरअच्छर, णव जोव्वण मिइ खोडस वच्छर।

---

१. **विक्कम रायहो व व गय कालए, महि[1] सायर[4] गह[6] रिसि[7] अंकालए।**
कत्तिय सिय अट्ठमि बुह वासरे, हुउ परिपुण्णु पढम नंदीसरे ।।
....

इति पंडु पुराण समाप्तं ।
ग्रंथ संख्या ९६००

२. **वोह...रद्ठहो-ज्ञान सरोवरे हंसस्य ।**
गय...रद्ठहो-गतजध्वजराष्ट्रस्य । सिरिललामु...हो-तिलकी भूतस्य सौराष्ट्र देशस्य णुय वलविट्ठहो-नूत बल गोविन्दस्य ।

रंभारुहिय सहिय गणमंडिय, णिय जोव्वण सिरीए अवरुडिय ।
गहिय पसाहणि भल्लि व मारइं, अवलोयंतिहिं जणु संघारइं ।
चउदस आहरणेहिं अलंकिया, सोलह सिंगारेहिं णउ संकिय ।
सव्वहि लक्खणेहि संपुण्णिया, कर चरणहिं सीसहिं कइं वण्णिया ।
ताहे उरोय कणयणं कलसइं, काम करिंद कुंभणं उच्चइं ।
कइ वण्णतिहि पारु ण पत्तइं, णयण वयण मय छण ससिसरिसइं ।
जाहे णियंव विंवु उरु गरुयउ, पत्तलु पोट्टु णाहि अडुगहिरउ ।
सव्वसुहंकरि किं वण्णिज्जइ, जाहे णियंतिहे रइपि उक्खिज्जइं ।
जाहे पुट्ठि कवरी लोलंतिय, गंधागय णाइं णिव चलंतिय ।
रत्तासोय पत्त णह चलणइं, कल कंठि वीणा रव वयणइं ।
कत्थूरी घुसिणहं पत्तावलि, गंधायट्ठिय णं भमराउलि ।
गायंती किण्णर मणु मोहइ, णच्चंतिहिं भरहंगुण सोहइ ।
पडहहु वाएं अमरि ण पूरइ, लायण्णें वासवपिय जूरइ ।
घत्ता—सिरि पडुर छत्तइं, चमर पडंतइं, वंधव सयणहिं परियरिय ।
वहु णर मोहंतिय, गयमलहंतिय, मोहण वल्लि व अवयरिय ।।

१२.१६

कवि की भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी मिलता है । देखिये—

झं झणण झणण झल्लरि वि सद्द,
टं टं करंत करि वीर घंट ।
कंसाल ताल सद्दइ करंति,
मिहुणइं इव विहडिवि पुणु मिलंति ।
डम डम डम डमरु सद्दियाइं,
बहु ढोल निसाणइं वज्जियाइं ।।

२१ ९

कवि ने भिन्न-भिन्न सन्धियो मे कडवक के आरम्भ में दुवई, आरणाल, खडय, हेला, जभेट्टिया, रचिता, मलय विलासिया, आवली, चतुष्पदी, सुन्दरी, वसत्थ, गाहा, दोहा, वस्तु बन्ध आदि छन्दो का प्रयोग किया है । २८ वी सधि के कडवको के आरम्भ में कवि ने दोहा छंद का प्रयोग किया है । दोहे का कवि ने दोहउ और दोधक नाम भी दिया है । इसी सन्धि में कही कही कडवक के आरम्भ में दोहा है और कडवक चौपाई छन्द मे है । उदाहरणार्थ—

दोधकं

ता सिंचिय सीयल जलेण, विज्जिय चमर निलेणु ।
उट्ठिय सोयानल तविय मइलिय अंसु जलेण ।।
हा हा णाह णाह किं जायउ, महु आसा तरु केणवि पायउ ।
हा सिंगारभीउ महु भग्गउ, हा हा विहि किं कियउ अजोग्गउ ।

हा हा परभवि को वि छाइउ, तं भव अज्जिउ अम्हहं आयउ।
किं णउ गब्भि मुइय किं जाइय, हा विहि किं जोव्वणि संभाविय।

२८ १३

हरिवंश पुराण

यश कीर्त्ति-रचित यह ग्रंथ भी अप्रकाशित है। इसकी वि० सं० १६४४ की एक हस्तलिखित प्रति देहली के पंचायती मन्दिर में विद्यमान है।

इस ग्रंथ की रचना कवि ने जोगिनीपुर मे अयरवाल (अग्रवाल) वश मे प्रमुख गग्ग (गर्ग) गोत्रोत्पन्न दिउढा साहु की प्रेरणा से की थी।[1] सन्धियों की पुष्पिकाओ में भी दिउढा का नाम मिलता है।[2] प्रत्येक सन्धि के आरम्भ में कवि ने दिउढा के लिये सस्कृत भाषा में आशीर्वाद परक छन्द भी लिखे हैं।[3] दिउढा के लिये कही कही एकार्ध (ड्यौढा) शब्द का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की समाप्ति पर भी कवि ने दिउढा साहु के वंश का परिचय देते हुए उसकी चिर मगल कामना की है। सधि के लिये अधिकतर सग्ग (सर्ग) शब्द का प्रयोग किया गया है। एक दो सन्धियो में 'सधी परिछेऊ' या 'सग्गो परिछेऊ' का भी प्रयोग मिलता है।

कवि ने कृति की रचना भाद्रपद शुक्लपक्ष एकादशी गुरुवार वि० स० १५०० में की थी।[4] कृति इद्रपुर में जलाल खान के राज्य में समाप्त हुई।[5] ग्रथ में तेरह सन्धियो

---

१. हरिवंश पुराणु १. २

२. इय हरि वंस पुराणे, कुरुवंसा हिट्ठिय सुपहाणे
विवुह चित्ताणुरंजणे, श्री गुण कित्ति सीस मुणि
जस कित्ति विरईए, साधु दिउढा साहुअणुमण्णिए, ... इत्यादि।

३. दान शृंखलया बद्धा, चला ज्ञात्वा हरि प्रिया।
दिवढाख्येन तत्कीर्त्तिः, दूरे दूरे पलायिता॥ ४ १
वदान्यो बहुमानश्च, सदा प्रीतो जिनार्चने।
परस्त्री विमुखो नित्यं, दिउढाख्यो त्र नन्दतात्॥
शीलं च भूषणं अस्य, सत्यं हिं मुखमण्डणं।
कार्यं परोपकारेण, स दिउढा नन्दताच्चिरं॥ ५ १
यस्य द्रव्यं सुपात्रेषु, यौवनं स्वस्त्रियां भवेत्।
भूति यस्य (यं) स्य परार्थेषु, स एकार्द्धो त्र नंदतात्॥
१०. १

४. विक्कम रायहो ववगय कालइं, महि इंदिय दुसुण्णअंकालइं।
भादव एयारसि सिय गुरुदिणे, हुउ परिपुण्णउ उग्गंतहि इणे॥ १३–१९

५. णउ कवित्त कित्तिहें धणलोहें, णउ कासु वरि पवट्ठिय मोहें।
इंद उरिहि एउ हुउ संपुण्णउ, रज्जि जलालखान कउउण्णउ॥ १३. १९

और २६७ कडवको मे यश कीर्त्ति ने महाभारत की जैन धर्मानुकूल कथा का सीधा वर्णन किया है। ग्रंथ का आरम्भ निम्नलिखित अलकृत पद्य से होता है—

ॐ नमो वीतरागाय ॥

पयडिय जय हंसहो, कुणय विहंसहो, भविय कमल सर हंसहो।
पणविवि जिण हंसहो, मुणियण हसहो, कह पयडमि हरिवंसहो ॥

इसके अनन्तर चौदस तीर्थंकरो का स्तवन कर ग्रथकार काव्य लिखने का प्रयोजन बताता है। इसी प्रसंग में कवि ने सज्जन-दुर्जन स्मरण किया है।[1] इसके अनन्तर गणधर से पूछे जाने पर श्रेणिक महाराज कथा प्रारम्भ करते हैं।

तीसरी सन्धि के पश्चात् चौथी सन्धि से कौरव पुराण आरम्भ होता है। नवीन कृति के समान इस सन्धि के आरम्भ में मगलाचरण, आत्म विनय, सज्जन-दुर्जण स्मरण मिलता है।[2]

---

१. पुव्व पुराण अत्थु अइ वित्थरु, काल पहावें भवियहं दुत्तरु।
अयर वाल कुल गयण दिणेसर, दिउ चंडु साहु भविय जण मणहरु।
तासु भज्ज बालुहिइ भणिज्जइ, दाण गुणहिं लोए हिं थुणिज्जइ।
......

ताहि पुत्तु विण्णाण वियाणउ, दिउढा णामधेउ बहु जाणउ।
ताहो उवरोहें मइं यहु पारद्धउ, णिसुण हुं भवियण अत्थ विसुद्धउ।

......
... ...   ता हरिवंसु मइं मिऊहिं किउ।
सव्व अत्थ संबंधु पुरंतउ, जिणसेणहो सुत्तहो यहु पयडिउ।
सज्जण दुज्जण भउ अवगण्णिवि, ते णिय णिय सहाव रय दोण्णिवि।
कडयउ णिबु महुरइ गाली, अंविलु वीय पूरु चिचाली।
तिहं सज्जण सुसहावें वच्छलु, दुज्जणु दुट्ठु गहइ कवियण छलु।
लेउ दोसु सो मइं मो कल्लिउ, जइ पिक्खइ तो अच्छउ सल्लिउ ॥

१. २

२. एक्कहें दिणि दिउढासेण पत्तु, पणयं विणयं जस मुणि विणत्तु।
मइं णिसुणिउं हरिवंसहो चरित्तु, एवहिं अक्खमि कुरुकुलु पवित्तु।
मुणि जंपइ को इउ चरिउ करइ, भारह समुद्द को भुवहि तरइ।
अइ दुग्गमु इउ कउरव पुराणु, को हत्थें झंपइ गयणे भाणु।
अण्णु वि अइ दुट्ठ अणिट्ठ पाव, परकव्व भव्व णिंदण सहाव।
दुज्जण अवहेलिवि सु सुहमणाहं, अइ विणउ पयासिवि सज्जणाहं।
चिर कव्व कविंद सउ लेवि, धम्मत्थें णिम्मलु मणु करेवि।
कडुवउ महुरउ निंबिक्खुजेम, सज्जण दुज्जणहं सहाउ तेम।
छण इंदहो भुक्कइ सारमेउ, किं करइ तासु ववगय विवेउ। ४ १.

काव्य में अनेक सुन्दर अलकृत शैली मे वर्णित स्थल उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिये कवि का निम्नलिखित हस्तिनापुर वर्णन देखिये। कवि ने परिसख्यालकार का प्रयोग करते हुए नगर का वर्णन किया है—

छत्ते सुदंडु जिणहरु विहारु, पीलणु तिलए सीइक्खि फारु।
सत्थे सुवधु मोक्खु वि पसिद्धु, कदलु कंदेसु विणउं विरुद्धु।
सिर छेउ सालि छेत्तहो पहाणु, इंदिय णिग्गहु मुणिगण हो जाणु।
जडया जलेसु मंसु वि दिणेसु, संधीसु सुरागमु तहं ? सुरेसु।
णिसिया असिधारइ सूइएसु, खरदंडु पउमणालें असेसु।
कोस खउ पहिय ह णउ जणेसु, वंकत्तु भउहवे कुंचिएसु।
जड उद्धारु वि परु वालएसु, अविियड्ढत्तणु गोवय णरेसु।
खलु खलिहाणें अहवा खलेसु, पर दारगमणु जहि मुणिवरेसु।
कव्वलसु णिरसत्तु वि पत्थरेसु, जद्धुविकसाल थी पुरिसएसु।
धम्मेसु वसणु पूयासुराउ, मणुऊहट्टइ दितंह ण चाउ।
माणेसु माणु सीहेसु कोहु, दीणेसु माय बुद्धेसु दोहु।
सत्थेसु लोहु णउं सज्जणेसु, पर हाणि चिंते दुज्जण जणेसु।
तुरगामिउ मउ णउं तिय समूहु, अइ चंचलु अडइहिं मयह जोहु।
विवुह हि दायारहिं वहुजणेंहि, ज सूहइ जण धण कण भरेहि। ४·५

कवि हस्तिनापुर के राजा का वर्णन करता हुआ कहता है—

तेएण सूरु सउमेण इंदु, रूवेण कामु णयवल्लि कंदु।
दुट्ठहं जमु सिट्ठहं उवरि राउ, वंदियहं णिरंतरु दिण्ण चाउ।
परणारि विमुहु दुव्वसण चत्तु, अइवलु खत्तिय धम्मेण रत्तु।
सत्तंग रज्ज पालण पवीणु, जसु रज्जि कोइ णउ दुहिउ दीणु।
......
महि मंडलि जो उपमा विहीणु, जसु रज्ज को वि णउ खलु णिहीणु।
सुहि वंधव ससयण करंतु मोउ, सा हंतु तिवग्गइ वसइ लोउ।
४.६.

कवि के नारी वर्णन में केवल उसके बाह्य रूप का ही चित्रण नही मिलता अपितु उसके हृदयस्पर्शी प्रभाव का चित्रण भी किया गया है। जैसे—

णं णाय कण्ण णं सुर कुमारि, णं विज्जाहरि विरहियण मारि।
णं काम भल्लि णं काम सत्ति, णं तासु जि कोरी वाण पत्ति।
णं जण मोहणि मोहणिय वल्लि, णं मयणा वलि णव जोव्वणिल्लि।
णं रण्णगउरि रोहिणि सुभामा, सूरहो ईसहो चंदहो ललामा।
५.८

कवि के युद्ध वर्णन में छन्दो की विविधता नही। न ही गतिशील छन्दो की योजना है। अतएव युद्ध वर्णन सजीव नहीं हो सके है। इस प्रकार के वर्णनो में केवल ऐति-

हासिक घटनाओं का उल्लेख मात्र हो पाया है। वर्णनों में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता दृष्टिगत होती है।

पत्थ सहाइ हुयउ णारायणु, लेप्पिणु संख चक्क गय पहरणु।
असि असि घाय फुलिंगयउट्ठहिं, भज्जहिं कायर वीरुक्कंठहिं।
केण वि कासु वि सिरु दोहाविउ, समउडु कुंडलु भूमि लुढाविउ।
केणवि कासु वि धणु दोखंडिउ, केण वि असि फरेहिं रणु मंडिउ।

१०.१७

पंचायणु गोविंदें पूरिउ, तेणवि कुरुवइ हियइ विसूरिउ।
जयहो चमक्कारिउ रणु जायउ, दोहिंमि वलहं परोप्परु घाइउ।
को गणेइ केत्तिय तिय रंडिया, सिर कमल करहिं धरत्तिय मंडिय।
छत्त चमर घण धण किं सीसहिं, रत्त णईए तरंता दीसहिं।
मुच्छिय के वि केवि तहिं णट्ठिया, ऊसरेवि गय कायर तट्ठिया।
रवि अत्थमिउं महाहव खेइया, उहय वलइ णिय णिय थाणहो गया।
पढमउं दिणु गउ वहु णर जुज्झिया, केत्तिय पडिय संखडउ वुज्झिया।
रवि उग्गमिउं तामऊ वग्गिय, दिण्ण तूरु विण्णिवि वल लग्गिय।
खेयर खेयरेहिं सहु धाइय, गय वर गय वरेहिं सं पाइय।
साइय साइएहिं पाइक्कहिं, पाइक्कइं रण सम्मुहुं ढुक्किय।
संदण संदणेहिं संदाणिय, सुहडें सुहडखिणउं ऊलक्खिउ।
सद्दें वइरि परोप्परु घाइया, हुउ कद्दमु रत्त णइ वहाविय।
पाडिय हय गय रह वाइत्तइ, दीसहिं सुहडहं सीस लुढंतइ।
छिण्णइ सीस कवंधइ णच्चहिं, किंचिवि असि कर धाइवि वच्चहिं।

१०.१९

कवि के विरह वर्णन भी सामान्य कोटि के हैं। विरह की तीव्र व्यंजना का अभाव सा ही परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित जीवजसा का विलाप देखिये—

परिदेवइ कंदइ णाह णाह, का कहिं गउ सामिय करि अणाह।
महु हिय इछुहोप्पिणु गाढदाहु, हा वयरिहिं मणि परि किउ उच्छाहु।
हा जाय वाहं पर सोहलउ जाउ, हा णाह मज्झु हिव वत्तु आउ।
उरु ताडिउ णयणंसुर्याहं किण्हु, किउ थणयडु आकोसियउ कण्हु।
रोवतं रुवाइय वणह पंक्खि, लुट्टन्ति हिंरिणु णिहे गुंठियक्खि।
ससवत्तिहिं कंसहो उवरि पडिया, रावइ जीवंजस विरह णडिय।
हा हा पइ विणु महु कवणु छाया, जय पहु सय तापइं विणु वराय।
पडि वयणु देहि एक्क सिहाए, पिय जामण हियउ फुडेवि जाइ।
खणि खणि मुछिज्जइ महिं विहाए, वहलंजण सामल रत्ति णाइ।
किउ संसयारु कसहो वि तेहिं, मिल्लेप्पिणु सव्वेहिं जायवेहिं॥

३.९

कवि मार्मिक स्थलो पर भी भाव तीव्रता अभिव्यक्त नही कर सका है। कवि का उत्तरा-विलाप प्रसग साधारण कोटि का है। निम्नलिखित द्रौपदी के केशाकर्षण प्रसग में भी भावतीव्रता नही—

तं णिसुणेप्पिणु दूसासणेण, णिद्दइयं पाव कयायरेण।
आयड्ढिय केस धरेवि जाम, धिट्ठ कारिउ सव्वेहि ताम।
णं हरिणा सारंगि य वराय, णं णायारे णाइणि सच्छाय।
णं धीवरेण मीणइ आहल्लि, णं मक्कडेण कोमलिय वल्लि।
ण पउमिणि लुंचिय मयगलेण, तिहं दे (दो) वइ तेण धणुद्धरेण॥ ७.१६

काव्य मे पद-योजना प्राय संस्कृत भाषा की शैली में दृष्टिगोचर होती है। जैसे—

उववेसिऊं णियय पज्जंक देसम्मि, उवविट्ठ तहो पुरउ महि वीढि रमम्मि।
...... पुच्छेइ वियसंतु मायंग वर गामि।
कल्लाण तं कासि कहो तणिय वरधूय, किं एछ ए कासि वहु विणय संभूय।
णिव पुच्छिया सावि करकमल सणाए, सहिं भणिय ता ताए पच्छण्ण वायाए। ४.७

जहा इस प्रकार की शैली नही वहा पद योजना अधिक सरल और प्रभावोत्पादक प्रतीत होती है। जैसे—

किं रज्जें अरियण संकिएण, किं सग्गें जत्थ पुणागमेण।
किं विहवें उप्पाइय मएण, किं छत्तें छाइय सिव पहेण।
किं चमरें उद्धाविय गुणेण, किं एहुरणेहि वहासिएण।
असहायहि किं सज्जण जणेण, किं तारुण्णें जर संगएण। १२.१५

भाषा मे स्थान-स्थान पर सुभाषितो और वाग्धाराओ का प्रयोग भी मिलता है—

"छण इंदहो भुक्कइ सारमेउ, किं करइ तासु ववगय विवेउ॥ ४.१
"सइं कियउ कम्मु को अणुहवइ, णिय किउ मु हु दुहु अग्गइ सरइ।" ८.१
"रवि पुरउ कवणु ससि तारयाइ" १०.८
"असहायहो होइ ण कज्ज सिद्धि" १०.१६

कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि काव्य में उसने पद्धडिया बध का प्रयोग किया है।[1] किन्तु पद्धडिया के अतिरिक्त कड़वको के आरम्भ में दुवई, आरणाल, जभेट्टिय,

---

१. इहु हरिवंसु सत्थु मइ अक्खिउ, कुरु वंसहो समेउणउ रक्खिउ।
पढमहि पयडिउ वीर जिणेंदें, सेणिय रायहो कुवलइ चंदें।
गोयमेण पुणु किय सोहम्में, जंबू सामें विण्हु सणामें।
णंदि मित्त अवरज्जिय णामें, गोवद्धणेण सुभद्दयवाहें।
एम परंपराए अणुलग्गउ, आइरियहं मुहाउ आवग्गउ।
मुणि संखेवसुतअवहारिउ, मुणि जस कित्ति महिहि वित्थारिउ।
पद्धडिया छंदें सुमणोहरु, भवियण जण मण सवण सहंकरु। १३.१९

खडय, वस्तुबन्ध, हेला आदि छन्दो का भी प्रयोग किया गया है। सन्धियों के प्रारम्भ में दिउढा की मगलकामना के लिये शार्दूल विक्रीडित, वसन्त तिलका, अनुष्टुप्, गाथा आदि छन्दो का भी प्रयोग मिलता है।

हरिवंश पुराण

इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भडार मे विद्यमान है। श्रुतकीर्ति ने प्राचीन कथा का ही इसमें वर्णन किया है। कवि की एक दूसरी कृति परमेष्ठि प्रकाश सार भी हस्तलिखित रूप मे उपलब्ध है। इसका समय कृतिकार ने वि. स १५५३ दिया है।

दह (१५) पण सय (५३) तेवण गय वासइं पुण
विक्कम णिव सवंच्छरहे।
तह सावण मासहु गुरु पंचमि सहुं,
गंथु पुण्ण तय सहसतहें॥

७.७४

अत कवि का समय वि सं की १६ वी शताब्दी का मध्य भाग माना जा सकता है।

कवि ने ४४ सधियो में महाभारत की कथा का वर्णन किया है। सधि की पुष्पिकाओ में कवि ने इस ग्रथ को महाकाव्य कहा है।[1]

ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से होता है।

ॐ जय नम सिद्धेभ्यः।
सिसिइणवोमं सइं, तं हरि वंसइं। पाव तिमिरहर विमल यरि।
गुण गण जस भूसिय, तुरय अदूसिय, सुव्वय णेमिय हलिय हरि॥

गाथा—

सुरवइ तिरीडरयणं, किरणंवु पवाहसित्त जह चलणं।
पणविवि तह परम जिणं, हरिवंस कयत्तणं वुघे॥

हरिवंश पुराण का कवि ने कमल रूप मे वर्णन किया है—

हरिवंसु पयोरुह अदूरवण्णु, इह भरह खित्त सरवरउ वण्णु।

१०.१

आत्म विनय और सरस्वती वन्दन से कथा आरम्भ होती है। मगलाचरण के द्वारा ग्रथ की समाप्ति होती है।

जिनअपभ्र श महाकाव्यो का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। निस्सदेह उनके अतिरिक्त अनेक महाकाव्य जैन भडारो में गुप्त पडे होगे। अनेक प्रकाश में आ चुके हैं। किन्तु अभी तक प्रकाशित नही हो सके। मुख्य रूप से महाकाव्यो के आधार पर

---

१. इय हरिवंशपुराणे मणहरसरायपुरिसगुणालंकार कल्लाणे तिहुवणकित्तिसिस्स अप्पसुद्दसुद्दकित्ति महाकव्वु विरयंतो णाम पढमो संधी परिछेऊ सम्मातो।

जो भी विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह अपभ्रंश साहित्य के महाकाव्य का रूप दिखाने के लिए पर्याप्त है। अपभ्रंश महाकाव्य का रूप, उसकी प्रवृत्तियाँ, उसकी विशेषताएँ इतने अध्ययन से ही स्पष्ट हो सकेंगी, ऐसा लेखक का विश्वास है। इन महाकाव्यों में अनेक ऐसे महाकाव्यों का अन्तर्भाव न हो सका जिन्हें कवियों ने तो महाकाव्य कहा है किन्तु विषय प्रतिपादन की दृष्टि से वे महाकाव्य नहीं माने जा सकते।[1]

१. उदाहरण के लिये श्रुतकीर्त्ति ने अपने परमेष्ठि प्रकाश सार को महाकाव्य कहा है किंतु सारे ग्रंथ में धार्मिक विवेचन ही मुख्य रूप से मिलता है। ग्रन्थ महाकाव्य प्रतिपादित लक्षणों से शून्य है। इसी प्रकार अमरकीर्त्ति ने अपने छक्कमोवएस (षट्कर्मोपदेश) नामक ग्रन्थ को महाकाव्य कहा है। कथानक और कवित्व की दृष्टि से यह भी महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

सातवाँ अध्याय

अपभ्रंश-खंडकाव्य (धार्मिक)

महाकाव्य का नायक कोई दिव्य कुलोत्पन्न या धीरोदात्त क्षत्रिय होता था। एक ही वश में उत्पन्न अनेक राजाओ का वर्णन भी महाकाव्य का विषय हो सकता था। महाकाव्य में किसी नायक के समस्त जीवन को सरस काव्यमय प्रसगो द्वारा अकित किया जाना चाहिए। खड काव्य मे नायक के समग्र जीवन का चित्र उपस्थित न कर उसके एक भाग का चित्र अकित किया जाता है। काव्योपयुक्त सरस और सुन्दर वर्णन महाकाव्य और खड काव्य दोनो मे ही उपलब्ध होते है। अपभ्रंश मे अनेक चरिउ ग्रन्थ इस प्रकार के हैं जिनमे किसी महापुरुष का चरित्र किसी एक दृष्टि से ही अकित किया गया है। कवि की धार्मिक भावना के पूरक रूप में प्रस्तुत, नायक के जीवन के इस रूप मे उपलब्ध होने के कारण ऐसे चरिउ ग्रन्थो की गणना खड काव्यो मे ही की गई है।

अपभ्रश मे धार्मिक दृष्टिकोण से रहित खड काव्य भी उपलब्ध होते है। धार्मिक भावना के प्रचार की दृष्टि से लिखे गये काव्यो में काव्यत्व कुछ दब सा जाता है। अतएव इस भावना से रहित काव्यो मे साहित्यिक रूप और काव्यत्व अधिक प्रस्फुटित हो सका है। इस प्रकार के काव्य हमें दो रूपो में उपलब्ध होते है—एक इस प्रकार के काव्य जिनमें शुद्ध ऐहलौकिक भावना से प्रेरित हो कवि ने किसी लौकिक जीवन से सबद्ध घटना को अकित किया है और दूसरे इस प्रकार के काव्य जो ऐतिहासिक तत्व से मिश्रित है, जिसमे धार्मिक या पौराणिक नायक के स्थान पर किसी राजा के गुणो और पराक्रमो का वर्णन है और उसी की प्रशसा मे कवि ने काव्य रचा है। इस दृष्टि भेद से हमारे सामने तीन प्रकार के खंड काव्य है।

१ शुद्ध धार्मिक दृष्टि से लिखे गये काव्य, जिनमे किसी धार्मिक या पौराणिक महापुरुष के चरित का अकन किया गया है।

२ धार्मिक दृष्टिकोण से रहित ऐहलौकिक भावना से युक्त काव्य, जिनमें किसी लौकिक घटना का वर्णन है।

३ धार्मिक या साम्प्रदायिक भावना से रहित काव्य, जिनमे किसी राजा के चरित का वर्णन है।

इनमे प्रथम प्रकार के खड काव्य प्रचुरता से मिलते है। उन्ही का वर्णन इस अध्याय मे किया गया है। शेष दो प्रकार के खड काव्यो का वर्णन अगले अध्यायो मे किया जायगा।

णाय कुमार चरिउ[1] (नागकुमारचरित)

यह कवि पुष्पदंत द्वारा रचा हुआ ९ संधियों का खंड काव्य है। कवि सरस्वती की वंदना से ग्रंथ का आरम्भ करता है। ग्रंथ मान्य खेट के राजा के मंत्री नन्न की प्रेरणा से लिखा गया। कवि मगध देश, राजगृह और वहाँ के राजा श्रेणिक का काव्यमय शैली में वर्णन कर बतलाता है कि एक बार तीर्थंकर महावीर राजगृह में गये और वहाँ राजा श्रेणिक ने उनकी सेवा में उपस्थित हो श्री पंचमी व्रत का माहात्म्य पूछा। महावीर के शिष्य गौतम उनके आदेशानुसार व्रत से संबद्ध कथा कहते हैं।

कथानक—प्राचीन काल में मगध देश में कनकपुर नाम का एक नगर था। वहाँ जयन्धर नाम का राजा अपनी स्त्री विशालनेत्रा और पुत्र श्रीधर के साथ राज्य करता था। एक दिन वासव नामक एक व्यापारी अपनी व्यापार सम्बन्धी यात्रा से लौटता हुआ कनकपुर में अनेक उपहारों के साथ राजा की सेवा में उपस्थित होता है। उन बहुमूल्य उपहारों में सौराष्ट्र के, गिरि नगर के राजा की लड़की का भी एक चित्र था। राजा उस चित्र को देख उस लड़की पर मुग्ध हो जाता है और पूछने पर उसे पता चलता है कि गिरनगरराज उस लड़की का विवाह राजा जयन्धर से करना चाहता है। यह समाचार सुन राजा अपने मंत्री को और उस व्यापारी को अनेक उपहारों के साथ गिरि नगर भेजता है। वे राजकुमारी को कनकपुर लाते हैं और धूमधाम से विवाह संपन्न होता है (१)

राजा दोनों रानियों के साथ क्रीडोद्यान में जाता है। नवागता वधू पृथ्वी देवी अपनी सपत्नी के वैभव को देख आश्चर्यान्वित हो जाती है और कहती है—

सुक्खइं दुज्जणहं णिय सज्जणहं दुक्खइं उप्परि पलोट्टइं।
जेहिं णिहालियइं णयणइं पियइं ताइं किं ण हलि फुट्टइं॥

हे सखि! जिन नयनों ने दुर्जनों के ऊपर पतित सुखों और निज सज्जनों के ऊपर पतित दुःखों को निहारा वे प्रिय नेत्र क्यों न फूट गये? ईर्ष्या से पृथ्वी देवी उद्यान में न जाकर जिन मंदिर में जाती है। वहाँ मुनि पिहिताश्रव उसे धर्मोपदेश देते हैं और भविष्य वाणी करते हैं कि उसके एक पुत्र होगा। समयानुसार पुत्र उत्पन्न होता है। जन्मोत्सव मनाया जाता है। माता-पिता जिन मंदिर में जाते हैं और द्वार को बंद पाते हैं। पुत्र के चरण स्पर्श से दरवाजा खुल जाता है। जब वे दोनों जिन की पूजा में लीन थे और स्त्रियाँ क्रीडोद्यान में बच्चे के साथ थीं, अकस्मात् बालक एक कुएँ में गिर जाता है। चारों ओर शोर मच जाता है। पुत्र के लिए माँ भी कुएँ में कूद पड़ती है। वहाँ नाग बालक की रक्षा करता है अतएव उसका नाम नाग कुमार रखा जाता है (२)।

---

१. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, बलात्कारगण जैन पब्लिकेशन सोसाइटी कारंजा, बरार से सन् १९३३ में प्रकाशित।

नाग कुमार को अनेक विद्याएँ और कलाये सिखाई जाती है। धीरे-धीरे नाग कुमार युवावस्था मे प्रवेश करता है। उसके सौदर्य से ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात् काम देव हो—

पेक्खइ जहिं जहिं जे जणु तहिं तहिं जि सुलक्खण भरियउ।
वण्णइ काइ कइ जगे वम्महु सइं अवयरियउ॥ ३.४.१६

कालान्तर में नागकुमार किन्नरी और मनोहरी नामक पचसुगन्धिनी की कन्याओ से विवाह कर लेता है। एक दिन नाग कुमार अपनी स्त्रियो के साथ एक सरोवर पर जलक्रीड़ा के लिए जाता है। उसकी माता स्नानानन्तर पहिरने के कपडे देने के लिए जाती है। उसकी सपत्नी विशालनेत्रा अवसर पाकर राजा का मन भर देती है—देखो तुम्हारी प्यारी स्त्री अपने प्रियतम के पास जा रही है। राजा उसका पीछा करता है और उसे पता चलता है कि यह सब विशालनेत्रा का प्रपंच है और उसे व्यर्थ दोषारोपण के लिए डाटता डपटता है। किन्तु साथ ही पृथ्वी देवी को आदेश देता है कि अपने पुत्र के साथ बाहर घूमने फिरने न निकले। रानी इसे अपमान समझती है और प्रतीकार भावना से प्रेरित हो अपने पुत्र को राजधानी के चारो ओर हाथी पर सवार कर घुमाती है। राजा रानी के इस अनादर-सूचक व्यवहार से उसके सारे गहने छीन कर उसे दडित करता है। नाग कुमार को यह बहुत बुरा लगता है और वह द्यूतक्रीड़ा मे जीते अनेक सुवर्णालंकारो और रत्नो से उसे भूषित करता है। उसकी द्यूत चातुरी का पता लगने पर राजा भी उससे जूआ खेलना चाहता है। नागकुमार राजा को भी हरा देता है और उसका सब धन इत्यादि जीत लेता है। किन्तु पीछे से वह सब कुछ अपने पिता को लौटा देता है और अपनी माता को पूर्ववत् स्वतंत्र करा लेता है।

एक दिन नागकुमार एक उद्धत घोड़े को अपने वश में कर लेता है। श्रीधर उसके बलपराक्रम को देखकर अपने यौवराज्य की इच्छा छोड़कर उससे ईर्ष्या करने लगता है। एक दिन अतीव उद्धत और बली हाथी को वश में करके नागकुमार सबको आश्चर्य-चकित कर देता है (३)।

श्रीधर नागकुमार को मारने का फिर भी प्रयत्न करता है किन्तु सफल नही हो पाता।

चौथी सधि से लेकर आठवी सधि तक नागकुमार के अनेक वीर कर्मों और चमत्कारो का वर्णन है। वह अनेक राजकुमारियो को दूसरे राजाओ के बन्धन से मुक्त कराता है। अनेक राजकुमारियो का उद्धार करता है और अनेक के साथ विवाह करता है। अनेक राजाओ को युद्ध में पराजित करता है।

अन्तिम सधि मे नागकुमार राज कुमारी मदनमंजूषा से विवाह करता है। विजयंधर की लड़की राजकुमारी लक्ष्मीमती से भी विवाह होता है। इसके साथ नागकुमार का प्रगाढ़ स्नेह था। मुनि पिहिताश्रव अनेक दार्शनिक सिद्धान्तो और धार्मिक उपदेशों का व्याख्यान करते है। अन्त मे नागकुमार मुनि से लक्ष्मीमती के साथ निज प्रगाढ़प्रेम का कारण पूछते है। मुनि इस प्रसंग मे नागकुमार के पूर्व जन्म की कथा बताते है और इसी

सम्बन्ध मे श्री पचमी व्रत का माहात्म्य वर्णन करते है। पूर्व जन्म मे नागकुमार इसी व्रत का पालन करते हुए मर गये । परिणामस्वरूप देवत्व को प्राप्त हो गये । किन्तु शोकातुर माता पिता को सान्त्वना देने के लिए फिर पृथ्वी पर आये। तब से वह भी धर्म मे रत हो गये और परिणामत उन्होने मोक्ष प्राप्त किया। लक्ष्मीमती उनकी पूर्व जन्म की स्त्री थी। मुनि इसके बाद व्रत पालन के प्रकार का वर्णन करते है।

इसी प्रसग मे जयधर मन्त्री घर से आता है और नागकुमार अपने घर लौटते है। वहा पिता उनका आदर सन्मान करता है। अनेक वर्षों तक अपनी अगणित स्त्रियो के साथ आनन्द से जीवन बिताते हुए और राज्य भोगते हुए अन्त मे तपस्वी हो जाते है और पुन मोक्ष प्राप्त करते है।

कथानक में चित्रदर्शन से प्रेमोत्पत्ति का निर्देश कवि ने किया है। नायक के अनेक राजकुमारियो से साथ विवाह का वर्णन, उस धार्मिक वातावरण के अनुकूल नही जिसका चित्र कवि उपस्थित करना चाहता है। नागकुमार के कुएँ में गिर जाने पर उसके माता पिता के हृदय मे जिस शोक की गुरुता अपेक्षित थी उसका अभाव है। नागकुमार के कश्मीर मे जाने पर नागकुमार को देखकर पुरवधुओ की मानसिक घबराहट की अवस्था का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है किन्तु कश्मीर की शोभा के वर्णन का अभाव ही है।

कवि की बहुज्ञता—कवि के पाडित्य और बहुज्ञत्व का पर्याप्त आभास इसके महा पुराण से ही मिल चुका है। इस काव्य मे भी अनेक निर्देशो से कवि के बहुज्ञत्व का ज्ञान होता है।[1] ९वी सधि मे कवि ने अनेक दार्शनिक और धार्मिक विचारो से अपना परिचय प्रकट किया है। अनेक हिन्दू और बौद्ध धर्मों के सिद्धान्तो एव तथ्यो का निर्देश और आलोचन कवि ने किया है। कवि ने (९ ५–११ में) साख्य, मीमासा, क्षणिकवाद, शून्यवाद आदि भारतीय धर्म के भिन्न-भिन्न दर्शनो और उनमें से कुछ के प्रवर्तको—कपिल, अक्षपाद, कणचर और सुगत—का निर्देश किया है। ९ ११ मे बृहस्पति के नास्तिकवाद का निर्देश किया है। काव्यगत सौन्दर्य एव अलकारो के लिए पुराणों में से अनेक पौराणिक प्रसगो का सहारा लिया है। शिव द्वारा कामदाह (८ ६ २), ब्रह्मा के सिर का काटना (९ ७ ५), वराहावतार में विष्णु द्वारा पृथ्वी का उद्धार (१ ४ ८), देवताओ द्वारा समुद्र मन्थन (१ ४ १०), शेषनाग के सिर पर पृथ्वी की स्थिति (७ १ ६) आदि पौराणिक उपाख्यानो का कवि को ज्ञान था।

रामायण और महाभारत के पात्रो और कथा प्रसगो का भी इतस्तत निर्देश मिलता है। हनूमान्, गागेय, युधिष्ठिर, और कर्ण का (१ ४), कुरुबल (४ १० १७) और पंच पाडवो (८ १५. १) का भी निर्देश मिलता है। लक्ष्मण द्वारा रावण की मृत्यु का निर्देश (३ १४ ५) जैन धर्मानुकूल राम कथा के अनुसार है।

कवि ने तीन बुद्धियो, तीन शक्तियो, पचाग मन्त्र, अरि षड्वर्ग, सात राज्यागो

---

१. देखिये नागकुमार चरिउ की भूमिका।

का (१ ८ १–७) भी निर्देश किया है। इससे कवि के (कामन्दकीय) नीति सार, (कौटिल्यीय) अर्थशास्त्र आदि नीति ग्रथो के अध्ययन का अनुमान किया जा सकता है। कही कही श्लेष और उपमा मे कवि ने राशि, नक्षत्र, ग्रह आदि का (३ १७ १२) प्रयोग किया है। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने ज्योतिष शास्त्र का भी अध्ययन किया था।

पात्र—नागकुमार, नागकुमार का पिता जयन्धर, उसकी माता पृथ्वीदेवी विमाता विशाल नेत्रा, सौतेला भाई श्रीधर, मुनि पिहिताश्रव और लक्ष्मीमती ही इस काव्य मे मुख्य पात्र है।

कथा का नायक नागकुमार है। नायक बहुपत्नीक है। अनेक पत्नियो में से लक्ष्मीमती के साथ अधिक अनुरक्त है। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर प्रतिनायक है।

इन सब पात्रो में नागकुमार का चरित्र ही कवि ने भलीभाँति चित्रित किया है। अन्य पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर कवि ने ध्यान नही दिया। कवि ने नागकुमार में धीरता, मातृभक्ति, शौर्य, साहस आदि गुणो की व्यजना सुन्दरता से की है। प्रतिनायक श्रीधर के चरित्र का विकास नही दिखाई देता। यदि श्रीधर को सौतेले भाई में पाई जाने वाली ईर्ष्या से अभिभूत, यौवराज्य पद की प्राप्ति का अधिकारी, एक बलवान् प्रतिपक्षी दिखाया जाता तो श्रीधर के चरित्र-विकास के साथ-साथ नागकुमार का चरित्र भी अधिक उज्ज्वल और स्वाभाविक हो जाता। मुनि पिहिताश्रव के चरित्र में भी किसी प्रकार का विकास नही। यदि मुनि के उपदेश के प्रभाव से नाग कुमार के चरित्र की दिशा परिवर्त्तित होती तो सम्भवत· मुनि पिहिताश्रव के चरित्र का महत्त्व होता किन्तु कवि ने नागकुमार के पूर्व जन्म की धार्मिक भावना को ही उसके उच्च जीवन का कारण बताकर मुनि के चरित्र-विकास का अवकाश ही नही रखा।

रस—कवि ने ग्रथ में नागकुमार के सौन्दर्य और पराक्रम का सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। कवि ने नागकुमार का चरित्र अंकित करते हुए उसमें जिन गुणो का महत्व दिखाया है, उन सब का कारण नागकुमार की धार्मिक भावना ही है। पूर्व जन्म मे श्री पचमीव्रत के अनुष्ठान के कारण नागकुमार को देवत्व प्राप्ति होती है। नागकुमार को कवि ने वीर रस का आश्रय दिखाया है। यह वीर रस शृंगार से परिपुष्ट है। नागकुमार के सौन्दर्य और शौर्य को देख कर मोहित हुई हुई स्त्रियो के हृदय की उद्विग्नता का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। अनेक सुन्दरियाँ भी उसके सामने आत्म-समर्पण कर देती है। नागकुमार के शौर्य से उद्भूत नारी हृदय के प्रेम की व्यंजना कवि ने स्थान-स्थान पर की है। ऐसे स्थलों पर शृंगार रस वीर रस को समृद्ध करता है। काव्य मे अनेक स्थलो पर नारी का मनोहर वर्णन किया गया है।

युद्ध का वर्णन ४ ९ में मिलता है। युद्ध यात्रा के वर्णन (७ ५) मे छद की गति और शब्द-योजना द्वारा नाद सौदर्य को उत्पन्न कर वीरता की व्यजना की गई है। वर्णन में ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से सौदर्य और भी बढ गया है। सेना के

सचलन से

धरणी वि सचलइ मदरु वि टलटलइ
जलणिहि वि झलझलइ विसहरु वि चलचलइ
जिगि जिगिय खग्गाइं णिद्दलिय मग्गाइ

७.५

ग्रथ में कवित्व के प्राचुर्य की अपेक्षा घटना का प्राचुर्य है। कवि का वर्ण्य विषय धार्मिक भावना का प्रसार है अतएव अनेक अलौकिक घटनाओ और चमत्कारो का भी समावेश हो गया है। वैसे तो सपूर्ण जैन साहित्य इद्रजाल, जादू, अलौकिक घटनाओ, चमत्कारो आदि से परिपूर्ण है।[1] यद्यपि कथाप्रवाह में शिथिलता है तथापि अनेक स्थलो पर काव्यमय सौन्दर्य के दर्शन हो जाते है।

जलक्रीडा वर्णन की परिपाटी प्राकृत कवियो मे भी दिखाई देती है। राजा लोग दिग्विजय करते हुए शत्रु को पराभूत कर उसकी वापियो में शत्रु के राजा की रानियो के साथ स्नान करते थे। पुष्पदन्त का जलक्रीडा वर्णन भी स्वाभाविक और सजीव है। शब्दो में चित्रोत्पादन की शक्ति है।

गयणिवसण तणु जले लिहक्कावइ अद्धुमिल्लु कावि थणु दावइ।
पउमणि दल जल बिंदु वि जोयइ कावि तहिं जि हारावलि ढोयइ।
कावि तरंगहिं तिवलिउ लक्खइ सारिच्छउ तहो सुहयहो अक्खइ।
काहे वि महुयरु परिमल बहलहो कमलु मुएवि जाइ मुह कमलहो।
सुहुमु जालोल्लु दिट्ठ णउहमग्गउ काहे वि अंबरु अंगि विलग्गउ।
काहे वि उपरियणु जले घोलइ पाणिय छल्लि व लोउ णिहालइ।[2]

३ ८

अर्थात् कोई स्त्री लज्जा के कारण अपने वस्त्र रहित शरीर को जल में निलीन कर रही है। कोई अर्धोन्मीलित स्तन का प्रदर्शन कर रही है। कोई हारावली को धारण करती हुई जल बिन्दु युक्त पत्र के समान प्रतीत हो रही है। कोई तरगो से त्रिवलियुक्त प्रतीत हो रही है। भ्रमर कमल को छोडकर किसी के सुगन्धबहल मुख पर बैठ रहा है। किसी का शरीर लग्न जलार्द्र वस्त्र आकाश के मेघ के समान प्रतीत हो रहा है। किसी के जलगत दुपट्टे को लोक जल पर नीहार के समान देख रहा है।

भाव व्यजना—मानव हृदय के भावो का विश्लेषण भी कवि भली भाँति कर सका है। नागकुमार के कश्मीर जाने पर उसे देख कर पुर वधुओ के मन की घबराहट का

---

१. देखिये इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग १५, पृ० १७५ पर प्रो० कालिपाद मित्र का लेख।

२. लिहक्कावइ—निलीन करना, छिपाना। दावइ—दिखाती है। सारिच्छउ—सादृश्य। अक्खइ—कहा जाता है। सुहुमु—सूक्ष्म। जलोल्लु—जलार्द्र। उप्परियणु—उपरि आवरण। णिहालइ—निहारना, देखना।

सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। कोई स्त्री घबराई हुई घर में आये जा माता के पैरो में पडती है, जल के स्थान पर घी से उसके पैर धोती है। कोई अपने बच्चे की चिन्ता में बिल्ली के बच्चे को ही लेकर चल पड़ती है। कोई पानी को मथ रही है, कोई बिना सूत्र के ही माला गूथती है। इत्यादि

कावि कंत झूरवह दुचित्ती कावि अणंग पलोपणे रत्ती।
पाएं पडइ मूढ जामायहो धोयइ पाय घएं घरु आयहो।
घिवइ तेल्लु पाणिउ मण्णेप्पिणु कुट्टु पेइ छुड्डु दारु भणेप्पिणु।
अइ अण्ण मण डिंभु चिंतेप्पिणु गय मज्जायर पिल्लउ लेप्पिणु।
धूवइ खीरु कावि जलु मंथइ कावि असुत्तउ मालउ गुंथइ।
ढोयइ सुहयहो सुहइं जणेरी भासइ हउं पिय दासि तुहारी।

(५.९)

प्रकृति वर्णन—प्रकृति वर्णन में कोई नवीनता नही दिखाई देती। निम्नलिखित उद्धरण मे बाण की शैली के अनुरूप कवि ने वट वृक्ष की सत्पुरुष से समानता दिखाई है। यहाँ शब्दगत साम्य के अतिरिक्त अन्य कोई साम्य नही। नवीनचित्रोत्पादिनी कल्पना का अभाव है।

सप्पुरिसु व थिर मूलाहिठाणु सप्पुरिसु व अकुसुमफल णिहाणु।
सप्पुरिसु व कइ सेविज्जमाणु सप्पुरिसु व दिय वर दिण्ण दाणु॥
सप्पुरिसु व परसंतावहारि सप्पुरिसु व पत्तुद्धरण कारि।
सप्पुरिसु व तहिं वड विडवि अत्थि जहिं करइ गंड कंडुयणु हत्थि।

(८.९.१-४)

भाषा—भाषा मे सौंदर्य लाने के लिए कवि ने स्थल स्थल पर उपमा, श्लेषादि अलकारो का प्रयोग किया है। अलकारो मे कवि नें परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग न कर नवीन उपमानो का भी प्रयोग किया है जिससे कवि की निरीक्षणशक्ति और अनुभव का आभास मिलता है। राजगृह का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

तहिं पुरवरु णामें रायगिहु कणय रयण कोडिहिं घडिउ।
बलि वड धरंतहो सुरवइहिं णं सुरणयरु गयण पडिउ॥

१.६

अर्थात् उस देश मे राज गृह नाम का कोटि कनक-रत्नो से घटित सुन्दर नगर था। मानो सुरनगर सुरपति के प्रयत्नपूर्वक रोके जाने पर भी हठात् आकाश से गिर पडा हो। सुन्दर कल्पना है। अपभ्रंश कवियो को यह कल्पना अतीव प्रिय थी। अनेक स्थलो पर इसका प्रयोग दिखाई देता है।

कवि की अनेक उपमाये नितान्त नवीन और मौलिक है। कवि को यमक और श्लेष अति प्रिय थे। कुछ अलकारो के उदाहरण नीचे दिये जाते है—

उपमा—

तडियइं दूसइं बहु मुंडवियउ मुंडियाउ दासी जिह थक्कियउ ७.१.१५

नाग कुमार की छावनी में गडे तम्बू ऐसे प्रतीत होते थे जैसे मुण्डित दासियाँ स्थित हो।

नागकुमार लक्ष्मीमती को इस प्रकार चाहता जैसे भिखारी ब्राह्मण सक्रान्ति को (९ २. ६)। नागकुमार इसी प्रकार लक्ष्मीमती-प्रिय था जिस प्रकार वैयाकरण निरुक्तिप्रिय होता है (९ २. ९)।

इसी प्रकार **यमक** (१ १०), **व्यतिरेक** (१ ४) आदि का भी कवि ने सुन्दरता से प्रयोग किया है।

शब्दो की आवृत्ति द्वारा क्रिया के पौन पुन्य को दिखाते हुए भाषा को बलवती बनाने का प्रयत्न निम्नलिखित उद्धरण में दिखाई देता है—

ता दक्खालिउ मंदहे णरवरु णं कामें धणु गुण संधिय सरु।
पिय विरहें मणु दुक्खइ दुक्खइ सुट्ठु मुहुल्लउ सुक्कइ सुक्कइ।
अंग अणंगें तप्पइ तप्पइ दंसणे रइजलु छिप्पइ छिप्पइ।

५.९

कवि की प्रसाद गुण युक्त रचना का उदाहरण निम्निलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है—

सोहइ जलहरु सुरधणु छायए सोहइ णरवरु सच्चए वायए।
सोहइ कइयणु कहए सुबद्धए सोहइ साहउ विज्जए सिद्धए।
सोहइ मुणि वरिंदु मणसुद्धिए सोहइ महिवइ णिम्मल बुद्धिए।
सोहइ मंति मंत विहि दिट्ठिए सोहइ किंकरु असिन्वर लट्ठिए।
सोहइ पाउसु सास समिद्धिए सोहइ विहउ सपरियण रिद्धिए।
सोहइ माणुसु गुण संपत्तिए सोहइ कज्जारंभु समत्तिए।
सोहइ महिरुहु कुसुमिय साहए सोहइ सुहडु सुपोरिस राहए।
सोहइ माहउ उरयल लच्छिए सोहइ वरु बहुयए धवलच्छिए।

९.३

सामाजिक अवस्था—नाग कुमार के अध्ययन से तत्कालीन राजाओ के जीवन और रहन-सहन पर अच्छा प्रकाश पडता है। राजा बहु-पत्नीक होते थे। जयन्धर ने विशाल नेत्रा के होते हुए भी पृथ्वी देवी से विवाह कर लिया था, यद्यपि उसका श्रीधर नामक पुत्र भी वर्त्तमान था। रानियो में ईर्ष्या स्वाभाविक होती ही थी। विवाह के समय लडकी ऊँचे घराने की ही हो ऐसा विचार राजकुमार न करते थे। अकुलीन कुल से भी लडकी को लेने मे दोष न समझा जाता था। णाय कुमार का प्रथम विवाह दो नर्त्तकियो से हुआ और णाय कुमार के पिता ने स्वय इसकी अनुमति दी थी और कहा था—

"अकुलीणु वि थीरयणु लइज्जइ"

३.७.८

क्षत्रियों-राजाओ में सभवतः मामा की लडकी से विवाह दोषयुक्त न माना जाता था। णाय कुमार के मामा ने अपनी लडकी का अपने भगिनी पुत्र के साथ विवाह करने का सकल्प किया था (७ ४. ५.)। इसी प्रकार प्रतीत होता है कि राजाओ में विवाह के

लिए वधू को वर के घर ले जाने की प्रथा प्रचलित थी। पृथ्वी देवी विवाह के लिए गिरि नगर से कनकपुर लाई गई थी (१ १७ १.)। इसी तरह कान्य कुब्ज के राजा विनयपाल की पुत्री राजकुमारी शीलवती को जब कि वह राजा हरिवर्म के साथ विवाह के लिए सिंहपुर ले जाई जा रही थी तो बीच मे ही मथुरा के राजा ने हर लिया था (५ २ १३)।

सगीत—नृत्य, गीत और वाद्य—कला राजकुमार और राजकमारियो की शिक्षा का आवश्यक अग थी। राजकुमारी इन्ही के आधार पर वर को चुना करती थी। काश्मीर की राजकुमारी ने णायकुमार से तभी विवाह किया था जब उसने आलापिनी बजाने में अपनी चतुरता का परिचय दिया था (५ ७. ११)। इसी प्रकार मेघपुर की राजकुमारी ने भी णायकुमार की मृदग चातुरी के कारण ही उससे विवाह किया था (८ ७ ७)। नागकुमार ने स्वय वीणा बजाई और उस पर उसकी तीन रानियो ने जिन मदिर मे नृत्य किया (५. ११. १२)। जब जयन्धर का पृथ्वीदेवी के साथ विवाह हुआ तो पुर नारियो ने नृत्य किया (१ १८. २)।

मनोरजन के साधन क्रीडोद्यान या जल क्रीडा थे। राजकुमार अन्त पुरवासियो के साथ इन स्थानों पर जाकर अपना दिल बहलाते थे। कवि के समय समाज में जूआ खेलने की प्रथा थी। इस खेल के लिए द्यूतगृह (टिंटा) बने हुए थे (३ १२)। धन उपार्जन के लिए भी इसका आश्रय लिया जाता था जैसे नागकुमार ने किया था। णायकुमार के पिता का विचार था कि—

"देवासुरहं मणोरह गारउ अक्खजूउ जणमणहं पियारउ"
३.१३.९

ग्रथ में स्वप्न ज्ञान और शकुन ज्ञान का विचार है। पृथ्वी देवी ने स्वप्न में हाथी, सिंह, समुद्र, चन्द्र, सूर्य और कमल सर देखा। मुनि पिहिताश्रव ने इसका फल पुत्रोत्पत्ति बताया। इससे प्रतीत होता है कि उस समय लोग स्वप्नज्ञान में विश्वास करते थे। लोग मत्र, तत्रादि में भी विश्वास करते थे। नागकुमार को इन्द्रजाल, रिपुस्तभन, मोहन आदि विद्याए सिखाई गई थी (३ १ १२)।

लोग साधु सतो की भविष्यवाणी पर पूरा विश्वास किया करते थे। चमत्कार के घटित होने पर भी लोगो को विश्वास था। अलौकिक घटनाओ से सारा काव्य भरा पडा है।

जसहर चरिउ[1]

कवि पुष्पदन्त द्वारा चारि सधियो में रचा हुआ काव्य है। जसहर या यशोधर की कथा जैन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। इसका चरित्र इसके पूर्व भी अनेक जैन कवियो ने

---

१. डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य द्वारा संपादित, कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा, बरार से १९३१ ई० में प्रकाशित।

संस्कृत में वर्णित किया है। वादिराज कृत यशोधरा चरित्र, सोमदेव कृत यशस्तिलक चम्पू, माणिक्य-सूरि कृत यशोधर चरित सब में यशोधर की कथा का ही वर्णन मिलता है।

कथानक—

जसहर चरिउ की कथा इस प्रकार है—

मारिदत्त नामक राजा ने भैरवानन्द नामक कापालिकाचार्य से दिव्यशक्ति देने की प्रार्थना की। भैरवाचार्य ने एतदर्थ राजा को सब प्राणियो के जोडो की बलि देकर देवी चडमारी की पूजा करने को कहा। सब प्राणियो के जोडे मिल गये किन्तु मनुष्य का जोडा न मिलने पर राजकर्मचारी, सुदत्त नामक जैन-भिक्षु के अभय रुचि और अभय-मति नामक क्षुल्लक श्रेणी के दो शिष्यो को पकड कर देवी के मदिर में ले गये। राजा उन्हें देख बहुत प्रभावित हुआ और पूछने लगा कि इस छोटी सी अवस्था में ही कैसे तपस्वी हो गये। क्षुल्लक बालक बोला—

जन्मान्तर मे उज्जयिनी में यशोर्ह नामक राजा और चन्द्रमति रानी के यशोधर नामक पुत्र था। युवावस्था मे अमृतमति नामक राजकुमारी से विवाह कर, पिता के विरक्त हो जाने पर, वह राज्य करने लगा (१)।

यशोधर भोग विलासमय जीवन व्यतीत करता था। एक रात अपनी रानी के दुराचरण के दृश्य से विक्षुब्ध हो उसने राजगद्दी छोड विरक्त होना चाहा। उसने अपनी माता से कहा—मैंने रात को एक दुःस्वप्न देखा है या तो मुझे एकदम भिक्षु हो जाना चाहिए या मै मर जाऊँगा। माता ने दुःस्वप्न के प्रभाव को दूर करने के लिए देवी को पशु बलि देने का प्रस्ताव किया। राजा के विरोध करने पर पशु बलि के बदले आटे के बने मुर्गे की बलि दी गई। किन्तु राजा का चित्त शान्त न हुआ, उसने वनवास का निश्चय किया। वन में जाने से पूर्व उसकी रानी अमृतमति ने धोखे से उसको और उसकी माता को विष देकर मार दिया। यशोधर के पुत्र जसवई ने शोकातुर हो अपने पिता और दादी का राजमर्यादोचित विभूति के साथ सस्कार किया ताकि भविष्य मे उनका मगल हो। किन्तु एक कृत्रिम मुर्गे की बलि के कारण आने वाले जन्म में राजा यशोधर एक मोर के रूप में और उसकी माता एक कुत्ते के रूप में उत्पन्न हुई। उसके बाद दूसरे जन्म में वे क्रमशः नकुल और सर्प के रूप में उत्पन्न हुए (२)। जन्मान्तर मे वे क्रमशः मगरमच्छ और मछली, बकरा और बकरी, मुर्गा और मुर्गी रूपों में उत्पन्न हुए। अन्त में राजा द्वारा मारे जाने पर उसके पुत्र पुत्री के जोड़े के रूप में उत्पन्न हुए। जोडे में से पुत्र का नाम अभयरुचि और पुत्री का नाम अभयमति हुआ। कालान्तर मे जसवई सुदत्त नामक जैन भिक्षु से प्रभावित हो विरक्त हो गया। उसने भिक्षु से अपने पिता, माता तथा दादी के विषय मे प्रश्न किया। भिक्षु ने उनके अनेक जन्मो का विवरण देते हुए बताया कि अभयरुचि और अभयमति उसके पूर्व जन्म के पिता और दादी हैं उसकी माता पांचवें नरक में है (३)।

यह सब सुनकर राजा जसवई ने भिक्षु बनना चाहा। अभयरुचि और अभयमति ने भी यही विचार प्रकट किया किन्तु अवस्था में कम होने के कारण सुदत्त ने उन्हें

क्षुल्लक ही रहने का आदेश दिया। इन शब्दो के साथ अभयरुचि ने कथा समाप्त करते हुए कहा कि हम इस प्रकार भिक्षा के लिए नगर में भ्रमण कर रहे थे जब कि राज कर्मचारियो ने हमें पकड कर मदिर में ला खड़ा किया।

अन्त मे राजा मारिदत्त और भैरवानन्द की पूर्व जन्म की कथा बताते हुए उन्हें भी जैन धर्म में दीक्षित किया गया। कालान्तर में अभयरुचि और अभयमति भी भिक्षु और भिक्षुणी हो पावन जीवन व्यतीत करते हुए देवत्व को प्राप्त हुए।

इस ग्रंथ मे न तो काव्यत्व की प्रचुरता है और न घटना की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। कवि ने जसहर और उसकी माता चन्द्रमति के अनेक जन्मों की कथा के वर्णन द्वारा जैन धर्म का महत्व प्रतिपादित किया है। कवि ने अपनी धार्मिक भावना को काव्यत्व से मढकर जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। धार्मिक भावना की प्रचुरता के कारण कही कही कथा मे अलौकिक तत्त्वों का समावेश हो गया है। इसी कारण कथा में सरसता नही आ सकी।

जसहर और उसकी माता चन्द्रमति ने भिन्न-भिन्न जन्मो में भिन्न-भिन्न पशु पक्षियो की योनि में जन्म लिया। इस प्रकार प्रकृति जगत् के पशु पक्षियो के प्रति भी मानव हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न ग्रंथ मे किया गया है। जसहर और उसकी माता का इन भिन्न-भिन्न योनियो में जन्म लेने का कारण यह था कि जसहर की माता ने पशु की बलि देने का प्रस्ताव किया था और जसहर ने वास्तविक प्राणी के स्थान पर आटे के बने मुर्गे की बलि देने का विचार प्रकट किया। इसके फलस्वरूप दोनो को अनेक जन्मो तक पशु और पक्षी की योनि में भटकना पडा। एव इस कथा द्वारा मानव हृदय मे अहिंसा की भावना का प्रचार कवि को अभीष्ट प्रतीत होता है।

प्रबन्ध कल्पना क्योकि एक सीमित दृष्टिकोण से की गई है अतएव पात्रो के चरित्र का चित्रण भी भली-भाँति नही हो सका।

वस्तु वर्णन—यद्यपि ग्रंथ मे न तो कथा का पूर्ण रूप से विकास हो सका है और न रस का पूर्ण रूप से परिपाक तथापि अनेक स्थल काव्य की दृष्टि से रोचक है।

यौधेय देश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जोहेयउ णामिं अत्थि देसु णं धरणिए धरियउ दिव्ववेसु।
जहिं चलइं जलाइं सविब्भमाइं णं कामिणिकुलइं सविब्भमाइं।
कुसुमिय फलियइं जहिं उववणाइं णं महि कामिणिणव जोव्वणाइं।
मंथर रोमंथण चलिय गंड जहिं सुहि णिसण्ण गोमहिसि संड।
जहिं उच्छुवणइं रस दंसिराइं णं पवण वसेण पणच्चिराइं।
जहिं कणभर पणविय पिक्क सालि जहिं दीसइ सयदलु सदलु सालि।
जहिं कणिमु कीर रिंछोलि चुणइ गहं वइ सुयाहि पडिवयणु भणइ।
जहिं दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण गोवाल गेय रंजिय मणेण।[1]

१.३.१-१४

१. सुहि—सुख से। रस दंसिराइं—रस से सुन्दर। पणविय—प्रणमित, झुके

अर्थात् यौधेय नाम का देश ऐसा है मानो पृथ्वी ने दिव्य वेश धारण किया हो। जहाँ जल ऐसे गतिशील है मानो कामिनियाँ लीला से गति कर रही हो। जहाँ उपवन कुसुमित और फलयुक्त है मानो पृथ्वी वधू ने नवयौवन धारण किया हो। जहाँ गौएँ और से सुख भैंसे बैठी है जिनके धीरे-धीरे रोमन्थ करने से गडस्थल हिल रहे हैं। जहाँ ईख के खेत रस से सुन्दर हैं और मानो हवा से नाच रहे हैं। जहाँ दानो के भार से झुके हुए पक्वशाली खडे हैं। जहाँ शतदल कमल पत्तो एव भौरो से सहित हैं। जहाँ तोतो की पक्ति दानो को चुग रही है। · जहाँ जगल मे मृगो के झुण्ड ग्वालो से गाये जाते गानो को प्रसन्न मन हो सुन रहे है।

इसी प्रकार पृष्ठ ४-५ पर कवि ने राजपुर का वर्णन किया है।[1] इन सब वर्णनों मे कवि ने मानव जीवन को अछूता नही छोडा। कवि की दृष्टि नगरों के भोग-विलास-मय जीवन की ही ओर नही रही अपितु ग्रामवासियो के स्वाभाविक, सरल और मधुर जीवन की ओर भी गई है। ग्वालबाळो के गीत, गौ-भैसो का रोमन्थ, ईख के खेत, आदि दृश्य इसी बात की ओर सकेत करते है।

अवन्ती का वर्णन बडा सरस और स्वाभाविक है।

एत्थत्थि अवंतीणाम विसउ महिवहु भुंजाविय जेण विसउ।
घत्ता-णंदंतहिं गामहिं बिडलारामहिं सरवर कमलहिं लच्छिसहिं।
गलकल केक्कारहिं हंसहिं मोरहिं मंडिय जेत्थु सुहाइ महि॥
जहिं चुनुचुमंति केयार कीर वर कलम सालि सुरहिय समीर।

हुए। पिक्क—पक्व। सालि—अलि सहित, भ्रमर युक्त। रिंछोलि—पंक्ति। मय उल—मृग कुल।

१. घत्ता-रायउरु मणोहरु रयणंचिय घरु तहिं पुरवरु पवणुद्धयहिं।
चलचिंधहिं मिलियहिं णहयलि पुलियहिं छिवइ व सग्गु सयंभुअहिं॥
जं छण्णउं सरसहिं उववणेहिं णं विद्धउं वम्मह मग्गणेहिं।
कयसद्दहिं कण्णसुहावएहिं कणइ व सुरहर पारावएहिं।
गय वर दाणोल्लिय वाहियालि जहिं सोहइ चिरु पवसिय पियालि।
सरहंसइं जहिं णेउर रवेण मउ चिक्कमंति जुवई पहेण।
जं णिव भुया सि वर णिम्मलेण अण्णु वि दुग्गउ परिहा जलेण।
पडिखलिय वइरि तोमर झसेण पंडुर पायारें णं जसेण।
णं वेढिउ बहुसोभग्ग भारु णं पुंजीकय संसार सारु।
जहिं विलुलिय मरगय तोरणाइं चउदारइं णं पउराणणाइं।
जहिं धवल मंगलुच्छवसराइं वुत्ति पंचसत्त भोमइं घराइं।
णव कुंकुम रस छडयालणाइं विक्खित्त दित्त मोत्तिय कणाइं।
गुरु देव पाय पंकय वसाइं जहिं सव्वइं दिव्वइं माणुसाइं।
सिरिमंतइं संतइं सुत्थियाइं जहिं कहिं पि ण दीसहि दुत्थियाइं।

जहिँ गोउलाइं पउ विक्किरंति पुंडुच्छु दंड खंडइं चरंति।
जहिँ वसह मुक्क ढेक्कारधीर जोहा विलिहिय णंदिणि सरीर।
जहिँ मंथर गमणइं माहिसाइं दहरमणुड्डाविय सारसाइं।
काहलियवंस रव रत्तियाउ वहुअउ घरकम्मि गुत्तियाउ।
संकेय कुडुंगण पत्तियाउ जहिँ झीणउ विरहिँ तत्तियाउ।
जहिँ हालिणरूव णिवद्ध चक्खु सीमावडु ण मुअइ को वि जक्खु।
जिम्मइ जहिँ एवहि पवासिएहिँ दहि कूरु खीरु घिउ देसिएहिँ।
पव पालियाइ जहिँ बालियाइ पाणिउ भिंगार पणालियाइ।
दिंतिए मोहिउ णिरु पहियविंदु चंगउ दक्खालिवि वयण चंदु।
जहिँ चउ पयाइं तोसिय मणाइं घण्णइं चरंति ण हु पुणु तिणाइं।
उज्जेणि णाम तहिँ णयरि अत्थि जहिँ पाणि पसारइ मत्त हत्थि।[1]

जं० च० पृष्ठ १६—१७

शुको का क्षेत्रो में चुगना, गौओ का इक्षु खड खाते हुए विचरण करना, वृषभ का गर्जन और जीभ से गौ को चाटना, भैसो का मथरगति से चलना, प्रपापालिका बालिकाओ का पानी पिलाते-पिलाते अपना सुन्दर मुखचन्द्र दिखा कर पथिको को लुभा लेना सव स्वाभाविक वर्णन है।

कवि ने राजाओ का और उनके वैभव पूर्ण प्रासादो का वर्णन भी उसी ठाठ-बाठ से किया है जैसा इसके अन्य ग्रथो मे मिलता है।

इसी प्रकार (१ ५ मे) राजा मारिदत्त का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

चाएग कण्णु विहवेण इंदु, रूवेग कामु कंतीए चंदु।
दंडें जमु दिण्ण पचंड घाउ, पर दुम दलण वलेण वाउ।
सुरकरि कर थोर पयंड बाहु, पच्चंत णिवइ मणि दिण्ण दाहु।
भसल उल णील धम्मिल्ल सोहु, सुसमत्थ भडह गोहाण गोहु।
गोउर कवाड अइ विउल वच्छु, सत्तित्तय पालणु दीहरच्छु।
लक्खण लक्खंकिउ गुणसमुद्दु, सुपसण्ण मुत्ति घणगहिर सद्दु।[2]

१.५

अर्थात् वह त्याग से कर्ण, वैभव से इन्द्र, रूप से काम, सौन्दर्य से चन्द्रमा, दड देने

---

१. लच्छि सहि—लक्ष्मी सखी। केयार—केदार। गोउलाइं—गोकुलानि, गौएँ। पउ—पय। वसह—वृषभ। दह—ह्रद। काहलिय वंस—ग्वाले से बजाई जाती बांसरी। गुत्तियाउ—आसक्त। कुडुंगण—कुड्यांगण, लतागृह। जिम्मइ—जीमना। कूरु—ओदन। पव पालियाइ—प्रपा पालिका। पहिय विंदु—पथिक वृन्द।

२. चाएण—त्याग से। पयंड—प्रचंड। णिवइ—नृपति। भसल उल—भ्रमर कुल। गोहाण—योद्धा। गोहु—पुरुष। दीहरच्छु—दीर्घाक्ष।

से यम, शत्रु रूपी वृक्षो को उखाडने से वायु रूप था। ऐरावत की सूड के समान प्रचंड भुजाएँ थी इत्यादि।

वर्णन प्राचीन संस्कृत परिपाटी के अनुकूल है कोई विशेषता नही। इसी प्रकार उज्जयिनी के राजा यशोधर का वर्णन (१ २३ में) कवि ने उल्लेखालकार का आश्रय लेकर किया है।

राजा के क्रीडोद्यान का वर्णन कवि ने निम्न शब्दो मे किया है—

जत्थ चूय कुसुम मंजरिया, सुय चंचू चुंबण जज्जरिया।
हा सा मुहरत्तेण व रवद्धा, कहिं मि विडेण व वेसा लुद्धा।
छप्पय छित्ता कोमल ललिया, वियसइ मालइ मउलिय कलिया।
दंसण फंसणहिं रसयारी, मउउ को अ ण वम्मण हारी।
वायंदोयण लोलासारो, तरु साहाए हल्लइ मोरो।
सोहइ घोलरि पिंछ सहासो, णं वण लच्छी चमर विलासो।
जत्थ सरे पोसिय कारडं, सरसं णव भिस किसलय खंडं।
दिण्णं हंसेणं हंसीए, चंचू चंचूं चुंबंतीए।
फुल्लामोय वसेणं भग्गो, केयइ कामिणियाए लग्गो।
खर कटय णह णिब्भिण्णंगो, ण चलइ जत्थ खणं पि भुयंगो।
जत्था सण्ण वयम्मि णिसण्णो, णारी वीणा रव हिय कण्णो।
ण चरइ हरिणो दूवां खंडं, ण गणइ पारद्धिय करकंडं।
जत्थ गंध विसएणं खविओ, जक्खी तणु परिमल वेहविओ।
हत्थी परिअंचइ णग्गोहं, फंसइ हत्थेणं पारोहं।
संकेयत्थो जत्थ सुहद्दं, सोऊणं मंजीरय सद्दं।
अहमं तीए तीए सामी, एवं भणिउं णच्चइ कामी।[१]

१.१२.१-१६

यद्यपि 'फुल्लामोद वसेण' 'हत्थेणं' आदि में ण के स्थान पर छन्द पूर्ति के लिए णं का प्रयोग भाषा की दृष्टि से कुछ खटकता है तथापि क्रीडोद्यान के वैभवपूर्ण और स्वाभाविक वर्णन में कोई कमी नही।

उस युग में राजाओं का जीवन विलासमय होता था। इतना ही नही कि उनके सिंहासन कनकमय रत्न निर्मित (कणयमय रयन विट्ठरि णिसण्णु २.१३.१) होते थे अपितु प्रतिहार भी (कणयमय दड मडिय कर २ १३ ७) कनकमय दड-मडित-कर होते थे।

रस—रस की दृष्टि से न तो इस ग्रंथ में वीर रस की प्रधानता है और न शृंगार

१. मुहरत्तेण—शुक या विट। रसयारी—रसकारी। भग्गो—वशीकृत। पारद्धिय—व्याध। खविओ—क्षपित, पीड़ित। वेहविओ—विह्वल। परिअंचइ—घूमता है। पारोहं—प्ररोह। संकेयत्थो—संकेतस्थ। सुहद्दं—सुभद्र।

की। क्षण भंगुरता और संसार की असारता के द्वारा कवि ने निर्वेद भाव की तीव्र व्यंजना अवश्य की है।

इसके अतिरिक्त कापालिक कुलाचार्य का वर्णन (१.६–७), चंडमारी–काली का (१ ९), श्मशान का (१ १३) विवाह का (१.२६–२७), कानन का (२ २७) और मुनि का (३ १७), वर्णन भी कवि ने सुन्दरता से किया है।

प्रकृति वर्णन—सूर्योदय का वर्णन कवि ने निम्न शब्दो में किया है—

इय महु चिंततहो अरुणयरु, णव पल्लव णं कंकेल्लितरु।
उग्गमिउ द्युमणि जणु रंजियउ, सिंदूर पुंजु णं पुंजियउ।
अरुणायवत्तु णं णह सिरिहि, णं चूडारयणु उदयगिरिहि।
लोहिय लुद्धें जगु फाडियउ, णं कालि चक्कु भमाडियउ।
कुंकुम पिंडु व दिसिकामिणिहि, रत्तुप्पलु संझा पोमिणिहिं।[1]

२.१२.३-७

"लोहिय लुद्धें जगु फाडियउ" में यद्यपि कुछ जुगुप्सा का भाव है किन्तु वर्णन में नवीनता है।

सन्ध्या वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

अत्थासिउ रत्तउ मित्तु जहिं, विसिणारि वि रज्जइ बप्प तहिं।
रण वीरु वि सरु वि किं तवइ, बहु पहरिहिं णिहणु जि संभवइ।
रवि उग्गु अहोगइणं गयउ, णं रत्तउ कंदउ णिक्खियउ।
तहिं संझा वेल्लि व णीसरिय जग मंडवि सा णिरु वित्थरिय।
तारावलि कुसुमहिं परियरिय संपुण्ण चंद फल भरणविय।
णं रत्तगोवि छाइय हरिणा सा खद्धी बहल तिमिर करिणा।
णं चक्कु तमोह विहंडणउ णं सुरकरि सिय मुह मंडणउं।
णं कित्तिए दाविउ णिययमुहु णं अमय भवणु जण दिण्ण सुहु।
णं जसु पुंजिउ परमेसरहो णं पंडुर छत्तु सुरेसरहो।
णं रयणीवहुहि णिलाड तिलउ उग्गउ ससि णं सइरणि विलउ।
घत्ता—णहयल खले उडुकणवले बारह रासिउ पेच्छइ।
ससि लग्गउ अच्छइ मउतेण ण अत्थें गच्छइ॥
ससि घड गलिएं जोण्हाखीरिं भुवणं ण्हायं पिव गंभीरिं।
दीसइ धवलं रुप्पय रइयं णं तुसारहारावलि छइयं।[2]

ज० च० पृष्ठ २५.

---

१. कंकेल्लितरु—अशोक वृक्ष। अरुणायवत्तु—अरुणातपत्र।

२. सूर—शूर या सूर्य। पहरिहिं—पहर या प्रहार। अहोगइणं—अधोगगन। हरिणा—कृष्ण, सिंह। खद्धी—खाई। दाविउ—दिखाया। सइरिणि विलउ—स्वैरिणी विलय।

सूर्य के निस्तेज होने का श्लेष द्वारा कारण प्रतिपादन, सन्ध्या के विलुप्त होने की कल्पना और चन्द्र का वर्णन परपराभुक्त नही कवि की नवोन्मेषिणी प्रतिभा के द्योतक हैं। सन्ध्या का लता रूप मे जग-मडप पर छा जाना, तारो के रूप मे पुष्प और चन्द्र रूप में फल का प्रतिपादन, सुन्दर कल्पना है।

इसी प्रकार कवि ने (३ १ मे) शिप्रा नदी का सुन्दर वर्णन किया है।[1] शब्द योजना और छन्द प्रयोग से मन्द-मन्द गति से कल-कल ध्वनि करती हुई नदी की कल्पना हो जाती है।

प्रकृति का वर्णन शुद्ध आलम्बन रूप में कवि ने किया है। १ १२ मे किया हुआ उद्यान वर्णन और ३ १ में किया नदी वर्णन सश्लिष्ट वर्णन के सुन्दर उदाहरण हैं। मानव की पृष्ठ भूमि के रूप मे प्रकृति का अकन नही मिलता।

भाषा—भावोद्रेक की दृष्टि से भावतीव्रता ग्रथ मे मन्द है किन्तु भाषा वेगवती है। कवि जो कुछ कहना चाहता है तदनुकूल शब्द योजना कर सका है।

नकुल साँप को डसता है पीछे से तरक्षु आकर उसका सफाया करता है। इसी का वर्णन कवि ने निम्न शब्दो मे किया है—

सो हउं भक्खमि सो मइ डसइ, महु पलु तरच्छु पच्छइ गसइ।
तोडइ तडत्ति तणु बधणइं, मोडइ कडत्ति हड्डइं घणइं।
फाडइ चडत्ति चम्मइं चलइं, घुट्टइ घडत्ति सोणिय जलइं।
हउं एम तरच्छि खयहो णिउ, मइ मायाविसहरु कवलु किउ।

---

१. दुवइ—तडतरु पडिय कुसुम पुंजुज्जल पवणवसा चलंतिया।
दीसइ पचवण्ण णं साडी महिमहिलहि घुलंतिया॥
जल कीलतं तरुणिघण थण जुय वियलिय घुसिण पिंजरा।
वायाहव विसाल कल्लोल गलच्छिय मत्तकुंजरा।
कच्छव मच्छ पुच्छ सघट्ट विहट्टिय सिप्पि सपुडा।
कूल पडत धवल मुत्ताहल जल लव सित्त फणिफडा॥
ण्हंत णरिंद णारि तणु भूमण किरणारुणिय पाणिया।
सारस चास भास कारंड विहंडिर हंसमाणिया॥
परिघोलिर तरंग रंगंतर मंत तरत णरवरा।
पविमल कमल परिमला सायण रुंजिय भमिर महुयरा॥
मंठुवयंठ एसतवसंठिय तावस वास मणहरा।
सीयल जल समीरणासासिय णियर कुरंग वणयरा॥
जुज्झिर मयर करि करुप्फाल्लण तसिय तडत्थ वाणरा।
पडिय फुलिंग वारि पुण्णाणण चायय णियर दिहियरा॥
खय चिक्खिल्ल खोल्ल खणि खोलिर लोलिर कोल संकुला।
असइसत्थ णिच्च संसेविय बहल तमाल महुयला॥ (३.१.२-१८)

को लंघइ महियलि कम्मवसु, अण्णोण्णाहार मरंति पसु।
बहु थावर जंगम जीवउलु, णर तिरिय गिलंति णिच्चु सयलु।
(२.३७.२-७)

उपयुक्त शब्द योजना द्वारा कवि ने नकुल के मरण का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। अनुप्रासमयी भाषा से उसका वेग नष्ट नही हो सकता। भिन्न-भिन्न क्रियाओ के अनुकूल शब्दों का प्रयोग कवि ने सफलता से किया है। शरीर की ग्रथियों का तड से टूटना, हड्डियो का कड-कड कर मुडना, चमड़े का चर्र से अलग हो जाना, खून का घट-घट पी जाना, कितने उपयुक्त शब्द हैं।

भाषा को बलवती बनाने के लिए कवि कभी-कभी द्विरुक्त शब्दो का प्रयोग करता हैं। मानव शरीर का सुन्दर चित्र निम्न शब्दो मे अंकित किया गया है—

माणुससरीरु बुहपोट्टलउ, धोयउ धोयउ अइ विट्ठलउ।
वासिउ वासिउ ण उ सुरहि मलु, पोसिउ पोसिउ णउ धरइ बलु।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ, मोसिउ मोसिउ धर भायणउ।
भूसिउ भूसिउ ण सुहावणउ, मंडिउ मंडिउ भीसावणउं।
वोल्लिउ वोल्लिउ दुक्खावणउं, चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउं।
मंतिउ मंतिउ मरणहो तसइ, दिक्खिउ दिक्खिउ साहुहुं भसइ।
सिक्खिउ सिक्खिउ वि ण गुणि रमइ, दुक्खिउ दुक्खिउ वि ण उवसमइ।
वारिउ वारिउ वि पाउ करइ, पेरिउ पेरिउ वि ण धम्मि चरइ।
चम्में बद्धु वि कालि सडइ, रक्खिउ रक्खिउ जममुहि पडइ।[1]
(२. ११. १-१२)

भाषा मुहावरेदार है। छोटे-छोटे प्रभावोत्पादक वाक्यो का भी स्थल-स्थल पर प्रयोग मिलता है—

विसभोयणेण किं णर जियंति गोसिंगइं किं दुद्धइं सवंति।
धण्णाइ सिलायलि किं हवंति णीरस भोज्जि कहिं कायकंति।
उवसम विहीणि कहिं होइ खंति परु मारंतहं कहि होइ संति।
(१. ११. १-३)

मुच्छं गइ विज्जइ सलिलु पवणु उवसंतहो किज्जइ धम्म सवणु।
किं सुक्कें रुक्खें सिंचिएण अविणीयं किं संबोहिएण।
(१. २०. १-२)

सरल और प्रभावमयी भाषा का रूप निम्नलिखित उद्धरण में देखा जा सकता है—

---

१. विट्ठलउ—अपवित्र। सुहावणउ—सुख प्रापक, सुखदायक। वोल्लिउ—गीला किया हुआ, आर्द्रीकृत। चिलिसावणउं—घृणित। तसइ—डरता है। सडइ—सड़ जाता है, नष्ट हो जाता है।

ता णरवइणो हरिस जणियं उत्तम सावयवइणा भणियं।
अंधे णट्ठं बहिरे गीय ऊसर छेत्ते ववियं बीय।
संढे लग्ग तरुणि कडक्खं लवण विहीणं विविह भक्ख।
अणणाणे तिव्व तवचरण बल सामत्थ विहीणे सरणं।
असमाहिल्ले सल्लेहणय णिद्धणमणुए णवजोव्वणय।
णिब्भोइल्ले संचियदविण णिण्णेहे वर माणिणि रमण।
अवि य अपत्ते दिण्णं दाणं मोहरयवे धम्मक्खाण।
पिसुणे भसणे गुण पडिवण्ण रण्णे रुण्ण वियलइ सुण्णं।
घत्ता—जो जिण पडिकूलहो मत्थइ सूलहो गुरु परमागमु भासइ।
सो वयणइ सुद्धइ णं घय दुद्धइं सप्पहो ढाइवि णासइ॥[1]

(१. १९. १-१०)

थोडे से वाक्यो मे भाव को गभीरता से अभिव्यक्त करने का ढग ग्रथ मे स्थान स्थान पर दिखाई देता है। कुमार्गगामिनी स्त्री का मन कुमार्ग से मोडना कितना दुष्कर है, कवि कहता है—

घत्ता—करि बज्झइ हरि रुज्झइ सगरि पर बल् जिप्पइ।
कुकलत्तहि अण्णासत्तहि चित्तु ण केण वि घिप्पइ॥

(२. १२. २१-२२)

अर्थात् हाथी बाँधा जा सकता है, सिह रोका जा सकता है, युद्ध मे शत्रु सेना जीती जा सकती है किन्तु अन्यासक्त दुश्चरित्रा स्त्री का मन नही काबू किया जा सकता।

कवि शब्दों द्वारा घटना चित्र उपस्थित करने मे भी नहीं चूकता। शोकातिरेक का एक चित्र देखिये—

णिसुणिवि दुह भरियइं महु भवचरियइ जसवइ णिवहियउं चलिउ।
सोयरसु पवाइउ अगि ण माइउ णयणंसुय धारहिं गलिउ॥

(४. १. १-२)

भाषा में अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक उत्प्रेक्षादि अलकारो का भी कवि ने प्रयोग किया है। रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखिये—

घत्ता—विज्जुलियए कंचुलियए भूसियदेहए सुरधणु।
घणमालए णं बालए किउ विचित्तु उप्परियणु॥

(२. ३२. १०.)

विद्युत् रूपी कचुकी से भूषित देहवाली घनमाला रूपी बाला ने मानो सुरधनु रूपी उपरितन वस्त्र धारण किया हो।

भाषा की दृष्टि से अनेक शब्द रूप ऐसे है जो हिन्दी के शब्दो से मिलते जुलते

से है।१

कवि ने शरीर की क्षणभगुरता, असारता का दिग्दर्शन करते हुए पापाचरण से रहित अहिंसामय विचार से पूर्ण हो धर्माचरण का आदेश दिया है।

कवि हिंसको के प्रति व्यग्य से कहता है—

घत्ता—पसु णासइ जहिं हिंसइ परमधम्मु उप्पज्जइ।
ता बहुगुणि मोल्लिवि मुणि पारद्धिउ पणविज्जइ॥

(२. १७. १०-११)

यदि पशु नाश और हिंसा से ही परम धर्म प्राप्त हो सकता हो तो बहुगुणी मुनि को छोड कर एक शिकारी की ही पूजा करो।

मासाहारियो के विषय मे कवि कहता है—

दुवई—मीणु गिलंतु ण्हंतु जइ सुज्झइ ता कंको महा मुणी।
दिज्जइ चरंतु णइतीरि किं किज्जइ परो मुणी॥

(३. २०. १-२)

अर्थात् यदि मछली निगलने और स्नान करने से ही शुद्धि प्राप्त की जा सकती है तो कक से बडकर और कौन मुनि होगा ? नदी तीर पर विचरण करने वाले कक की ही वन्दना करो किसी दूसरे मुनि से क्या काम ?

शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन कितनी सुन्दरता से कवि ने किया है—

दुवई—तणु लायण्णु वण्णु णव जोवण्णु रूव विलास संपया।
सुरधणु मेह जाल जल बुब्बुय सारिसा कस्स सासया॥
सिसुतणु णासइ णवजोव्वणेण जोव्वणु णासइ बुड्ढत्तणेण।
बड्ढत्तणु पाणि चलियएण पाणु वि खंधोहिं गलियएण।

(४. १०. १-४)

जंबुसामि चरिउ

यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भडार में वर्तमान है।

---

१. **छिवइ—स्पृश्, छूना (१. ३. १७), टोप्पी—टोपी (१. ६. ४), बइसाविवि—बिठा कर (१. ६. २४), तुरंतु—तुरंत (१. ६. २४), अवसिं होसइ—अवश्य होगा (१. ७. १५), जिम्मइ—जीमना, खाना (१. २१. ८), चंगउ—पंजाबी चंगा, सुन्दर (१. २१. १०), सेहरु—सेहरा (१, २६. १४), धणु लट्ठि—धनुयष्ठि (२. ९. ४), सडइ—नष्ट होना—पजाबी (२. ११. १२), रसोइ (२. २३. ११) लड्डुय—लड्डू (२. २४. ६), पच्छइ—पीछे (२. २६. २), साडी—साड़ी (३. १. ४), सिप्पि—सीप (३. १. ७), फट्टाइं णिवसणाइं—फटे वस्त्र, फुट्टाइं भायणइं—फूटे बर्तन (३. २७. १०)**

(प्र० स० पृ० १००)। वीर कवि ने इस ग्रथ में अन्तिम केवली जम्बू स्वामी के जीवन चरित्र का ११ सधियो मे वर्णन किया है। ग्रथ रचना मे कवि को एक वर्ष लगा। इस बीच कवि का समय अनेक राजकार्य, धर्मार्थ काम गोष्ठियो मे विभक्त होता था। कवि के पिता का नाम देवदत्त और माता का नाम सतुआ था। कवि ने अपने तीन छोटे भाइयो, अनेक स्त्रियो और एक पुत्र का निर्देश किया है। कवि ने इस ग्रथ की रचना माघ शुक्ल-पक्ष दशमी वि० स० १०७६ में की थी।[1] कवि ने अपने से पूर्व के अनेक कवियो का उल्लेख किया है।[2]

कवि का पिता देवदत्त भी कवि था और ग्रथ मे उसके द्वारा पद्धडिया बध में रचित वराग चरित्र का निर्देश किया गया है।[3] कुछ सन्धियो के आरम्भ मे कवि ने देवदत्त की प्रशंसा भी की है। जैसे–

संते सयंभुए एवे एक्को कइत्ति विन्नि पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयंते तिण्णि तहा देवयत्तंमि ॥५.१

अर्थात् स्वयभू के उत्पन्न होने पर संसार में एक ही कवि कहा जाता था।

---

१. वरिसाण सय चउक्के सत्तरि जुत्ते जिणेंद वीरस्स।
णिव्वाणा उववण्णो विक्कम कालस्स उप्पत्ती ॥१
विक्कम णिव कालाउ छाहत्तर दस सएसु वरिसाणं।
माहम्मि सुद्ध पक्खे दसम्मी दिवसम्मि संतम्मि। ।२
बहुराय कज्ज धम्मत्थ कामगोट्ठी विहत्त समयस्स।
वीरस्स चरिय करणे इक्को संवत्सरो लग्गो ॥५
जस्स कय देवयत्तो जणणो सच्चरिय लद्ध माहप्पो।
सुह सील सुद्ध वंसो जणणी सिरी संतुआ आभणिया ॥६
जस्स य पसण्ण वयणा लहुणो सुमइ स सहोयरा तिण्णि।
सीहल्ल लखणंका जसइ णामेत्ति विखाया ॥७
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया।
लीलावइ ति तईया पछिम भज्जा जयादेवी ॥८
ज० सा० च० अन्तिम प्रशस्ति

२. देखिये प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ में पृ० ४३९ पर पं० परमानन्द जैन का लेख।

३. इह अत्थि परमजिण पय सरणु, गुडखेड विणिग्गउ सुह चरणु।
सिरि लग्गु वग्गु तहिं विमल जसु, कइ देवयत्तु निवुट्टकसु।
बहु भावहिं जें वरंग चरित्त, पद्धडिया बंधें उद्धरित्तं।
कवि गुण रस रंजिय विउससह, वित्थारिय सुद्दय वीर कह।
चच्चरि बंधि विरइउ सरसु, गाइज्जइ संतिउ तारु जसु।
नच्चिज्जइ जिण पय सेवयहिं, किउ रासउ अंबादेवयहिं।
१.४

पुष्पदन्त की उत्पत्ति पर दो कहे जाने जगे और देवदत्त के उत्पन्न होने पर तीन कवि हो गये।

प्रथम सधि की समाप्ति पर कवि ने सस्कृत श्लोको मे अपनी स्तुति की है। इसी प्रकार अन्य सन्धियो के प्रारम्भ में कवि ने बडे अभिमान के साथ आत्मश्लाघा प्रदर्शित की है।[1]

कथानक—ग्रथ का कथानक सक्षेप मे इस प्रकार है—

मगलाचरण के अनन्तर कवि सज्जन-दुर्जन-स्मरण करता है। अपने से पूर्व काल के कवियो का स्मरण करता हुआ अपनी अल्पज्ञता का प्रदर्शन करता है।[2] पुन मगध देश और राजगृह का सुन्दर काव्य शैली मे वर्णन किया गया है। मगध के राजा श्रेणिक और उसकी रानियो का वर्णन है। नगर के ममीप उपवन मे इन्द्र द्वारा रचे भगवान् वर्द्धमान के समवसरण में पहुँच कर मगधराज जिन भगवान की स्तुति करते हैं (१)।

श्रेणिक राज के प्रश्नो का जिनवर उत्तर देते हैं तभी आकाश मार्ग से एक तेजपुंज विद्युन्माली आता है। राजा उससे प्रभावित हो उमके पूर्वजन्म के विषय मे पूछते है। जिनदेव उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं।

मगध मडल मे वर्द्धमान नामक ग्राम में एक गुणवान् ब्राह्मण और ब्राह्मणी युगल

---

१. जयति मुनि वृंद वंदित पद युगल विराजमान सत्पद्मः।
विबुध संघानुसासन विद्याना माश्रयो वीरः ॥१
न वह्वपि तथा नीरं सरो नद्यादि संस्थित।
करकस्थं यथा स्तोक मिष्टं स्वादुश्च ? पीयते ॥३
प्रथम संधि की समाप्ति
वाल क्कीलासु वि वीर वयण पसरंत कव्व पीऊसं।
कण्ण पुडएहिं पिज्जइ, जहेंहि रस मुउलिय छेहिं ॥१
भरहालंकार रस लक्खणाइं लक्खे पयाइं विरयंती।
वीरस्स वयणरंगे सरस्सई जयउ नच्चंती ॥२
२.१
अगुणा न मुणंति गुणं गुणीणो न संहति परगुणे दट्ठुं।
वल्लह गुणा वि गुणीणो विरला कई वीर सारिछा ॥४.१
कइ वीर सरिस पुरिसं धरणी धरंती कयत्यासि ॥६.१
विर कव्व तुला तुलियं, बुद्धी कसवट्टए कसेउणं।
रस दित्तं पयछित्तं गिन्हह कव्वं सुव्वण्णं मे ॥९.१
२. मुहियएन कव्वु सक्कमि करेमि, इछमि भुएहिं सायरु तरेवि।
घत्ता—अह महकइ रइउ पवधु मइं, कवणु चोज्ज जं किज्जइ।
विद्धइ हीरेण महारयणे, सुत्तेण वि पइसिज्जइ॥
१.३

रहता था। उनके भवदत्त और भवदेव नामक दो पुत्र थे। जब वे क्रमश १८ और १२ वर्ष के थे उनके पिता का देहान्त हो गया और उनकी माता भी सती हो गई। भवदत्त ससार से विरक्त हो दिगबर साधु हो गया। १२ वर्ष तपस्या करने के बाद एक दिन सघ के साथ वह अपने गाँव के पास गया। भवदेव को भी सघ मे ही दीक्षित करने के लिए वह वर्धमान ग्राम मे गया। भवदेव अपने विवाह की तैयारियो में लगा हुआ था। भाई के आगमन का समाचार सुन वह प्रेम से मिला और उसके आग्रह को न टाल सका। वह भी संघ मे दीक्षित हो १२ वर्ष तक इधर उधर घूमता रहा। एक दिन ग्राम के पास से गुजारा। वह घर जाकर विषय भोग मे निरत होना चाहता था। भवदत्त ने फिर रोका। दोनो भाई तप करते हुए मरणानन्तर स्वर्ग में जाते हैं (२)।

स्वर्ग से च्युत होने पर भवदत्त का जन्म पुडरीकिनी नगरी मे वज्रदन्त राजा की रानी यशोधना के पुत्र के रूप में और भवदेव का वीतशोका नगरी के राजा महापद्म की रानी वनमाला के पुत्र के रूप मे हुआ। भवदत्त का नाम सागरचन्द और भवदेव का शिवकुमार रखा गया। सागरचन्द पूर्वजन्म स्मरण से विरक्त हो तपश्चर्या मे लीन हो गया। शिवकुमार १०५ राजकन्याओ से परिणय कर भोग विलास का जीवन बिताने लगा। एक बार सागरचन्द वीतशोका नगरी मे गया। वहाँ उसे मुनि रूप मे देख शिवकुमार को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया और वैराग्य भाव जागृत हो गये और उसने घरबार छोडना चाहा। पिता के समझाने पर उसने घर तो नही छोडा किन्तु घर मे रहते हुए ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। तरुणी जनो के पास रहते हुए भी वह विरक्त सा रहता था। मरणानन्तर वह विद्युन्माली देव हुआ। सागरचन्द भी सुरलोक मे इन्द्र के समान देव हुआ। वर्धमान जिन ने श्रेणिक राजा को बताया कि यही विद्युन्माली वहाँ आया था और ७ वे दिन वह मनुष्य रूप मे पश्चिम केवली अवतीर्ण होगा। इसके बाद श्रेणिक राज ने विद्युच्चर के विषय में पूछा कि इतना तेजस्वी होने पर भी वह चोर क्यो बना ? जिन वर ने बताया कि किस प्रकार से वह विद्याबल से चोरी करता था (३)।

वीर कवि की प्रशसा से चौथी सधि प्रारम्भ होती है। सइत्तउ नगरी मे संताप्पिउ वणिक के पुत्र अरहदास की स्त्री ने रात्रि के अन्तिम प्रहर मे स्वप्न मे जम्बूफल आदि वस्तुएँ देखी। समयानुकूल पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम स्वप्नानुसार जबू स्वामी रखा गया। जबू स्वामी अत्यधिक सुन्दर थे। नगर वधुएँ उन्हे देखकर उन पर आसक्त हो जाती थी। इसी प्रसग में कवि वसन्तोत्सव, जलक्रीडा (४ १९) आदि का वर्णन करता है। इसके अनन्तर जबू के मत्तगज को परास्त करने का वर्णन किया गया है (४)।

पांचवो से सातवी सधियो तक जबू के अनेक वीर कार्यों का वर्णन है। महर्षि सुधर्मा स्वामी अपने पाच शिष्यो के साथ उपवन मे आते हैं। जबू स्वामी उनके दर्शन कर नमस्कार करते है (५–७)।

जबू स्वामी मुनि से अपने पूर्व जन्मो का वृत्तान्त सुनकर विरक्त हो घर छोड़ना

चाहते हैं। माता समझाती है। इसी समय सागर दत्त श्रेष्ठी का भेजा मनुष्य आकर जम्बू का विवाह निश्चित करता है। श्रेष्ठी की कमल-श्री, कनक-श्री, विनय-श्री और रूप-श्री नामक चार कन्याओं से जम्बू का विवाह होता है। वह उनके साथ संभोग में लीन हो जाता है (८)।

जबू के हृदय में फिर वैराग्य जग पडता है। उसकी पत्नियाँ वैराग्य विरोधी कथाएँ कहती हैं। जबू महिलाओ की निन्दा करता हुआ वैराग्य प्रतिपादक कथानक कहता है। इस प्रकार आधी रात हो गई जबू का मन सासारिक विषयो से विरत रहा। इतने मे ही विद्युच्चर चोर चोरी करता हुआ वहाँ आया।

जबू की माता भी जागती थी उसने कहा चोर जो चाहता है ले ले। चोर को जबू की माता से जबू के वैराग्य भाव की सूचना मिली। विद्युच्चर ने प्रतिज्ञा की कि या तो जबू को रागी बना दू गा अन्यथा स्वय भी वैरागी हो जाऊँगा।

घत्ता—वहु वयण कमल रस लंपडु, भमरु कुमारु न जइ करमि।
आएण समाणु विहाणए, तो तव चरणु हउं वि सरमि॥

९.१६

जबू की माता उस चोर को उसी समय अपना छोटा भाई कह कर जबू के पास ले जाती है ताकि विद्युच्चर अपने कार्य में सफल हो (९)।

१०वी सधि में जबू और विद्युच्चर एक दूसरे को प्रभावित करने के लिए अनेक व्याख्यान सुनाते है। जबू वैराग्य प्रधान एव विषय भोग की निस्सारता, प्रतिपादक आख्यान कहते हैं और विद्युच्चर इसके विपरीत वैराग्य की निस्सारता दिखलाने वाले विषय भोग प्रतिपादक आख्यान। जबू स्वामी की अत में विजय होती है। जबू सुधर्मा स्वामी से दीक्षा लेते हैं और उनकी सभी पत्नियाँ भी आर्यिका हो जाती है। जबू स्वामी केवल ज्ञान प्राप्त कर अन्त मे निर्वाण पद प्राप्त करते हैं।

विद्युच्चर दशविध धर्म का पालन करते हुए तपस्या द्वारा सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त करते हैं। जबू चरिउ के पढने से मगल लाभ का सकेत करते हुए कृति समाप्त होती है (११)।

ग्रथ मे जबू स्वामी के पूर्वजन्मो का वर्णन है। वह पूर्व जन्मो मे शिवकुमार और भवदेव थे। उनका बडा भाई सागरचन्द्र और भवदत्त था। भवदेव के जीवन मे स्वाभाविकता है। भवदत्त की कथा स्वय अनावश्यक थी। भवदत्त को कवि ने प्रतिनायक के रूप मे भी अकित नही किया। फिर भी उसके कारण भवदेव के जीवन मे उतार चढाव और अन्तर्द्वन्द्व का चित्र अकित किया जा सका है। इसी प्रकार जबू स्वामी की अनेक पत्नियों के पूर्व जन्म प्रसग भी कथा प्रवाह मे कोई योग नही देते और वे भी अनावश्यक ही हैं।

जबू स्वामी के चरित्र को कवि जिस दिशा की ओर मोडना चाहता है उसी ओर वह मुडता गया है, जिस लक्ष्य पर उसे पहुँचाना चाहता है उसी पर वह अन्त मे पहुँच जाता है। किन्तु फिर भी उसके जीवन में अस्वाभाविकता नही। उसके जीवन में कभी विषय वासनाओ की ओर प्रवृत्ति और कभी उनका त्याग कर विरक्ति दिखाई देती है। अतएव उसका चरित्र स्वाभाविक हो गया है। जबू स्वामी के चरित्र के अतिरिक्त किसी अन्य

पात्र के चरित्र का विकास कवि को इष्ट नही।

वर्ण्य विषय—

अन्य अपभ्रंश काव्यो के समान इसमें भी ग्राम, नगर, अरण्य, सूर्योदय, सूर्यास्त, युद्ध, स्त्री सौदर्य आदि के सुन्दर वर्णन मिलते है। अनेक स्थल कवित्व के सुन्दर उदाहरण हैं। कवि ने वर्णनो मे प्राचीन सस्कृत कवियो की परम्परा का भी अनुकरण किया है। बाण के ढग पर श्लेष द्वारा प्राकृतिक वर्णनो का उदाहरण निम्नलिखित विन्ध्याटवी वर्णन मे देखा जा सकता है।

भारह रणभूमि व सरह भीस, हरि अज्जुण नउल सिहंडि दीस।
गुरु आसत्थाम कलिंग चार, गय गज्जिर ससर महीस सार।
लंकानयरी व सरावणीय, चंदणहिं चार कलहा वणीय।
सपलास सकंचण अक्ख घट्ट, सविहीसण कइ कुल फल रसट्ट।
कंचाइणी व्व ठिय कसण काय, सहल विहारिणी मुक्क नाय।

५.८

अर्थात् विन्ध्याटवी महाभारत रणभूमि के समान थी। रणभूमि—रथसहित (सरह) और भीषण थी और उस मे हरि, अर्जुन, नकुल और शिखडी दिखाई देते थे; विन्ध्यावटी—अष्टापदो (सरह) से भीषण थी और उसमे सिंह (हरि), अर्जुन वृक्ष, नेवले और मयूर दिखाई देते थे। रणभूमि—गुरुद्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, श्रेष्ठ कलिंगाधिपति और उत्कृष्ट राजाओ से युक्त थी, बाणो से आच्छन्न और गजों से गजित थी; विन्ध्याटवी—बडे बडे अश्वत्थ, आम्र, कलिंगतुल्य चार वृक्षो से युक्त थी, गज गजित सरोवरो और महिषो से पूर्ण थी। वह विन्ध्यावटी लंका नगरी के समान थी। लका नगरी—रावण सहित एव चन्द्रनखा की चेष्टा विशेष से कलह कारिणी थी, राक्षसो से, काचन से और रावणपुत्र अक्षय कुमार से युक्त थी, विभीषण युक्त और रसिक कवियों से परिपूर्ण थी, विन्ध्याटवी—रयण वृक्षो, चन्दन वृक्षो, और मनोज्ञ लघुहस्तियो से युक्त थी, पलाश, मदन एव बहेडे के वृक्षो से पूर्ण थी और भीषण कपि कुलो से मुक्त तथा फलो से रसाढ्य थी। विन्ध्याटवी—कृष्णकाया, सिंहवाहिनी, मुक्त नादा कात्यायनी—चामुंडा के समान, कृष्ण काकों से युकृत, सिंहों से व्याप्त और जीवो के नाद से परिपूरित थी।

इस प्रकार की श्लिष्ट शैली से भाषा कुछ क्लिष्ट और अस्वाभाविक हो गई है। ऐसे वर्णनों में कवि अलंकारों के बन्धन में बधकर चमत्कार तो पैदा कर पाता है किन्तु रसोत्पत्ति करने में असमर्थ होता है। जिस हृदयगत भाव को अभिव्यक्त करना चाहता है उसको भली-भाति अभिव्यक्त न कर शब्द जाल में उलझ जाता है। इसी प्रकार से कवि ने निम्नलिखित वेश्या-वर्णन भी प्रस्तुत किया है—

वेसउ जत्थ विहसिय रूवउ, नरु मण्णंति विरूउ विरूवउ।
खण दिट्ठो वि पुरिसु पिउ, सिद्धउ पणयारूढु न जन्म वि दिट्ठउ।
पउलब्भवउ ताउ किर गणियउ, तो वि भुयंग दंत नहि वणियउ।
वम्महं दीवियाउ अविभयत्तउ, तो वि सिणेह संग परिचत्तउ।

लग्गिर सायणि सत्थ सरिच्छउ, कामुअ रत्ता करिसण दच्छउ।
मेरु महीहर महि पडिविंवउ, सेविय बहु किं पुरिस नियंवउ।
नरवइ णीइ समाण विहोयउ, दूरुज्झिय अणत्थ संजोयउ।
अहरे राउ पमाणु वि जहं वट्टइ, पुरिस विसेस संगि न पयट्टइ।
९. १२

अर्थात् जहा विभूषित रूपवती वेश्या रूप्यक रहित (विरूवउ) मनुष्य को विरूप मानती है। क्षण भर देखा हुआ पुरुष (यदि धनी है तो) प्रिय सिद्ध होता है और निर्धन प्रणयी ऐसा माना जाता है जैसा जन्म से भी कभी नही देखा। नकुलोद्भव भी वह गणिका भुजंग के दत और नखों से व्रणित होती है—अर्थात् वह वेश्या कुलहीन होती है और भुजगो—विटो—के दंत और नखो से विद्ध होती है। काम की दीपिका भी स्नेह—तेल—सग रहित होती है अर्थात् काम को उद्दीप्त करने वाली होती है और स्नेह मे शून्य होती हैं। डाकिनी के समान रक्ताकर्षण मे अर्थात् अनुरक्त कामुकों के आकर्षण में दक्ष होती है। मेरु पर्वत की भूमि के समान होती है जिसका नितब—मध्य भाग—किंपुरुषादि देव योनियो से या कुत्सित पुरुषो से सेवित होता है। वह नरपति की नीति के समान अनर्थ सयोग को दूर से छोड देती है। जिसके अधर में राग (अनुराग) होने पर पुरुष विशेष के सग में प्रवृत्त नही होती।

जहाँ कवि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नही करता वहा उसकी भावाभिव्यक्ति सुन्दरता से हुई है। निम्नलिखित गाथा और दोहे में नारी का सौंदर्य अधिक निरख सका है—

गाथा—एयाण वयण तुल्लो होमि न होमित्ति पुण्णिमादियहो।
पिय मंडलाहिलासी चरइ व चंदायणं चंदो॥ २
४.१४

चलण छवि साम फलाहिलासी कमलेहिं सूरकर सहणं।
विज्जइ तवं व सलिले नियय घित्तूण गल पमाणम्मि॥ ३

अर्थात् इन सुन्दरियों के मुख के समान होऊँगा या नही यही विचारता हुआ प्रियमंडल का अभिलाषी पूर्णिमा का चन्द्र मानो चान्द्रायण व्रत करता है। उनके चरणो की शोभा की समता के अभिलाषी इन कमलो से, अपने को गले तक पानी में डाल कर और ऊपर सूर्य की किरणो को सहते हुए मानो नित्य तप किया जाता है।

दोहा—जाणमि एक्कु जे विहि घडइ सयतु वि जगू सामण्णु।
जि पुणु आयउ णिम्मविउ को वि पयावइ अण्णु॥

अथात् ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने सामान्य ससार की रचना की। इन सुन्दरियो की रचना कोई अन्य ही प्रजापति करता है।

रस—ग्रथ समाप्ति की पुष्पिका मे कवि कहता है—

"इय जंबू सामिचारिए सिंगार वीरे महा कव्वे महाकइ देवयत्तसुय वीर विरइय

वारह् अणुपेहाउ भावणाए विज्जुच्चरस्स सव्वह् सिद्धि गमणं नाम एयारसमो संधी परिछेउ सम्मतो ।"

कवि ने अपने ग्रथ को शृङ्गार वीर महाकाव्य कहा है। काव्य में शृङ्गार रस का आभास तो अनेक स्थलो पर मिलता है किन्तु युद्ध वर्णन मे वीर रस का परिपाक नही हो पाया। सभी काव्यो मे विवाह से पूर्व वीरता प्रदर्शन के अवसर मिलते है इसमें भी वैसा ही हुआ। जबू के माता पिता उसे सांसारिक भोग मे लिप्त कराना चाहते थे। एतदर्थ अनेक सुन्दरियो का चित्र कवि ने उपस्थित किया है। ४ १४ मे केरलि, कोतलि, सज्झाइरि (सह्याचल वासिनी), मरहट्ठि, मालविणि आदि अनेक प्रकार की स्त्रियो के स्वभाव का भी निर्देश किया है। कवि के इस वर्णन मे रीति कालीन नायिका भेद की प्रवृत्ति का अस्फुट सा आभास परिलक्षित होता है (ज. च ४.११–१४)। इसी प्रसग में शृङ्गार के उद्दीपन के लिए कवि ने अनेक प्राकृतिक दृश्य भी उपस्थित किये है (ज च ४ १६, ४ २०) किन्तु काव्य में प्रधानता अन्य काव्यो के समान निर्वेद भाव की ही है। काव्य का आरम्भ और समाप्ति धार्मिक वातावरण मे ही होती है।

काव्य में शृङ्गार के वर्णनो की बहुलता है। कवि इनके द्वारा सासारिक विषयो की ओर प्रवृत्त करता है। शृङ्गार मूलक वीर रस के वर्णनो मे वीर रस के प्रसग भी मिलते हं। ऐसे प्रसग प्राय सभी अपभ्र श काव्यो मे मिलते है। किन्तु इन दोनो रसो का पर्यवसान शान्त रस मे होने से इन रसो की प्रधानता नही फिर काव्य को शृङ्गार वीर काव्य कहना कहाँ तक सगत है? काव्य में सासारिक विषयो को त्याग कर वैराग्य भाव जागृत करने मे ही उत्साह भाव दिखाई देता है। शृङ्गारिक भावनाओ को दबा कर उन पर विजय पाने मे ही वीरता दिखाई देती है और इसी दृष्टि से इसे शृङ्गार वीर काव्य कहा जा सकता है। अत डा० रामसिंह तोमर के विचार मे कृति को शृङ्गार वैराग्य कृति कहना अधिक सगत होगा।[1]

पाचवी सधि के अन्तर्गत युद्ध के प्रसग मे बीभत्स और अद्भुत रस भी पाये जाते है जो वीर रस के सहायक हैं।

प्रकृति वर्णन—कृति की तीसरी और चौथी सधि में उद्यान और वसन्तादि के वर्णनो द्वारा कवि ने प्राकृतिक चित्र उपस्थित किये है। ये वर्णन शृङ्गार की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किये गये है, अतएव उद्दीपन रूप मे ही अकित समझने चाहिये। ये वर्णन रति भाव के अनुकूल कोमल और मधुर पदावली से युक्त हं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वसन्त वर्णन मे शब्द योजना भी वसन्त के समान सरस और मधुर हैं—

दिणि दिणि रयणीमाणु जहं खिज्जइ, दूर पियाण णेहु तिह खिज्जइ।
दिवि दिवि दिवस पहरु जिह वड्ढइ, कामुयाण तिह रइ रसु वड्ढइ।
दिवि दिवि जिह चूयउ मउ रिज्जइ, माणिणि माणहो तिह मउ खिज्जइ।

---

१ **अनेकान्त वर्ष ९, किरण १० में श्री रामसिंह तोमर का लेख, अपभ्रंश का एक शृंगार वीरकाव्य।**

कल कोइल कलयलु जिहं सुण्णइ, तिह पंथिय करंति घरे सुम्मइ।
... ...
पाडलियहि जिह भमरु पहावइ, पिय संगरि तिह होइ पहावइ।
... ...
मालइ कुसमु भमरु जिह वज्जइ, घरे घरे गहेरु तूरु तहि वज्जइ।
वियसिय कुसमु जाउ अइ मत्तउ, घुम्मइ कामिणि यणु अइमत्तउ।
दरिसिउ कुसम णियरु वेयल्लें, पहिए घरु गम्मइं वे इल्लें।
नील पलास रत्त हुय किंसुय, भंन चित्तु जणु जाणइ किं सुय।
... ...
मंद मंद मलयानल वायइ, महुर सद्दु जणु वल्लइ वायइ।
३. १२

अर्थात् दिन प्रति दिन जैसे रात्री का परिमाण घटता जाता है इसी प्रकार प्रोषितपतिका की निद्रा भी क्षीण होती जाती है। जिस प्रकार दिन दिन दिवस का प्रहर बढ़ता जाता है इसी प्रकार कामिजनो का रतिरस भी । प्रति दिन जिस प्रकार आम्र मजरियो का मधु प्रस्रवित होता है इसी प्रकार मानिनी के मान का मद भी विगलित होता जाता है। ज्यो ज्यो कोकिला की मधुर काकली सुनाई देती जाती है त्यो त्यो पथिक घर लौटने का विचार करते जाते है। ··· जिस प्रकार भ्रमर पाटल पुष्प पर दौडता है उसी प्रकार प्रभावती-सुन्दरी-नायिका प्रिय सगम के लिए उत्सुक होती है। भ्रमर मालती कुसुम के पास नही जाता। घर घर मे बाजे बज रहे है। अतिमुक्तक लता के फूल विकसित हो रहे है। कामिनियाँ अतिमत्त हो घूम रही है। जब लताओ पर पुष्प समूह दिखलाई देने लगे, पथिक भी तब घर लौटने लगे । पलाश वृक्षो पर लाल लाल फूल खिल गये, शुक को चित्त में भ्रान्ति होने लगी। ...मद मद मलय पवन बहने लगा, मानो मधुर शब्द से वीणा बज रही हो ।

इसी प्रकार जब राजा उद्यान क्रीडार्थ गमन करता है उस समय का निम्नलिखित वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर है। इस में पदयोजना भावानुकूल ही हुई है। उद्यान मे भ्रमरो का गु जन, राजा का मद मद भ्रमण पुष्प-मकरद से सरस एव पराग रज से रजित, शान्त और मधुर वातावरण, शब्दो के द्वारा अभिव्यक्त हो उठता है। देखिये—

मंद मंदार मयरंद नन्दनं वणं, कुंद करवंद वयकुंद चंदन घणं।
तरल दल ताल चल चवलि कयलीसुहं, दक्ख पउमक्ख रुद्दक्ख खोणी रुहं।
विल्ल वेइल्ल विरिहिल्ल सल्लइवरं, अंब जंबीर जंबू कयबू वरं।
करुण कणवीर करमरं करीरायणं, नाग नारंग नागोह नीलंवर।
कुसुम रय पयर पिंजरिय धरणीयलं, तिक्ख नहु चंबु कणयल्ल खंडियफलं।
भमिय भमर उल संछइय पंकयसरं, मत्त कलयंठि कलयट्ठ मेल्लिय सरं।
रुक्ख रुक्खंमि कप्पयरु सिय भासिरि, रइ वराणत्त अवयण्ण माहवसिरि।
४. १६

भाषा—ऊपर निर्देश किया जा चुका है कवि ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में वेग और प्रवाह दृष्टि-गोचर होता है। देखिये—

वस्तु—

को दिवायर गमणु पडिखलइ। जम महिस सिंगु कवणइ।
कवणु गरुड मुह कुहरे पयसइ। को कूरग्गहु निग्गहइ।
को जलंते सव्वासे पइसइ।
को वा सेस महाफणेहिं, फण मणि मंड हरेइ।
को कप्पंतु दुठंतु जलु, जलणिहि भुएहिं तरेइ॥

५.४

भाषा में कवि ने अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी किया है। निम्नलिखित उद्धरण में युद्ध के समय बजते हुए नाना वाद्यो को ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है

पहय पडुपडह पडिरडिय दडि डंवरं,
करड तड तडण तडि वडण फुरियंवरं।
धुम्मु धुम्मुक धुमु धुमिय महल वरं।
साल कंसाल सल सलिय सललिय सरं।
डक्क डम डंक डम डमिय डमरुब्भरं।
घंट जय घंड टंकार रहसिय भडं
टक्क चां चां हु डुक्कावली नाइयं
रुंज गुंजंत संदिण्ण समघाइयं
घग ग ड्रुग ग ग ड्रुग घग ड्रुग्रे सज्जियं
किरि रि किरि तट्टकिरिकिरिरि किरि वज्जियं।
त खे खे खि त खे तखित खेत्ता सुरं।
तं खुदे तं खुदे खुंदि खुदि भासुरं।
घिरिरि कट तट्ट कट्ट घरि नाडियं।
करिरि कर खुदं किरिरि तड ताडियं।

५.६

अलंकार—कृति में कवि ने अलकारो का प्रयोग भी किया है। ये अलंकार उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रसगो में बाण की शैली पर चमत्कार उत्पन्न करते हुए भी दिखाई देते हैं (उदाहरण के लिए ऊपर विन्ध्याटवी वर्णन ५.८, और वेश्या वर्णन ९.११)। इसके अतिरिक्त इनका वर्णन भावाभिव्यक्ति के लिए स्वाभाविक रूप से भी कवि ने किया है। सादृश्य मूलक अलंकारो में कवि का ध्यान वस्तुस्वरूप बोध की ओर अधिक रहा। उदाहरणार्थ—

परिपक्कउ णहरुक्खहो णिवडिउ फलुव दिवायर मंडलु विहडिउ।

८.१३

अर्थात् सूर्य मडल अकाश वृक्ष के परिपक्व फल के समान गिर पड़ा।

भमिए तमंधयार वर यच्छिए दिण्णउ दीवउ णं णह लच्छिए।
८. १४

चन्द्रोदय पर कवि कल्पना करता है कि चन्द्र मानो घनान्धकार मे नभश्री के लिए दीपक के समान था।

इसी प्रकार ऊपर दिये हुए वसन्त वर्णन में यमक के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं—

वियसिय कुसमु जाउ अइमत्तउ, घुम्मइ कामिणीयणु अइमत्तउ।
मंदमंद मलयानलु वाइय, महुर सद्दु जणु वल्लइ वायइ।
३. १२

भ्रान्ति का उदाहरण निम्नलिखित पक्तियो में मिलता है—

जाल गवक्खय पसरिय लालउ गोरस भंतिए लिहए विडालउ।
८. १२

गवाक्ष जाल से आती हुई ज्योत्स्ना को विडाल दुग्ध समझ कर चाट रहा था।

गेण्हइ समरि पडिउ वेरी हलु मण्णेविणु करि सिर मुत्तहलु।
८. १४

शबरी आगे पड़े बेर को सिर का मोती समझ कर उठा रही है।

सुभाषित—कृति मे सुभाषित और लोकोक्तियो का प्रयोग भी कवि ने किया है।

कच्चें पल्लट्टइ को रयणु, पित्तलइ हेम विक्कइ कवणु।
२. १८

काँच से रत्न को कौन बदलेगा? पीतल से सोने को कौन बेचेगा?

छन्द—कृति मे पज्झट्टिका, घत्ता, दुवई, दोहा, गाथा, वस्तु, खडय आदि मात्रिक छन्दो का और स्रग्विणी, शिखरिणी, भुजग प्रयात आदि वर्ण वृत्तों का प्रयोग हुआ है। गाथाओ की भाषा नि सन्देह प्राकृत से प्रभावित है।

सुदंसण चरिउ—सुदर्शन चरित्र

यह ग्रंथ अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भंडार जयपुर मे वर्त्तमान है (प्र० स० पृष्ठ १८७-१९०)। एक हस्तलिखित प्रति प्रो० हीरालाल जैन के पास उपलब्ध है। बारह सधियों मे रचित इस काव्य का कर्ता नयनदी है। सन्धियो मे कडवको की कोई निश्चित संख्या नही। ५वी, १०वी और १२वी सन्धियो मे दस-दस कडवक है और ८वी सन्धि मे चवालीस। प्रत्येक सन्धि के अन्तिम घत्ता में कवि का नाम निर्दिष्ट है। नयनदी अपभ्रश के एक उत्कृष्ट कवि और प्रकाण्ड पण्डित थे। इस ग्रंथ के अतिरिक्त कवि ने 'सकल विधि निधान काव्य' की भी रचना की। कवि माणिक्य नदी का शिष्य था। कवि ने 'सुदंसणचरिउ' की रचना वि० स० ११००

में की । उस समय अवन्ती देश की धारा नगरी मे भोजदेव शासन करते थे।[1] प्रत्येक संधि की पुष्पिका मे कवि ने अपने गुरु का नाम लिया है।[2]

ग्रंथ का आरम्भ निम्नलिखित शब्दो मे होता है—

> नमो वीत रागाय ।
> ॐ नमः सिद्धेभ्य. । ॐ नमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं ।
> णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्व साहूणं ।
> इह पंच णमोकारइं लहेवि गोविउ हुवउ सुदंसणु ।
> गउ मोक्खहो अक्खमि तहो चरिउ वर चउवग्ग पयासणु । १. १.

अर्थात् अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु जनो के नमस्कार—पच नमस्कार—के फलस्वरूप एक गोप सुदर्शन नाम से जन्म लेकर किस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुआ उसी के चतुर्वर्ग-प्रकाशक चरित्र को कहता हूँ ।

इसके पश्चात् मगलाचरण किया गया है । तदनन्तर एक दिन कवि मन मे सोचता है कि सुकवित्व, त्याग और पौरुष से ससार मे यश फैलता है । सुकवित्व मे मैं अकुशल हूँ, त्याग मैं क्या करूँ ? धन हीन हूँ और सुभटत्व भी तपस्वी को निषिद्ध है । ऐसा होते हुए भी मैं यश का लोभी हूँ । अस्तु, मैं निज शक्ति के अनुसार ऐसा काव्य रचता हूँ जो पद्धडिया-बध मे अपूर्व हो । मेरा काव्य जिन-स्तवन कारण से सुकवित्व युक्त हो प्रकाशित होगा । क्या नलिनी पत्र-सयुक्त जलबिन्दु मोती के समान सुन्दर और पवित्र हो नही शोभित होते ?[3]

---

१. आराम गाम पुरवर णिवेसे, सुपसिद्ध अवंती णाम देसे ।
. . . . तहिं अत्थि धार णयरी गरिट्ठ ।
तिहुयण नारायण सिरि णिकेउ, तहिं णरवर पुंगमु भोयदेउ ।
......
णिव विक्कम कालहो ववगएसु एयारह संवच्छर सएसु ।
तहिं केवलि चरिउ अमच्छरेण, णयणंदें विरइउ वित्थरेण ।
१२. १०

२. इत्थ सुदंसण चरिए पंचणमोक्कार फल पयासयरे माणिक्कणंदि तइविज्ज सीस णयणंदिणा रइए.... इत्यादि ।

३. घत्ता—
अह एक्कहिं दिणे वियसिय वयणु, मणे णयणाणंदि वियप्पइ ।
सुकवित्तें चाएं पोरिसेण जसु, भुवणम्मि विढप्पइ ॥ १.१
सुकवित्तं ता हउ अप्पवीणु, चाउ वि करेमि किं दविण हीणु ।
सुहडत्तु तवहु दूरें णिसिद्ध, एवंविहो वि हउं जस विलुद्धु ।
णिय सत्तिए तं विरएमि कव्वु, पद्धडिया बंधे जं अउव्वु ।
छुडु करिइ जिणसंभरण चित्ते, ता सयं जि पयट्टइ मइ कवित्ते ।
जल बिंदुउ णलिणी पत्त जुत्तु, किं हइ ण मुत्ताहलु पवित्तु । १.२

कथानक—संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

भरत क्षेत्रान्तर्गत मगध देश के राजगृह नामक नगर मे श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेललना महादेवी था। एक बार वर्धमान के राजगृह मे पधारने पर राजा और सब नगरवासी उनके दर्शनार्थ गए। दूसरी सन्धि से राजा की प्रार्थना पर गौतम गणधर कथा आरम्भ करते है।

भरत क्षेत्रान्तर्गत अग देश का कवि ने श्लिष्ट और अलंकृत भाषा मे वर्णन किया है। उसी देश की चपापुरी मे धाडीवाहन नामक राजा राज्य करता था। उनकी रानी का नाम अभया था। चपापुरी मे ऋषभदास नामक धनी मानी श्रेष्ठी भी रहता था। इसकी पत्नी का नाम अरुह दासी था। एक गोपाल इस श्रेष्ठी का परिचित मित्र था। वह दौर्भाग्य से गगा में डूब गया। इसी घटना के साथ दूसरी सन्धि समाप्त होती है।

अरुह दासी ने स्वप्न देखा कि उसके घर उसी सुभग गोपाल ने जन्म लिया। मरते समय पचनमस्कार करने के परिणामस्वरूप ही उस गोपाल ने जन्मान्तर मे ऋषभ दास श्रेष्ठी के घर पुत्र रूप मे जन्म लिया। पुत्र का नाम सुदर्शन रखा गया। सुदर्शन की बाल क्रीडाओ का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। वह धीरे-धीरे बडा हुआ और उसने समग्र कलाये सीखी। क्रमश उसने युवावस्था में पदार्पण किया। वह अत्यन्त रूपवान् और आकर्षक युवक था। उसके सौंदर्य को देख कर पुर सुन्दरियो का चित्त विक्षुब्ध हो उठता था। उनके चित्त-विक्षोभ का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है—

"आहरण कावि विवरीय लेइ, दप्पण णिय विवए तिलउ देइ"

अर्थात् कोई स्त्री उलटा आभूषण पहिरने लगी, कोई दर्पणस्थित अपने प्रतिबिम्ब पर तिलक लगाने लगी। इत्यादि।

चौथी सधि में कवि ने सागर दत्त श्रेष्ठी की पुत्री मनोरमा के सौंदर्य का वर्णन किया है। मनोरमा के सौंदर्य को देखकर सुदर्शन उस पर मुग्ध हो गया। इसी अवसर पर कवि ने अनेक प्रकार की स्त्रियो के लक्षण, गुण, स्वभावादि का परिचय दिया है। सुदर्शन मनोरमा को देख विरह व्याकुल हो उठा।

मनोरमा के विरह वर्णन के साथ पाचवी सधि प्रारम्भ होती है। अन्ततोगत्वा सुदर्शन का मनोरमा के साथ विवाह हो गया। विवाह में भोजन-दावत का वर्णन करना भी कवि न भूला। इसी प्रसग में सूर्यास्त, सुरतक्रीडा और प्रभात के सुन्दर वर्णन कवि ने प्रस्तुत किये है। अधो लिखित गाथा से छठी सधि का आरम्भ होता है—

सरसं विजण सहियं भोययसारं पमाण सिद्धं खु।
भोज्जं कव्व विसेसं विरलं सहि एरिसं लोए॥

६. १

समाधिगुप्त मुनि द्वारा उपदेश दिये जाने पर ऋषभदास के स्वर्ग-गमन के साथ सधि समाप्त होती है।

सुदर्शन के अनुपम सौदर्य से आकृष्ट हो धाडी वाहन राजा की रानी अभया और कपिला नामक एक अन्य स्त्री उस पर आसक्त हो गई। वसन्त और जलक्रीडा के मनो-

हारी वर्णन इस संधि मे उपलब्ध होते हैं। निम्नलिखित गाथा से आठवी संधि प्रारम्भ होती है—

कोमल पयं उदारं छंदाणुवरं गहीर मत्थढ्ढं।
हिय इच्छिय सोहग्गं कस्स कलत्तं व इह कव्वं॥

८.१

अभया ने पंडिता नामक अपनी सेविका धाय से अपनी मनोव्यथा प्रकट की और सुदर्शन को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। चतुरा दासी पंडिता सुदर्शन को रानी के पास ले तो आई किन्तु रानी उसको अपने आधीन न कर सकी। अभया कहने लगी—

भो सुहय इय जम्मे। णयवत्ते जिणधम्मे।
करिऊण आयासु। पाविहसि सुरवासु।
किं तेण सोक्खेण। जं होइ दुक्खेण।
लइ ताम पच्चक्खु। तुहुं माणि रइ सोक्खु।
मा होइ अवियारु। संसारे तं सारु।
भुंजियइं तं मिट्ठु। माणियइं स मणिट्ठु।
पर जम्मु किं दिट्ठु।
घत्ता—हे सुंदर अम्हइं दुहुवि, जइ णेहें कालु गमिज्जइ।
तो सग्गेण मणाहरेणा लद्धेण वि भणु किं किज्जइ॥

८. १५

अभया ने अनेक दृष्टान्त दिये—व्याख्यान दिये किन्तु सुदर्शन को विचलित न कर सकी। अंत में निराश होकर अभया अपने ही नाखूनों से अपने शरीर को रुधिर रंजित कर चिल्लाने लगी—लोगो दौडो, मेरी रक्षा करो।

घत्ता—
महु लइहं गइं वणिवरेण, एयइं गंजियइं पलोयहो।
जामण मारइ ता मिलेवि, अहो धावहो धावहो लोयहो।

८.३४

राजकर्मचारियो ने आकर सुदर्शन को पकड लिया। एक अति मानव—देव—(विंतर) ने आकर उसकी रक्षा की। नवी संधि मे धाड़ीवाहन और उस अतिमानव के युद्ध का वर्णन किया गया है। धाडीवाहन ने परास्त हो कर आत्मसमर्पण कर दिया और सुदर्शन की शरण मे चला गया। यथार्थ घटना के ज्ञात होने पर राजा धाडीवाहन ने सुदर्शन को आधा राज्य देकर विरक्त होना चाहा किन्तु सुदर्शन स्वयं विरक्त हो तपस्वी का जीवन बिताने लगा। रानी अभया और उसकी परिचारिका पंडिता दोनो ने आत्मघात कर लिया। सुदर्शन मरणोपरान्त स्वर्ग में गया। दसवी और ग्यारहवी संधियो में अनेक पूर्व जन्म के वृत्तान्तो का वर्णन किया गया है। पंच नमस्कार फल का माहात्म्य प्रतिपादन करते हुए कवि ने ग्रंथ की समाप्ति की है।

कथानक में कुछ घटनाओं का अनावश्यक विस्तार किया गया है। धाड़ीवाहन

और अतिमानव (विंतर) का यह युद्धप्रसग कथा प्रवाह मे किसी प्रकार का योग नही देता। रानी अभया और कपिला का सुदर्शन के प्रति प्रेम-प्रसग तो सुदर्शन के चरित्र की दृढता प्रदर्शन करने के लिए आवश्यक समझा जा सकता है किन्तु चौथी सन्धि मे अनेक वर्गों और अनेक प्रान्तो की स्त्रियो का वर्णन, उनका स्वभाव प्रदर्शन और उनका वर्गीकरण कथाप्रवाह मे किसी प्रकार का योग नही देता। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण कवि ने बीच बीच में उपदेश भी दे डाले। प्रबंधात्मकता की दृष्टि से इनकी आवश्यकता न थी।

नायक—इस काव्य का नायक सस्कृत काव्यो की परपरा के विपरीत एक वणिक् पुत्र है। सस्कृत काव्यो के अन्य तत्व जहाँ अपभ्रश काव्यों में शिथिल हुए वहाँ नायक संबन्धी तत्व भी शिथिल हो गये। क्षत्रियकुलोत्पन्न धीरोदात्त गुण विशिष्ट राजा नायक नही अपितु एक सामान्य मध्यमश्रेणी का पुरुष नायक है। इस दृष्टि से साधारण श्रेणी का होते हुए भी नायक अनेक गुणों से युक्त है। वह अत्यन्त सुन्दर, दृढव्रती और आचारनिष्ठ मानव है। मानव स्वभाव सुलभ प्रेम के वशीभूत हो वह सागरदत्त की पुत्री मनोरमा की ओर आकृष्ट हो जाता है।

वर्ण्य-विषय—कवि ने महाकाव्यो की परपरा के अनुकूल मानव का, नारी का, भौगोलिक प्रदेशो का, प्राकृतिक दृश्यो आदि का अलकृत भाषा में वर्णन किया है। कवि ने स्वय इस बात की घोषणा की है कि सुकवि के सालकार काव्य में अपूर्व रस होता है।[1]

नयनदी अपभ्रश के प्रकाड पंडित थे। इन के पाण्डित्य का उदाहरण काव्य की प्रत्येक सन्धि के प्रत्येक कडवक के पद-पद में दिखाई देता है। बाण और सुबन्धु ने जिस क्लिष्ट और अलंकृत-पदावली का गद्य में प्रयोग किया नयनदी ने उसी का पद्य में सफलतापूर्वक निर्वाह किया। उदाहरण के लिये निम्नलिखित धाड़ीवाहन राजा का अलंकृत वर्णन देखिये—

जो अहिणव मेहु विणउ जडमउ, जो सोमु वि अदोसु उज्झियमउ।
सूरु वि णउ कुवलय संतावणु, वज्जिय रयणियरु वि णउ विहीसणु।
विबुहवइ वि जो सुर ण णिहालउ, अजुणगुणु वि ण गुरु पडिकूलउ।
णर जेट्ठु वि इछिय धयरट्ठउ, बाहुवलि वि जो भरह गरिट्ठउ।
जो रामु वि हलहरु विण भणियउ, परवंसग्गि वि णउ अविणीयउ।
जो सामि वि णउ ईसर संगउ, सारंगु वि पुंडरिय समग्गउ।

---

१. **णो संजादं तरुणि अहरे विद्दुमारत्त सोहे।**
णो साहारे भमिय भमरे णेव पुंडुच्छु दंडे।
णो पीऊसे हले सहिण तं चंदणे णेव चंदे।
सालंकारे सुकइ भणिदे जं रसं होदि कव्वे॥ ३·१

णाय वियारणो वि ण मयाहिउ, सायरो वि णउ सझस खोहिउ।
चउरासु वि जो अक्ख रहिय करु, जो विवक्ख वहणु वि णउ सिरिहरु।
णीसु वि कमलच्छि आलिंगणु, सुगुणु धणु वि ण परम्मुह मग्गणु। २.४

अर्थात् जो अभिनव मेघ होते हुए भी जलमय न था अर्थात् जो अभिनव-मेधा युक्त था और जड न था। जो चन्द्र होता हुआ भी दोषा-रात्रि-रहित था एव मृग अथवा अमृत रहित था अर्थात् यह सोम वंशी था, दोषरहित एव मद रहित था। जो सूर्य होते हुए भी कुवलयो-कुमुदो को संतापित करने वाला न था अर्थात् जो शूर और कुवलय-पृथ्वी मडल को पीड़ित करने वाला न था। जिसने रजनीचरों (रमणियरु) को छोडा था किन्तु विभीषण न था अर्थात् जिसने रज समूह का परित्याग किया था और जो भयंकर न था। जो विवुधों—देवताओ-का पति (विबुहवइ) होते हुए भी सुरों को न देखता था अर्थात् जो विद्वानो का स्वामी—रक्षक—था और सुरासेवी न था। जो अर्जुन होते हुए गुरु द्रोणाचार्य के प्रतिकूल न था अर्थात् जो ऋजु गुणों से युक्त था और गुरुजनो के प्रतिकूल न था। जो नर ज्येष्ठ–अर्जुन का ज्येष्ठ भाई (युधिष्ठिर) होते हुए भी धृतराष्ट्र को चाहता था अर्थात् जो पुरुषो मे श्रेष्ठ था और ध्वजा एव राष्ट्र की इच्छुक था। जो बाहुबली होते हुए भी भरत से ज्येष्ठ था अर्थात् जो भुजशाली था और भरत क्षेत्र में उत्कृष्ट था। जो राम होते हुए भी हलधर के बिना था अर्थात् जो अभिराम—सुन्दर था और हलिक न था। जो शत्रुपक्ष के लिए अग्निरूप था किन्तु अविनीत न था अर्थात् जो उत्कृष्ट वश में अग्रणी था और नम्र था। जो स्वामी कार्त्तिकेय था किन्तु ईश्वर, महादेव से सगत न था अर्थात् जो मनुष्यों का स्वामी था और नीति, लक्ष्मी (ई) एवं काम (सर) का सखा था। जो सारंग होते हुए भी पुण्डरीक—व्याघ्र–के सम गामी था अर्थात् जो सुडौल अगो वाला था या लक्ष्मी (सा) की रगभूमि के समान था और पुण्डरीक—छत्र जिसके सम्यक् रूप से आगे रहता था। जो नागो–हाथियो–का विदारण करने वाला था किन्तु मृगाधिप (मयाहिउ) न था अर्थात् जो न्याय से विचार करता था और मदाधिक न था। जो सागर था किन्तु मत्स्यो से क्षोभित न था अर्थात् जो आकर युक्त था अथवा लक्ष्मी (सा) का आकर था और काम से क्षोभित न था। जो चतुरास्य–ब्रह्मा–होते हुए भी अक्ष जयमाला से शून्य कर वाला था। अर्थात् जो चतुर मुख वाला था और अक्ष,पासे आदि से शून्य हाथ वाला था। जो गरुड (वि पक्ष) वाहन होते हुए भी श्रीधर–विष्णु–न था अर्थात् जो विपक्षियो-शत्रुओ का हन्ता था और नय-नीति-से लक्ष्मी का धारण करने वाला था। जो नि स्व-दरिद्र होते हुए भी कमलाक्षि-सुन्दरियो से आलिंगित था अर्थात् जो नरेश (नृ—ईश) था और विक्रम एव लक्ष्मी से आलिंगित था। जो गुण-प्रत्यचा-सहित धनुष वाला था किन्तु पराङ्मुख बाण वाला न था अर्थात् जो गुण और धन से युक्त था एवं याचको को पराङ्मुख न करता था।

इसी प्रकार निम्नलिखित वशस्थ छन्द में कवि ने वन की तुलना श्लिष्ट पदो द्वारा एक साथ ही नृप और राम से की है। कवि वन का वर्णन करते हुए कहता है—

वसत्थ—

महासरं पत्र विसेस भूसियं
सुहालयं सक्कइ विंद सेवियं।
सुलक्खणा लंकरियं सुणायथं
णिउव्व रामुव्व वणं विराइयं॥ ७.८

अर्थात् वन नृप के समान और राम के समान शोभित था। क्योंकि तीनो महासर थे। वन—महान सरोवरो से युक्त, नृप—महान् स्वर वाला और राम—महान् शर वाला। तीनो पत्र विसेस भूसिय थे। वन—अनेक प्रकार के पत्रो से भूषित अथवा पत्रो, पक्षियों और सर्पों से व्याप्त पृथ्वी से युक्त, नृप—राज्योचित विशेष पत्रो से भूषित और राम—पत्र विशेष से उपलक्षित भू रूपी श्री-शोभा-वाला। तीनों सुहालय थे। वन—सुखदायक, नृप—शुभ-सुन्दर अलको वाला और राम—शोभन भाल वाला। तीनों सक्कइ विंद सेविय थे। वन—अनेक कपि वृन्द से युक्त, नृप—सत्कवि वृन्द से सेवित और राम भी अनेक कपिवृन्द सेवित था। तीनो सुलक्खणालंकरिय थे। वन—सुन्दर लक्ष्मण नामक वृक्षो से अलंकृत, नृप—सुन्दर लक्षणो से अलंकृत और राम—सुन्दर लक्ष्मण से अलकृत थे। इसी प्रकार तीनों सणायय थे। वन—सुदर नागों से युक्त, नृप—सुन्दर न्याय कर्त्ता और राम—एक सुन्दर नायक था।

निम्नलिखित मगध देश का वर्णन भी श्लिष्ट और अलंकृत शैली में एव सरस भाषा में कवि ने अंकित किया है। वर्णन में कवि की दृष्टि इस भौगोलिक प्रदेश की नदियों, इक्षुवर्णों, उपवनो, राजहसो और उत्कृष्ट राजाओ आदि विस्तृत विषयों तक पहुँच गई। देखिये—

घत्ता—

जहिं णइउ पऊहरिउ, दीसहिं मंथर गमणिउं।
णाहहो सायरहो सलोणाहो, जंतिउ णं वररमणिउं॥ १.२
जहिं पंडु छुवणइं कयहरिसइं, कामिणि वयणाइव अइसरसइं।
... ...
उववणाइं सुरमण कय हरिसइं, भद्द साल णंदणवण सरिसइं।
कमल कोसे भमरहिं महु पिज्जइ, महुयराहं अह एहउ छज्जइ।
जहिं ससरासण सोहिय विग्गह, कय समरालो केलि परिग्गह।
रायहंस वर कमलु क्कंठिय, विलसहिं वहुविह पत्तं परिट्ठिय।[1]

सु. च. १. ३

प्रकृति वर्णन—प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे कवि ने प्राय प्रसिद्ध उपमानो का प्रयोग किया है। यह वर्णन अधिकतर उद्दीपन के रूप में ही दिखाई देता है। नदी, वसन्त ऋतु,

१. पऊहरिउ—पयोधर, पय भरित। कामिणि वयणा—कामिनी वचन या वदन। भद्दसाल—सुन्दर शाल वृक्ष या सुन्दर शालायें। रायहंस—राजहंस, श्रेष्ठ राजा।

सूर्यास्त, प्रभात आदि के सुन्दर चित्र कवि ने अंकित किये है।

निम्नलिखित गगा नदी के वर्णन मे कवि ने नदी की तुलना एक नारी से की है। नदी के प्रफुल्ल कमल नारी के विकसित मुख के समान है, भ्रमर समूह अलकपाश के समान, मत्स्य दीर्घ नयनो के समान, मोती दतावली के समान और प्रतिबिम्बित शशि दर्पण के समान प्रतीत होता है। कूलवृक्षो की शाखा रूप बाहुओ से नाचती हुई, इतस्तत प्रक्षलन से त्रिभगियो को प्रकट करती हुई, सुन्दर चक्रवाक रूप स्तनवाली, गभीर आवर्त्त रूप नाभि वाली, फेन समूह रूप शुभ्र हार वाली, तरग रूप त्रिवली से शोभित, नील कमल रूप नीलाचल धारण करती हुई, जलविक्षोभ रूप रशनादाम से युक्त नदी वेश्या के समान लीला से और मथरगति से सागर की ओर जा रही है।

घत्ता—

सुंदर पय लक्खण संगय, विमल पसण्ण सुकइहे सुहावह।
णावइ तिय सहइ सइंत्तिय, णइ अहवा सुकहे कहा॥ २.११
पफ्फुल्ल कमलवत्तें हसंति, अलि वलय घुलिय अलयइं सहंति।
दीहर झसणयणहिं मणुहरंति, सिप्पिउ डुट्ठ वडहिं दिहि जणंति।
मोत्तिय दंतावलि दरिसयंति, पडिबिंबिउ ससि दप्पणु णियंति।
तड विडविसाह बाहहिं णडंति, पक्खलण तिभंगिउ पायडंति।
वर चक्कवाय थणहर णवंति, गंभीरणीर भम णाहि वंति।
फेणोह तार हार व्वहंति, उम्मि विसेस तिवलिउ सहंति।
सय दल णीलंचल सोह दिंति, जल खलह रसण्णा दामु लिंति।
मंथर गइ लीलए संचरंति, वेसाइ व सायरु अणुसरंति।[1]

सु. च. २. १२

निम्नलिखित वसन्त वर्णन में कवि ने ऋतु के अनुकूल मधुर और सरस पदो की योजना की है। प्रारम्भिक वंशस्थ में तो भ्रमरो का गुंजन सुनाई देता है। वसन्त में गेय 'चच्चरि' का भी कवि ने निर्देश किया है।

घत्ता—

दूर वर पियाहं, पहियहं मण संतावणु।
तहिं अवसरे पत्तु, मासु वसंतु सुहावणु॥ ७.४

वंसत्थ—

सुयंधु मंदो मलयद्दिमारुऊ, वसंत रायस्स पुराणु सारऊ।
जणंतु खोहं हियए वियंभए, समाणिणी णं अणुमाणु सुंभए।

---

१. पयलक्खण—नदी पक्ष में जलयुक्त, स्त्रीपक्ष में पदन्यास से शोभित, कथा पक्ष में सुन्दर पदों से युक्त। तड विडवि साह—तट विटपि शाखा। रसण्णा दामु—रशना दाम।

जहिं जहिं मलयानिलिलु परिधावइ, तहिं तहिं मयणाणलु उद्दीवइ ।
अइ मुत्तउ जहिं वियसइ सुद्धउ, छप्पउ किण्ण होइ रस लुद्धउ ।
जो मंदारएण णिरु कुप्पइ, सो किं अप्पउ कुरए समप्पइ ।
सामल कोमल सरस सुणिम्मल, कयली वज्जेवि केयइ णिप्फल ।
सेवइ फर सु विछप्पउ भुल्लउ, जं जसु रुच्चइ तं तसु भल्लउ ।
मह महंतु विरहिणि मणदमणउं, कासु ण इट्ठु पप्फुल्लिय दवणउं ।
जिण हरेसु आढविय सुचच्चरि, करहिं तरुणि सवियारी चच्चरि ।
कत्थइ गिज्जइ वर हिंदोलउ, जो कामीयण मण हिंदोलउ ।
अहिसारिहिं संकेयहो गम्मइं, गयवईहि गंडयलुणिहम्मइं ।
पियविरहें पहियहंडोल्लिज्जइं, अहवा महुमासें भुल्लिज्जइ ।।

सु. च. ७. ५.

निम्नलिखित प्रभात वर्णन में कवि ने प्रत्यूष-मातग द्वारा संसार सरोवर से नक्षत्र रूप कुमुद और कुमुदिनियो के नाश और शशि रूप हस के पलायन का दृश्य प्रस्तुत किया है । सूर्य को केसरी और गाढान्धकार को गज बताते हुए एवं सूर्य को दिग्वधू का लीला कमल, गगनाशोक का कुसुम गुच्छक, दिनश्री का विद्रुम लता का कद और नभश्री का सुन्दर कस्तूरी बिन्दु—निर्देश करते हुए कवि ने प्राचीन परम्परा का ही निर्वाह किया है ।

तो जग सरवरम्मि णिसि कुमइणि, उड्डु पफुल्ल कुमुय उब्भासिणि ।
उम्मूलिय पच्चूस मयंगें, गमु सहिउ ससि हंस विहंगें ।
वहल तमंधयार वारण-अरि, दीसइ उयय सिहरे रवि केसरि ।
पुव्व दिसावहुय अरुण छवि, लीला कमलु व उब्भासइ रवि ।
सोहम्माइ कप्पफल जोयहो, कोसुम गुंछु व गयणा सोयहो ।
दिण सिरि विद्दुम विल्लिहे कंदुव, णहसिरि घुसिण ललाम य विंदुव ।

५.१०

निम्नलिखित सूर्यास्त वर्णन मे कवि ने सूर्य के अस्त हो जाने के कारण की सुन्दर कल्पना की है—वारुणी, सुरा मे अनुरक्त कौन उठकर भी नष्ट नही होता ? अतएव सूर्य भी वारुणी—पश्चिम-दिशा के अनुराग से उदित होकर अस्त हो गया ।

दुवई—

बहु पहरेहिं सूरु अत्थमियउ, अहवा काइं सीसए ।
जो वारुणिहे रत्तु सो उग्गुवि, कवणु ण कवणु णासए ।।
णह मरगय भायणे वर वंदुण, संझा राउ घुसिणु ससि चंदणु ।
ससि मिगु कत्थूरी णिरु सामल, वियसिय गह कुवलयउडु तंडुल ।
लेवि णु मंगल करण णुराइय, णिसि तट्टि तहिं समए पराइय ।

सु. च. ५.८

कवि केशवदास ने भी अपनी रामचन्द्रिका में एक स्थान पर यही भाव अभिव्यक्त

किया है ।[1]

रस—काव्य मे शृंगार, वीर और शान्त तीनो रस मिलते हैं। मनोरमा के सौन्दर्य चित्रण मे और अनेक प्रकार की स्त्रियो के वर्णन मे शृंगार-रस की अभिव्यक्ति की गई है। धाडीवाहन के युद्ध प्रसंग मे वीर रस मिलता है। शृंगार-रस का अन्ततोगत्वा शान्त रस में पर्यवसान दिख ड देता है।

शृंगार रस की अभिव्यजना मे कवि का निम्नलिखित मनोरमा-रूप-वर्णन देखिये—

घत्ता—

जा लच्छि समा तहे काउवमा जाहे गइए सकलत्तइं ।
णिरु णिज्जियइं, णं लज्जियइं हंसइं माणसे पत्तइं ॥ ४.१
जाहे चरण सारुण अइ कोमल, पेछेवि जले पइट्ठ रत्तुप्पल ।
जाहे पायणह मणिहि विचित्तइं, णिरसियाइं णहे ठिय णक्खत्तइं ।
...   ...
जाहि लडह जंघहिं उहामिउं, रंभउ णीसारउ होएवि थिउ ।
जाहे णियंबु बिंबु अलहंतें, परिसेसियउ अंगु रइ कंतें ।
...   ...
जाहि णाहि गंभीरिम जित्तउ, गंगा वत्तु ण थाइ भमंतउ ।
जाहे मज्झु किमु अवलोएवि, हरि णं तव चरण चित्तु गउ गिरि दरि ।
जाहे सुरोमावलिए परज्जिय, णाइणि विले पइसइ णं लज्जिय ।

घत्ता—

अह मइं कलिय रोमावलिय, जइ णवि विहि विरयंतउ ।
तो मणहरेण गुरु थलहरेण, मज्झु अवसु भज्जंतउ ॥ ४.२
जाहे णिएविणु कोमलु बाहउ, विस विक रहित गुणउम्मा हउ ।
जाहे पाणि पल्लवइं सुललिलयइं, कंकेल्ली दलहिंवि अहिलसि यहिं ।
जाहि सद्द् णिसणेवि अहिह वियए, णं किण्हत्तु धरिउ माहवियए ।
जाहे कंठ रेहत्तय णिज्जिय, संख समुद्दे वुड्डु णं लज्जिय ।
जाहे अहरराएं विद्दुम गुणु, जित्तउ जेण धरइ कठिणत्तणु ।
जाहे दंसण कंतिए जिय णिम्मल, सिप्पिहें तें पइट्ठ मुत्ताहल ।
जाहे सास सुरहि मणउ पावइ, पवणु तेणउव्विं विरु धावइ ।
जाहे विमल मुह इंद सयासए, णि वडण खप्परं व ससि भासइ ।
...   ...

---

१. जहीं वारुणी की करी रंचक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियौ भगवंत बिन संपति सोभा साज ॥
केशव कौमुदी प्रथम भाग, टीकाकार ला० भगवानदीन, सं० १९८६ वि०, पृ० ७२

जाहे णयण अवलोइवि हरिणिहिं, विभिएहिं रइ वद्धी गहणेहिं।
जाहे भउ वंकत्तें सुरधणु, जित्तउ हवइ तेण सो णिग्गुणु।
जाहे भालहिउ किण्हट्ठमि ससि, हवइं खीणु अज्जुवि खेयहो वसि।
केसहिं जाए जित्त अलि सत्थवि, रुणुरुणंत रइ करवि ण कत्थवि।

सु. च. ४.३

अर्थात् जो मनोरमा लक्ष्मी के समान है उसकी तुलना किस से की जा सकती है ? जिसकी गति से नितान्त पराजित होकर मानो लज्जित हुए हंस सकलत्र मानस में चले गये। जिसके अतिकोमल और अरुण चरणो को देखकर रक्तकमल जल में प्रविष्ट हो गये। जिसके चरणो की सुन्दर नख कान्ति से पराभूत नक्षत्र आकाश में चले गये। · जिसकी सुन्दर जघाओ से तुलना करने पर कदली निस्सार हो खडा रहा। जिसके नितब बिंब को न प्राप्त कर काम ने अपने शरीर को भस्मावशेष कर दिया। ·· जिसकी नाभि के गाम्भीर्य से जीती हुई गगा की जल भवर सदा घूमती हुई स्थिर नही हो पाती। जिसकी कटि को देखकर क्या सिंह तपश्चरण के विचार से गिरि कन्दरा में चला गया ? जिसकी सुन्दर रोमावली से पराजित होकर लज्जित नागिनी मानो बिल मे प्रविष्ट हो गई। यदि विधाता उसकी रोमावली रूपी लोहशृंखला का निर्माण न करता तो उसके मनोहारी और गुरु स्तनभार से कटि अवश्य भग्न हो जाती।

जिसकी कोमल बाहुओ को देखकर ···· जिसके सुललित पाणिपल्लवो की अशोक दल भी इच्छा करते है। जिसके मधुर स्वर को सुन कर कोकिला ने कृष्णता धारण कर ली। जिसकी कठ रेखाओ से पराजित होकर लज्जित शख समुद्र में डूब गया। जिसके अधर-राग से विजित विद्रुम ने कठिनता धारण कर ली। जिसकी दन्त कान्ति से विजित निर्मल मोती सीपियो के अन्दर जा छिपे। जिसके श्वास सौरभ को न पाकर पवन विक्षिप्त सा चारो ओर दौड़ता फिरता है। जिसके मुख चन्द्र के सामने चन्द्रमा एक ·· खप्पर के समान प्रतीत होता है। · जिसकी आँखो को देखकर हरिणियो ने विस्मित होकर पाशबन्धन की कामना बढा ली। जिसकी भौहो की वक्रता से पराजित होकर इन्द्रधनुष निर्गुण हो गया। जिसके भाल से विजित कृष्णपक्ष की अष्टमी का चन्द्र आज भी क्षीण होता है और आकाश मे बसता है। जिसके केशो से विजित भ्रमर समूह चारो ओर गुन-गुनाता हुआ फिरता है और कही भी उसका दिल नही लगता।

उपरिलिखित वर्णन में कवि ने मनोरमा के अगो का वर्णन किया है। इसमें नख-शिख वर्णन की परिपाटी स्पष्ट परिलक्षित होती है। नख शिख वर्णन वास्तविक नख शिख वर्णन है क्योकि कवि ने मनोरमा के चरणो से प्रारम्भ कर केशों पर समाप्ति की है। अंगो के उपमान यद्यपि प्रसिद्ध है तथापि वर्णन में अनूठापन है। इस प्रकार के वर्णन का आभास सस्कृत कवियो के कुछ पद्यो में भी मिलता है। जैसे—

"यत् त्वन्नेत्र समान कान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरम्"। इत्यादि

अर्थात् हे सुन्दरि ! तुम्हारे नेत्रो के समान कान्तिवाला नील कमल जल में डूब गया।

रूप वर्णन की इस शैली का आभास विद्यापति के पदो में भी दिखाई देता है।[1]

इस रूप वर्णन मे कुछ उपमानो की छाया जायसी के पद्मावती रूप-वर्णन में दिखाई देती है।

सुदर्शन के सौन्दर्य को देखकर मनोरमा भी उसके प्रति आकृष्ट हो गई। मनोरमा की व्याकुलता में विप्रलभ शृ गार की अभिव्यजना हुई है। मनोरमा व्याकुल हो काम को उपालम्भ देती है—

अरे खल स्वभाव काम ! तुम भी मेरे देह को तपाते हो क्या सज्जन को यह उचित है ? रुद्र ने तुम्हारी देह जलाई फिर मुझ महिला के ऊपर यह क्रोध क्यो ? अरे मूर्ख ! तुम ने पाचों बाण मेरे हृदय पर छोड दिये फिर दूसरी युवतियो को किससे विद्ध करेगा ?

दुवई—

कमलु जलद्द गेउ भूसण विहिणवि कप्पूर चंदणं।
असणु ण सयणु भवणु पडिहासइ पवियं भेइ रणरणं॥

---

१. कबरी-भय चामरि गिरि कन्दर
मुख-भय चाँद अकासे।
हरिन नयन-भय, सर-भय कोकिल
गति-भय गज बनवासे॥ २
कुच-भय कमल-कोरक जल मुदि रहु
घट परवेस हुतासे।
दाडिम सिरिफल गगन वास करु
सम्भु गरल करु ग्रासे॥ ६
भुज भय पंक मृनाल नुकाएल
कर भय किसलय काँपे।
....

विद्यापति पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी संकलित पदसंख्या २०, पृष्ठ ३०.

विहि निरमलि रामा दोसर लछि समा
भल तुला एल निरमान॥ ३
कुच-मंडल सिरि हेरि कनक-गिरि
लाजे दिगन्तर गेल।
....
माझ-खीनि तनु भरे भांगि जाय जनु
विधि अनुसये भल साजि।
नील पटोर आनि अति से सुदृढ़ जानि
जतन सिरिजु रोमराजि॥७

विद्यापति पदावली, पदसंख्या २२, पृ० ३२.

पुणु पुणु सा पभणइ जणिय ताव, रे रे मयरद्धय खल सहाव।
छलु लहेवि तुहुं वि महु तवहि देहु, सपुरिसहो होइ किं जुत्तु एहु।
रुद्देण आसि यव इ द देहु, भणु महिलहे उप्परि कोण कोहु।
पंचवि महुं लायवतिणि f वाण, अण्णाउ केण हणिहसि अयाण।
सय वत्त वत्त लोयह [द्धवसाल, जहिं जहिं आलोयइ कहिं वि बाल।
तहिं तहिं आवंतउ सुहउ भाइ, मुह दंसण भरियउ जगु जि णाइ।

५.१

इस व्याकुलता का पर्यवसान विवाह मे होता है। इसी प्रसग में संध्या और प्रातः के सुन्दर वर्णनों के साथ संभोग शृंगार का भी कवि ने वर्णन किया है।

संयोग शृंगार के वर्णन के प्रसंग में ही कवि ने वसन्तोत्सव, उपवन-विहार और जलक्रीडा के भी सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं।

शृंगार रस का अन्ततोगत्वा पर्यवसान शान्त रस में दिखाई देता है। अन्त में सब पात्र तपस्वी और विरक्त हो जाते हैं। वही वैराग्य, शान्ति के चित्रो में शान्त रस परिलक्षित होता है।

शृंगार के प्रसग में कवि ने अनेक प्रकार की स्त्रियों का वर्णन किया है। स्त्रियो का भेद अनेक आधारो पर कवि ने प्रदर्शित किया है। पहले विशेष इगितों के आधार पर स्त्रियो के चार भेद बताये गये हैं—भद्द, मदा, लय और हसी। तदनन्तर भिन्न-भिन्न वर्गों के आधार पर भेद किये गये हैं—ऋषि स्त्री, विद्याधरी, यक्षिणी, सारसी, मृगी आदि (४ ५)। तदनन्तर प्रान्त भेद या देश भेद से उनका विभाग किया गया है—मालविनी, सैंधवी, कोशली, सिंहली, गौडी, लाटी, कालिंगी, महाराष्ट्री, सौराष्ट्री आदि। भिन्न-भिन्न देशों के अनुसार उनके स्वभाव का भी दिग्दर्शन कराया गया है (४ ६)। इसके बाद वात, पित्त और कफ की प्रधानता के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है (४-७)। इसी प्रसंग में मंदा, तीक्ष्णा, तीक्ष्णतरा और शुद्ध, अशुद्ध मिश्र आदि भेदो की ओर निर्देश किया गया है (४ ८)।[1] डा० रामसिंह तोमर ने इस वर्गीकरण में रीतिकाल की नायिका भेद की प्रवृत्ति के बीज की ओर निर्देश किया है। रानी अभया की परिचारिका पंडिता मे दूती का रूप देखा जा सकता है। पहिले निर्देश किया जा चुका है कि इस प्रवृत्ति का अस्फुट सा आभास जबु समि चरिउ (४ १४) में भी दिखाई देता है।

नवी सन्धि मे धाडीवाहन के युद्ध प्रसग में वीररस दिखाई देता है। समुचित छन्द की गति द्वारा योद्धाओ की गति प्रदर्शित की गई है। अनुरणनात्मक शब्दो के प्रयोग द्वारा शब्द चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। निम्नलिखित उद्धरण में राजा धाडी-

---

१. रामसिंह तोमर—सुदंसण चरिउ, विश्वभारती पत्रिका, खंड ४, अंक ४, अक्तू०, दिसं०, १९४५, पृ० २६३।
परमानन्द शास्त्री—अपभ्रंश भाषा के दो महाकाव्य और कविवर नयनन्दी, अनेकान्त वर्ष १०, किरण १०.

वाहन और राक्षस के युद्ध की तुलना स्त्री और पुरुष के मिथुन से की गई है—

तो गज्जइं रण रह सुब्भिण्णइं, अब्भिट्टइं णिव णिसियर सेण्णइं।
मिहुणइं जिह रोमंचिय गत्तइं, मिहुणइ जिह तरलाविय णेत्तइं।
मिहुणइं जिह उद्दीविय रोसइं, मिहुणइं जिह धाविय मुह सोसइं।
मिहुणइं जिह विरइय संबंधइं, मिहुणइं जिह वर करण मयंधइं।
मिहुणइं जिह विक्खित्ताहरणइं, मिहुणइं जिह उच्चाइय चरणइं।
मिहुणइं जिह आमेल्लिय सुसरइं, मिहुणइं जिह पुणु पुणु दर हसिरइं।
मिहुणइं जिह सेउल्लणि लाइइं, मिहुणइं जिह कड्ढिय कर वालइं।
मिहुणइं जिह आहय वछयलइं, मिहुणइं जिह मुछए तणु वियलइं।
घत्ता—

तोडल्ललइ चलइ खलइ, तसइ ल्हसइ णीससइ पणासइ।
णिसियर वलु णिव साहणहो, णव वहु जेम ससज्झए दीसइ ॥ ९.४

निम्नलिखित उद्धरण में छन्द की गति देखिये—

जुज्झ कोछरा तोसियछरा

णं भयावणा राम रावणा
ढुक्क सम्मुहा मुक्क आउहा
घाय घुम्मिरा रत्त तिम्मिरा
दो वि सुंदरा णाइं मंदरा
कंप वज्जिया देव पुज्जिया ९.९

राजा और राक्षस दोनो रथ पर चढ युद्ध करते है। टन टन बजते घंटे और खन-खन करती शृंखला से चित्र सजीव हो उठा है—

कंचण णिबद्धए, उब्भिय सुचिंतए
घगघगिय मणियरे, मंद किंकिणि सरे।
मणजव पयट्टए, टण टणिय घंटए॥
धूव धूमाउले, गुमगुमिय अलिउले
खण खणिय संखले, बहु वलण चंचले,
हिलि हिलिय हयवरे, एरिसे रहवरे। ९.११

इस प्रकार कवि के वसन्तोत्सव, उपवन विहार, सूर्यास्त आदि वर्णनों में उसका बाह्य-प्रकृति का निरीक्षण दिखाई देता है। अतः प्रकृति का निरीक्षण स्त्री-प्रकृति अकन में दृष्टिगत होता है। निम्नलिखित वस्तु-छंदो मे कवि ने स्त्री-प्रकृति का सुन्दर विश्लेषण किया है। कवि के विचार में अनेक तर्क, लक्षण, छंदालंकार, सिद्धान्त-शास्त्र आदि गभीर ग्रन्थों के रहस्य को समझा जा सकता है । जीवन-मरण, शुभाशुभ कर्म, मत्र, तत्र, शकुन आदि का भी निर्भ्रान्ति ज्ञान संभव है। एक स्त्री-चरित को छोड़ कर सब कुछ जाना जा सकता है। क्रुद्ध सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि के चित्त को समझा जा सकता है

किन्तु इस वसुधा-पीठ पर स्त्री-चित्त की थाह लेने में कौन समर्थ है ? किसी-न-किसी उपाय से ग्रह-चक्र, अंबुधि-सलिल, वालु-निकर इत्यादि जाने जा सकते हैं किन्तु तिया-चरित्र का समझना सभव नही ।

वस्तु छंद—

सव्व लक्खण तक्क मुणिघंट ।
स छंदालंकार वर—
चरण करण सिद्धांत भेयइं ।
जीवण मरण सुहासुहइं
कम्म पयडि वंधइं अणेयइं ।
मंतइं तंतइं सउणाइं, एत्थु ण कीरइ भंति ।
एक्कु मुएविणु तिय चरिउ, सव्वइं जाणिज्जंति ॥ ७
अइ सरोसहं सीह वग्घाहं ।
आसी विसहरहं,
कहव चित्तु घिप्पइ अलीढइं ।
अणुमेत्तु वि त्तियहे पुणु,
को समत्थु इह वसुह वीढए ।
गह चक्कु वि अंबुहि सलिलु, वालुय णियरु वि चित्त ।
कह व पवाएं जाणियइ, णउ पुणु तियहे चरित्तु ॥ ८

८.३६

भाषा—कवि ने काव्य में क्लिष्ट और अनेक प्रकार के अलंकारो और मुहावरो से युक्त भाषा का प्रयोग किया है । स्थान-स्थान पर सुन्दर सुभाषित भी प्रयुक्त हुए है । क्लिष्ट शैली के प्रयोग से यद्यपि भाषा कुछ क्लिष्ट प्रतीत होती है तथापि सरल और प्रसादगुण युक्त भाषा का अभाव नही ।

देखिये—

किं मित्तें कवडु पयासिरेण, किं सुयणें परउवहासिरेण ।
किं राएं जण संताविरेण, किं वाएं कडु उपलाविरेण ।
किं णेहें विप्पिय दाविरेण, किं लद्धें धम्में पाविरेण ।
किं लच्छि विहीणें पंकएण, किं मणुएं लग्ग कलंकएण ।
किं कुसुमें गन्ध विवज्जिएण, किं सूरें समर परज्जिएण ।
किं भिच्चें पेसण संकिएण, किं तुरएं ऊरुद्धं किएण ।
किं दव्वें किविण करासिएण, किं कव्वें लक्खण दूसिएण ।
किं णीरसेण णच्चिय णडेण, किं साहुहु इंदिय लंपडेण ।

सु० च० ११. ९.

ग्रन्थ में श्लेष, उपमा, रूपक, विरोधाभास आदि अलंकारो का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है । साम्य प्रदर्शन के लिए कवि ने शब्दगत साम्य की ही ओर अधिक ध्यान दिया

है। अप्रस्तुत योजना में कवि ने प्राय. मूर्त्त उपमानो का ही प्रयोग किया है। उपमानो के चयन में कवि की दृष्टि कही-कही ग्राम्य दृश्यो की ओर भी गई है। उपमा में कही-कही हलकी-सी उपदेश भावना की ओर भी ध्यान चला जाता है। उदाहरणार्थ—

काहे वि रमणिए पिय दिट्ठि पत्त,
ण चलइ णं कद्दमे ढोरि खुत्त। ७.१७

अर्थात् प्रिय पर पडी किसी रमणी की दृष्टि इस प्रकार आगे न बढी, जिस प्रकार कीचड में फसा पशु।

कुमुय संड दुज्जण सम दरिसिय, मित्त विणासणे वि जें वियसिय। ८.१७

अर्थात् कुमुद समूह दुर्जन के समान दिखाई दिया जो मित्र—सूर्य—के विनाश हो जाने पर भी विकसित था।

अग्गए णिउ पच्छए दिव्वु जाइ,
जीवहु पुव्व क्किउ कम्मु णाइ। ९.१७

ग्रन्थ की भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी मिलता है।

घुमु घुमिय मद्दलइं कणकणिय कंसाइं, धुमु धुमिय गंभीर धुंधुहि विसेसाइं।
रण झणिय तालाइं झं झं सटुक्काइं, डम डमिय डमरु यइ डंडंत डक्काइं।
थर थरिरि थर थरि रि कर डोह सद्दाइं, झिं झिं झिंत झिक्किरि सुहद्दाइं।
थगेडुगेगें थगे डुगेगे तलि तक्खि पडहाइं, किरि किरिरि किरि किरिरि तटर कुंदलडहाइं
कर मिलण झिमि झिमिय झल्लरि वियंभाइं, रुजंत रुंजाइ भंभंत भंभाइं। ७.६

भिन्न-भिन्न अनुरणनात्मक शब्दो के प्रयोग द्वारा कवि ने वसन्तोत्सव मे बजते हुए विभिन्न वाद्य यन्त्रो की ध्वनियो का अकन किया है।

सुभाषित—कवि ने अनेक सुभाषितो और मुहावरो के प्रयोग से भाषा को रोचक बनाया है—

'करे कंकणु कि आरिसे दीसइ'। ७.२

अर्थात् हाथ कंगन को आरसी क्या ?

'जं जसु रुच्चइ तं तसु भल्लउ'। ७.५

अर्थात् जो जिसे अच्छा लगे वही उसके लिए भला।

'अह ण कवणु णेहें संताविउ'। ७.२

अर्थात् प्रेम से कौन दुखित नहीं होता ?

'एक्कें हत्थें ताल कि वज्जइ,
कि मरेवि पंचमु गाइज्जइ।' ८.३

अर्थात् एक हाथ से ताली कैसे बजाई जा सकती है ? क्या मरण पर भी पंचम गाया जा सकता है !

'सग्गु मुएवि णरउ किं वंछहिं'। ८.५

अर्थात् स्वर्ग को छोड़ नरक क्यो चाहता है ?

'तं खज्जइ जं परिणइ पावइ'। ८.५

अर्थात् वह खाओ जो हज़म हो जाय।

'अण्णु मज्झु तं हासउ दिज्जइ, घरे रंद्धिए जं भिक्ख भमिज्जइ।'

अन्य व्यक्तियो मे वह उपहसित होता है जो घर में भोजन पका कर भिक्षा के लिए घूमता फिरे।

'वर सुवण्ण कलसहो उवरि, ढंकणु किं खप्परु दिज्जइ'। ८.६

क्या सुवर्ण-कलश के ऊपर खप्पर का ढकना दिया जाता है ?

'पर उवएसु दिंतु बहु जाणउ'। ८.८

दूसरे को उपदेश देना बहुत लोग जानते हैं।

'दुद्ध सुद्ध किं कंजिउ पूरइ'। ८.८

क्या शुद्ध दूध काँजी की समता कर सकता है ?

'दइवायत्तु होंतु को वारइ'

अवसु विवसि किज्जइ जं रुच्चइ, विस भएण किं फणि मुणि मुच्चइ'। ८.२१

'देवहं वि दुलक्खउ तिय चरित्तु'। ९.१८

अर्थात् स्त्री-चरित्र देवताओं से भी दुर्लक्ष्य है।

'जोव्वणु पुणु गिरिणइ वेय तुल्लु, विद्धत्तें होइ सव्वंगु ढिल्लु'। ९.२१

यौवन पहाड़ी नदी के वेग के तुल्य होता है। वृद्धत्व से अंग अंग शिथिल हो जाता है।

'सप्पुरिसहो किं बहुगुणहिं, पज्जतं दोसहिं णराहिव।
तडि विप्फुरणु व रोसु मणे मित्ती पाहण रेहा इव॥ ९.१८
'अमिलंताण व दीसइ णेहो दूरे वि संठियाणं पि।
जइविहु रवि गयणयले इह तहवि हुलइ मुहु णलिणी॥' ८.४

अर्थात् परस्पर न मिलते हुए दूर स्थित प्राणियो में भी स्नेह देखा जाता है। जिस प्रकार सूर्य दूर गगनतल मे रहता है किन्तु फिर भी नीचे भूतल पर नलिनी विकसित होती है।

इस प्रकार नयनदी की भाषा और वर्णन शैली को देखने से 'सुदंसण चरिउ', निस्सन्देह अपभ्रश का एक उत्कृष्ट काव्य सिद्ध होता है। कवि ने तो इसे पूर्णरूप से दोष रहित घोषित किया है।[1]

---

१. रामो सीय विऊय सोय विहुरं संपत्तु रामायणे
जादा पंडव धायरट्ठ सद दं गोत्तं ककली भारहे।
हेड्डा कोलिय चोर रज्जु निरदा आहासिदा सुद्दये।
णो एक्कं पि सुदंसणस्स चरिदे दोसं समुब्भासिदं॥ शार्दूल०
सु० च० ३.१

छन्द—कवि ने ग्रन्थ में अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । केशवदास की रामचन्द्रिका और इस काव्य में प्रयुक्त अनेक छन्द समान है। छन्दो की विविधता भी दोनो काव्यो मे समान रूप से दृष्टिगत होती है। इस काव्य मे वर्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है किन्तु प्रधानता मात्रिक छन्दों की ही है । आठवी सन्धि के छठे कडवक के आरम्भ में कवि ने आठ दोहो (दोहाष्टक) के बाद कडवक प्रारम्भ किया है । उदाहरण स्वरूप दो दोहे देखिये—

जाणामि हउं डवहाणइं, किं तुहुं चवइ वहुत्तु ।
अंविए को वि ण पंडियउ, पर उवएस कहंतु ॥२
इय णिसुणेवि णु पंडियए, तो वुत्तउ विहसेवि ।
लीलय कारणे देवउलु, णउ जुत्तउ णासेवि ॥८

वर्णिक वृत्तों मे भी नवीनता उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है । निम्नलिखित मालिनी वृत्त देखिये—

खलयण सिर सूलं, सज्जणाणंद मूलं ।
पसरइ अविरोलं, मागहाणं सुरोलं ।
सिरि णविय जिणिंदो, देइ वायं वणिंदो ।
वसु हय जुइ जुत्तो, मालिणी छंदु वुत्तो ॥ ३.४

प्रत्येक चरण में यति के स्थान पर और चरणान्त मे अनुप्रास (तुक) के प्रयोग द्वारा चार चरणों की मालिनी आठ चरणों वाली प्रतीत होती है ।[1]

सकल विधि निधान काव्य

यह भी नयनंदी का लिखा हुआ अप्रकाशित ग्रंथ है । इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार में उपलब्ध है (प्र० स० पृष्ठ १८१ तथा २८५) ।

---

१. कवि ने निम्नलिखित वर्णिक और मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है—
पादाकुलक, रमणी, मत्तमायंग, कामवाण, दुवई-मयण विलासा, भुजंग प्रयात, प्रमाणिका, तोडणऊ, मंदाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित, मालिनी, दोधय, समानिका, मयण, त्रिभंगिका (मंजरी, खंडियं और गाथा का मिश्रण), आनंद, द्विभंगिका (दुवई और गाही का मिश्रण), आरणाल, तोमर, मंदयारुत्ति, अमरपुरसुन्दरी मदनावतार, मागहणक्कुडिया, शाल भंजिका, विलासिनी, उविंद वज्जा, इंदवज्जा, अथवा अखोणइ, उवजाइ (उपजाति), वसंत चच्चर, वंसत्थ, उव्वसी, सारीय, चंडवाल, भ्रमरपव, आवली, चंद्रलेखा, वस्तु, णिसेणी, लता कुसुम, रचिता, कुवलयमालिनी मणिशेखर, दोहा, गाथा, पद्धडिया, उण्हिया, मोत्तिय दाम, तोणउ, पंच-चामर, सम्मिणी, मंदारदाम, माणिणी, पद्धडिया के निम्नलिखित भेद—
रयणमाल, चित्तलेह, चंदलेह, पारंदिया, रयडा इत्यादि ।

कृतिकार ने ५८ सन्धियो में ग्रन्थ की रचना की । सन्धियों में कडवको की कोई निश्चित सख्या नही। दूसरी सन्धि मे ५ कडवक है और बयालीसवी में २९ । हस्त लिखित प्रति में १५ वी सन्धि के बाद ३२ वी सन्धि समाप्त होती है। १६ वी सन्धि मे ७ वे कडवक के बाद ३२ वी सन्धि के ८ वें कडवक का कुछ अश देकर आगे कड़वक चलने लगते है। कृत्ति मे कवि ने रचना काल नही दिया किन्तु 'सुदसण चरिउ' के रचना काल से कल्पना की जा सकती है कि इस ग्रन्थ की रचना भी कवि ने वि० स० ११०० के लगभग की होगी।

यद्यपि इस ग्रन्थ में अनेक विधि विधानो और आराधनाओ का उल्लेख एव विवेचन है तथापि ग्रन्थ की पुष्पिकाओं में कृतिकार ने इसे काव्य कहा है।[1]

कृतिकार ने अपने से पूर्ववर्त्ती और समकालीन अनेक ग्रन्थकारो एवं कवियों का उल्लेख किया है। इनके नाम निम्नलिखित है —[2]

मनु, याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, व्यास, वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, बाण, मयूर, जिनसेन, वारायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पालित्त (पादलिप्त), पाणिनि, प्रवरसेन, पातंजलि, पिंगल, वीर सेन, सिंह-नंदी, गुणसिंह, गुणभद्र, सामंतभद्र, अकलंक, रुद्र, गोविंद, दंडी, भामह, भारवि, भरह, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र, श्री कुमार और सरस्वती कुमार।

---

१. मुणिवर णयणंदी सण्णिबद्धे पसिद्धे
सयल विहि णिहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।
अरिह पमुहं सुत्तु वुत्तु आराहणाए
पभणिउं फुडू संधी अट्ठावण समोत्ति॥

५८वीं सन्धि

२. मणु जण्ण वक्कु वम्मीउ वासु, वररुइ वामणु कवि कालियासु।
कोऊहलु वाणु मऊरु सूरु, जिणसेण जिणागम कमल सूरु।
वारायणवरणाउ वियडु, सिरि हरिसु राय सेहरु गुणड्डु
जसइंधु जए जयराय णामु, जय देउ जणमणाणंद कामु।
पालित्तउ पाणिणि पवरसेणु, पायंजलि पिंगलु वीरसेणु।
सिरि सिहणंदि गुणसिंह भद्दु, गुणभद्दु गुणिल्लु समंतभद्दु।
अकलंकु विसम वाईय विहंडि, कामद्दु रुद्दु गोविंदु दंडि।
भम्मुइ भारहि भरहुवि महंतु, चउमुहु सयंभु कइ पुप्फयंतु।

घत्ता—

सिरि चंदु पहाचंदु वि विवुह, गुण गण णंदि मणोहरु।
कइ सिरि कुमारु सरसइ कुमरु, कित्ति विलासिणि सेहरु॥

स० वि० ति० का० १.५

ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए कृतिकार ने मगलाचरण के अनन्तर चार गाथाओ द्वारा सरस्वती वन्दना की है—

छद्दंसण छच्चरण छंदालंकार फुरिय पक्खउडा।
णवरस कुसुमासत्ता, भिगिव्व गिरा जए जयउ ॥१॥
थपथ्या
विलसिय सविलास पया वाएसी परमहंस तल्लीणा।
मुणिगण हर पमुह मुहारविंद ठिय जयउह सिव्व ॥२॥
पूर्वपथ्या
केवल णाण सरोवर समुज्झ वाअरुह दिणयरुल्लसिया।
जयउ भिसिणिव्व वाणी छद्दंसण छप्पयावरिया ॥३॥
परपथ्या
दीहर समास कर पसर छित्तक्क वायरण वारण विसेसा।
करिणिव्व काल काणण कयत्थ कीला गिरा जयउ ॥४॥
विपुलाणाम गाथा
१.१

कृतिकार आत्म-विनय प्रकट करता है और कहता है —

'अलंकार सल्लक्खणं देसि छंदं,
ण लक्खेमि सत्थांतरं अत्थमंदं।'

इसी प्रसंग में कृतिकार अपने ग्रन्थ को शृङ्गार, वीर रसादि से भिन्न धारा में रचने का कारण बतलाता हुआ कहता है —

किं करिमि किं पि सिंगार गंथु, णं णं तं जीवहो णरय पंथु।
किं वीर वीर जण जणिय राउ, णं णं सो बहु हिंसा सहाउ।
किं करमि किं पि कायमुय मणोज्जु, णं णं णिण्णासिय धम्मकज्जु।
१. १२

ग्रन्थ मे स्थान-स्थान पर लेखक ने "उक्तं च" लिखकर सस्कृत ग्रन्थो के अनेक उद्धरण दिये है[1]। १५ वी सन्धि में तो संस्कृत शैली के साथ-साथ ग्रन्थकार ने सस्कृत

---

१ दिवसस्याष्टमे भागे मंदीभूते दिवाकरे।
नक्तं तद् विजानीया न्न नक्तं निशिभोजनम् ॥
यथाहि सिद्धि माकाशं तिमिरोपप्लुतो नरः।
संकीर्ण मिव मात्राभि श्चित्राभि रभि मन्यते ॥
तथेद ममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया।
कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रशस्यते ॥ ३३.६
बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धे हि कुतो बलम्?
वने सिंह- मदोन्मत्तः, शशकेन निपातितः ॥ ४८.१०

पदावली का भी प्रयोग किया है।[1]

ग्रन्थकार ने अपनी धार्मिकभावनाओ को अभिव्यक्त करने के लिए प्राचीन कथाओ और उपाख्यानो का आश्रय लिया है। इन आख्यानो का कवि ने अलकृत और काव्य-मय भाषा मे वर्णन किया है। जैसे, ३५ वी और ३६ वी सन्धियो में कृतिकार ने क्रमशः रामायण और महाभारत युद्ध का वर्णन किया है। इनका प्रसग यह दिखाने के लिए लाया गया है कि स्त्री में आसक्ति से अनिष्ट उत्पन्न होता है।

कवि मही-महिला का वर्णन करता हुआ उसके मुख-मडल को अलंकृत करने वाले विधि-निर्मित मगध-मंडल रूपी कुडल का निर्देश करता है—

जलहि वलय चल रसणा दामहे। महि महिलहे महिवइ अहिरामहे।
किं वित्थिण्ण घोर थिर महिहर। णं णं तहि सोहहि सुपऊहर।
किं सरीरु कल्लोलुल्ललियउ। णं णं तहेचल हारावलियउ।
कि जल लहरिया उपडिहासिउ। णं णं तहे तिवलिट्टउ हूसिउ।
किं परिपक्कं सालि दिहिकारिणी। णं णं तहे पीयल मण हारिणि।
किं भंगुर भावइ भमरावलि। णं णं तहि णिडालि अलयावलि।
किं सरि सरल मछ मण मोयण। णं णं तह तरलिय मुह लोयण॥
किं पवणंदोलिय डुम साहउ। णं णं तहे कोमल चल वाहउ।
किं पुर वर पएसु संपुण्णउं। णं णं तहि णियंवु वित्थिण्णउं।
किं पंडुछु जंतरसु अविरलु। णं णं तहे वियरइ णव रइ जलु।
किं कयलिउ पेसल उस लग्घउ। णं णं तम्मि सेणतहे जंघउ।
किं मोरहं कलाउ अंदोलइ। णं णं केस पासु तहे घोलइ।
घत्ता—
महि महिलहे मुह मंडणु सहइ। णामें मगहामंडलु॥
णिम्मलु सुवण्ण सुरयण सहिउ। विहि विहियउ णं कुंडलु॥
३.३

रामायण और महाभारत के युद्ध प्रसंगो मे वीररस व्यंजक अनेक वर्णन उपलब्ध होते है। इन वर्णनो मे कवि ने परपरानुकूल सयुक्ताक्षरो का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

कामलिया।
जाणइ जाय राय मणु रावणु राम सेरहिं संगरे।
जा जम पट्टणं मिण पवट्टइ तापइ सेह अंतरे॥

---

१ स्वभाव नियति काल ईश्वर आत्म कर्तृत्वानि।
जीवाजीव श्रव संवर निर्ज्जरावंध मोक्ष पुण्य पापानि।
स्वतः परतः नित्यानित्याः एतेषां सदृष्टि ४९४०००००
अनयनं परस्पर घातेन॥ १८० उक्तंच॥

ण पेच्छामि लंकेस लंकाविणासं। इमंजंपिउ पंसुणा मुक्कसासं।
पंडतेण तेणा वि संरुद्ध चारं। कयं चाउरंगं वले अंधयारं।
स्यंधारए जूरिया के वि वीरा। रणंतो विकुव्वंति अण्णोणु धीरा।
घणुम्मुक्कटकार सद्दाउ जोहे। विसज्जेइ वाणावली बद्ध कोहे।
चलंते रहे चक्क चिक्कारसद्दे। रहीउ रहीयस्स मेल्लेवि कंदे।
हया हिंसणे आसुरो आसवारे। पधावेइ णिक्खो ज्ज तिक्खा सिधारे।
गए गज्जिए गज्जमाणो गइंदो। समुद्धावए णं मइंदे मइंदो।
जहा पक्कले पक्कलोणो वलुक्को। सहक्कंत पाइक्के पाइक्क चक्को।
तलप्पतं फारक्के फारक्क फारो। पइट्ठो पइझंति दिण्ण प्पहारो।
पिसक्कोह सुंकार सद्दे अभग्गो। सुधाणुक्किए को वि धाणुक्कु लग्गो।
घत्ता—

पडु कोवि पयासहिं। वाण सहासहिं। सीरि उरहुरेहइ पवरु।
णिय करहिं सुदारुणु। पर हिंसारुणु। णावइ फग्गुण दिवसयरु॥

३५. १८

कवि ने निर्वेद भाव जागृत करने वाले वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं। निम्नलिखित उद्धरण में कवि ने सांसारिक असारता और मानव की उन्नति-अवनति का हृदयग्राही वर्णन किया है—

तडिव चवल घरिणी सुहासिणी। कासु सासया सिरि विलासिणी॥
उक्तं च ॥गाथा।
उययं चडणं पडणं तिण्णि वि ठाणाइं इक्क दियहंमि।
सूरस्स य एस गई, अण्णस्स य केत्तियं थामं॥ ६.८

अर्थात् जब एक ही दिन मे सूर्य जैसे पराक्रमी को भी उदय, उपरिगमन और पतन इन तीनो अवस्थाओ का अनुभव करना पडता है तो फिर औरो का क्या कहना ?

इसी प्रकार निम्नलिखित दुवई छन्द में नलिनी दलगत जल बिन्दु के समान जीवन, को चपल बताया गया है—

दुवई—अणिलुल्ललिय ललिय णलिणी दल जल लव चपल जीवियं।
जणु जोवणु घणं ण किं जोवइ वइवस लण दीवियं॥ ६.९

भाषा—कवि ने ग्रन्थ में सरस और अनुप्रासमयी भाषा का प्रयोग किया है।

"ससि कास कुसुम संकास जस, पसर पूर पूरिय दिस।"
"तयलोय लोय लोयणहं पिय"

जैसी मधुर पदावली से ग्रन्थ परिपूर्ण है। कही कही पर युद्ध प्रसंग मे भी कवि ने इसी प्रकार की सरस भाषा का प्रयोग किया है। जैसे निम्नलिखित उद्धरण में रणभूमि की सरिता से तुलना की गई है। दोनो वस्तुओ के अंगो में उपलब्ध धर्मों द्वारा दृश्य को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है—

रेहंति रणंगणे चउत्तुरंग। णं सरि तरलिय चंचल तरंग।
रेहंति रणंगणि चमर विमल। णं सरि वलय चलवलिय धवल।
रेहंति रणंगणे वर रहंग। णं सरसरंत सुंदर रहंग।
रेहहिं रणे घोलिर चवल हार। णं सरिउमज्जिरेणेक्कहार।
रेहहिं रणे महइं सविब्भमाइं। णं सरिमण मोहइं विब्भमाइं।
रेहहिं रणे करि मयर द्धयाइं। णं सरि करि मयरइं उद्धयाइं।
रेहहिं रणे कयसज्झ सज्झ साइं। णं सरि वियसंतइं सज्झमाइं।
रेहहिं रणे पंडुर पुंडरीय। णं सरि पप्फुलिय पंडरीय।
रेहहिं रणम्मि रत्तुप्पलाइं। णं सरि वियसिय रत्तुप्पलाइं।
रेहहिं रणे विलसिय रायहंस। णं सरिहे सलक्खण रायहंस।

३६.२

भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग किया गया है। निम्नलिखित उद्धरण में युद्ध में प्रयुक्त अनेक वाद्यध्वनियो का संकेत मिलता है—

डुण कट क्रियट क्रियटर त्रट खुत्र।
खु खुंद खंद तक्खे त्रखु भ्रि भ्रि
कुं गिड डु भ्रां भ्रें धोगिद डुधागिद
डुरट मट किटि क्रिय क्रिय क्रियात्र
हथ हप्पु खु खु खु खु क्रिय क्रिय।
थरि थरि थरि रि थरि त्तूय त्तूय तखु तखु तखु।
तखु देत खंदे खंद खंदक्खु।
किरिरिकिरिरि किरि थरि किरि रावहिं।
झं झं झिणि किटि झिणि किटि भावहिं।
ठहुं ठहुं ठहुं ठहुं ठग डुगे डुगे डंगहिं।
झिं झिं झिं त्रां त्रां संजोगहिं।

३५.१२

ग्रन्थ की भाषा मे अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि अलकारो का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। निम्नलिखित छद मे सुन्दर कल्पना की गई है—

कामललिया—

रामण राम राय कुरु पंडव कामिणि कारणे रणे।
धूली रव छलेण अवकित्ति व धाइव दिम्मुहाणणे ॥

३५.१

ग्रन्थकार ने ४६ वी सन्धि के १५ वें कडवक मे निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

उक्तं च।

संता भोय जि परिहरइ, तहो कंतहो वलि कीसु।
सो दइवेण जि मंडियउ, जासु खडिल्लउ सीसु ॥

यह दोहा योगीन्दु के परमात्म प्रकाश मे भी निम्नलिखित रूप मे मिलता है—

संता विसय जु परिहरइ, वलि किज्जउं हउं तासु ।
सो दइवेण जि मुंडियउ, सीस खडिल्लउ जासु ॥

२. १३९

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण मे भी यह दोहा मिलता है—

संता भोग जु परिहरइ, तसु कंतहो बलि कीसु ।
तसु दइवेण वि मुंडिउउं, जसु खल्लिहडउं सीसु ॥

८.४.२८९

कवि के सुदंसण चरिउ के समान इस ग्रन्थ में भी छन्दों की बहुलता दृष्टिगत होती है। प्रत्येक सन्धि के प्रत्येक कडवक की समाप्ति पर कवि ने प्रयुक्त छन्द का नाम दे दिया है। आत्म विनय के प्रसग में कवि ने अपने आपको 'देसी छदो' से अनभिज्ञ कहा हैं। इससे प्रतीत होता है कि कवि के समय तक संस्कृत और प्राकृत के छन्दों से अतिरिक्त अनेक प्रकार के अपभ्रंश छन्दो का प्रचलन हो गया था। कवि ने स्थान-स्थान पर छन्दो का दूसरा नाम भी दे दिया है। जैसे—

"वसंत तिलक सिंहोद्धता व णामेदं छंदः"
"तुरंग गति मदनो वा छंदः"
"प्रियंवदा अनंतकोकिला वा नामेदं छंदः" इत्यादि ।

कवि ने वर्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छंदो का प्रयोग किया है। ग्रन्थ में ६२ के लगभग मात्रिक और २० के लगभग वर्णिक छन्दो का प्रयोग मिलता है।[1]

---

१. इस ग्रन्थ में सुदंसणचरिउ में प्रयुक्त छंदों के अतिरिक्त निम्नलिखित छंद प्रयुक्त हुए हैं—
श्रेणिका, उपश्रेणिका, विषम शीर्षक, हेम मणिमाल, रासाकुलक, मदरतार, खंडिका, मंजरी, तुरंगगति (मदन), मंदतारावली (कुमुय कुसुमावली), सिंधुर-गति, चारुपदपंक्ति, मनोरथ, कुसुम मंजरी, विश्लोक, मयण-मंजरी, कुसुमछर, भुजंग विलास, हेला, उववि‍छिया, रासावलय, कामल-लिया, सुंदरमणिभूषण, हंस लील, रक्ता, हंसिणी, जामिणी, मंदरावली, जयंतिया, मंदोद्धता, कामकीड़ा, णागकण्णा, अणंगभूषण, गइंद लील, गुण-भूषण, रुचिरंग, स्त्री, जगन्सार, संगीतकगांधर्व, वालभुजंगललित, चंड, श्रृंगार, पवन, हरिणकुल, अंकणिका, धणराजिका (हेला), अंजनिका, वसंत तिलक, पृथिवी, प्रियंवदा, (अनंतकोकिला), पुप्फमाल, पंतिया, शालिनी, विद्युन्माला, रथोद्धता, कौस्तुभ (तोणक), अशोक मालिनी इत्यादि ।

करकंड चरिउ[1]

करकड चरिउ १० सधियो मे रचा हुआ एक काव्य है। इसके रचयिता का नाम मुनि कनकामर है। प्रत्येक सधि के अन्त में इनका नाम लिखा मिलता है। कवि आरम्भ में (१. २. १.) अपने गुरु पडित मगलदेव के चरणो का स्मरण करता है। अन्तिम सधि (१०. २८. ३) मे भी कवि ने अपने को बुध मगलदेव का शिष्य कहा है। इसी स्थल पर कवि ने अपने विषय मे थोडा सा और परिचय दिया है। कवि ब्राह्मण वश के चन्द्र ऋषि गोत्र में उत्पन्न हुआ था और वैराग्य ले दिगम्बर साधु हो गया था। देशाटन करते करते आसाइय नगरी में पहुँच कर इन्होने ग्रथ रचना की (क०च० १०.२८ १–४)

अंतिम संधि के अन्तिम कडवक में कवि ने अपने आश्रयदाता का भी कुछ परिचय दिया है (वही १०. २९ २–१३) किन्तु उसके नाम का कही निर्देश नही किया।

कवि ने ग्रथ के निर्माण का समय भी कही सूचित नही किया। ग्रथकार ने इसमे सिद्धसेण, सुसमत भद्द, अकलंक देव, जयदेव, सयभु और पुप्फयत (पुष्पदन्त) का उल्लेख किया (वही १ २ ८–९)। पुष्पदन्त ने अपना महापुराण सन् ९६५ ई० में समाप्त किया अत कनकामर इस काल के पश्चात् ही मानने पडेंगे। प्रो० हीरालाल जैन ने इस ग्रथ का समय सन् १०६५ ई० के लगभग स्वीकार किया है और आसाइय नगरी को कही बुन्देलखड प्रान्त मे माना है (वही पृ० ४)।

कवि ने यह ग्रथ जैन धर्म की दृष्टि से लिखा है किन्तु जैन धर्म के गंभीर तत्वो का विश्लेषण कवि का लक्ष्य न था। जैन धर्म के सदाचारमय जीवन का दिग्दर्शन ही कवि को अभिप्रेत था। उपवास, व्रत, देशाटन, रात्रिभोजन निषेध आदि अनेक सर्वसाधारण अगो का उल्लेख कवि ने ग्रथ में किया है। हिन्दुओ के देवताओ का भी ग्रंथ मे उल्लेख मिलता है।[2] महाभारत के पात्र अज्जुण—अर्जुन—का उल्लेख भी कवि ने किया है (क च १० २२ ७)।

ग्रथ मे अन्य धर्मों के तत्वों का खडन नही मिलता इससे कवि क हृदय मे धार्मिक संकीर्णता के अभाव की सूचना मिलती है। ग्रथ सर्व-साधारण जनता के लिए लिखा गया प्रतीत होता है और संभवतः जैन धर्म के साधारण अगो का सर्व-साधारण में प्रचार ही कवि का लक्ष्य था।

कथानक—इस ग्रथ में करकडु महाराज का चरित्र-वर्णन किया गया है। सक्षेप में कथा इस प्रकार है। अंग देश की चम्पा पुरी मे धाड़ी वाहन राजा राज्य करते थे। एक बार राजा कुसुमपुर गये और एक युवती पर मुग्ध हो गये। युवती के सरक्षक माली से यह जानकर कि वह राजपुत्री पद्मावती है परन्तु जन्म समय के अपशकुन के विचार से

---

१. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, कारंजा जैन—ग्रंथमाला, बरार, १९३४ ई.

२. बलभद्र, हरि ९.५.५; बलभद्र, यम, वरुण ९.७.८-९; वलराव, णरायण १०.२५.३; हरि, हर, बम्ह, पुरंदर १०.८.९–१०.

उसका परित्याग कर दिया था—राजा ने उससे विवाह कर लिया। गर्भवती होने पर उसकी इच्छा हुई कि पुरुषवेश में अपने पति के साथ एक ही हाथी पर नगर की सैर करूँ। तदनुसार प्रबन्ध हुआ पर हाथी राजा और रानी को लेकर जगल भाग निकला। रानी ने राजा को जैसे तैसे अपनी प्राण-रक्षा के लिए विवश किया किन्तु स्वय उसी पर सवार रही। हाथी एक जलाशय मे घुसा। रानी ने कूद कर वन मे प्रवेश किया। वन हरा भरा हो गया। यह देख वनमाली रानी को बहिन बना कर घर ले गया। मालिन ने पद्मावती के अनन्त सौन्दर्य पर ईर्ष्या कर एक दिन घर से निकाल दिया। रानी निराश हो श्मशान मे चली गई और वही उसने पुत्र रत्न को जन्म दिया—जिसे एक चाडाल उठा ले चला। रानी के विरोध करने पर उसने अपना परिचय देते हुए कहा कि मै यथार्थ मे विद्याधर हूँ। मुनि के शाप से मातग-चाडाल हो गया हूँ। शाप के प्रतीकार के लिए मुनि ने यही बतलाया था कि दन्तिपुर के श्मशान में करकड का जन्म होने पर उसे ले जाकर उसका पालन-पोषण तब तक करना जब तक कि बड़ा होने पर उसे राज्य न मिल जाये—तभी उसका शाप भी मिट जायगा। यह सुनकर रानी ने अनिच्छापूर्वक पुत्र को मातग के हाथ सौप दिया। मातग ने उसे स्वय अत्यन्त योग्य बनाया। उसके हाथ पर कडु—खुजली होने से उसका नाम करकड पड गया। युवावस्था मे दन्तिपुर नरेश के स्वर्गवासी होने पर एक विचित्र विधि से करकडु राज सिंहासन पर आसीन हुए। कुछ समय पश्चात् ही उनका विवाह गिरिनगर की राजकुमारी मदनावती से हो गया।

एक बार चम्पा के राजा का दूत आया और उसने करकंडु से चम्पा नरेश का आधिपत्य स्वीकार करने की प्रेरणा की। करकडु ने क्रोध मे आकर चम्पा पर धावा बोल दिया। घोर युद्ध हुआ। रानी पद्मावती ने समय पर उपस्थित होकर पिता पुत्र का मेल करा दिया। धाडीवाहन पुत्र पाकर आनन्द मे भर गये और अपना राज्य उसे सौप वैराग्य धारण कर लिया।

करकंडु ने अपने साम्राज्य का खूब विस्तार कर एक दिन मन्त्री से प्रश्न किया कि —हे मत्री अभी भी क्या कोई राजा है जो मुझे मस्तक न नमाता हो? मत्री ने कहा महाराज! चोल, चेर और पाड्य नरेश आप के प्रभुत्व को नही मानते। राजा ने तुरन्त उन चढाई कर दी।

उसके पश्चात् एक विषादपूर्ण घटना हुई। एक विद्याधर हाथी का रूप धारण कर मदनावली को हर ले गया। करकडु पत्नी-वियोग से बहुत ही विह्वल हो गये। एक पूर्व जन्म के संयोगी विद्याधर ने उनके सयोग का आश्वासन दिया। वह आगे बढे। सिंहल द्वीप पहुँच कर वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा का पाणिग्रहण किया। उसके साथ जब नौका में लौट रहे थे, तब एक मच्छ ने उनकी नौका पर आक्रमण किया। वह उसे मारने समुद्र में कूद पडे। मच्छ मारा गया पर वह नाव पर न आ सके। उन्हे एक विद्याधर-पुत्री हर ले गई। रतिवेगा ने किनारे पर आकर शोक से अधीर हो पूजा पाठ प्रारम्भ कर दिया जिससे पद्मावती ने प्रकट हो उसे आश्वासन दिया। उधर विद्याधरी ने अपने पिता की आज्ञा लेकर उन्हे अपना पति बना लिया। वहाँ के ऐश्वर्य का उपभोग

कर अपनी नववधू सहित वह फिर रतिवेगा से आ मिले।

अब उन्होने चोल, चेर और पाडु नरेशो की सम्मिलित सेना का सामना किया और उन्हे हरा कर प्रण पूरा किया। उनके मस्तको पर पैर रखते ही उन्हें उनके मुकुटो पर जिन प्रतिमा के दर्शन हुए। यह देख राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होने राज्य पुन: उन्हें लौटाना चाहा पर वे स्वाभिमानी द्रविड नरेश यह कह कर तपस्या करने चले गये कि अब हमारे पुत्र पौत्रादि ही आपकी सेवा करेंगे। वहाँ से वह फिर तेरापुर आये। यहाँ कुटिल विद्याधर ने मदनावली को लाकर सौंप दिया। वह फिर चम्पा पुरी आकर राज सुख का आनन्द लूटने लगे।

एक दिन वनमाली ने आकर समाचार दिया कि नगर के उपवन में शील-गुप्त नामक मुनिराज पधारे है। राजा पुर-परिजन सहित अत्यन्त भक्तिभाव से उनके चरणों में उपस्थित हुए और अपने जीवन सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे—मुनिराज ने पूर्व जन्म के उल्लेख के साथ उनका यथोचित समाधान किया। सब वृत्तान्त सुन कर करकंडु को वैराग्य हो गया और वह अपने पुत्र वसुपाल को राज्य देकर मुनि हो गये। उनकी माता पद्मावती भी अर्जिका हो गई और उनकी रानियो ने भी उन्ही का अनु-सरण किया। करकंडु ने घोर तपश्चर्या करके केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया।

चरित नायक की कथा के अतिरिक्त कथा के अन्दर नौ अवान्तर कथाओं का वर्णन है। प्रथम चार द्वितीय सधि में वर्णित है। इनमे क्रमश. मत्र शक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच संगति का बुरा परिणाम और सत्सगति का शुभ परिणाम दिखाया गया है। पाँचवी कथा, एक विद्याधर ने मदनावली के विरह से व्याकुल करकंडु को यह समझाने के लिए सुनाई, कि वियोग के बाद भी पति पत्नी का समिलन हो जाता है। छठी कथा पाँचवी कथा के अन्तर्गत एक अन्य कथा है। सातवी कथा (७ १–४) शुभ शकुन का फल बताने के लिए कही गई है। आठवी (८ १–१६) कथा पद्मावती ने समुद्र मे विद्याधरी द्वारा करकडु के हरण किये जाने पर शोकाकुला रतिवेगा को सुनाई। नौवी कथा आठवी कथा का प्रारम्भिक भाग है जो एक तोते की कथा के रूप मे स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। वह नौवी कथा मुनिराज ने करकडु की माता पद्मावती को यह बताने के लिए सुनाई कि भवान्तर में नारी अपने नारीत्व का त्याग भी कर सकती है।

इनमें से कुछ कथाएँ तत्कालीन समाज मे प्रचलित होगी या कवि की अपनी कल्पना होगी किन्तु अनेक कथाएँ सस्कृत साहित्य मे उपलब्ध होती है। आठवी कथा को पढ़ कर बाण कृत कादम्बरी के वैशम्पायन शुक का स्मरण हो आता है।

ये कथाएँ मूल कथा के विकास मे अधिक सहायक नही हो पाती। किसी भी घटना को समझाने के लिए एक स्वतन्त्र कथा का वर्णन, पंचतत्र के ढग पर, या अन्य आख्यायिका-कारो की शैली पर, इस ग्रथ में उपलब्ध होता है। इन कथाओ के आधार पर कवि ने कथा वस्तु को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। वस्तु मे रसोत्कर्ष, पात्रो की चरित्रगत विशेषता और काव्यो मे प्राप्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के अभाव को, कवि ने भिन्न-

भिन्न कथाओ के प्रयोग द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया है।

करकंड चरिउ एक धार्मिक काव्य है और अन्य ग्रंथो के समान अनेक अलौकिक और चमत्कार पूर्ण घटनाओ से युक्त है। काव्य प्राचुर्य की अपेक्षा घटना प्राचुर्य ग्रथ में दृष्टि-गत होता है।

काव्य का चरित नायक पौराणिक पात्र है। पौराणिक, काल्पनिक और अलौकिक घटनाओ के कारण कथानक में सबध निर्वाह भली भाँति नही हो पाया। प्रबध मे कवि का ध्यान यथार्थ की अपेक्षा आदर्श की ओर अधिक है।

पात्र—कथा में मुख्य पात्र करकंडु है वही कथा का नायक है। इसके अतिरिक्त करकंडु की माता पद्मावती, मुनि शीलगुप्त, मदनावली, रति वेगा आदि अन्य पात्र भी है। इन सब में करकंडु के चरित्र का विकास ही पूर्ण रूप से दिखाई देता है। मुनि शील-गुप्त और पद्मावती का चरित्र भी कुछ अंशो में कवि विकसित कर सका है।

करकडु धीरोदात्त गुण विशिष्ट बहुपत्नीक नायक है। काव्य में करकंडु की धीरता के दर्शन तो भलीभाँति होते है किन्तु उसकी उदात्तता संदिग्ध है। नायक के अन्दर वीरता, स्वाभिमान, उत्साह, मातृ भक्ति आदि गुणो का विकास भलीभाँति दिखाई देता है।

मुनि शीलगुप्त के चरित्र मे भी एक जैन महात्मा के अन्दर पाये जाने वाले सब गुणो के दर्शन हो जाते हैं। पद्मावती के अन्दर पुत्र प्रेम, वात्सल्य और नारीत्व से छुटकारा पाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

वर्ण्य विषय—काव्य मे मानव जगत् और प्राकृतिक जगत् दोनो का वर्णन पाया जाता है। मानव हृदय के भावो का चित्रण कवि-हृदय ही कर सकता है। अनुभूति और अभि-व्यक्ति में यद्यपि समान रूप से तीव्रता नही पाई जाती तथापि भावानुभूति की तीव्रता मे सदेह नही।

करकड के दन्तिपुर में प्रवेश करने पर पुर नारियो के हृदय की व्यग्रता का चित्रण कवि ने सुन्दरता से किया है।

तहिं पुरवरि खुहियउ रमणियाउ। झाणट्ठिय मुणिमण दमणियाउ।
कवि रहसइं तुरलिय चलिय णारि। विहडप्फड संठिय का वि वारि।
क वि धावइ णव णिव णेह लुद्ध। परिहाणु न गलियउ गणइ मुद्ध।
क वि कज्जलु बहलउ अहरे देइ। णयणल्लएं लक्खारसु करेइ।
णिग्गंथ वित्ति क वि अणु सरेइ। विवरीउ डिंभु क वि कडिहिं लेइ।
क वि णेउरु करयलि करइ बाल। सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णिय णंदणु मण्णिवि क वि वराय। मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।

घत्ता–क वि माण महल्ली मयणभर। करकंडहो समुहिय चलिय।
थिर थोर पओहरि मयणयण। उत्तत्त कणय छवि उज्जलिय॥[1]
३.२.१–१०

अर्थात् करकड के आगमन पर ध्यानावस्थित मुनियो के मन को विचलित करने वाली सुन्दरियाँ भी विक्षुब्ध हो उठी। कोई स्त्री आवेग से चचल हो चल पड़ी, कोई विह्वल हो द्वार पर खडी हो गई, कोई मुग्धा प्रेम लुब्ध हो दौड पडी, किसी ने गिरते हुए वस्त्र की भी परवाह न की, कोई अधरो पर काजल भरने लगी, आँखो में लाक्षारस लगाने लगी, कोई दिगम्बरो के समान आचरण करने लगी, किसी ने वच्चे को उलटा ही गोदी में ले लिया, किसी ने नूपुर को हाथ मे पहना, किसी ने सिर के स्थान पर कटि प्रदेश पर माला डाल दी, और कोई बेचारे बिल्ली के बच्चे को अपना पुत्र समझ सप्रेम छोड़ना नही चाहती।··· कोई स्थिर और स्थूल पयोधर वाली, तप्त कनक छवि के समान उज्ज्वल वर्ण वाली, मृगनयनी, मानिनी कामाकुल हो करकड के सामने चल पडी।

इसी प्रकार मुनिराज शीलगुप्त के आगमन पर पुर-नारियो के हृदय मे उत्साह और उनके दर्शन की उत्सुकता का वर्णन कवि ने निम्न शब्दो में किया है—

क वि माणिणि चल्लिय ललिय देह। मुणि चरण सरोयहं बद्धणेह।
क वि णेउर सद्दें रण झणंति। संचल्लिय मुणिगुण णं थुणंति।
क वि रमणु ण जंतउ परिगणेइ। मुणि दंसणु हियवएं सइं मुणेइ।
क वि अक्खय धूव भरेवि थालु। अइरहसइं चल्लिय लेवि बालु।
क वि परमलु बहलु वहंति जाइ। विज्जाहरि णं महियलि विहाइ।[2]
९. २. ३–७

अर्थात् कोई सुन्दरी मानिनी मुनि के चरण कमलो में अनुरक्त हो चल दी। कोई नूपुर शब्दो से झनझन करती हुई मानो मुनि गुण गान करती हुई चल पडी। कोई मुनिदर्शनो का हृदय में ध्यान धरती हुई जाते हुए पति का भी विचार नही करती। कोई थाल में अक्षत और धूप भर कर बच्चे को ले वेग से चल पड़ी। कोई सुगध युक्त जाती हुई ऐसी प्रतीन होती थी मानो विद्याधरी पृथ्वी पर शोभित हो रही हो।

ग्रथ में भौगोलिक प्रदेशो के वर्णन भी कवि ने अनेक स्थलो पर किए है। इन व ोP में मानव जीवन का सबध सर्वत्र दृष्टिगत होता है। अंग देश का वर्णन करता हुअणा कवि कहता है—

---

१. रहसइं—रभसेन, सहसा। विहडप्फउ—विह्वल। वारि द्वार पर। णिव—नृप। णयलुल्लएं—नयन उल्ल (स्वार्थ में)। णिग्गंथ वित्ति—निर्ग्रन्थ वृत्ति। विवरीउ —विपरीत। वराय—वराका। मेल्लइ—छोड़ती है। थोर—स्थूल।
२. थुणंति—स्तुति करती हुई। जंतउ—यान्त, जाते हुए को। मुणेइ—विचारती है। अइरहसइं—अतिरभसेन, अति वेग से।

छलड भमि रयणहं णिहाणु रयणायरो व्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु महि महिलइं णं किउ दिव्व वेसु।
जहिं सरवरि उग्गय पंकयाइं णं धरणि वयणि णयणुल्लयाइं।
जहिं हालिणि रूवणिवद्धेणेह संल्लहिं जक्ख ण दिव्व देह।
जहिं बालहिं रक्खिय सालिखेत्त मोहेविणु गीयएं हरिण खंत।
जहिं दक्खइं भुंजिवि दुहु मुयंति थल कमलहिं पंथिय सुहु सुयंति।
जहिं सारणि सलिल सरोय पंति अइरेहइ मेइणि णं हसंति।
१. ३. ४–१०

अर्थात् अगदेश ऐसा सुन्दर है मानो पृथ्वी रूपी नारी ने दिव्य वेश धारण कर लिया हो। जहाँ सरोवरो मे उगे हुए कमल पृथ्वी-मुख पर नयनो के समान प्रतीत हो रहे है। जहाँ कृषक बालाओं के सौन्दर्य से आकृष्ट हो दिव्य देहधारी यक्ष भी स्तंभित और गतिशून्य हो खडे रह जाते है। जहाँ चरते हुए हरिणों को गान से मुग्ध करती हुई बालाएँ शाली क्षेत्रो की रक्षा कर रही हैं। जहाँ द्राक्षाफलो का उपभोग करते हुए पथिक मार्ग के श्रमजन्य दुःख को खो देते है। जहाँ मार्ग में सरोवरो में खिले कमलो की पंक्ति शोभायमान हो रही है मानो हँसती हुई पृथ्वी शोभायमान हो रही हो।

इन भौगोलिक वर्णनो के अतिरिक्त राजा धाडिवाहन का वर्णन (१ ५), श्मशान का वर्णन (१ १७), राज प्रसाद का वर्णन (३ ३), सिंहल द्वीप वर्णन (७ ५) आदि प्रसंग भी काव्यमय है।

रस—काव्य मे वीर रस के अनेक प्रसग मिलते है। किसी स्त्री के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसे पाने की इच्छा से युद्ध नही होता अपितु युद्ध के परिणामस्वरूप पराजित राजाओ की राज पुत्रियाँ करकडु के आगे आत्मसमर्पण कर देती है। एव युद्ध की समाप्ति अनेक विवाहो मे परिणत होती है। विवाह युद्ध के परिणाम स्वरूप है। इस प्रकार कवि ने वीर रस को शृङ्गार की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। वीर रस का भी अन्ततोगत्वा शान्त रस मे पर्यवसान होता है।

काव्य में उत्साह भाव को उद्बुद्ध करने वाले अनेक सुन्दर वर्णन मिलते है।
चम्पाधिपति युद्ध के लिए प्रस्थान करता है—

ताव सो उट्ठिओ धाइया किंकरा। संगरे जे वि देवाण भीयंकरा।
वायु वेया हया सज्जिया कुंजरा। चक्क चिक्कार संचल्लिया रहवरा।
हक्क डक्कार हुंकार मेल्लंतया। धाविया के वि कुंताइं गेण्हंतया।
के वि सम्माणु सामिस्स मण्णंतया। पायपोमाण रायस्स जे भत्तया।
चावहत्था पसत्था रणे दुद्धरा। धाविया ते णरा चारुचित्ता वरा।
के वि कोवेण धावंति कप्पंतया। के वि उग्गिण्ण खग्गेहिं दिप्पंतया।
के वि रोमंच कंचेण संजुत्तया। के वि सण्णाह संवद्ध संगत्तया।
के वि संगाम भूमी रसे रत्तया। सग्गिणी छंद मग्गेण संपत्तया।

घत्ता—चंपाहिउ णिग्गउ पुरवरहो हरि करि रहवर परियरिउ।
उद्दंड चंड परिवरकरहिं भणु केहिं ण केहिं ण अणु सरिउ ॥[1]
३. १४. १–१०

कवि ने सैनिको, घोडो, हाथियों और रथो की गति के अनुकूल ही छद का प्रयोग किया है। छद की गति से ही सेना के प्रयाण का आभास मिल जाता है। वास्तविक युद्ध आरम्भ होने पर शस्त्र सपात की तीव्र गति और सहसा प्रभाव के साथ ही छंद भी बदल जाता है—

ता हयइं तूराइं भुवणयल पूराइं।
वज्जंति वज्जाइं सज्जंति सेण्णाइं।
आणाए घडियाइं परबलइं भिडियाइं।
कुताइं भज्जंति कुंजरइं गज्जंति।
रहसेण वग्गंति करि दसणे लग्गंति।
गत्ताइं तुट्टंति मुंडाइं फुट्टंति।
रुंडाइं धावंति अरि थाणु पावंति।
अंताइं गुप्पंति रुहिरेण थिप्पंति।
हड्डाइं मोडंति गीवाइ तोडंति।

घत्ता—के वि भग्गा कायर जे वि णर के वि भिडिया के वि पुणु।
खग्गु ग्गामिय के विभड मंडेविणु थक्का के वि रणु ॥[2]
३. १५. १–११

युद्ध गत भिन्न-भिन्न क्रियाओ और चेष्टाओ का सजीव चित्र उचित शब्द योजना द्वारा कवि ने पाठकों के सामने प्रस्तुत कर दिया है।

करकड क्रुद्ध हो अपने धनुष को हाथ में ले लेता है। उसका प्रभाव क्या होता है, कवि वर्णन करता है—

रोसं वहंतेण करे धणु हु किउ तेण।
तहो चप्पे गुणु दिण्णु तं पेखि जणु खिण्णु।
ता गयणे गुण सेव खोहं गया देव।
टंकार सद्देण घोरें रउद्देण।
धरणि यलु तडयडिउ तस कुम्मु कडयडिउ।

---

१. चक्क चिक्कार—चक्र का शब्द। कुताइं—भाले। चावहत्था—धनुष हाथ में लिये हुए। रोमंच कंचेण—रोमांचित शरीर से। सण्णह—कवच। सग्गिणी—स्वर्गिणी, सुग्विणी छंद।

२. रहसेण वग्गंति—शीघ्रता से चलते हैं। अंताइं गुप्पंति—आतें स्थान भ्रष्ट हो जाती है। भग्गा कायर जे वि णर—कुछ मनुष्य जो कायर थे भाग गये। थक्का—स्थित हुए।

भुवणयलु खलभलिउ गिरि पवरु टलटलिउ।
मयरहरु झलझलिउ धरणिंदु सलवलिउ।
खगणाहु परिसरिउ सुरराउ थर हरिउ।
घत्ता—सो सद्दु सुणेविणु धणु गुणहो रह भग्गा णट्ठा गय पवर।
मउ गलियउ चंपणराहिवहो भयभीय ण चल्लहिं कहिं खयर ॥[1]
३. १८. २–११

शृङ्गार में सयोग वियोग दोनो पक्षो का वर्णन है। नारी रूप वर्णन में कवि ने परपरा का आश्रय लिया है। भिन्न-भिन्न अगो की सुन्दरता के लिए परपरागत उपमान ही अधिकता से पाये जाते है। पद्मावती के रूप-वर्णन मे अधरो की रक्तिमा का कारण आगे उठी हुई नासिका की उन्नति पर अधरो का कोप-कल्पित किया गया है। इस एक उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त शेष वर्णन प्रायः प्राचीन रूढि पर ही आश्रित है। कवि का ध्यान शारीरिक सौदर्य तक ही जा पाया है। पद्मावती के हृदय के सौदर्य की ओर निर्देश नही मिलता।

वियोग पक्ष मे नायक-वियोग और नायिका-वियोग दोनों का वर्णन मिलता है। नायिका के वियोग वर्णन मे जो तीव्रता है वह नायक-वियोग मे नही दिखाई देती।

करकड के वियोग पर रतिवेगा के विलाप से समुद्र जल विक्षुब्ध हो उठा, नौकाएँ परस्पर टकराने लगी। हा हा का करुण शब्द उठ पडा, उसके शोक से मनुष्य व्याकुल हो गये—

घत्ता—हल्लोहलि हूयउ सयलु जलु अपरंपरि जाणइं संचलहिं।
हा हा रउ उट्ठिउ करुणसरु तहो सोएं णरवर सलवलहिं॥
७. १०. ९–१०

रतिवेगा विलाप करने लगी—

जा णरपंगणु वियसिय आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिं लोयहिं पसरिय सोयहिं अइउरिउ॥
रइवेय सुभामिणि णं फणि कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कंपिय चित्ति चमक्किय मुच्छगया।
किय चमर सुवाएं सलिल सहाएं गुणभरिया।
उट्ठाविय रमणिहिं मुणिमण दमणिहिं मणहरिया॥
सा करयल कमलहिं सुललिय सरलहिं उरु हणइ।
उव्वाहुलणयणी गग्गिर वयण पुणु भणइ॥
हा वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ।

---

१. गुण सेव—गुणसेवी। खोहं—क्षोभ को। कुम्मु—कूर्म जिस की पीठ पर पृथ्वी स्थित है। मयर हरु झलझलिउ—मकरों का घर, समुद्र विक्षुब्ध हो गया। सलवलिउ—कांप उठा। परिसरिउ—चकरा गया। मउ—मद।

मइं आसि वरायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥
हा दइव परम्मुह दुण्णय दुम्मुह तुहुं हुयउ।
हा सामि सलक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिं गयउ।
महो उवरि भडारा णरवर सारा करुण करि।
दुहु जलहिं पडंती पलयहो जंती णाह धरि ॥
हउं णारि वराइय आवइं आइय को सरउं।
परि छंडिय तुम्हहिं जीवमि एवहिं किं मरउं ॥
इय सोय विमुद्धइं लवियउ सुद्धइं ज हियइ।
हउं बोल्लिसु तइयहुं मिलिहइ जइयहुं मज्झु पहि।[1]

७.११.–१८

छद की योजना द्वारा कवि ने नारी-विलाप की ध्वनि को कर्ण गोचर कराया है।

वियोग-वर्णन में शरीर-ताप की मात्रा को सूचित करने वाले ऊहात्मक प्रसगो का अभाव है। अनुभाव के प्रयोग से वियोग दृश्य के प्रभाव को बढाने का प्रयत्न किया गया है। रति वेगा के शब्दो से पाटक उसके हृदय के साथ सहानुभूति का अनुभव करता है। सारा वर्णन सवेदनात्मक है। कवि ने वियोगजन्य दुःख के हृदय पड़ने वाले प्रभाव को अकित करने का प्रयास किया है। रति वेगा की आभ्यान्तर स्थिति का वाह्य जगत् मे प्रतिबिम्ब भी, ऊपर के घत्ता में, स्पष्ट दिखाई देता है।

मदनावली के विलुप्त हो जाने पर करकड विलाप करता है (क० च० ५.१५)। व्याकुल हो कभी भाग्य को कोसता है कभी पशुओ से पूछता है। किन्तु यह वर्णन उतना हृदयस्पर्शी नही जितना पूर्व का।

निर्वेद भाव—को उद्दीप्त करने वाले अनेक प्रसंग मिलते हैं। पुत्र-वियुक्ता विलाप करती हुई स्त्री को देख करकड के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह कहता है—

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ संसारहो उवरि विरत्तभाउ।
धी धी असुहावउ मच्चलोउ दुहु कारणु मणुवहं अंगभोउ।
रयणायर तुल्लउ जेत्थु दुक्खु महु बिंदु समाणउ भोयसुक्खु।
घत्ता–हा माणउ दुक्खइं दड्ढतणु विरसु रसंतउ जहिं मरइ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्तमणु सो छंडिवि को तहिं रइ करइ ॥

९. ४. ६–१०

मर्त्यलोक मे समुद्र के समान विशाल दु ख है और मधु बिंदु के समान स्वल्प भोग

---

१. जाणइं—यान, नौकायें। संचलहिं—टकराते है। सोएं—शोक से। मुच्छ—मूर्छा। उट्ठाविय—उठाई गई। उव्वाहुल—उत्सुक। वइवस—वैवस्वत, यम भाग्य। हियउ—हर लिया। करि—क। दुहु—दुःख। वराइय—वराका। आवइं—आपत्ति में। सरउं—स्मरण करूं। पइ—पति।

सुख है। कवि ने इन शब्दो द्वारा दुख की विशालता, गभीरता, क्षारता, अनुपादेयता और सुखकी मधुरता, स्वल्पता, दुर्लभता आदि अनेक भावो की व्यजना कर दी है।

ससार की नश्वरता और अस्थिरता का वर्णन करता हुआ कवि आगे कहता है—

कम्मेंण परिट्ठिउ जो उवरे जमरायएं सो णिउ णियपुरे।
जो बालउ बालहिं लालियहु सो विहिणा णियपुरि चालियउ।
णव जोव्वणि चडियउ जो पवरु जमु जाइ लएविणु सो जि णरु।
जो बूढउ वाहिसएहिं कलिउ जमदूर्याहि सो पुणु परिमलिउ।
बलभद्दएं सहुं हरि अतुलबलु सो विहिणा णीयउ करिवि छलु।
छक्खंड वसुधर जेहिं जिया चक्केसर ते कालेण णिया।
विज्जाहर किंणर जे खयरा बलवंता जममुहे पडिय सुरा।
फणि णाहइं सरिसउ अमरवइ जमु लितउ कवणु वि णउ मुअइ।
घत्ता—णउ सोत्तिउ बंभणु परिहरइ णउ छंडइ तवसिउ तवि ठियउ।
धणवंतु ण छुट्टइ ण वि णिहणु जह काणणे जलणु समुट्ठियउ॥

९. ५. १–१०.

काल के प्रभाव से कोई नही बचता। युवा, वृद्ध, बालक, चक्रवर्ती, विद्याधर, किन्नर, खेचर, सुर, अमरपति सब काल के वशवर्ती है। घत्ता-गत दृष्टान्त के द्वारा भाव सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है। जगल मे आग लग जाने पर श्रोत्रिय ब्राह्मण, तपस्वी, धनवान, निर्धन कोई नही बचता।

सासारिक विषयो की क्षणभंगुरता की ओर निर्देश करता हुआ कवि आगे कहता है—

दइवेण विणिम्मिउ देहु जं पि लायण्णउ मणुवहं थिरु ण तं पि।
णव जोव्वणु मणहरु जं चडेइ देवहिं वि ण जाणिउ कहिं पडेइ।
जे अवर सरीरहिं गुण वसंति ण वि जाणहुं केण पहेण जंति।
ते कायहो जइ गुण अचल होंति संसारहं विरइं ण मुणि करंति।
करिकण्ण जेम थिर कहिं ण थाइ पेक्खंतहं सिरि णिण्णासु जाइ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ तह णारि विरत्ती खणि चलेइ।
भू णयण वयण गइ कुडिल जाहं को सरल करेवइं सक्कु ताहं।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठ सा दुज्जण मेत्ति व चल णिकिट्ठ।
घत्ता—णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल वइराय भाव संपत्तउ।
सो सुरहर मंडणु होइ णरु सुललिय मणहर गत्तउ॥[1]

९. ६

इस संसार में प्रत्येक प्राणी अपने कर्मो के लिए उत्तरदायी है। वह अकेला ही संसार

१. लायण्णउ—लावण्य। थाइ—ठहरती। सिरि—श्री। सूयउ—पारा। मेल्लंती —छोड़ती हुई। मेत्ति—मैत्री। सुरहर—सुर गृह। मणहर गत्तउ—मनोहर गात्र वाला।

से विदा होता है और अकेला ही कर्मानुकूल सुख दु ख भोगता है। अन्तिम समय मे न बन्धु बान्धव और न धन उसके साथ जाता है।

जीवहो सुसहाउ ण अत्थि को वि णरयम्मि पडंतउ धरइ जो वि।
सुहि सज्जण णंदण इट्ठ भाय ण वि जीवहो जंतहो ए सहाय।
णिय जणणि जणणु रोवंतयाइं जीवें सहुं ताइं ण पउ गयाइं।
धणु ण चलइ गेहहो एक्कु पाउ एक्कलउ भुजंइ धम्मु पाउ।
तणु जलणि जलंतइं परिवडेइ एक्कलउ वइवसघरि ज चडेइ।
जहिं णयण णिमेसु ण सुहु हवेइ एक्कलउ तहिं दुहु अणु हवेइ।
अहि णउल सीह वणयरहं मज्झे उप्पज्जइ एक्कु वि जिउ असज्झे।
सुर खेयर किंणर सुहयगाम तहिं भुंजइ एक्कु वि जियइ जाम।
घत्ता—इह अणु वेक्खा जो अणुसरइ सीलें मंडिवि णिययतणु।
सासयपए सो सुहणिलए एक्कलउ सोहइ मुक्कतणु॥[१] ९९

प्रकृति वर्णन—कवि ने यद्यपि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन किया है किन्तु वर्णनो में कोई विशेष चमत्कार और नवीनता नही मिलती। कवि का हृदय प्रकृति मे भली भाँति रम नही पाया। प्रकृति उसके हृदय मे वह स्पन्दन और स्फूर्ति नही पैदा कर सकी जो इस के पूर्व पुष्पदन्त आदि कवियों में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए एक दो प्रसग नीचे दिये जाते है।

करकड के प्रयाण करते हुए मार्ग में उसे गगा नदी मिलती है। गगा का वर्णन कवि ने निम्न शब्दो में किया है—

गंगा पएसु संपत्तएण गंगाणइ दिट्ठी जंतएण।
सा सोहइ सियजल कुडिलवंति णं सेयभुवंगहो महिल जंति।
दूराउ वहंती अइ विहाइ हिमवंत गिरिंदहो कित्ति णाइ।
बिहिं कूलहिं लोयहिं ण्हंतएहिं आइच्चहो जलु परिदिंतएहिं।
दब्भं किय उड्ढहिं करयलेहिं णइ भणइ णाइं एयहिं छलेहिं।
हउं सुद्धिय णिय मग्गेण जामि मा रूसहि अम्हहो उवरि सामि।

३ १२ ५-१०.

अर्थात् शुभ्र जल युक्त कुटिल प्रवाह वाली गगा ऐसी शोभित हो रही थी मानो शेष नाग की स्त्री जा रही हो। दूर से बहती हुई गंगा अत्यधिक शोभित हो रही थी मानो गिरिराज हिमाचल की कीर्ति प्रवाहित हो रही हो। दोनो कूलो पर लोग स्नान कर रहे थे, आदित्य को जल दे रहे थे, मानो दर्भयुक्त दोनो हाथ ऊपर उठाये हुए गगा कह रही हो—हे स्वामिन् (करकड) मै छल रहित शुद्ध हूँ, अपने मार्ग पर जा रही हूँ मुझ

---

२. पउ—पद, पैर। पाउ—पाप। वइवस—वैवस्वत, यम। अणुहवेइ—अनुभव करता है। सुहय गाम—सुभग ग्राम। जाम—यावत्। सासय पए—शाश्वत पद में।

से क्रुद्ध न हो।

कवि के वर्णन मे स्वाभाविकता है। गगा जल की शुभ्रता और उसमे हिमाचल की कीर्ति कल्पना परपराभुक्त हैं। कवि प्रकृति को जड नही समझता।

सरोवर का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जल कुंभि कुंभ कुंभइं धरंतु तण्हाउर जीवहं सुहु करंतु।
उद्दंड णलिणि उण्णइ वहंतु उच्छलिय मीणहिं मणु कहंतु।
डिंडीर पिंड रयणहिं हसंतु अइ णिम्मल पउर गुणेहिं जंतु।
पच्छण्णउ वियसिय पंकएहिं णच्चंतउ विविह विहंगएहि।
गायंतउ भमरावलि रवेण धावंतउ पवणाहय जलेण।
णं सुयणु सुहावउ णयणइट्ठु जलभरिउ सरोवरु तेहिं दिट्ठु।
४. ७. ३–८.

यहा पर भी कवि सरोवर को जड और स्पन्दन रहित नही देखता। शुभ्र फेन-पिंड से वह हँसता हुआ, विविध पक्षियो से नाचता हुआ, भ्रमरावलि गुजन से गाता हुआ और पवन से विक्षुब्ध जल के कारण दौड़ता हुआ सा प्रतीत होता है। वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि प्रकृति मे जीवन, जाग्रति और स्पन्दन मानता है।

भाषा—कवि ने भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भावानुरूप शब्दो का प्रयोग किया है। पद-योजना मे छन्द-प्रवाह भी सहायता प्रदान करता है। रति वेगा के विलाप (७. ११) में प्रयुक्त पद योजना और छन्द उसके हृदय की करुण अवस्था की अभिव्यजना करते हैं। शब्दो से रति वेगा की रोदन-ध्वनि रह रह कर कानो में सुनाई देने लगती है। इसी प्रकार सरोवर वर्णन (४. ७) मे पद योजना से सरोवर के जल को आलोड़ित करते हुए पशुओ और पख फडफडाते हुए पक्षियो का शब्द सा सुनाई देने लगता है। ऊपर वीर रस के वर्णन मे भी इसी प्रकार भावाभिव्यजक पद-योजना की ओर निर्देश किया जा चुका है।

भाषा को भावानुरूप बनाने के लिए कवि कभी-कभी ध्वन्यात्मक शब्दो का भी प्रयोग करता है।

धरणियलु तडयडिउ तस कुम्मु कडयडिउ।
भुवणयलु खलभलिउ गिरि पवरु टल टलिउ।
मयरहरु झलझलिउ इत्यादि
३.८

ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग से पृथ्वी, समुद्र और आकाश के विक्षोभ की सूचना मिल जाती है।

शब्दाडम्बर रहित, सरल और संयमित भाषा में जहाँ कवि ने गम्भीर भाव अभिव्यक्त किए हैं वहाँ उसकी शैली अधिक प्रभावोत्पादक हो गई। ससार की क्षणभंगुरता और असारता का प्रतिपादन करने वाले स्थलो में ऐसी भाषा के दर्शन

होते हैं।

शैली के उत्कर्ष के लिए प्रतिपाद्य विषय को आकर्षक बनाना आवश्यक होता है। एतदर्थ लेखक बहुधा छोटे-छोटे हृदयस्पर्शी वाक्यो और सुभाषितों का प्रयोग करता है। इस काव्य में भी अनेक स्थलो पर इस प्रकार के वाक्य मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

गुरुआण संगु जो जण वहेइ हिय इच्छिय संपइ सो लहेइ।
२. १८. ७

अर्थात् जो गुरुजनो के साथ चलता है वह अभीष्ट सपत्ति प्राप्त करता है।

विणु केरइं लब्भइ णाहि मित्त एह मइणि भुजहुं हत्थ मेत्त।
३. ११. १

लोहेण विडंविउ सयलु जणु भणु किं किर चोज्जइं णउ करइ।
२. ९. १०

अर्थात् लोभ से पराभूत सकल जग क्या आश्चर्य जनक कार्य नही करता?

कवि में, थोड़े से शब्दो द्वारा सजीव सुन्दर चित्र खीचने की क्षमता भी पाई जाती है—

घत्ता—मुह कमलु करंती कर कमले अंगुलिएं लिहंती धरणियलु।
कोमल वयण पउत्तियहि सा परिपुच्छिय मइं सयलु॥
६. ९. ८–१०

काव्य में अनेक शब्द-रूप इस प्रकार के प्रयुक्त हुए है जो हिन्दी के शब्दों से पर्याप्त समता रखते हैं।[१]

---

१. उदाहरण के लिए कुछ शब्द-रूप नीचे दिये जाते हैं:—

हुयउ	(१.४.१०)	—हुआ
डाल	(१.६.५)	—शाखा, डाल
चडेवि	(१.१०.९.)	—चढ़ कर
रुक्खहो तले	(१.१४.३)	—पेड के नीचे
अग्गइ	(१.१४.४)	—आगे
पुक्कार	(२.१.९)	—पुकार
लेवि जाहि	(२.१.१०)	—लेकर जाना
वत्त	(२.१.१३)	—वार्त्ता, बात
सयाणु	(२.५.८)	—सयाना, सज्ञान
गुड सक्कर लड्डु	(२.७.१)	—गुड़ शक्कर लड्डू
चुक्कइ	(२.८.५)	—चूकना
कहाणी	(२.१६.१)	—कहानी

अलंकार—कवि ने भाषा को यद्यपि अलकारो द्वारा ही अलकृत करने का प्रयत्न नही किया फिर भी यत्र तत्र अलकारो का प्रयोग हुआ ही है। शब्दालकार और अर्थालकार दोनो प्रकार के अलकार प्रयुक्त हुए है। अर्थालकारो मे सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। इन अलंकारो में भी सादृश्य योजना, वस्तु के स्वरूप का बोध कराने के लिए ही की गई है भाव तीव्रता के लिए नही। अप्रस्तुत योजना के लिए परपरागत उपमानो के अतिरिक्त ऐसे भी उपमानो का प्रयोग कवि ने किया है जिनसे उसकी निरीक्षण शक्ति प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—

करिकण्ण जेम थिर कहिं ण थाइ। पेक्खंतहं सिरि णिण्णासु जाइ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ। तह णारि विरत्ती खणि चलेइ॥ ९.६

श्री की चचलता की उपमा हाथी के कानो की चचलता से और नारी के अनुराग की क्षणिकता की उपमा करतलगत पारे की बूदो से देकर कवि ने अपनी निरीक्षण शक्ति और अनुभूति का सच्चा परिचय दिया है।

शब्दालकारो मे श्लेष और अनुप्रास के अतिरिक्त यमक का भी कवि ने प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

श्लेष

के वि संगाम भूमीरसे रत्तया। सग्गिणी छंद मग्गेण संपत्तया।
३. १४. ८

कोई वीर संग्राम भूमि में अनुरक्त स्वर्गिणी-स्वर्गवासिनी-अप्सराओ के अभीष्ट मार्ग को प्राप्त हुए। श्लेष से कवि ने स्रग्विणी छंद का भी नाम निर्देश किया है जिसमें उसने रचना की है।

ता एत्तहिं रवि अत्थइरि गउ। बहु पहरहिं णं सूरु वि सुयउ।
१०. ९ ४

इतने मे सूर्य अस्त हो गया। बहुत पहरो के बाद थका सूर्य मानो सो गया हो ग्र

ढालेसहि	(२.१९.१०)	—ढालेगा
भग्गा	(३.१५.१०)	—भागे
भिड़िया	(३.१५.१०)	—भिड़े
हेट्ठामुहुं	(५.१६.८)	—अधोमुख (पंजाबी)
अहीर	(८.६.५)	—आभीर, अहीर
सेंबल	(८.७.७)	—सिंवल (वृक्ष)
घोडें	(८.१६.३)	—घोड़ा
फुल्लें	(१०.३.१०)	—फूल
थालु	(९.२.६)	—थाल
एयारसि एयारहमि	(१०.१६.६)	—ग्यारह
कप्पडु	(१०.२०.६)	—कपड़ा

बहुत प्रहारो से मानो शूर सो गया हो।

यमक

घणु ण चलइ गेहहो एक्कु पाउ। एक्कलउ भंजइ धम्मु पाउ।
९. ९. ४

प्रथम 'पाउ' पाद के अर्थ में और दूसरा 'पाउ' पाप के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अर्थालकारो में उपमा, उत्प्रेक्षादि अलकारो का अधिक प्रयोग हुआ है। उपमा के अनेक उदाहरण पूर्व वर्णनो में आ चुके है। अन्य अलकारो के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

उत्प्रेक्षा

जहिं सारणि सलिल सरोय पंति। अइरेहइ मेइणि णं हसंति।
१.३. १०

जहाँ (अग देश में) मार्ग मार्ग में सरोवरो मे कमल खिले हुए है मानो हँसती हुई मेदिनी अतिशोभित हो रही हो।

सा सोहइ सियजल कुडिलवंति। णंसेय भुवंगहो महिल जंति।
३. १२. ६

गंगा नदी श्वेत जल से भरी चक्कर खाती हुई ऐसी शोभित थी मानो शेषनाग की स्त्री जा रही हो।

एत्थत्थि अवंती णाम देसु णं तुट्टिवि पडियउ स सग्गलेसु।
८ १. ६.

परिसंख्या

घणु देवएं पसरइ जासु करु णउ पाणि हेव्वइं धरइ सरु। १. ५. ५

जिसका हाथ घणु-धन-देने के लिए फैलता है। जिसका घणु-धनुष-प्राणिवध के लिए बाण नही धारण करता।

अलकारो का प्रयोग अधिक नही मिलता। कवि ने अपने अलकार-ज्ञान-प्रदर्शन के लिए व्यर्थ अलकारो का प्रयोग कर वर्णनीय विषय को अलकारो के भार से लादने का प्रयत्न नही किया।

छन्द—ग्रन्थ मे कवि ने पज्झटिका छन्द का ही अधिकता से प्रयोग किया है। बीच बीच में कुछ पक्तियाँ या कोई कडवक, अलिल्लह या पादाकुलक छद मे भी प्रयुक्त हुआ है। भिन्न-भिन्न सधियो मे छन्द परिवर्त्तन के लिए कवि ने निम्नलिखित छन्दो का भी प्रयोग किया है—

समानिका, तूण क, स्रग्विणी, दीपक, सोमराजी, चित्रपदा, प्रमाणिका।

कवि ने अधिकतर मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया है। एकरूपता को दूर करने के लिए बीच बीच मे उपरिलिखित वर्णवृत्तो का प्रयोग किया है।

सामाजिक अवस्था—काव्य के अध्ययन से तत्कालीन समाज का जो रूप दिखाई देता है वह सक्षेप में इस प्रकार का है।

राजाओ का जीवन विलासमय था। ऐश्वर्याभिभूत राजाओं का अधिकांश समय अपनी अनेक रानियो-उपपत्नियो के साथ अन्त पुर में या क्रीडोद्यान मे बीतता था। राजा बहुपत्नीक होते थे। करकडु की मदनावलि, रति वेगा, कुसुमावलि, रत्नावलि, अनगलेखा, चन्द्र लेखा नामक रानियो का उल्लेख कवि ने किया है।

राजकुमारो को राजनीति, व्याकरण, तर्क शास्त्र, नाटक, कविरचित काव्य, वात्स्यायन कृत काम शास्त्र, गणित आदि शास्त्रो के अतिरिक्त नव रसो, मन्त्र, तंत्र, वशीकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी (२ ९)।

स्त्री के विषय में समाज की धारणा अच्छी न थी, उसे भोग विलास का साधन समझा जाता था। मदनावलि के वियोग में व्याकुल करकडु को एक विद्याधर कहता है--

किं महिलहे कारणे खवहिं देह जणे महिल होइ दुहणिवह गेहु।
जा कीरइ णारी णरयवासु कह किज्जइ णारीसहुं णिवासु।
परिफुरिए चित्ते जा जउ करेइ दुह कारणु सा को अणु सरेइ।
भव वल्ली वड्ढइ जाहे सगि रामा लायइदुह मणुय अंगि।
बलवंता कीरइ बलविहीण सा अबला सेवहिं जे णिहीण।

५ १६. २-६

९. ६. ६ में कवि ने नारी को चंचल और निकृष्ट कहा है।

आजकल की तरह स्त्रियाँ मुनि दर्शन के लिए अधिक उत्सुक होती थी। मुनिराज शील गुप्त के आने पर स्त्रियो के स्वाभाविक उत्साह का वर्णन कवि ने ९ २ में किया है।

भोग विलास मय जीवन से नारी भी ऊब गई थी। वह भी अपने नारीत्व से छुटकारा पाने के लिए व्यग्र हो उठी थी इसका आभास पद्मावती के शब्दो में मिलता है। वह मुनि शीलगुप्त से धार्मिक उपदेश सुनती है जिससे 'थीवेउ णिहम्मइ जेण एँ' (१० १५ ५)। मुनि उसे सुमित्रा की कथा सुनाकर आश्वासन देते हैं कि वह भी भवान्तर में नारीत्व से छुटकारा पा गई (१०. १८)। १० २२. ९-१० में इसी भाव का संकेत है कि पद्मावती नारीत्व त्याग कर सन्यासी हो स्वर्ग सिधारी।

ग्रंथ में शुभ शकुन के लिए एक कथा का उल्लेख है। लोग स्वप्न ज्ञान और शकुन ज्ञान में विश्वास करते थे। पद्मावती ने स्वप्न में हाथी के दर्शन किये जिसका फल उसके पति ने पुत्रोत्पत्ति बताया (१.८)।

मन्त्रो और तन्त्रो में भी लोगो की आस्था थी। मन्त्र शक्ति के प्रभाव को सूचित करने के लिए अवान्तर कथा कवि ने २. १०. १२ में दी है। मन्त्र के प्रभव से राक्षस को वश मे करने का उल्लेख २. १२ ३-४ मे मिलता है।

शाप में भी लोग विश्वास किया करते थे। एक तपस्विनी के शाप से मनुष्य तोता हो गया--ऐसा उल्लेख ६ १२ में मिलता है। अलौकिक और दिव्य घटनाओं पर भी लोग विश्वास किया करते थे। इस प्रकार की अनेक घटनाओ का उल्लेख भी

में मिलता है।

समाज में सदाचार—सदाचार की दृष्टि से समाज उन्नत न था। सत्सगति सम्बन्धी एक कथा का वर्णन् करते हुए कवि बतलाता है कि एक सज्जन व्यापारी जिसे राजा ने उसकी साधुता एव उदारता से मन्त्री बना दिया था एक दिन राजकुमार के सब आभूषण हर कर एक वेश्या के घर मे गया (२ १७ २)। करकड के पूर्व जन्म का परिचय देता हुआ कवि बताता है पूर्व जन्म में उसकी माता नागदत्ता का चरित्र अच्छा न था। वह अपने दत्तक पुत्र के साथ प्रेम मे फस गई थी (१० ६ ८–१०)। सभव है कि इन घटनाओ के उल्लेख से कवि समाज मे पतित और नीच व्यक्ति के हृदय में भी उद्धार की भावना का संचार करना चाहता हो।

पउम सिरी चरिउ[1] पद्म श्री चरित

पउम सिरी चरिउ, दिव्य दृष्टि धाहिल का लिखा हुआ चार सधियों का काव्य है। दिव्य दृष्टि, धाहिल का उपनाम था। काव्य का आरम्भ 'धाहिलु दिव्व दिट्ठि कवि जपइ' से होता है। प्रत्येक सन्धि के अन्त मे भी कवि ने इस नाम का प्रयोग किया है। कवि ने अपनी कृति के अन्त (४ १६) मे अपने विषय मे जो सूचना दी है उससे विदित होता है कि कवि शिशुपालवध काव्यकर्त्ता माघ के वश मे उत्पन्न हुआ था।

ससि पाल-कव्व-कइ आसु माहु ?
जसु विमल कित्ति जगु भमई साहु।
तसु निम्मलि वसि समुब्भवेण
पउमसिरि चरिउ किउ धाहिलेण।

धत्ता—कवि-पासहँ नंदणु दोस विमद्दणु सुराईहिं महासइहि।
जिण-चलणह भत्तउ तायह पोत्तउ दिव्व दिट्ठि निम्मल मइहि॥
प. सि. च. ४. १६

पउम सिरि चरिउ की हस्त लिखित प्रति वि सं ११९१ में लिखी हुई प्राप्त हुई है। (प्रास्ताविक वक्तव्य पृ० २)। कवि माघ का समय विक्रम की आठवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। अत धाहिल विक्रम की आठवी शताब्दी के बाद और बारहवीं शताब्दी के पूर्व ही किसी समय हुए होगे।

पउम सिरि चरिउ (पद्म श्री चरित) में कवि ने चार सधियों में पद्म श्री के पूर्व जन्म की कथा का वर्णन किया है। यह काव्य धार्मिक आवरण से आवृत एक सुन्दर प्रेम कथा है। काव्य ऐहलौकिक पात्रो को लेकर उनके जीवन की घटनाओ का

---

१. श्री मधु सूदन मोदी तथा श्री हरिवल्लभ भायाणी द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन, बंबई, वि० सं० २००५।

वर्णन करता है।

कथानक—सक्षेप मे कथा इस प्रकार है—कवि आठवे तीर्थंकर चद्रप्रभ और सरस्वती की वन्दना से काव्य का आरम्भ करता है। भरत क्षेत्र में मध्यदेश नामक सुप्रसिद्ध देश था। उसमें वसन्तपुर नामक, देवनगर के समान एक सुन्दर नगर था। कवि ने मध्यदेश और वसन्तपुर का काव्यमय भाषा मे सुन्दर वर्णन किया है। वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम लीलावती था। उसी नगर मे कुबेर के समान धनी धनसेन नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसके धनदत्त और धनावह नामक दो पुत्र और धनश्री नामक अद्वितीय सुन्दरी पुत्री थी। युवावस्था में ही धनश्री विधवा हो गई। भाइयो के आश्वासन से वह उन्ही के घर में रहकर घर की देख भाल करती हुई पूजा, दानादि से समय बिताने लगी।

एक दिन धर्मघोष नामक एक मुनि उस नगर में आया। उसके धर्मोपदेश से धनश्री देव पूजा, दानादि पुण्य कर्म में निरत हो गई। उसकी दानशीलता पर उसकी भाभियाँ उससे जलने लगी और उस पर व्यग्य करने लगी। धनश्री ने बडे भाई और उसकी स्त्री यशोमती में भेद-भाव कर दिया। यशोमती व्याकुल और खिन्न हो गई। कालान्तर मे उनकी भेदभावना धनश्री ने मिटा दी। इसी प्रकार छोटे भाई और उसकी स्त्री यशोदा में धनश्री ने पहले भेदभाव पैदा कर दिया, फिर उसे दूर किया। धनश्री धार्मिक जीवन बिताती हुई तपश्चर्या और व्रतो का पालन करती हुई देवलोक को प्राप्त हुई (सधि १)। जन्मान्तर में धनदत्त औक धनावह, अयोध्या के राजा अशोकदत्त और उसकी रानी चद्रलेखा के यहाँ क्रमशः समुद्रदत्त और वृषभदत्त नाम से उत्पन्न हुए। धनश्री हस्तिनापुर के राजा इभ्यपति शख और उसकी रानी शीलवती के घर में पद्मश्री नाम से उत्पन्न हुई। पद्मश्री ने धीरे-धीरे युवावस्था मे पदार्पण किया और वह अपनी सौन्दर्य छटा का चारो ओर प्रसार करने लगी।

एक दिन वसन्तमास मे जब चारो ओर कामदेव का साम्राज्य था पद्मश्री, अपूर्व श्री नामक उद्यान मे गई। दैवयोग से वहाँ युवक समुद्रदत्त भी पहुँच गया। एक दूसरे के दर्शन कर दोनों परस्पर अनुरक्त हो गये। कवि ने पद्मश्री के पूर्वानुराग और उनकी प्रेम विह्वलता का सुन्दर वर्णन किया है। कालान्तर में दोनो का विवाह हो गया। वर, वधू सहित अपने घर लौटा (२)। दोनो आनन्द से जीवन बिताने लगे। आठ वर्षों के बाद साकेत से वराह नामक एक लेख-वाहक ने आकर समुद्रदत्त को उसकी माता की व्याकुलता का समाचार दिया। वराहदत्त घर लौट पडा। कवि ने इस प्रसंग में दोनो के हृदय की वियोग-वेदना का सुन्दर वर्णन किया है। गुरुजनो के आदेश से समुद्रदत्त अपनी स्त्री को ले जाने के लिए हस्तिनापुर गया। वही पद्मश्री के पूर्व-जन्म के कर्म विपाक के कारण केलिप्रिय नामक पिशाच ने दोनो के प्रेम में भेदभाव पैदा कर दिया। समुद्रदत्त के मन में यह बात बैठ गई कि पद्मश्री किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है। समुद्रदत्त पद्मश्री से विरक्त हो उसे कोसने, डाटने फटकारने और धिक्कारने लगा। पति के इस दुर्व्यवहार से आश्चर्य चकित हुई पद्मश्री पति के आगे अनुनय विनय करने

लगी। पति-प्रवास में अपनी म्लान और खिन्न अवस्था का वर्णन करती हुई करुण-क्रन्दन करने लगी। (३)।

रोती-गेती और करुण-क्रन्दन करती पद्मश्री को छोड उद्विग्नमन समुद्रदत्त अपने नगर में लौट पड़ा। कोशल पुरी मे नद नामक एक वणिक् के घर में उसकी स्त्री पुष्पवती से कान्तिमती और कीर्त्तिमती नामक दो लडकिया हुई थी जो पूर्व जन्म में यशोमती और यशोदा थी। सुन्दरी युवती कानिमती ने समुद्रदत्त और कीर्तिमत्ती ने उसके भाई उदधिदत्त के साथ विवाह किया। ये उनकी पूर्व जन्म की पत्निया थी। यह समाचार पाकर पद्मश्री का पिता शख कन्या जन्म से खिन्न हुआ। पद्मश्री भी व्याकुल हुई। इसी बीच विमलशीला नामक एक गणिनी आई। उसके आश्वासन, उद्बोधन और धर्मोपदेश से पद्मश्री व्रत, स्वाध्याय, तपश्चर्या मे रत हो गई। इसी बीच वे दोनो साकेत नगरी में कातिमती और कीनिमती के घर मे पहुँचे। पूर्वजन्म-विपाक के कारण पद्मश्री पर चोरी का कलंक लगा। व्रत, तपश्चर्या आदि में दृढता से निरत पद्मश्री ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञानाग्नि से कर्मों का दाह कर धर्मोपदेश करती हुई पद्मश्री ने अन्त में मोक्षप्राप्त किया।

धार्मिक आवरण के कारण इस प्रेम-कथा में कही-कही अलौकिक घटनाओं का समावेश हो गया है।[1] इस आवरण को हटा देने से प्रेम कथा स्वाभाविक रूप में हमारे सामने आ जाती है। धनश्री और समुद्रदत्त का एक दूसरे को देखकर परस्पर अनुरक्त होना, एक दूसरे को न पाकर व्याकुल होना, इस पूर्वानुराग का विवाह में परिणत होना, विवाहानन्तर वियोग के कारण विह्वलता आदि सब स्वाभाविक वर्णन कवि ने उपस्थित किये है।

प्रबन्ध कल्पना—पद्मश्री न तो ऐतिहासिक पात्र है और न पौराणिक। कवि ने उसके पूर्व जन्म की कथा से, मानव द्वारा भिन्न-भिन्न जन्मो में किये कर्मों के फलभोग को लक्ष्य कर, उसके उच्च चरित का वर्णन किया है। एव जीवन में नैतिक और पुण्यकार्य करते हुए मानव द्वारा मोक्ष प्राप्ति की ओर सकेत किया है।

सबन्ध निर्वाह—कथा प्रवाह में एक प्रसंग दूसरे से सबद्ध है। पद्मश्री पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल भोगती हुई अन्त में निर्वाण पद प्राप्त करती है, सारे प्रसग इसी कार्य की ओर अग्रसर होते हुए दिखाई देते है। कथा की गति में कही अनावश्यक विराम नही। कवि ने रसात्मकता के लिए घटनाचक्र में मानव की रागात्मिका प्रकृति को उद्बुद्ध करने वाले एव हृदय को भावमग्न करने वाले स्थलो को पहिचान कर उनका सुन्दर वर्णन किया है। कवि की इस सहृदयता के कारण उसका वस्तुवर्णन और पात्रो द्वारा भावाभिव्यजन दोनों सरल और सुन्दर हो सके है।

वस्तु वर्णन—कवि ने अलकृत भाषा में अनेक भौगोलिक प्रदेशों का वर्णन किया

१. उदाहरण के लिए चित्र मयूर कांतिमती के हार को निगल जाता है और फिर माया द्वारा आकर उसे वापस कर देता है।

है। मध्य देश का अलंकृत भाषा मे वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

इह भरहि अत्थि उज्जल सुवेसु सुपसिद्धउ नामिं मज्झदेसु।
तहिं तिन्नि वि हरि-कमलाउलाइँ कंतार-सरोवर राउलाइँ॥
धम्मासत्त नरेसर मुणिवर स हु सुयसालि लोग गुणि दियवर।
गामागर पुर नियर मणोहर विउल नीर गंभीर सरोवर॥
उदलिय कमल संड उब्भासिय केयइ कुसुम गंध परिवासिय॥
बहुविह जण धण धन्न रवाउलु गो महिस उल रवाउल गोउलु॥
भूसिउ धवल तुंग वरभवणेहि संकुल गाम सीम उच्छरणेहि॥
कोमल केलिभवण कय सोहिहि फलभर नामिय तुंग दुमोहिहि॥
फोप्फल नागवेल्लि दल थामेहि मंडिउ गामुज्जाणारामेहि॥
कयवर चक्कमालि कुसुमालिहि वज्जिउ दूराउल दुक्कालिहि॥
पंथियजण विइन्न वरभोयणु विविहूसव आणंदिय जण मणु॥
घत्ता—कइवर नड नट्टिहि चारण वंदिहि नच्चिउ सुपुरिसहँ चरिउ।
वर गेय रवाउलु रहस सुराउलु महिहिं सग्गु नं अवयरिउ॥
१ २

वर्णन मे कवि की दृष्टि मध्यदेश के कातार, सरोवर और राजकुलो के साथ साथ वहाँ के ग्रामो पर भी गई। गो महिष कुल के रम्य शब्द, ग्राम सीमावर्त्ती इक्षु बन, ग्रामोद्यान आदि भी उसकी दृष्टि से ओझल नही हुए। वर्णन करते हुए मध्यदेश मे सुपारी और नागवेल (पान) का भी उल्लेख किया है। वर्णन की समाप्ति में कवि कहता है कि मध्यदेश ऐसा प्रतीत होता था 'महिहिं सग्गु न अवयरिउ' मानो पृथ्वी पर स्वर्ग अवतीर्ण हुआ हो। यह कल्पना अपभ्रंश कवियो को अत्यन्त प्रिय थी। स्वयभू (रि० च० २८. ४), पुष्पदन्त (म० पु० १. १५ और ९२ २), धनपाल (भ० क० १ ५), ने भी अपने काव्यो मे इसका प्रयोग किया है। इसी प्रकार कवि का वसन्तपुर वर्णन (प० सि० च० १. ३) भी रमणीय है। कवि के वस्तु-वर्णन में संश्लिष्ट-वर्णन शैली मिलती है। इनके अतिरिक्त विवाह की धूमधाम, (२. १८–२१) का, वर के हाथी का (२ १९) वर्णन भी सरस और सुन्दर है।

काव्य में रतिभाव ही प्रधानता से वर्णित है। समाप्ति मे निर्वेदभाव भी अंकित किया गया है। कथा प्रवाह मे ऐसे स्थल अनेक है जहाँ कवि की दृष्टि गूढ मानसिक विकारो तक पहुँचती हुई दिखाई देती है। हृदय को भावमग्न करने वाले प्रसगों के प्रति कवि उदासीन नही दिखाई देता अपितु ऐसे प्रसगो पर पात्रो द्वारा सुन्दरता से भाव व्यंजना कराता हुआ दिखाई देता है।

धनदत्त और यशोमती के प्रेमभाव उत्पन्न हो जाने पर धनदत्त मे अमर्ष भाव की व्यंजना (प० सि० च० १ १२) और यशोमती में वेदना की व्यजना कवि ने सुन्दरता से की है। कवि कहता है—

जसवइ पिय-वयणिं निट्ठुरेण विज्झाइय वण-लय जिह देवेण।
तुट्ठट्ठ गरुय-दुक्खह भरेण सिरि ताडिय नावइ मोग्गरेण।
सोहग्ग-मडप्फरु भग्गु केम धीरेण रणंगणि भीरु जेम।
उम्मूलिउ कह सुरयाहिलासु नइ-पूरिं जिह दोत्तडि-पलासु।
संताउ वियंभइ हियए केम नव-जोवणि वम्मह-जलणु जेम।
रोवंतिए निवडहिं उज्जलाइं अंसुयइ नाइ मोत्ताहलाइँ।
एउ अज्जु "काइं विणु कारणेण, महु रुट्ठु नाहु" चिंतइ मणेण।
....
भय-वन्नु हरिणि जिह दिट्ठ-सीह। जरिय व्व मुयइ नीसास दीह।

१. १३

अर्थात् यशोमती निष्ठुर, प्रिय के वचनो से वनाग्नि से दग्ध वनलता के समान हो गई। गुरु दुःखभार से ऐसी शिथिल हो गई मानो मुद्गर से उसके सिर पर प्रहार किया हो। धीर पुरुष द्वारा रणक्षेत्र से भगाये कायर के समान उसका सौभाग्य-गर्व लुप्त हो गया। नदी-वेग से कूलवर्ती पलाश वृक्ष के समान उसका सुरताभिलाष उन्मूलित हो गया। नव यौवन मे कामाग्नि प्रसार के समान उसके हृदय मे सताप प्रसृत हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि रोती हुई यशोमती के मोती न थे अपितु उज्ज्वल आँसू थे।...... सिंह को देख भयाकुल हरिणी के समान सतप्त यशोमती दीर्घ निःश्वास छोडने लगी।

कवि के वर्णन में वेदना की मात्रा का अतिरजित वर्णन नही अपितु उसके वेदनाभिभूत विक्षुब्ध हृदय का अंकन हैं। जहाँ कवि ने उसकी शारीरिक अवस्था का चित्र खीचा है वहाँ भी वह हृदय को ही प्रभावित करना चाहता है—

आरत्त-नयण, विच्छाय-वयण उम्मुक्क-हास, पसरंत-सास।
दरमलिय-कंति, कलुणं रुयंति उव्विग्ग दीण, निसि सयल खीण।
अहरण-विवज्जिय किय-हार उच्चिणिय-कुसुम नं कुंद-साह।

१. १४. ७४–७६

रक्त नयन वाली, निस्तेज मुख वाली, हास्य रहित, निःश्वास छोडती हुई, विलुप्त काति वाली, करुण क्रन्दन करती हुई उद्विग्न एव दीन यशोमती की जैसे तैसे सारी रात्री व्यतीत हुई। आभरण रहित यशोमती ऐसी कुद शाखा के समान दिखाई दे रही थी जिस पर से सब फूल बीन लिये गये हो।

इसी प्रकार समुद्रदत्त से तिरस्कृत पद्मश्री के हृदय की व्याकुलता (३.९–१०), पद्मश्री के परित्याग पर उसके पिता शङ्ख का कुल मे कन्या-जन्म से खिन्न होना (४. २. १८–२४) आदि प्रसग कवि के भावक हृदय की सूचना देते है।

स्वभाव चित्रण—कवि धार्मिक भावना से प्रेरित हो अपने पात्रो को निश्चित दिशा और निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने में प्रयत्नशील था। अतएव सीमित क्षेत्र के अन्दर पात्रो के चरित्र को विकसित होने का पूर्ण अवसर नही मिल सका। फिर भी उस सीमित क्षेत्र में पात्रो के चरित्र मे स्वाभाविकता दिखाई देती है। यशोमती और यशोदा

का धनश्री के दान से खीझना और उससे ईर्ष्या करना, पति द्वारा अपमानित होने पर विक्षुब्ध होना, समुद्रदत्त और पदमश्रीका पूर्वानुराग और उसका विकास, समुद्रदत्त से परित्यक्त पद्मश्री का दुःखी होना, उसे छोड समुद्रदत्त का कांतिमती नामक युवती से विवाह करना सब स्वाभाविक प्रसग है।

रस—काव्य में रति, शोक और निर्वेद भावों के ही अधिक प्रसग हैं। शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दोनो पक्ष अकित किये गये है। प्रेम, स्त्री-पुरुष के पारस्परिक दर्शन के कारण स्वाभाविक रूप मे उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ दिखाई देता है।

सौन्दर्य वर्णन में कवि धनश्री के रूप का वर्णन करता हुआ उसके अगों की शोभा का वर्णन करता है—

मिउकसिण-वाल संगय-निलाड।
वयणारविंद- उवहसिय-चंद।
पंकय-दलच्छि नं भुयण-लच्छि।
कुंडल-विलोल उज्जल-कवोल।
विप्फुरिय-कंति सिय-दसण-पंति।
विंवाहु (रोट्ठ) वर-कंवु-कंठ।
थण-हार-तुंग तणु-तिवलिभंग।
वित्थिन्न-रमणि मंथरिय-गमणि।
आयंव-हत्थ लक्खण-पसत्थ।
जिय-वाल-रंभ पीणोरु-थंभ।
नव-कणय-गोरि मुणि-चित्त-चोरि।
सोहग्ग-खाणि निरु महुर-वाणि॥

१. ४

रूप-वर्णन परपरा भुक्त है। कवि की दृष्टि धनश्री के अगो तक ही पहुँचती है। अन्तिम घत्ता द्वारा कवि उसके सौन्दर्य का प्रभाव भी प्रदर्शित करता है।

रइ-रूओहामिणि सुंदर कामिणि नवजोवण-सज्जिय रहहु।
खंडिय-सुर-दप्पहु गुरु-माहप्पहु हत्थि भल्लि नं वम्महु॥

१. ४. ५७

अर्थात् रति के रूप का उपहास करने वाली वह सुन्दरी, नव यौवन रूपी सज्जित रथ वाले, देवताओ के दर्प को खडित करने वाले अतिशय माहात्म्य वाले काम देव के हाथ में मानो भाले के समान थी।

धनपाल ने भविसयत कहा में एक स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए इसी भाव को ऐसे ही शब्दो में अभिव्यक्त किया है—

"नं वम्मह भल्लि विंधण सील जुवाण जणि"

भ० क० ५. ७ ९

इसी प्रकार पद्मश्री के रूप वर्णन में (२. ३) उसके अंगो के सौंन्दर्य का वर्णन

करते हुए कवि ने परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग किया है। अन्तिम घत्ता मे उसे

उन्नय-वंसुब्भव आसासिय-तिहुयण-जयहु ।
अहिणव-गुण-सुंदरि चाव-लट्ठि मयरद्धयहु ॥

२ ३.३६

त्रिभुवन को जीतने का आश्वासन देने वाले मकरध्वज की अभिनव अभिनव-गुण-सुन्दरी चाप-यष्टी कह कर उसके सौन्दर्य के अनुपम और अत्यधिक प्रभाव की ओर सकेत किया है। श्लिष्ट गुण शब्द से वर्णन में चमत्कार भी आ गया है।

विप्रलम्भ शृंगार के भी अनेक उदाहरण काव्य में मिलते हैं। पति परित्यक्ता यशोमती के करुण क्रन्दन की ओर ऊपर निर्देश किया जा चुका है। विवाह से पूर्व कामाग्नि से पीडित पद्मश्री का वर्णन कवि ने २. ११-१२ में किया है। इस प्रेम विह्वलता का आविर्भाव कवि ने पद्मश्री और समुद्रदत्त दोनो मे दिखाकर प्रेम को उभया-पेक्षी बनाया है।

वियोग वर्णन का एक अन्य अवसर समुद्रदत्त के माता के पास चले जाने पर उपस्थित होता है। पद्मश्री कभी ज्योतिषियों से पूछती है कि मेरा पति कब लौटेगा। कभी कौए को सबोधन करती है कि यदि तुम्हारे शब्द से पति आ गया तो मैं तुम्हें दही भात खिलाऊँगी। आँखो से गालो पर वहते बडे बडे आँसुओ से पद्मश्री दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगी और कृष्ण पक्ष की निस्तेज चन्द्रलेखा के समान हो गई (३. ४)।

इसी प्रकार विरह वर्णन का एक अन्य अवसर समुद्रदत्त के पद्मश्री को परित्याग कर चले जाने पर आता है। पद्मश्री की अवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

अच्छेइ वाल जिह वुन्न हरिणि नइ कलुणइं ? झत्ति विहाइ रयणि ।
पउमसिरि-सरीरह जेम्व कंति णक्खत्त-निवह नयहलि गलंति ।
इंदिय-सुहं व नासइ तमोहु कुक्कुड-रउ पसरइ नाइ मोहु ।
गयणे वि चंदु विच्छाउ जाउ सोयं वि व विड्ढंयभ चक्कवा ।
नयणा इव कुमुयइं संकुयंति आसा इव दीहउ दिसउ होंति ।
उग्गमइ अरुणु संताउ नाइ रवि बुद्धि ? जेम्व निसि खयहु जाइ ।
घत्ता—हरिसो इव निग्गउ कुमरु सदेसहु पट्ठियउ ।
दोहग्गु जेम्व वर-वालहिं उयलि ? महीयलि संठियउ ॥

३. ९. १७-२३

अर्थात् वह बाला दुःखिनी हरिणी के समान थी। जैसे पद्मश्री के शरीर में से वैसे ही आकाश में से चन्द्र-नक्षत्र की कान्ति लुप्त हो गई। मोह, मुर्गों के शब्द के समान फैलने लगा। आकाश में चन्द्र समान वह निस्तेज हो गई। जिस प्रकार उसका शोक बढता जाता उसी प्रकार चक्रवाक का आनन्द। उसकी आँखो के समान कुमुद सकुचित होने लगे। जिस प्रकार से उसकी आशा दीर्घ हुई उसी प्रकार दिशाएँ दीर्घ हो गईं। उसके सताप के समान सूर्य उदित हुआ। ज्यो-ज्यों दिन बढता या बीतता जाता है, विरहिणी रात्री की

भाँति छीजती जाती है। पद्मश्री के हर्ष के समान समुद्रदत्त अपने देश निकल गया। बाला के दुर्भाग्य के समान प्रकाश महीतल पर स्थित हो गया।

कवि के विरह-वर्णन मे केवल सताप मात्रा का ही वर्णन नही अपितु उस सताप के प्रभाव की व्यजना भी कवि ने की है।

शृगार के अतिरिक्त वीर रसादि अन्य रसो का काव्य में प्राय अभाव ही है।

प्रकृति वर्णन—काव्य में प्रकृति के कुछ खड चित्र कवि ने अकित किये है। वर्णन नायक नायिका के कार्य की पृष्ठभूमि के रूप मे उपलब्ध होते है। पद्मश्री युवावस्था मे पदार्पण करती है। उसके और समुद्रदत्त के हृदय मे पूर्वानुराग को उत्पन्न करने के लिए कवि ने वसत मास का (२. ४) और अपूर्वश्री उद्यान की शोभा (२. ५) का वर्णन किया है। वर्णन मे कोई विशेषता नही। परम्परानुसार अनेक वृक्षो के नाम दिये गये है। कोयल का कूकना, भौरो का गूजना आदि कवि ने वर्णन किया है।

इसी पकार पद्मश्री और समुद्रदत्त के विवाहानन्तर कवि सन्ध्या और चद्रोदय का वर्णन करता है।

घत्ता—उज्जोइउ भुयणु असेसु इ। गरुय - राय - रंजिय - हियउ।
अत्थवण सिहरि रवि संठियउ। संझा - वहु उक्कंठियउ॥
अत्थमिउ दिवायरु संझ जाय। थिय कणय घडिय नं भुयण-भा।
कमलिणि कमलुम्भिय-महुयरेहिं। अंसुएहिं रुएइ सकज्जलेहिं।
सोआउरु मणि चक्काउ होइ। कउ मित्त विओउ न दुक्ख देइ।
अंधारिय सयल वि दिसि विहाइ। किलिकिलिय-भूय-रक्खस - पिसाय।
तम पसरिउ किंपि न जणु विहाइ। जगु गब्भ वासि निक्खित्तु नाइ।
वोहंत कुमुय वणु उइउ चंदु। कंदप्प महोसहिं रुंद कंदु।
वणि जेम मइंदहु हत्थि जूहु। नासेइ मियंकहु तिम्व तमोहु।
हरिणंक किरण विप्फुरिउ भाइ। गयणंगणु धवलिउ नं छुहाइ।
निसि पढम पहरि उद्दाम कामि वासहरि कुमारु मणाभिरामि।
महमहिय बहल वर धूय गंधि पंचन्न कुसुममाला सुगंधि।
रुणुरुणिय महुर रवि भमर लीवि पज्जालिय मणि मंगल पईवि।
पउमसिरि सहिउ पल्लंकि ठाइ सहियणु आणंदिउ स घरहु जाइ।
घत्ता—नाणाविह करण विसेसेहि सुर सोक्खइं माणेउं कुमरु।
आलिंगिउ कंत पसुत्तउ नाइ सविग्गहु पंचसरु॥

३. १

इन वर्णनो में प्रकृति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से भी अकित की गई है। इधर पद्मश्री का हृदय अनुराग पूर्ण और पति मिलन के लिए उत्सुक है उधर गुरु राग रंजित सन्ध्या-वधू उत्कठित है। इन वर्णनो मे कवि की कल्पना कही कही अनूठी और अद्भुत है। सन्ध्या समय कमल बद होने को है उनमे से भौंरे निकल निकल कर उड रहे है। कवि कहता है मानो कमलिनी काजल पूर्ण अश्रुओ से रो रही है (३. १. ६)।

प्रकृति वर्णन में एक हलकी सी उपदेश भावना भी मिलती है। सूर्योदय का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

परिगलय रयणि उग्गमिउ भाणु उज्जोइउ मज्झिम भुयण भाणु।
विच्छाय कंति ससि अत्थमेइ सकलंकह कि थिरु उदउ होइ।
. . . . . .
मउलंति कुमुय महुयर मुयंति थिर नेह मलिण कि कह वि हुंति।

३ २

अर्थात् रात बीत गई सूर्य उदित हुआ।......मंद काति वाला चन्द्रमा अस्त हो रहा है। कलकित का उदय क्या स्थिर रह सकता है ? कुमुद मुकुलित हो रहे हैं मधुकर उन्हे छोड उड रहे है—क्या मलिन काले कही स्थिर प्रेमी होते है !

भाषा—कवि की भाषा सरल और चलती हुई है। इस भाषा में प्राचीन सस्कृत-प्राकृत की धारा की ओर प्रवृत्ति नही दिखाई देती। पुष्पदन्त में भाषा की दो धारायें स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी किन्तु धाहिल की रचना में तत्कालीन लोक-प्रचलित अपभ्रंश भाषा की ही धारा बहती हुई दिखाई देती है। ध्वन्यात्मक शब्दो का प्रयोग नही दिखाई देता। किन्तु प्रभाववृद्धि के लिए शब्दो की आवृत्ति कवि ने की है (जैसे १. ८; ४. २, ४. ३ में)।

सुभाषित—भाषा में स्थान स्थान पर वाग्धाराओं, लोकोक्तियो और सुभाषितो का प्रयोग भी दिखाई देता है।

"ओसहु निरु मिट्ठं विज्जुवइट्ठं अहु जण कासु न होइ पिउ।"

२. ७. ८८

हे लोगो ! अचिन्त्य मधुर और वैद्य-निर्दिष्ट औषध किस को अच्छी नहीं लगती है ?

"उइइ चंदि कि तारियहूँ" १. १०. ३३

चन्द्र के उदय हो जाने पर तारो से क्या ?

"अलि कंचेवि केयइ वउले लग्गु ज जसु मणिट्ठु तं तासु लग्गु।"

भ्रमर केतकी को छोडकर वकुल के पास चला जाता है, जो जिसको अभीष्ट होता है वह उसी में रत होता है।

"कउ मित्त-विओउ न दुक्खु देइ" ३. १. ७

मित्र-वियोग किसे दुःख नहीं देता ?

काव्य में अनेक शब्द-रूप हिन्दी शब्दो से मिलते जुलते से है।[1]

---

१. उदाहरण के लिए—
नक्कु—नाक (१.१२.५४); **निक्कालइ**—निकालता है (१.१३.६९); घर (१.१४.७८); **फुट्टइ भंडइ**—फूटा बर्तन (१.१४.१८४); **पूरिउ चउक्कु**—

अलंकार—काव्य मे अलकारो का प्रयोग भी मिलता है। शब्दालकारों में अनुप्रास और श्लेष, अर्थालकारो मे उत्प्रेक्षा, व्यति रेक, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकार ही अधिकता से कवि ने प्रयुक्त किये हैं। इन सादृश्यमूलक अलकारो मे सादृश्य-योजना वस्तु-स्वरूप-बोध के लिए नही अपितु भावो को उद्बुद्ध करने के लिए की गई है। निम्नलिखित अलकारो के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकेगी।

"भय-वुन्न हरिणि जिह दिट्ठ-सीह"

१. १३. ७१

धनश्री ऐसी हरिणी के समान थी जिसने सिंह को देखा हो और भयाकुल हो।

"आहरण-विवज्जिय विगय-हार उच्चिणिय-कुसुम नं कुंद-साह।"

१. १४. ७६

आभरण-रहित और हार-शून्य धनश्री ऐसी कुन्द-शाखा के समान थी जिस पर से सब फूल बीन लिये गये हो।

"सरि नलिणि जेम जल-वज्जिय रत्ति-दियहु परिसुक्कइ।"

३. ३. ४३

समुद्रदत्त की माता जल-रहित सरोवर मे दिन-रात सूखती हुई नलिनी के समान थी।

"दीउन्ह मुयइ नीसास केव घण-सलिल-सित्तु गिरि गिम्हि जेस"

२. १४. ६६

समुद्रदत्त के अभाव में पद्मश्री ऐसे दीर्घ निःश्वास छोड रही थी जैसे ग्रीष्म में घन जल से सिक्त पर्वत।

निम्न लिखित उत्प्रेक्षा मे कवि की कल्पना नवीन और अद्भुत है।

"कमलिणि कमलुन्निय-महुयरेहि अंसुएहि रुएहि सकज्जलेहिं" १·३.६

सन्ध्या समय बद होते कमलो से निकलते हुए भ्रमरो के कारण कमलिनी ऐसी प्रतीत होती थी मानो काजलयुक्त आँसुओ से रो रही हो।

इसी प्रकार रूपक (१. ३. ३४—३८) और व्यक्तिरेक (१. ६. ७९—८०) के उदाहारण भी काव्य मे मिलते है।

जिस प्रकार भाषा मे कवि ने प्राचीन सस्कृत-प्राकृत-कवियो की परिपाटी को नही अपनाया उसी प्रकार अलकारो मे भी उस शैली का अभाव ही है। उपमा अलंकार

चौक पूरा (२.१८.२००); जालेवि—जलाकर (२.२१.४६); लड्डुयहं—लड्डू (३.४.५४); माइ बप्पु सासुय ससुरउ (३.७.९१); नक्कु कन्न—नाक कान (३.७.९६); सुक्क—शुष्क; (४-१०.२८); खीर खंड घिय वंजणेहिं—खीर, खांड, घी, व्यंजन (४.७.८६); पोएइ तट्टु कंतिमइ हारु—कांतिमती टूटे हार को पोती है (४.८.९२); भरिउ लड्डुयहं थालु—लड्डुओं से भरा थाल (४.९.३) इत्यादि।

में एक आध स्थान पर ही बाण की शैली के दर्शन होते हैं। अन्यथा उस प्रकार के वर्णनो का अभाव ही है।

> **विंझाउइ व्व गय-मय-वियार पाउसु-सिरि व्व संतावहार।**
> **वाडव-सिहि व्व कय-जलहिं-सोस दिणयर-पह व्व निद्दलिय दोस।**
> ४. ४. ४१-४२

(गय-मय-वियार) मद झरते गजों वाली विन्ध्याटवी के समान वह विमलशीला गणिनी (गय-मय-विकार) मद विकार रहित थी। जलधि—समुद्र—का शोषण करने वाली वाडवाग्नि के समान वह भी जलधि—जडधी—को शोषण करने वाली थी।

सामाजिक अवस्था—काव्य के अध्ययन से कुछ तत्कालीन अवस्थाओं पर प्रकाश पड़ता है। समाज में बहु विवाह की प्रथा थी। समुद्रदत्त ने पद्मश्री का परित्याग कर कांतिमनी से विवाह किया। विवाह खूब धूमधाम से होता था। समुद्रदत्त विवाह के लिए हाथी पर सवार हो कर आया (२. २०.)। विवाह के समय वधू भी श्वेत वस्त्र धारण करती थी (२. १८. २०८)। वर के माता पिता दोनो उसके साथ विवाहार्थ गये। वर की माता और वधू की माता दोनों विवाह की खुशी में परस्पर नाचीं (२. २२. २५२.)।

स्त्रियाँ मुख को पत्रलेखा से सजाती थी (२. ४. ४४)। कन्या का जन्म माता पिता के लिए चिन्ता का कारण होता था। पद्मश्री का पिता शख समझता था कि जिस घर मे लडकी नही वह अत्यधिक कृतार्थ है (४. २. १८)।

ज्योतिषियों की बातो में लोग विश्वास करते थे (२. १६. १८४)। शकुनो में भी विश्वास किया जाता था (३. ४. ५३)। अलौकिक घटनाओं को भी असंभव नही समझा जाता था (४. ८)। सन्तों, महात्माओं पर लोगों की श्रद्धा थी और घर आने पर उनका भली भाँति सत्कार किया जाता था (४. ७)।

छंद—ग्रंथ में मुख्य रूप से पद्धडिका छन्द का ही प्रयोग हुआ है। एक ही कडवक में दो छन्दो का प्रयोग भी कुछ स्थलो पर मिलता है। (जैसे १.२, १.९, २ २०, ३.७, ३.१०)

पास चरिउ—पार्श्व पुराण

यह ग्रथ अप्रकाशित है। आमेर शास्त्र भडार में इस ग्रथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ वर्तमान है। इसमें पद्मकीर्त्ति ने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित्र वर्णित किया है। इसमें १८ सन्धियाँ है। सन्धियो मे कडवको की संख्या निश्चित नही। चौथी और पांचवी सन्धियो में बारह-बारह कडवक हैं किन्तु चौदहवीं सन्धि मे तीस कडवक मिलते हैं। वि० संवत् १६११ में लिखित प्रति में लेखक ने ग्रन्थ सख्या अर्थात् पद्य सख्या ३३२३ बताई है।

ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में कवि ने अपने आपको जिनसेन का शिष्य कहा है।[1] कृति के रचनाकाल के सबन्ध मे निम्नलिखित पद्य मिलता है—

णव सय णउ वाणुइये कत्तिय अमावस दिवसे।
लिहियं पास पुराणं कइणा इह पउम णामेण।

(१८वीं सन्धि के अन्त की प्रशस्ति)

इस पद्य के अनुसार कृति का रचना काल ९९२ वि० स० प्रतीत होता है। प्रो० हीरालाल जैन ने इसका समय शक सवत् ९९९ माना है।[2]

ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने "स्वस्ति श्री गणेशाय नम । नम श्री पार्श्वनाथाय।" इन शब्दो से किया है। इसके अनन्तर २४ तीर्थ करों का स्तवन किया गया है तदनतर आत्म विनय और सज्जन दुर्जन स्मरण मिलता है। जैन सप्रदायानुकूल पार्श्वनाथ का चरित ही ग्रन्थ मे अकित किया गया है।

कवित्व की दृष्टि से छठी, दसवी और ग्यारहवी सन्धियाँ उल्लेखनीय है। छठी सन्धि मे ग्रीष्मकाल और उस काल में जलक्रीडा (६. ११), वर्षाकाल (६. १२), हेमंत काल (६. १३) आदि के वर्णन सुन्दर है। दसवी सन्धि में सूर्यास्त (१० ९), रजनी (१०. १०) चन्द्रोदय (१०. ११) आदि के वर्णन और ग्यारहवी सन्धि मे युद्ध वर्णन आकर्षक है।

कवि की कविता शक्ति के निदर्शन के लिए नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं।

नारी वर्णन—

सुकइ कइव्व जेम जण मणहर, हंस गवणि उत्तुंग पउहर।
णव णीलुप्पलणयण सुहावण, वम्मह हिअय वाण उल्हावण।
कुडिल चिहुर वर तिवलि विपसिय, सालंकार सरूहू सुहासिय।
खंति जेम जिण वरहु पियारी, गवरि हरहो भुवणत्तय सारी।
राम हो जेम सीय मण खोहणि, कण्हहो रूप्पिणि जिह थिय मोहणि।
जह रइ मणि वल्लहिय अणंगहो, रोहिणिव्व जह गइण मियंक हो।

१-९

परपरागत उपमानो और उदाहरणों के द्वारा ही कवि ने नारी-रूप का अंकन किया है।

ग्रीष्मकाल में जलक्रीड़ा—

दुवई—पेखिवि गिंभ कालु अइ दूसहो, जुवईहिं सहूं सवारणो।
णिग्गउ पुरजणेण जल कीडहिं, सहरसु वइरि वारणो॥

---

१. सिरि माहव सेणु महाणुहाउ, जिण सेण सिसु पुणं तासु जाउ।
तसु पुव्व सिणेहिं पउमकित्ति, उप्पण्णु सीसु जणु जासु चित्ति।
तें जिण वर सासण भाविएण, कह विरइय जिणसेणहो मएण। १८.२२

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अंक ३-४, पृ. ११७.

अंतेउर परिमिउं णर वरेंदु। गउ विहवें सरेणं सुरवरिंदु।
सुरवर करि सुपमाण वाहु। अवयरिउ सलिले जवइहिं सणाहु।
अवगाहइ वाहिंहि जल णरेंदु। णं करिणि सहिउ सरवइ गयंदु।
उप्पाडिवि राएं पउम णालु। कोमलु सुगंधु (गंधु) केसर विसाल।
ताडिय सिरि सहरसु काबि णारि। तोअण्ण भणइं मइंदेव मारि।
सालेवि मुणालें हणइ जाम। वछच्छलि निवडिय अण्ण ताम।
तह प्पेल्लिवि णालें घाउ देवि। ताअण्ण कडछिहि दिढु खलेइ।
वुडेवि कावि चलणेहिं धरेहिं। कर जुवलें णिट्ठुरु वंधु देइ।
चउ दिसहिं पीण उण्णय थणीउ। जलुखिवहिं णरिंदहो रइ मणीउ।
कच्छूरी चंदणु घुसिण रंगु। पक्खालिउ सलिलें अंगलग्गु।
कज्जल जल भरियहिं लोयणेहिं। जुवईहिं मुक्कु णं जलु घणेहिं।
घत्ता—णयणंजण घुसिण समूहें अमलु वि सलिलउ किउ समलु।
सोहइ बहु वण्ण विचित्तउ इंद चाव सरिसु जलु॥ ६.११

वर्षा काल—

गय गिंभ याल हुउ वरिसयालु। अवयरिउ मोर दद्दुर वमालु।
पेखेवि महंतु णहे घणगयंदु। अरुढु तेथु पावसु णरेंदु।
वज्जेण हणंतु णहग्ग मग्गु। दुप्पेछ दछ कय विज्जु खग्गु।
महि मंडलि जलु वरिसणहि लग्गु। गुलु गुलु गुलन्तु मारुय समग्गु।
गज्जंतु पलय घण रव पचंडु। तडि तरलु भयंकर भीमचंडु।
कज्जल तमाल घण सामदेहु। दस दिसि झरंतु कय दोण मेहु।
मेल्लंतु मुसलधारहि जलोहु। जल थल पायाल सुभरिय सोहु।
अवयरिउ एम पाउसु रउद्दु, संचारिउ मेहहिं णं समुद्दु।
दीहिय तडाय सरवर अणेय, सम सरि सा भावहिं भरिय तोय।

घत्ता—

णवि दियहु रयणि जाणिज्जइ, णहि रवि मेहहिं छाइयउ।
पिय रहियहों पाउसि पंथियहो, तीयईहिं विरहु ण माइयउ॥
६. १२

दोनो जलक्रीडा और वर्षा काल के वर्णनो में स्वाभाविकता है। दोनो वर्णनो के घत्ता में दृश्य का सार दृष्टिगत होता है। जलक्रीडा में आँखो के अजन, शरीर के चन्दनादि से निर्मल जल भी मलिन हो गया। नाना वर्णों से चित्रिन जल इंद्रचाप के समान शोभित होने लगा। वर्षाकाल में आकाश में सूर्य मेघो से आच्छन्न हो गया। दिन और रात का भेद नष्ट हो गया। इस काल में प्रिया-रहित पथिको की स्त्रियों के हृदय में विरह अपरिमित हो उठा।

भाषा में अणुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है (८. ७)। मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त भुजंग प्रयात (५. १२, ७. ९), स्रग्विणी (७. १) आदि वर्णिक छन्दों का

प्रयोग भी कवि ने यत्र तत्र किया है। ग्यारहवी सन्धि के प्रत्येक कडवक के आरम्भ में पहिले एक 'दुवई', फिर एक 'मात्रा' और तदनन्तर एक 'दोहय' (दोहा) का प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ—

चडिवि महारहि भड सहिउ, वइरिय माण मयंदु।
अहिमुहु चल्लिउ पर वलहो, सणणज्झेवि णरेंदु ॥ दोहयं
११. १

दूसरी प्रति मे दोहय के स्थान पर 'दोहडा' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

पासणाह चरिउ (पार्श्वनाथ चरित)

श्रीवर कवि के लिखे हुए पासणाह चरिउ, सुकमाल चरिउ और भविसयत्त चरिउ नामक तीन ग्रन्थ उपलब्ध है। तीनो ग्रन्थ अप्रकाशित है किन्तु इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार मे विद्यमान है (प्र. सं. पृष्ठ १२९, १९३ और १५०)

श्रीधर अयरवाल (अग्रवाल) कुल मे उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम बील्हा और पिता का नाम गोल्ह था। इन्होने सभवत चदप्पह चरिउ की भी रचना की थी।[1] कवि दिल्ली के पास हरियाना मे रहते थे। इन्होने ग्रथ मे स्वय अपनी काव्य रचना के विषय मे बताया है कि किस प्रकार मै हरियाना से चल जमुना पार कर दिल्ली पहुँचा और वहाँ अयरवाल (अग्रवाल) कुलोत्पन्न नट्टल साहु की प्रेरणा से काव्य रचना की। पासणाह चरिउ मे 'ढिल्ली' प्रदेश का वर्णन भी किया गया है। इनकी कृतियो की रचना के आधार पर इनका काल लगभग वि० स० ११८९ और १२३० के बीच अर्थात् विक्रम की १२ वी शताब्दी का अत और १३ वी का मध्य माना जा सकता है।

कवि ने प्रथम सन्धि की समाप्ति पर और अन्य सन्धियो के प्रारम्भ मे सस्कृत भाषा और संस्कृत छन्दो मे नट्टल साहु की प्रगसा भी की है।[2] कृति की समाप्ति भी

---

१ **विरएवि चंदप्पह चरिउ चारु, चिर चरिय कम्म दुक्ख वहारु।**
विहरंतें कोऊहल वसेण, परिहच्छिय वाय सरि सरेण।
सिरि अयरवाल कुल संभवेण, जणणी वील्हा गब्भुवेण।
अणवरय विणय पणयारुहेण, कइणा वुह गोल्ह तणूरुहेण।
पयडिय तिहुअणवइ गुण भरेण, मण्णिय सुहि सुअणें सिरि हरेण ॥
१.२

२. **यस्याभाति शशांक सन्निभ लसत्कीर्त्ति र्द्धरित्री तले**
यस्माद् वंदि जनो वभूव सकलः कल्याण तुल्योऽर्थिनां।
येना वाचि वचः प्रपंच रचना हीनां (नं) जनानां प्रियं
स श्रीमान् जयतात् सुधीरनुपमः श्री नट्टलः सर्व्वदा ॥ २.१
जीयादसौ जगति नट्टल नामधेयः ६. १

नट्टल की मंगलकामना के साथ की गई है । अंत में संस्कृत छंदो मे नट्टल के गुणो का वर्णन, उसकी मंगल कामना और उसका परिचय दिया गया है।

कवि ने पासणाह चरिउ की रचना दिल्ली में आग्रहायण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी, रविवार, वि० सं० ११८९ में की।[1]

इस ग्रन्थ में बारह सन्धियो में पार्श्वनाथ के चरित्र का वर्णन है। पार्श्वनाथ की कथा वही है जो अन्य ग्रन्थो मे मिलती है।

कवि के वर्णनो में परपरागत प्राचीन शैली के दर्शन होने है। कवि यमुना नदी का वर्णन करता हुआ, प्रियतम के पास जाती हुई एक वार विलासिनी से उसकी तुलना करता है—

जउणा सरि सुरणय हियय्हार, णं वार विलासिणिए उरहार।
डिंडीर पिंड उप्परिय णिल्ल, कीलिर रहंग थोव्वड थणिण्ण।
सेवाल जाल रोमावलिल्ल, वुहयण मण परि रंजणच्छइल्ल।
भमरावलि वेणी वलयलच्छि, पप्फुल्ल पोमदल दीहरच्छि।
पवणा हय सलिलावत्त णाहि, विणिहय जणवय तणु ताव वाहि।
वणमयगल मयजल घसिणलित्त, दर फुडिय सिप्पिउड दसणदित्त।
वियसंत सरोरुह पवर वत्त, रयणायर पवर पियाणुरत्त।
विउला मल पुलिण णियंव जाम, उत्तिण्णी णयणहिं दिट्ठुनाम।
हरियाणए देसे असंख गामे, गमियिण जणिय अणवरय कामे।

घत्ता—

पर चक्क विहट्टणु, सिरि संघट्टणु, जो सुर वइणा परिगणिउ।
रिउ रुहिरावट्टणु, पविउलु पट्टणु, ढिल्ली नामेण जि भणिउं।

१.२

अर्थात् यमुना नदी सुर नर का हृदय हार थी मानो वारविलासिनी का उरहार हो। नदी का फेन पुंज मानो उस नारी का उपरितन वस्त्र हो। क्रीड़ा करते हुए चक्रवाक मानो उसके स्तन हो। शैवाल जाल, बुधजनो के मन का अनुरजन करने वाली रोमावली, भ्रमरावली वलयाकार शोभित वेणी, प्रफुल्ल पद्म दल विशाल नेत्र, पवन प्रकम्पित जल की भवर तनु ताप नाशक नाभि, वन्य हाथियो को मद से युक्त जल चन्दन लेप, ईषत् व्यक्त होते हुए शुक्ति पुट दाँत और विकसित कमल सुन्दर मुख के समान था। नदी रत्नाकर समुद्र रूपी प्रिय के प्रति अनुरक्त थी और नारी रत्नालंकृत अपने प्रिय के प्रति। उसके विपुल और निर्मल पुलिन मानो नितंब थे। इस प्रकार

---

१. **"विक्कमणरिंद सुपसिद्ध कालि, ढिल्ली पट्टणि धणकण विसालि।**
सणवासी एयारह सएहिं, परिवाडिए वरिसहं परिगएहिं।
कसणट्ठमीहिं अगहण मासि, रविवारि समाणिउं सिसिर भासि।"
१२. १८

की नदी कवि ने देखी और पार की । नदी को पार कर कवि हरियाना प्रदेश के ढिल्ली नामक नगर मे गया ।

कवि ने दिल्ली नगर का वर्णन भी अलकृत शैली मे किया है । वहा की ऊँची ऊँची शालाओ, विशाल रणमडपो, सुन्दर मन्दिरो, समद गज घटाओ, गतिशील तुरगों, स्त्रियो की पद नूपुर-ध्वनि को सुनकर नाचते हुए मयूरो और विशाल हट्ट मार्गो का निर्देश किया गया है । कवि वर्णन करता है—

जहिं गयणामंडला लग्गु सालु, रण मंडव परिमंडिउ विसालु ।
गोउर सिरि कलसा हय पयंगु, जल पूरिय परिहा लिंगि यंगु ।
जहिं जण मण णयणाणंदिराइं, मणियर गण मंडिय मंदिराइं ।
जहिं चउदिसु सोहहिं घणवणाइं, णायरणर खयर सुहावणाइं ।
जहिं समय करडि घड घड हडंति, पडिसद्दें दिसि विदिसि विफुडंति ।
जहिं पवण गमण धाविर तुरंग, णं वारि रासि भंगुर तरंग ।
पविउलु अणंग सरु जहिं विहाइ, रयणायरु सइं अवयरिउ णाइं ।
जहिं तिय पयणेउर रउ सुणेवि, हरिसें सिहि णच्चइ तणु धुणेवि ।
जहिं मणुहरु रेहइ हट्ट मग्गु, णीसेस वत्थु संवियस मग्गु ।
कातंतं पिव पंजी समिद्धु, णव कामि जोव्वण मिव समिद्धु ।
सुर रमणि यणु व वरणेत्तवत्तु, पेक्खणयर मिव वहु वेस वंतु ।
वायरणु व साहिय वर सुवण्णु, णाडय पेक्खणयं पिव सपण्णु ।
चक्कवइ व वरहा अप्फलिल्लु, संच्चुण्ण णाइं सद्दंसणिल्लु ।
दप्पुब्भड भड तोणु व कणिल्लु, सविणय सीसु व वहु गोर सिल्लु ।
पारावारु व वित्थरिय संखु, तिहुअण वइ गुण णियरु व असंखु ।

घत्ता—

णयण मिव सतारउ, सरुव सहारउ, पउर माणु कामिणि यणु व ।
संगरु व सणायउ, णहु व सरायउ, णिहय कंसु णारायणु व ॥[1]

१.३

अन्तिम घत्ता मे कवि ने बाण की श्लिष्ट शैली का प्रयोग करते हुए दिल्ली नगर की अनेक वस्तुओ से तुलना की है—

वह नगर नयन के समान तारक युक्त था, सरोवर के समान हार युक्त और हार नामक जीवो से युक्त था, कामिनी जन के समान प्रचुर मान वाला था, युद्धभूमि के समान नाग सहित और न्याय युक्त था, नभ के समान चद्र सहित एव राजसहित था

१. पयंगु—पतंग, सूर्य । समय—समद । पयणेउर रउ—पद नूपुर रव । कातंतं ···समिद्धु—कातंत्र व्याकरण के समान पंजिका से युक्त एवं प्रचुर अर्थ युक्त । साहिय···सुवण्णु—जहां सोने का वर्ण या अक्षर परखा जा रहा था । संखु—मर्यादा ।

और कंसघाती नारायण के समान वहा कासा पीटा जा रहा था।

इसी प्रसंग में कवि ने अनंगपाल और हम्मीर का भी निर्देश किया है—

जहिं असिवर तोडिय रिउ कवालु, णरणाहु पसिद्धु अणंग वालु।
णिरु दल वट्टिय हम्मीर वीरु, वंदियण विंद पइव्वण चीरु।।
१.४

युद्ध वर्णनो मे कवि ने भावानुकूल शब्दो और छन्दो की योजना की है। निम्न-लिखित उद्धरण में युद्ध मे सैनिकों और क्रियाओ की तीव्र गति अभिव्यक्त होती है—

तिक्खु कुंतेण केणावि विद्धा हया, रत्त लित्ता वि मत्ता गया णिग्गया।
को वि केणा वि मुट्ठी हिए द्धारिउ, को वि केणावि पण्हीएल त्थारिउ।
....
कोवि केणावि आवंतु आलाविउ, कुंजराररिव्व सिग्घं समुद्धाविउ।
कोवि केणावि रुद्धो विरुद्धो भडो, कंधरं तोडि णच्चाविऊ णं णडो।
कोवि केणावि धावंतु पोमाइउ, तोमरेणोरु वच्छच्छले घाइउ।
कोवि केणावि—रुसा भीसणो, वाण जालं मुअंतो महाणीसणो।
४.९

सुकुमाल चरिउ

श्रीधर कवि ने इस ग्रंथ की रचना वलड (अहमदाबाद-गुजरात) नगर मे राजा गोविन्द चन्द्र के समय में की थी।[1] ग्रंथ रचना का समय वि० सं० १२०८, आग्रहायण मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया, चन्द्रवार है।[2]

कवि ने यह ग्रंथ साहु पीथा के पुत्र पुरवाड वंशोत्पन्न कुमार की प्रेरणा से लिखा। संधि की पुष्पिकाओ में उस के नाम का उल्लेख किया गया है।[3] प्रत्येक संधि के आरम्भ

---

१. एक्कहिं दिणि भव्वयण पियारइ, बलडइ नामे गामे मण हारइ।
सिरि गोविंद चंद निव पालिए, जणवइ सुहयारय कर लालिए।।
१.२

२. बारह सयइ गयइ कय हरिसइ, अट्ठोत्तरइ महीयलि वरिसइ।
कसण पक्खि आगहणो जायए, तिज्ज दिवसि ससि वासरि मायइ।
बारह सइय गंत्थं कहइ पद्धडिएहिं रवण्णु।
जण मण हरणु सुह वित्थरणु एउ अत्थु संपुण्णउं।। ६.१७

३. इय सिरि सुकुमाल सामि मणोहर चरिउ, सुंदर यर गुण रयण नियर भरिए, विवुह सिरि सुकइ सिरिहर विरइए, साहु पीथे पुत्त कुमर नामंकिए,... इत्यादि।

में संस्कृत पद्यों में कुमार की मंगल कामना की गई है।[1] और ग्रंथ के अन्त में उस के वंश का परिचय भी दिया गया है।

कवि ने इस ग्रंथ में छः संधियों और २२४ कडवकों में सुकुमाल स्वामी के पूर्व जन्म का वर्णन किया है। पूर्व जन्म में वह कौशाम्बी में राजमंत्री के पुत्र थे। जिन-धर्म में अनुरक्ति होने के कारण इन्होंने जिनधर्म में दीक्षा ले ली। संसार को छोड कर विरक्त हो गये। पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण हो आने पर तपस्या में लीन हो गये। फलतः अगले जन्म में उज्जैन में जन्म लिया और इनका नाम सुकुमाल रखा गया।

कवि की कविता का उदाहरण निम्नलिखित रानी के वर्णन में देखा जा सकता है—

तहो णरवइहे घरिणि मयणावलि, पहय कामियण मण गहियावलि।
दंत पंति णिजिय मुत्तावलि, नं मयहो करी बाणावलि।
सयलंतेउर मज्झे पहाणी, उछ सरासण मणि सम्माणी।
जहि वयण कमलहो नउ पुज्जइ, चंदु वि अज्जु विवट्टइ खिज्जइ।
कंकेल्ली पल्लव सम पाणिहिं, कलकल हंठि वीणणिह वाणिहिं।
णिय सोहग्ग परज्जिय गोरिहिं, विज्जाहर सुरमण धण चोरिहे।
अहर लच्छि परिभविय पवालहें, परिमिय चंचल अलिणिह वालहें।
सुर नर विसहर पयणिय कामहे, अमर राय कर पहरण खामहें।
णयणो हामिय सिसु सारंगहे, संदरि सय लावखय वहि चंगिहे।
जाहि णियंवु णिहाणु अकामहे, सोहइ जिय तिहु अण जण गामहे।
थोव्वड वयण सिहिणजुअ लुल्लउ, अह कमणीय कणय घडतुल्लउ।
रहइ जाहे कसण रोमावलि, नं कामानल घण धूमावलि।
१. ८.

कवि ने नारी के अंग वर्णन में प्रायः परंपरागत उपमानों का ही प्रयोग किया है।

भविसयत्त चरिउ (भविष्यदत्त चरित्र)

श्रीधर ने इस ग्रंथ की रचना वि० सं० १२३० में फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की

---

१. यः सर्व्वं वित्पद पयोज रज द्विरेफः
स दृष्टि रुत्तम मति र्म्मद मान मुक्तः।
श्लाघ्यः सदैव हि सतां विदुषां च सो त्र
श्रीमत्कुमार इति नंदतु भूतलेऽस्मिन्॥ २.१
भक्तिर्यस्य जिनेंद्र पाद युगले धर्म्मे मतिः सर्वदा
वैराग्यं भव भोग—विषये वांछा जिने सागमे।
सद्दाने व्यसनं गुरौ विनयता प्रीति र्व्वुधे विद्यते
स श्रीमान् जयता ज्जितेंद्रिय रिपुः श्रीमत्कुमाराभिधः॥ ३.१

दशमी तिथि रविवार को समाप्त की थी ।[1]

यह कृति कवि ने माथुर वंशी नारायण साहु की पत्नी रुप्पिणी के लिए लिखी थी। सन्धि की पुष्पिकाओ मे इसके नाम का उल्लेख भी किया गया है ।[2] प्रत्येक सन्धि के आरम्भ मे कवि ने इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीडित आदि सस्कृत छन्दो में रुक्मिणी की मगल कामना भी की है।[3]

ग्रथ मे श्रुत पचमी व्रत के फल और माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भविष्य-दत्त के चरित्र का वर्णन छह सन्धियो और १४३ कडवको मे किया गया है। कवि ग्रंथ के आरम्भ में ही मगलाचरण करता हुआ कहता है—

ससि पह जिण चरणइं, सिवसुह करणइं, पणविवि णिम्मल गुणभरिउ ।
आहासमि पविमलु, सुअ पंचमि फलु, भविसयत्त कुमरहो चरिउ ॥ १.१

कवि की कविता का उदाहरण निम्नलिखित हस्तिनापुर वर्णन में देखा जा सकता है—

तहिं हत्थिणायउरु वसइ णयरु, पवरावण दरिसिय रयण पवरु।
जहिं सहलड सालु गयणग्गलग्गु, हिमगिरि व तुंगु विछिण्ण मग्गु।
परिहा सलिलंतरे ठिय मरालु, णाणा मणि णिम्मिय तोरणालु।
सुर हर धय चय चंविय णहग्गु, पर चक्क मुक्क पहरण अभग्गु।
कवसीसय पंतिय सोह माणु, मणिगण जुइ अमुणिय सेयभाणु।
मंगल रव बहिरिय दस दिसासु, बुहयण धणट्ट माण वणि वासु।
जहिं मुणिवरेहिं पयडिय धम्मु, परिहरियइं भव्वयणेहिं छम्मु।
जहिं दिज्जइ सावय जणहिं दाणु, विरएवि णु मुणि वर पयहिं माणु।
जहिं को वि ण कासु वि लेइ दोसु, ण पियइ धण धण्ण कएण कोसु।

---

१. "णरणाह विक्कमाइच्च काले, पवहंतए सुहयारए विसाले।
बारहसय वरिसहिं परिगएहिं, दुगुणिय पणरह वच्छर जुएहिं।
फग्गुण मासम्मि वलक्ख पक्खे, दसमिहि दिणे तिमिरुक्कर विविक्खे।
रविवारि समाणिउं एउ सत्थु,........................।
६.३०

२. इय सिरि भविसयत्त चरिए विवुह सिरि सुकइ सिरिसिहर विरइए,
साहु णारायण भज्जा रुप्पिणि णामंकिए.......इत्यादि।

३. या देव धर्म्म गुरु पाद पयोज भक्ता,
सर्व्वज्ञ देव सुख दायिमतानुरक्ता।
संसार कारि कुकथा कथने विरक्ता
सा रुक्मिनी बुध जनै र्न कथं प्रशस्या॥
२.१

मणि को वि खणुवि धरेइ रोसु, मणि दित्तिए ण वियणियइं गोसु।
जहिं कलहु कहिं वि णउ करइ कोवि, मिहुणइं रइ कालि भिडंति तोवि ॥[1] १.५

इस वर्णन मे कवि की धार्मिक भावना ही प्रधान रूप से परिलक्षित हुई है।

सुलोचना चरिउ (सुलोचना चरित्र)

'सुलोचना चरिउ' अभी तक प्रकाशित नही हो सका। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है। (प्र० स० पृष्ठ १९०)

यह देवसेन गणि का लिखा हुआ २८ सन्धियो का एक काव्य है। कवि ने यह कृति राक्षस सवत्सर मे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी बुधवार के दिन समाप्त की।[2] ज्योतिष की गणनानुसार इस तिथि और इस दिन दो राक्षस संवत्सर पडते है। एक २९ जुलाई सन् १०७५ में और दूसरा १६ जुलाई सन् १३१५ में।[3]

कवि ने वाल्मीकि, व्यास, श्री हर्ष, कालिदास, बाण, मयूर, हलिय, गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयभू, पुष्पदन्त, भूपाल नामक कवियो का उल्लेख किया है।[4] इनमें से जितने

---

१. पवरावण—प्रवर आपण,—हट्ट। रयण पवरु—रत्न समूह। सहलइ—शोभित होता है। विच्छिण्णमग्गु—विस्तीर्ण मार्ग। तोरणालु—तोरण से संयुक्त शाला। अभग्गु—अभग्न शाला। कवसीसय—कांगुर पक्ति, टिप्पणी। सेयभाणु—चन्द्रमा। छम्मु—छद्म पाखंड। कएण—कारण से। मणि...गोसु—मणियों की दीप्ति से प्रभात समय ज्ञात नहीं होता। रइ कालि—रति काल में।

२. रक्खस संवत्सरे बुह दिवसए, सुक्क चउद्दसि सावण मासए।
चरिउ सुलोयणहिं णिप्पउं, सद्द अत्थ वण्णय संपुंण्णउं।
घत्ता—ण वि मइं कवित्त गव्वेण कियउ, अवरु ण केणवि लाहें।
किउ जिण धम्महो अणुत्तर ?? मणे कय धमुच्छ हें ॥ सु० च० अन्तिम प्रशस्ति

३. पं० परमानन्द जैन शास्त्री का लेख सुलोचना चरित्र और देवसेन, अनेकान्त वर्ष ७, किरण ११-१२ पृष्ठ १६२

४. जहिं वम्मिय वास सिरि हरिसहिं।
कालयास पमहइ कय हरिसहिं।
वाण मयूर हलिय गोविंदहिं।
चउमुह अवर सयंभु कयंदहिं।
पुप्फयंत भूवाल पहाणहें।
अवरेहि मि वहु सत्य वियाणहिं।
विरइयाइं कव्वइं णिसुणेप्पिणु।
अम्हारिसह न रंजइ वुह यणु।
हउ तहावि धिट्ठ पयासमि।
सत्थ रहिउ अप्पउ आयासमि। १.३

भी ज्ञात कवि है उनमें सब से उत्तरकालीन कवि पुष्पदन्त है। अत देवसेन भी पुष्पवन्त के बाद और १३१५ ई० से पूर्व ही किसी समय में उत्पन्न हुए माने जा सकते है।

काव्य में प्रत्येक सन्धि के अन्तिम घत्ता में कवि के नाम का निर्देश है। कवि निबडि देव के प्रशिष्य और विमलसेन गणधर के शिष्य थे।

सुलोचना कथा जैन कवियो का प्रिय विषय रही है। आचार्य जिनसेन ने अपने हरिवंश पुराण मे महासेन की सुलोचना कथा की प्रशसा की है।[1]

कुवलयमाला के कर्त्ता उद्योतन सूरी ने भी सुलोचना कथा का निर्देश किया है।[2] पुष्पदन्त ने अपने महापुराण की २८ वी संधि में इसी कथा का विस्तार से सुन्दर वर्णन किया है। धवल कवि ने अपने हरिवश पुराण में रविषेण के पद्म चरित्र के साथ महासेन की सुलोचना कथा का उल्लेख किया है।[3] कवि ने अपने इस काव्य में कुन्दकुन्द के सुलोचना चरित्र का उल्लेख किया है और कहा है कि कुद कुद के गाथाबद्ध सुलोचना चरित्र का मैंने पद्धडिया आदि छदो मे अनुवाद किया है।[4] न महासेन की सुलोचना कथा और न कुंदकुद का सुलोचना चरित आजकल उपलब्ध है। किन्तु कवि अपने पूर्ववर्ती कवियो की विशेषतः पुष्पदन्त की रचना से प्रभावित हुआ होगा, इसका अनुमान कवि की निम्नलिखित गाथा से लगाया जा सकता है :

"चउमुह सयंभु पमुहेहिं रक्खिय दुहिय जा पुप्फयंतेण।
सुरसइ सुरहीए पयं पियं सिरि देवसेणेण॥ १०.१

अर्थात् चतुर्मुख, स्वयभू आदि कवियो द्वारा रक्षित और पुष्पदन्त द्वारा दोही गई सरस्वती रूपी गौ के दुग्ध का देवसेन ने पान किया।

इस काव्य में कवि ने सुलोचना के चरित्र का वर्णन किया है।

चक्रवर्ती भरत के प्रधान सेनापति, जयकुमार की धर्मपत्नी का नाम सुलोचना था। वह राजा अकपन और सुप्रभा की पुत्री थी। सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी। इसके स्वयवर में अनेक देशो के बडे-बडे राजा आये। सुलोचना को देख कर वे मुग्ध हो गये,

---

१. नाथू राम प्रेमी, जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० ५३८.
महासेनस्य मधुरा शीलालंकार धारिणी।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना॥

२. वही पृ० ५३८
सण्णिहिय जिण वरिंदा धम्म कहा बंध दिक्खिय णरिंदा।
कहिया जेण सुकहिया सुलोयणा समवसरणं व॥

३. मुणि महसेणु सुलोयण जेणवि, पउम चरिउ मुणि रविसेणणवि।
हरि० पु० १. ३

४. जं गाहाबंधे आसिउत्तु, सिरि कुंद कुंद गणिणा णिरुत्तु।
तं एमहिं पद्धडियहिं करेमि, वरि किंपि ण गूढउ अत्थु देमि॥
१. ६

उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्ति की प्रबल इच्छा करने लगे। स्वयवर मे सुलोचना ने जय को चुना। परिणामस्वरूप चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो उठा और उसने इसमे अपना अपमान समझा। अपने अपमान का बदला लेने के लिए अर्ककीर्ति और जय मे युद्ध होता है और अन्त मे जय विजयी होता है।

ग्रथ का आरम्भ कवि ने पच नमस्कार से किया है। तदनन्तर जिन स्तवन करता हुआ अपने गुरु विमलसेन का स्मरण करता है (१. ३)। अपने से पूर्वकाल के अनेक उत्कृष्ट कवियो के काव्यो के होते हुए भी अपने काव्य के लिखने का प्रयोजन बताता है।

जइ कप्पदुमु फलइ मणोहरु, तो किं फलउ णाहि अवरु वि तरु।
जइ पवहइ सुरसरि मथर गइ, तो किं अवर णाहि पवहउ पाइ॥
१.४

इसके अनन्तर कवि ने आत्म विनय प्रदर्शित करते हुए (१. ४) सज्जन-दुर्जन स्मरण किया है—

चवण वयणु कुठारहु केरउ, करइ सुयधु सुच्छेय जणेरउ।
उछ दडू पीलिवि ताविउ, तो वि तेण महुरत्तणु क्षविउ॥ १५

काव्य में मगध, राजगृहादि के काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते है। शृङ्गार, वीर इत्यादि रसो की भी उपयुक्त व्यजना की गई है। सधि की पुष्पिकाओ में कवि ने अपने ग्रथ को महाकाव्य कहा है।[1]

कवि ने नारी वर्णन में परंपरागत उपमानों का प्रयोग किया है। जैसे चेल्लना महादेवी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

चलणइं अइरत्तइं कोमलाइं, सोहंति णाइं रत्तुप्पलाइं।
उरू जुवलउ तहि केम भाइं, मणहरण व रंभा खंभणाइं।
कडियलु विसालु रइ सुहणिहाणु, णं मयण णिवहो आवासठाणु।
तहिं थण तुंग तें मझु खीणु, णं सुयणहो रिद्धिए पिसुणु झीणु।
जिरुवमउं जाहिं भुय डालियाउ, ललियउं णं मालइ मालियाउ।
गल कंदलु समु कोमल विहाइ, वट्ठलु वरयोप्फलि कवुणाइ।
(सहलु सर कोकिल कंठ्ठु णाइ)।
तहिं अहरु पवट्ठलु सरसु रत्तु, णं पिक्कउ विवीहलु पवित्तु।
णयण इंदीहरु कसुणुज्जलाइं, णं वम्महं कंडइं पत्तलाइं।
अलयावलि तहो भाल यलिदिट्ठ, णं णव सय दलि छप्पय वइट्ठ।

घत्ता—

जित्तउ मुह सोहाए, जेण तेण सकलंकउ।
लज्जए जाइ विदूरि, णहयलि थक्कु ससंकउ॥ १. १२

---

१. इय सुलोयणा चरिए महाकव्वे, महापुरा हिट्ठिए, गणि देवसेण विरइए ....इत्यादि।

कवि के युद्ध वर्णन सजीव है। युद्ध की अनेक क्रियाओ को अभिव्यक्त करने के लिए तदनुकूल शब्दो की योजना की गई है। झर-झर रुधिर का बहना, चर-चर चर्म का फटना, कड-कड हड्डियो का मुडना आदि वाक्य युद्ध के दृश्य का सजीव चित्र उपस्थित करते है। देखिये—

असि णिहसण उट्ठिय सिहि जालइं, जोह मुक्क जालिय सर जालइं।
पहरि पहरि आमिल्लिय सद्दइं, अरि वर घड थक्कय सम्मद्दइं।
झरझरंत पवहिय वहुरत्तइं, णं कुसंभ रय राएं रत्तइं।
चरयरंत फाडिय चल चम्मइं, कसमसंत चरिय तणु वम्मइं।
कडयडंत मोडिय घण हड्डइं, मंस खंड पोसिय भे रुंडइं।
दडवडंत धाविय वहुरुंडइं, हुंकरंत धरणि वडिय मुंडइं।
....
फाडिय चमर छत्त धयदंडइं, खंड खंड कय गय वर सोंडइं।
सु० च० ६. ११

निम्नलिखित जय और अर्ककीर्ति के युद्ध के वर्णन में कवि ने भुजंग प्रयात छन्द द्वारा योद्धाओ की गति का भी चित्रण किया है। देखिये—

"भडो को वि खग्गेण खग्गं खलंतो,
रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणंतो।
भडो को वि वाणेण वाणो दलंतो,
समद्धाइउ दुद्धरो णं कयंतो।
भडो को वि कोंतेण कोंतं सरंतो।
करे गीढ चक्को अरी संपहुत्तो।
भडो को वि खंडेहिं खंडी कयंगो,
भडन्तं ण मुक्को सगावो अभंगो।
भडो को वि संगाम भूमी घुलंतो,
विवण्णोहु गिद्धावली णीअ अंतो।
भडो को वि घाएण णिव्वट्ट सीसो,
असी वावरेई अरी साण भीसो।
भडो को वि रत्तप्पवाहे तरंतो,
फुरंतप्पएणं तडि सिग्घपत्तो।
भडो को वि हत्थी विसाणेहिं भिण्णो,
भडो को वि कंठद्ध छिण्णो णिसण्णो।

घत्ता—तहिं अवसरि णियसेण्णु पेच्छिवि सर-जज्जरियउ।
धायिउ भुय तोलंतु जउ वहु मच्छर भरियउ॥ ६. १२

कवि ने भाषा मे अनुरणात्मक शब्दो का प्रयोग भी किया है—

डम डमिय डमरु वसयागहिर सद्दाइं, दों दों तिकय दिविलु उद्दिठयणिणद्दाइं।
भं भंत उच्च सर भेरी गहीराइं, घण घा यरुण रुणिय जय घंट साराइं।
कडरडिय करडेहिं भुवणेक्क पूराइं, घुम घुमिय मद्दलहिं वज्जियइं तूराइं॥ ६. १०

काव्य मे कवि ने खंडय, जभेट्टिया, दुवई, उवखडय, आरणाल, गलिलय, दोहय, वस्तु, मजरी आदि छन्दो का सन्धियो के आरम्भ मे प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त पद्धडिया, पादाकुलक, समानिका, मदनावतार, भुजंग प्रयात,सग्गिणी, कामिनी, विज्जुमाला, सोमराजी, सरासणी, णिसेणी, वसत चच्चर, द्रुतमध्या, मदरावली, मदनशेखर आदि छन्दो का भी प्रयोग किया गया है।

कवि ने अठारहवी सन्धि में कडवको के आरम्भ मे दोहयं का प्रयोग किया है। तुक प्रेम के कारण दोहे के प्रथम और तृतीय चरण मे भी तुक मिलाई गई है—

कोइ णु कासु वि दुह सुहइं, करइ ण को वि हरेइ।
अप्पाणेण विढत्तु वढ, सयलु वि जीउ लहेइ॥ १८.९

सील रयणु वय किंति घरु, सव्व गुणेंहिं सउण्णु।
सो धणवंतउ होइ णरु, सो तिहुयण कय पुण्णु॥
१८.११

पज्जुण्ण चरिउ (प्रद्युम्न चरित)

सिंह विरचित १५ सन्धियो का अप्रकाशित काव्य है। तीन हस्तलिखित प्रतिया आमेर शास्त्र भण्डार मे विद्यमान है (प्र० सं० पृष्ठ १३२-१३८)।

कवि के पिता का नाम रल्हण और माता का जिनमती था। ग्रन्थ को कवि ने अपनी माता के अनुरोध से बनाया। ग्रन्थ की सन्धियो के आरम्भ मे संस्कृत भाषा मे पद्य भी दिये हुए है जिनसे प्रतीत होता है कि कवि सस्कृत का भी ज्ञाता था।[1] कवि ने अपने

---

१. **यत्काव्यं चतुराननास्तु नितरं सत्पद्म मातन्वतः**
स्वैरं भ्राम्यति भूमि भागमखिलं कुर्वन्वलक्षं क्षणात्।
तेनेदं प्रकृतं चरित्र मसमं सिद्धेन नाम्ना परं
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्ण्ण सुखदं श्री पूर्व्व देव द्विषः॥ २.१
छंदालंकृत लक्षणं न पठितं नाश्रावि तर्कागमः
ज्योतिं हंत न कर्ण्ण गोचर चरं साहित्य नामापि च।
सिंहः सत्कविरग्रणी समभव त्प्राप्य प्रसादं वरं
वाग्देव्या सुकवित्वया जयतु सामान्यो मनसं प्रिया॥ १४.१

ापको चार भाषाओं में निपुण कहा है ।[१] ये चार भाषायें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और शी ही हो सकती है । कवि ने यद्यपि काव्यारम्भ में विनय प्रदर्शित करते हुए अपने ापको तक, छन्द, लक्षण, समास, सन्धि आदि के ज्ञान से रहित बतलाया है तथापि वि स्वभाव से अभिमानी था । अपनी काव्य-प्रतिभा का उसे गर्व था । पद्रहवी सन्धि के ारम्भ में दिये एक पद्य से यह बात पुष्ट होती है ।[२] कवि गुर्जर वंश मे उत्पन्न हुआ था ौर उस वश में सूर्य के समान था (गुज्जर कुल णह उज्जोय भाणु) । सिंह अमृत चन्द्र शिष्य थे ।

काव्य में सन्धियो की पुष्पिकाओ में सिंह और सिद्ध दोनो नाम मिलते हैं । प्रथम ाठ सन्धियो की पुष्पिकाओ मे सिद्ध और अन्य सन्धियो की पुष्पिकाओ मे सिंह मिलता ।[3] अत कल्पना की गई कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्ति के नाम थे । वह कही पने आपको सिंह और कही सिद्ध कहता है । यह भी कल्पना की गई कि ाह और सिद्ध नामक दो कवियो ने रचना की । यही अनुमान अधिक सगत ीत होता है क्योकि काव्य के प्रारम्भ में सिद्ध के माता पिता के नाम और ागे सिंह के पिता का नाम भी भिन्न मिलता है । पं० परमानन्द जैन का अनुमान कि सिद्ध कवि ने प्रद्युम्न चरित्र का निर्माण किया था । कालवश यह ग्रन्थ नष्ट हो ाा और सिंह ने खडित रूप से प्राप्त इस ग्रन्थ का पुनः उद्धार किया ।[४] प्रो० हीरालाल न का भी यही विचार है ।[५] इसकी पुष्टि एक हस्तलिखित प्रति मे ग्रथ की अन्तिम ष्पिका से होती है जिसमें सिद्ध और सिंह दोनो का नाम दिया हुआ है ।[६] पज्जुण्ण

---

१. यत्र श्री जिन धर्म कर्म्म निरतः शास्त्रार्थ सर्व्व प्रियः
भाषाभिः प्रवणश्चतुर्भिरभवत् श्री सिंह नामा कविः ।
पुत्रो रल्हक पंडितस्य मतिमान् श्री गुर्जरामोमिह
इष्ट ज्ञान चरित्र भूषित तनुः विस्पे विशाले वनौ ॥ प० च० १३.१

२. साहाय्यं समवाप्य नात्र सुकव प्रद्युम्न काव्यस्य यः
कर्त्ताभूद् भव भेदनैक चतुरः श्री सिंह नामः समा
साम्यं तस्य कवित्व गर्व सहितः को नाम जातो वनौ
श्रीमज्जैन मत-प्रणीत सुपथे सार्थ प्रवृत्तिं क्षमः ॥ १५.१

३. इय पज्जुण कहाए, पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खाए,
कइ सिद्ध वि रइयाए पठमो संधी परिसमत्तो ।
इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोखाए वुहरल्हण सुव कइ सीह
विरइयाए नवमो संधी परिछेऊ समत्तो ।

४. पं० परमानन्द जैन—महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित, अनेकान्त वर्ष ८, किरण १०–११, पृ० ३९१,

५. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३

६. इति प्रद्युम्न चरित्रं सिद्ध तथा सिंह कवेः कृतं समाप्तं ।

डम डमिय डमरु वसयागहिर सद्दाइं, दों दों तिकय दिविलु उट्ठियणिणद्दाइं।
भं भंत उच्च सर भेरी गहीराइं, घण घा यरुण रुणिय जय घंट साराइं।
कडरडिय करडेंहि भुवणेक्क पूराइं, धुम धुमिय मद्दलहिं वज्जियइं तूराइं॥ ६. १०

काव्य में कवि ने खंडय, जभेट्टिया, दुवई, उवखडय, आरणाल, गलिलय, दोहय, वस्तु, मजरी आदि छन्दो का सन्धियो के आरम्भ में प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त पद्धडिया, पादाकुलक, समानिका, मदनावतार, भुजंग प्रयात,सग्गिणी, कामिनी, विज्जुमाला, सोमराजी, सरासणी, णिसेणी, वसत चच्चर, द्रुतमध्या, मदरावली, मदनशेखर आदि छन्दो का भी प्रयोग किया गया है।

कवि ने अठारहवी सन्धि मे कडवकों के आरम्भ मे दोहयं का प्रयोग किया है। तुक प्रेम के कारण दोहे के प्रथम और तृतीय चरण में भी तुक मिलाई गई है—

कोइ णु कासु वि दुह सुहइं, करइ ण को वि हरेइ।
अप्पाणेण विढत्तु वढ, सयलु वि जीउ लहेइ॥ १८.९

सील रयणु वय किति धरु, सव्व गुणेंहि सउण्णु।
सो धणवंतउ होइ णरु, सो तिहुयण कय पुण्णु॥
१८.११

पज्जुण्ण चरिउ (प्रद्युम्न चरित)

सिंह विरचित १५ सन्धियो का अप्रकाशित काव्य है। तीन हस्तलिखित प्रतिया आमेर शास्त्र भण्डार मे विद्यमान हैं (प्र० स० पृष्ठ १३२-१३८)।

कवि के पिता का नाम रल्हण और माता का जिनमती था। ग्रन्थ को कवि ने अपनी माता के अनुरोध से बनाया। ग्रन्थ की सन्धियो के आरम्भ में संस्कृत भाषा मे पद्य भी दिये हुए हैं जिनसे प्रतीत होता है कि कवि सस्कृत का भी ज्ञाता था।[1] कवि ने अपने

---

१. यत्काव्यं चतुराननना ह्यु नितरं सत्पद्म मातन्वतः
स्वैरं भ्राम्यति भूमि भागमखिलं कुर्वन्वलक्षं क्षणात्।
तेनेदं प्रकृतं चरित्र मसमं सिद्धेन नाम्ना परं
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्ण्णं सुखदं श्री पूर्व्व देव द्विषः॥ २.१
छंदालंकृत लक्षणं न पठितं नाश्राविं तर्कागमः
ज्योतिं हंत न कर्ण्णं गोचर चरं साहित्य नामापि च।
सिंहः सत्कविरग्रणी समभव त्प्राप्य प्रसादं वरं
वाग्देव्या सुकवित्वया जयतु सामान्यो मनसं प्रिया॥ १४.१

आपको चार भाषाओ में निपुण कहा है ।[1] ये चार भाषायें सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और देशी ही हो सकती हैं । कवि ने यद्यपि काव्यारम्भ में विनय प्रदर्शित करते हुए अपने आपको तक, छन्द, लक्षण, समास, सन्धि आदि के ज्ञान से रहित बतलाया है तथापि कवि स्वभाव से अभिमानी था । अपनी काव्य-प्रतिभा का उसे गर्व था । पद्रहवी सन्धि के आरम्भ में दिये एक पद्य से यह बात पुष्ट होती है ।[2] कवि गुर्जर वंश मे उत्पन्न हुआ था और उस वश मे सूर्य के समान था (गुज्जर कुल णह उज्जोय भाणु) । सिंह अमृत चन्द्र के शिष्य थे ।

काव्य में सन्धियो की पुष्पिकाओ में सिंह और सिद्ध दोनो नाम मिलते हैं । प्रथम आठ सन्धियो की पुष्पिकाओ में सिद्ध और अन्य सान्धियो की पुष्पिकाओ मे सिंह मिलता है ।[3] अत. कल्पना की गई कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्ति के नाम थे । वह कही अपने आपको सिंह और कही सिद्ध कहता है । यह भी कल्पना की गई कि सिंह और सिद्ध नामक दो कवियो ने रचना की । यही अनुमान अधिक संगत प्रतीत होता है क्योकि काव्य के प्रारम्भ में सिद्ध के माता पिता के नाम और आगे सिंह के पिता का नाम भी भिन्न मिलता है । पं० परमानन्द जैन का अनुमान है किसिद्ध कवि ने प्रद्युम्न चरित्र का निर्माण किया था । कालवश यह ग्रन्थ नष्ट हो गया और सिंह ने खडित रूप से प्राप्त इस ग्रन्थ का पुनः उद्धार किया ।[4] प्रो०] हीरालाल जैन का भी यही विचार है ।[5] इसकी पुष्टि एक हस्तलिखित प्रति मे ग्रथ की अन्तिम पुष्पिका से होती है जिसमे सिद्ध और सिंह दोनो का नाम दिया हुआ है ।[6] पज्जुण्ण

---

१. यत्र श्री जिन धर्म कर्म्म निरतः शास्त्रार्थ सर्व्व प्रियः
भाषाभिः प्रवणश्चतुर्भिरभवत् श्री सिंह नामा कविः ।
पुत्रो रल्हक पंडितस्य मतिमान् श्री गुर्जरागोमिह
इष्ट ज्ञान चरित्र भूषित तनुः विस्ये विशाले वनौ ॥ प० च० १३.१

२. साहाय्यं समवाप्य नात्र सुकव प्रद्युम्न काव्यस्य यः
कर्त्ताभूद् भव भेदनैक चतुरः श्री सिंह नामः समां
साम्यं तस्य कवित्व गर्व सहितः को नाम जातो वनौ
श्रीमज्जैन मत-प्रणीत सुपथे सार्थ प्रवृत्तिं क्षमः ॥ १५.१

३. इय पज्जुण कहाए, पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खाए,
कइ सिद्ध वि रइयाए पठमो संधी परिसमत्तो ।
इय पज्जुण्ण कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोखाए वुहरल्हण सुव कइ सीह
विरइयाए णवमो संधी परिछेऊ समत्तो ।

४. पं० परमानन्द जैन—महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित, अनेकान्त वर्ष ८, किरण १०–११, पृ० ३९१,

५. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३

६. इति प्रद्युम्न चरित्रं सिद्ध तथा सिंह कवेः कृतं समाप्तं ।

चरिउ की अन्तिम प्रशस्ति में दी हुई गाथाओ से भी यही मत समीचीन प्रतीत होता है।[1] प्रो० हीरालाल जैन ने ग्रथ का काल ईसा की १२वी सदी का पूर्वार्द्ध माना है।[2] पं० परमानन्द जैन ने ग्रथ का रचना काल विक्रम की १३वी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग माना है।[3]

कवि ने जैन सम्प्रदायानुसार २४ कामदेवो मे से २१वे कामदेव कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र का १५ सन्धियो मे वर्णन किया है। रुक्मिणी से उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न को, पूर्व जन्म के कर्मो के अनुसार, एक राक्षस उठा कर ले जाता है। प्रद्युम्न वही बडे होते हैं और फिर बारह वर्ष के बाद कृष्ण से आकर मिलते हैं।

ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से हुआ है--

स्वस्ति। ॐ नमो वीत रागाय।

खम दम जम निलयहो, तिहुयणतिलयहो, वियलिय कम्म कलंकहो।
थुइ करमि स सत्तिए, अइणिरु भत्तिए, हरि कुल गयण ससंकहो॥

इसके अनन्तर कवि ने जिन नाथ वन्दन, सरस्वती वन्दन और आत्म विनय प्रदर्शित किया है—

तं सुणेवि कवि सिद्धु जपए, मज्झु माए णिरु हियउ कंपए।
कव्व बुद्धि चितंतु लज्जिउ, तक्क छंद लक्खण विवज्जिउ।
णवि समासु णविहत्तिकारउं, संधि सुत्त गंथह असारउं।
कव्वु कोवि ण कयावि दिट्ठऊ, महु णिघंटु केण वि ण सिद्धऊ।
तेण वहिणि चितंतु अछमि, खुज्जहो वि तालफलु वंछमि।
अंधु हो वि णवणट्ट पिछिरो, गेय सुणणि वहिरो वि इछिरो। १.३

कवि ने परपरागत दुर्जन स्मरण भी किया है—

ता सिद्ध भणइं महु गरुय सकं, दुज्जणहु ण छुट्टइ रवि मयंक।
तहिं पुणु अम्हारिस कवण मत्त, ण मुणहिं जि कयावि कवित्त वत्त।
१.४

कवि की काव्य शैली का उदाहरण देखिये। कवि परिसंख्यालकार द्वारा सौराष्ट्र देश का वर्णन करता है—

मय संगु करिणि जहिं वेए कंडु, खरदंडु सरोरुहु ससि सखंडु।
जहिं कव्वे बंधु विग्गहु सरीरु, धम्माणु रत्तु जणु पाव भीरु।

---

१. संभवइ वहु विग्घं, मणुवाणं सेयमग्ग लग्गाण।
मा होहि सिढिलो विरयहि कप्पवं तरंतो वि॥
सुहअ सुहण वियाणवि, चित्तं धीर वि ते अए धण्णा।
पर कज्जं पर कव्वं, विहडं ते जेहि उद्धरिय॥

२. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३।

३. अनेकान्त वर्ष ८, किरण १०–११, पृ० ३९३.

थट्टत्तणु मलणु वि मण हराह, वर तरुणी पीण घण थण हराहं।
हय हिंसणि रायणि हेलणेसु, खलि विगयणेहु तिल पीलणेसु।
मज्झण्णयाले गुण गण हराहँ, परयार गमणु जहिं मुणि वराहं।
पिय विरहु वि जहिं कइ वउकसाउ, कुडिल विज्जुव इहिं कुंतल कलाउ।
१.९

निम्नलिखित उद्धरण में कवि ने कृष्ण और सत्यभामा का वर्णन किया है। वर्णन में कवि की दृष्टि वस्तु के सविस्तार वर्णन पर न जाकर सक्षेप से ही सन्तुष्ट हो जाती है—

घत्ता—
चाणउर विमद्दणु, देवइणंदणु, संख चक्क सारंगधरु।
रणि कंस खयंकरु, असुर भयंकरु, वसुह तिखंडहं गहिय करु॥
१.१२

रजो दाणव माणव दलइ दप्पु, जिणि गहिउअसुर णर खयर कप्पु।
णव णव जोव्वण सुसणोहराइं, चक्कल घण पीण पउं हराइं।
छण इदं विवसम वयणि याहं, कुवलय दल दीहर णयणियाहं।
केऊर हार कुंडल धराहं, कण कण कणंत कंकण कराहं।
कयरं खोलिर पयणेउराहं, सोलह सहसइं अंतेउराहं।
तह मज्झि सरस ताम रस मुहिय, जा विज्जाहरहंसु केउ दुहिय।
सइं सव्व सुलक्खण सुस्सहाव, णामेण पसिद्धिय सच्चहाव।
दाडिम कुसुमाहर सुद्धसम्म, अइ वियडर मणणिरु मज्झ खाम।
ता अग्ग महिसि तहो सुंदरासु, इंदाणि व सग्गि पुरंदरासु।
१.१३

सनत्कुमार चरित[1] (नेमिनाथ चरित)

हरिभद्र रचित नेमिनाथ चरित का एक अंश सनत्कुमार चरित के नाम से प्रकाशित हुआ है। नेमिनाथ चरित के ४४३ पद्य से ७८५ पद्य तक अर्थात् ३४३ रड्डा पद्यो में सनत्कुमार का चरित मिलता है।

हरिभद्र श्वेताम्बर जैन थे। यह जिनचन्द्र सूरि के शिष्य श्रीचन्द्र के शिष्य थे। कवि ने ग्रन्थ रचना अणहिल पाटन-पत्तन में वि० सं० १२१६ में की थी।[2] हरिभद्र ने चालुक्य वशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय में रह कर अपने ग्रंथ की रचना की थी। कवि ने मल्लिनाथ चरित नामक ग्रंथ प्राकृत में लिखा।

---

१. सनत्कुमार चरितम्—डा० हरमन जैकोबी द्वारा संपादित, जर्मनी, १९२१ ई०
२. वही पृ० १५४, पद्य २१

चरिउ की अन्तिम प्रशस्ति मे दी हुई गाथाओ से भी यही मत समीचीन प्रतीत होता है।[1] प्रो० हीरालाल जैन ने ग्रथ का काल ईसा की १२वी सदी का पूर्वार्द्ध माना है।[2] प० परमानन्द जैन ने ग्रथ का रचना काल विक्रम की १३वी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग माना है।[3]

कवि ने जैन सम्प्रदायानुसार २४ कामदेवो मे से २१वे कामदेव कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र का १५ सन्धियो मे वर्णन किया है। रुक्मिणी से उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न को, पूर्व जन्म के कर्मो के अनुसार, एक राक्षस उठा कर ले जाता है। प्रद्युम्न वही बडे होते है और फिर बारह वर्ष के बाद कृष्ण से आकर मिलते है।

ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से हुआ है--

स्वस्ति। ॐ नमो वीत रागाय।
खम दम जम निलयहो, तिहुयणतिलयहो, वियलिय कम्म कलंकहो।
थुइ करमि स सत्तिए, अइणिरु भत्तिए, हरि कुल गयण ससंकहो॥

इसके अनन्तर कवि ने जिन नाथ वन्दन, सरस्वती वन्दन और आत्म विनय प्रदर्शित किया है—

तं सुणेवि कवि सिद्धु जपए, मज्झु माए णिरु हियउ कंपए।
कव्व बुद्धि चितंतु लज्जिउ, तक्क छंद लक्खण विवज्जिउ।
णवि समासु णविहत्तिकारउं, संधि सुत्त गंथह असारउं।
कव्वु कोवि ण कयावि दिट्ठऊ, महु णिघंटु केण वि ण सिद्धऊ।
तेण वहिणि चितंतु अच्छमि, खुज्जहो वि तालफलु वंछमि।
अंधु हो वि णवणट्ट पिच्छिरो, गेय सुणणि वहिरो वि इच्छिरो। १.३

कवि ने परपरागत दुर्जन स्मरण भी किया है—

ता सिद्ध भणइं महु गरुय सकं, दुज्जणहु ण छुट्टइ रवि मयंक।
तहिं पुणु अम्हारिस कवण मत्त, ण मुणहिं जि कयावि कवित्त वत्त।
१.४

कवि की काव्य शैली का उदाहरण देखिये। कवि परिसंख्यालकार द्वारा सौराष्ट्र देश का वर्णन करता है—

मय संगु करिणि जहिं वेए कंडु, खरदंडु सरोरुहु ससि सखंडु।
जहिं कव्वे बंधु विग्गहु सरीरु, धम्माणु रत्तु जणु पाव भीरु।

---

१. संभवइ बहु विग्घं, मणुवाणं सेयमग्ग लग्गाण।
मा होहि सिढिलो विरयहि कव्वं तरंतो वि॥
सुहअ सुहण वियाणवि, वित्तं धीर वि ते अए धण्णा।
पर कज्जं पर कव्वं, विहडं ते जेहिं उद्धरियं॥
२. नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, सन् १९४२, पृ० ८२-८३।
३. अनेकान्त वर्ष ८, किरण १०-११, पृ० ३९३.

थट्टत्तणु मलणु वि मण हराहं, वर तरुणी पीण थण थण हराहं ।
हय हिंसणि रायणि हेलणेसु, खलि विगयणेहु तिल पीलणेसु ।
मज्झण्णयाले गुण गण हराहं, परयार गमणु जहिं मुणि वराहं ।
पिय विरहु वि जहिं कड्डु वउकसाउ, कुडिल विज्जुव इहिं कुंतल कलाउ ।
१.९

निम्नलिखित उद्धरण में कवि ने कृष्ण और सत्यभामा का वर्णन किया है । वर्णन में कवि की दृष्टि वस्तु के सविस्तार वर्णन पर न जाकर सक्षेप से ही सन्तुष्ट हो जाती है—

घत्ता—

चाणउर विमद्दणु, देवइंणंदणु, संख चक्क सारंगधरु ।
रणि कंस खयंकरु, असुर भयंकरु, वसुह तिखंडहं गहिय करु ॥
१.१२

रजो दाणव माणव दलइ दप्पु, जिणि गहिउअसुर णर खयर कप्पु ।
णव णव जोव्वण सुमणोहराइं, चक्कल घण पीण पउं हराइं ।
छण इंदं विंवसम वयणि याहं, कुवलय दल दीहर णयणियाहं ।
केऊर हार कुंडल धराहं, कण कण कणंत कंकण कराहं ।
कयरं खोलिर पयणेउराहं, सोलह सहसइं अंतेउराहं ।
तह मज्झि सरस ताम रस मुहिय, जा विज्जाहरहंसु केउ दुहिय ।
सइं सव्व सुलक्खण सुस्सहाव, णामेण पसिद्धिय सच्चहाव ।
दाडिम कुसुमाहर सुद्धसाम, अइ वियडर मणणिरु मज्झ खाम ।
ता अग्ग महिसि तहो सुंदरासु, इंदाणि व सग्गि पुरंदरासु ।
१.१३

सनत्कुमार चरित[1] (नेमिनाथ चरित)

हरिभद्र रचित नेमिनाथ चरित का एक अश सनत्कुमार चरित के नाम से प्रकाशित हुआ है । नेमिनाथ चरित के ४४३ पद्य से ७८५ पद्य तक अर्थात् ३४३ रड्डा पद्यो में सनत्कुमार का चरित मिलता है ।

हरिभद्र श्वेताम्बर जैन थे । यह जिनचन्द्र सूरि के शिष्य श्रीचन्द्र के शिष्य थे । कवि ने ग्रंथ रचना अणहिल पाटन-पत्तन में वि० सं० १२१६ में की थी ।[2] हरिभद्र ने चालुक्य वशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय में रह कर अपने ग्रंथ की रचना की थी । कवि ने मल्लिनाथ चरित नामक ग्रंथ प्राकृत में लिखा ।

---

१. सनत्कुमार चरितम्—डा० हरमन जैकोबी द्वारा संपादित, जर्मनी, १९२१ ई०
२. वही पृ० १५४, पद्य २१

इसके अतिरिक्त कवि की चन्द्रप्रभ चरित नामक एक अन्य कृति का भी उल्लेख मिलता है ।[1]

कथानक—सनत्कुमार चरित यद्यपि नेमिनाथ चरित का एक भाग है किन्तु कथानक की दृष्टि से अपने आप मे पूर्ण-स्वतंत्र प्रतीत होता है। कवि इसके आरम्भ मे जम्बु-द्वीप, भरत खड, और गजपुर का काव्यमय भाषा मे वर्णन करता है। सनत्कुमार गजपुर के राजा अश्वसेन और उनकी रानी सहदेवी के पुत्र थे। धीरे-धीरे सनत्कुमार बड़े होते है, अनेक शिक्षाये प्राप्त कर युवावस्था मे पदार्पण करते है। एक दिन मदनोत्सव के अवसर पर सनत्कुमार उद्यान मे एक स्त्री को देख उस पर मुग्ध हो जाते है। युवती भी उनके सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाती है। दोनो मदनायतन मे मिलते है और अपनी प्रेम भावना को अभिव्यक्त करते है। इसी बीच भोजराज पुत्र, जलधि कल्लोल नामक एक प्रसिद्ध घोडा सनत्कुमार को भेट करता है। पवन से और मन से भी वेगवान अश्व एक दिन कुमार को लेकर दूर देश जा निकलता है। राजधानी मे कोलाहल और हाहाकार मच जाता है। सनत्कुमार का मित्र अश्वसेन उसकी खोज मे निकल पडता है। ढूढता-ढूढता और भटकता-भटकता अश्वसेन मानस सरोवर जा पहुँचता है। बीच के मार्ग में अनेक जगल आते है, अनेक ऋतुएँ अपनी मोहकता लिये उसके आगे आती है। इनका कवि ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। मानस मे अश्वसेन एक किन्नरी को मधुर कंठ से कुमार का गुणगान करते हुए सुनता है। उसी से इसे सनत्कुमार का वृत्तान्त ज्ञात होता है। इस बीच सनत्कुमार अनेक रमणियो से विवाह कर लेते है । कदाचित् मदनोत्सव पर वह जिस युवती पर मुग्ध हुए थे उसे एक यक्ष हर ले गया था। उन दोनो का यहाँ मेल हो जाता है और यह मिलन विवाह में सम्पन्न होता है। कुमार के इस भोग-मय जीवन के बाद उनके अनेक वीर एव पराक्रम कार्यों का कवि ने वर्णन किया है। इसी बीच मुनि अर्चिमाली कुमार के पूर्वजन्मो का वृत्तान्त सुनाते है।

इसके अनन्तर फिर कुमार के अनेक विवाहो का वर्णन है। इतने मे ही कुमार का बाल्यसखा महेन्द्र वहाँ पहुँचता है और उसके मुख से अपने माता-पिता की दुर्दशा का समाचार सुन कर वह गजपुर लौट पड़ते है।

कुमार का पिता अश्वसेन उसे राज्य देकर स्वय विरक्त हो जाता है। समस्त पृथ्वी को वशवर्ती करते हुए सनत्कुमार पूर्ण चक्रवर्ती पद को प्राप्त करते है। इन्द्रादि देवता उनका अभिषेक करते है। उनके अमिततेज और सौदर्य का वर्णन करते है। सनत्कुमार अपने रूप को अस्थायी समझ विरक्त हो जाते है और विरक्त हो घोर तपस्या करते है। देवता आ आकर उनसे आशीर्वाद लेते है। ऋषि सनत्कुमार लाखो वर्ष तपस्या करते हुए स्वर्ग को प्राप्त करते है।

कथानक अन्य चरित काव्यो के समान वीर और शृंगार के वर्णनों से युक्त है। दोनो का पर्यवसान शान्त रस में होता है। अन्य चरित काव्यो की अपेक्षा प्रेम तत्व कुछ

---

१. जिन रत्न कोष, पृ० ११९

अधिक प्रस्फुरित हो सका है। प्रेम के शृंगार पक्ष के अतिरिक्त वियोग का भी वर्णन मिलता है अतएव कथा में कुछ स्वाभाविकता आ गई है। ग्रंथान्तर्गत काव्यमय वर्णनों में ऋतुओं का वर्णन[1] विशेष आकर्षक है।

कवि प्रात काल का वर्णन करता हुआ कहता है—

"तपणु वियलिर तिमिर धम्मिलु परिल्हसिर तारय वसण
कलयलंत तरु सिहर पक्खिय।
परिसंदिर कुसुम-महु-बिंदु मिसिणएँ पइ वड्डक्खिय।
....
हरिय तारय-रेणु-नियरं मिअइ निप्पहे दोसयरे, निम्मलं मि
गयणयले चड्डिउ ।
रवि रेहइ कणयमउ-मंगलज्जुनं कलसु मंडिउ।
भमरा धावँहि कुमुइणिउ उब्भिवि कमलवणेसु,
कस्सव कहिँ पडिबंधु जगे चिरपरिचिय-गणेसु।
विरह विहुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणंद,
हुय तुट्ठ भमहिं पहियण महियले।
कोसिय-कुलु एक्कु परिदुहिउ रविहिं आरूढे नहयले॥
(७ वीं सन्धि)

निम्नलिखित वसंत-वर्णन मे भी अलंकृत, और साहित्यिक परंपरागत बाण की वर्णन शैली के दर्शन होते हैं—

"जहिं पवालं कुरेहिं कयसोह डिंभाइँ 'व तिलयकय गरुय-
महिम कामिणि मुहाइँ 'व।
बहु लक्खण चित्त-सय मणहराइं नर-वइ-गिहाइँ 'व।
उत्तिम जाइ प्पसवकय-महिमंडणाइं वणाइँ
विलसइं भुवणाणंदयर, नं नरनाह कुलाइँ॥
जहिय विज्ज सिय कुसुम कणियार-वणराइ कंचणमय व कुणइ
पहिय हिययाण विब्भमु।
अहिकंखहिँ भुवणयले सयल मिहुण नियदइय-संगमु।
गिज्जहिँ रासहिँ चच्चरिउ, पेज्जहिँ वर महराउ।
माणिज्जहिँ तुंगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउँ॥
(वही सन्धि ४)

कवि का नारी-सौन्दर्य वर्णन देखिये—

जीए रयणिहिं तणु किरणमालच्चिय दीव सिव सोह मेतु मंगल पईवय।
सवणाण विहुसणइँ नयणकमल विइ मेत्त मेवय ।

---

१. सनत्कुमार चरित—पद्य ५३८-५५०.

गंडयलच्चिय तिमिर-हर, जगे पहु ससि-रवि-संख ।
सवण जे अंदोलय ललिय, विहल महुहु आकंख ।।
जणु सुहावहिँ मुहह निसास किं मलयानिल भरेण,
दंत किरण धवल किहिँ चंदेण ।
अहरो वि हु रंजवइ जगु विकइण किं अंगरागेण ।
रसण पउच्चिय मिउफरि, सूनपा-मयण सयणेज्ज ।
नहमणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम वयारह कज्जु ।।
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कठिण
तुज्झ रूव मज्झ पएसेण ।
अच्चंत वाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण ।
इय सा सयलुवि जगु जिणइ, निय-गुण-दोस-सएण ।।
(वही सन्धि ७)

वह नारी अपने किरण मालार्चित शरीर से रात्रि मे मगलमय प्रदीप शिखा के समान प्रतीत होती थी। कर्ण-कुण्डल आन्दोलित होने पर हृदय को आन्दोलित कर देते थे।* उसके सुखद मुख नि श्वास से मलयानिल, दत-किरणो की धवलिमा से चन्द्र, अधरो के राग से अंगराग व्यर्थ प्रतीत होते थे।

निम्नलिखित नारी-विलाप वर्णन मे स्वाभाविकता है। शोकावेग नारी-हृदय तक ही सीमित नही रहता, उससे धरणी और गगन का अन्तराल भी भर गया है। पद-योजना भी भावानुकूल ही हुई है। देखिये—

हरिण-णयणिय चंपयच्छाय ससि सोम वयणंबुरुह,
कुंद-कलिय-सम-दंत-पंतिया ।
परिदेवियरव-भरिय धरणि गयण अन्तरमय विय ।।
कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु वादाहिँ ।
ताडहिँ वच्छोरुह वियउ, निय-करसाहाहिँ ।।
रुयहिँ गायहिँ ललहिँ मुच्छहिँ सिक्कारहिँ पुक्कारहिँ,
सहिहि गहियउ उरे हार तोडहिँ ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वलयालि मोडहिँ ।।
सरवि सरवि निय-पियय मह्, गुण गुण तहिँ विलवंति ।
जह स विहट्ठिय तरु विहय, नियरु वि रोयावंति ।।
(वही संधि ६)

जिणदत्त चरित

जिणदत्त चरिउ अभी तक प्रकाशित नही हुआ। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे है (प्र० सं० पृष्ठ १०१-१०४)।

इसमें पण्डित लाखू या लक्खण ने ग्यारह संधियों में जिनदत्त के चरित्र का वर्णन किया है। कवि के पिता का नाम साहुल और माता का नाम जयता था। कवि ने विल्ल-रामिपुर में इस ग्रथ की रचना की। कवि पहिले त्रिभुवन गिरि में रहता था। म्लेच्छाधिप द्वारा बलपूर्वक त्रिभुवन गिरि के आधीन किये जाने पर कवि वहाँ से जाकर विल्लरामिपुर रहने लगा।[1] प० परमानन्द के विचार में विलरामिपुर एटा जिले के अन्तर्गत वर्तमान विलरामपुर ही है।[2] कवि ने श्रीधर के आश्रय में रहते हुए उसी के अनुरोध से ग्रंथ की रचना की। प्रत्येक संधि की पुष्पिका में श्रीधर का नाम मिलता है[3] और कुछ संधियों के आरम्भ में कवि ने श्रीधर के मगल की कामना की है। ग्रंथ रचना का समय वि० सं० १२७५ है।

"बारह सय सत्तरयं पंचोत्तरयं, विक्कम कालि विइत्तउ।
पढम पक्खि रवि वारइ च्छट्टि सहारइ, पूसमासे सम्मत्तिउ॥"
(अन्तिमप्रशस्ति)

कथानक—कवि जिन वन्दना, सरस्वती वन्दना के अनन्तर जंबुद्वीप, भरत क्षेत्र और मगध देश का अलकृत भाषा में वर्णन करता है। मगध राज्यान्तर्गत वसन्तपुर नगर के राजा शशि-शेखर और उसकी रानी मयना सुन्दरी के वर्णन के अनन्तर कवि उस नगर के श्रेष्ठी जीवदेव और उसकी स्त्री जीवजसा के सौंदर्य का वर्णन करता है। जीवजसा जिन कृपा से एक सुन्दर पुत्र को जन्म देती है, जिस का नाम जिनदत्त रखा जाता है। क्रमशः बालक युवावस्था में पदार्पण करता है अपने सौंदर्य से नगर की युवतियों के मन को मुग्ध करता है। अगदेशस्थित चपा नगरी के सेठ की सुन्दरी कन्या विमलमती से उसका विवाह होता है। इसी प्रसंग में कवि ने रात्रि, चंद्रोदय आदि के सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं।

---

१. साहुलहु सुप्पिय पियमय मणुज्ज, णामें जयता कय णिलय कज्ज।
ताह जि णंदणु लक्खणु सलक्खु, लक्खण लक्खिउ-सयदल दलक्खु।
विलसिय विलास रस गलिय गव्व, ते तिहुअण गिरि णिवसंति सव्व।
सो तिहुवण गिरि भग्गउ जवेण, घित्तउ बलेण मिच्छाहिवेण।
लक्खणु सव्वा उस माणुसाउ, विच्छोयउ विहिणा जणियराउ।
सो इत्थु तत्थ हिंडंतु पत्तु, पुरे विल्लरामि लक्खणु सुपत्तु।
१.२

२. पं० परमानन्द जैन, कवि वर लक्ष्मण और जिन दत्त चरित, अनेकान्त वर्ष ८, किरण १०–११, पृ० ४०१।

३. इय जिणयत्त चरित्ते धम्मत्थ काम मुक्ख वण्णणुब्भाव सुपवित्तें,
सगुण सिरि साहुल सुय लक्खण–विरइए भव्वसिरि सिरिहरस्स
णामंकिए जिणयत्त कुमारुप्पत्ति
विरह वण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ सम्मत्तो।
(सन्धि १)

विवाह के पश्चात् वे दोनो कुछ काल सुखपूर्वक रहते है, तदनन्तर जिनदत्त धनोपार्जन की इच्छा से व्यापार करने के लिए अनेक वणिको के साथ समुद्र यात्रा करता हुआ सिंहल द्वीप पहुँचता है। वहाँ के राजा की सुन्दरी राजकुमारी श्रीमती उमसे प्रभावित होती है। दोनो का विवाह होता है। जिनदत्त श्रीमती को जिनधर्म का उपदेश देता है। कालान्तर मे जिनदत्त प्रभूत धन-सपत्ति उपार्जित कर अपने साथियो के साथ स्वदेश लौटता है। ईर्ष्या के कारण उसका एक सबधी धोखे से उसे समुद्र मे फेक देता है और स्वयं श्रीमती से प्रेम का प्रस्ताव करता है। श्रीमती पति-प्रेम मे दृढ रहती है। वे चपा नगरी पहुँचते हैं। श्रीमती चपा मे एक चैत्य मे पहुँचती है। जिनदत्त भी भाग्य से बच जाता है और मणिद्वीप पहुँच कर शृंगारमती से विवाह करता है। वहाँ से कपट वेश मे वह चम्पा नगरी पहुँचता है। वहाँ श्रीमती विमलवती की सब से भेट होती है और जिनदत्त उनके साथ अपने घर वसन्तपुर पहुँचता है। माता पिता की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। जिनदत्त सुखपूर्वक समय बिताता हुआ अन्त मे समाधिगुप्त नामक मुनि से धर्म मे दीक्षित होता है। तपस्या करता हुआ शरीर त्याग के अनन्तर निर्वाण प्राप्त करता है।

धर्म के आवरण से आवृत एक सुन्दर प्रेम कथा का कवि ने वर्णन किया है। चित्र में विमलमती के सुन्दर रूप को देख कर जिनदत्त और विमलमतो का विवाह होता है। कथानक अन्य कथानको के समान अनेक अलौकिक घटनाओ से युक्त है। उदाहरण के लिए श्रीमती के पेट में एक विषधर सर्प का होना। उसके सो जाने पर वह सर्प निकल कर श्रीमती के अनेक प्रेमी राजकुमारो की जीवन लीला समाप्त कर देता था। जिनदत्त ने उस सर्प को मारा। सिंहलद्वीप में जाकर किसी सुन्दरी राजकुमारी से विवाह करने और प्रभूत धन संपत्ति प्राप्त कर लौटने की कथा उत्तर काल मे जायसी की पद्मावती में भी मिलती है। सम्भवत यह कथा चिरकाल से चली आ रही थी।

काव्य मे स्थल-स्थल पर सुन्दर वर्णन मिलते है। अतिम संधियाँ काव्यगत सरसता से रहित है।

कवि ने निम्नलिखित जिन वन्दना से ग्रथ का आरम्भ किया है—

ॐ नमो वीतरागाय।

सप्पय सर कल हंसहो, हिय कल हंसहो, कलहंसहो सेयंसवहा।
भणमि भुवण कल हंसहो, णविवि जिणहो जिणयत्त कहा ॥[1]

अर्थात् मोक्ष सरोवर के मनोज्ञ हस, कलह के अश को हरण करने वाले, करि

१. पद्य की निम्नलिखित संस्कृत टिप्पणी दी गई है—
सप्पय......—मोक्ष सर मनोज्ञ हंसस्य। हिय कल.......—हृत कलहस्यांशो येन। कलहंसहो.....—कलभस्य च करि पोतकस्य चांशौ यस्य तस्य कलभांशस्य करिशावकवदुन्नतस्कंधस्येत्यर्थः। भुवण कल....—कलो मनोज्ञो हंस आदित्य इव स तस्य। रजो अज्ञान लक्षणं तस्य याः कलाः तासां भ्रंशो यस्मात् तस्य।

श्रावक के समान उन्नत स्कंध वाले और भुवन मे मनोज्ञ हंस-आदित्य-के समान जिन देव की वन्दना कर मंगलकारिणी जिनदत्त कथा कहता हूँ।

कवि के यमकालंकर युत मंगलाचरण से ही उसके पांडित्य की ध्वनि मिलती है।

कृति के आरम्भ मे ही कवि ने अपना और अपने आश्रय-दाता का परिचय दिया है। श्रीधर से प्रेरणा पाकर भी कवि दुर्जनो से भयभीत हो अपने पूर्ववर्ती अकलक, चतुर्मुख, कालिदास, श्रीहर्ष, व्यास, द्रोण, बाण, ईशान, पुष्पदन्त, स्वयभू, वाल्मीकि आदि कवियो का स्मरण करता है और आत्म-विनय भी प्रदर्शित करता है—

णिक्कलंकु अकलंकु चउम्मुहो, कालियासु सिरि हरिसु कयसुहो।
वय विलासु कइ वासु असरिसो, दोणु वाणु ईसाणु सहरिसो।
पुप्फयंतु, सुसयंभु भल्लऊ, वालम्मीउ समइं सुरसिल्लऊ।
इय कईउ भो मइ ण दिट्ठिया, फुरइ केम महु मइ वरिट्ठिया॥

१. ६

इन कवियो के काव्य के होते हुए भी कवि अपने काव्य-निर्माण की निम्नलिखित शब्दो द्वारा सार्थकता प्रतिपादित करता है—

इंद हत्थि जइ तित्थ भासए, लक्खु जोयणो महि पयासये।
इयरु दंति किं णउ सतेयऊ, पयडु करइ णिय वल समेयऊ।
चंदु देइ जइ अमिय फारऊ, ऊस हीण किं णिय पयारऊ।

१.६

कवि ने अपने काव्य में स्थल-स्थल पर अलकृत और काव्यमय वर्णन प्रस्तुत किये है। वर्णनो में अनुप्रास के साथ-साथ श्लेष और यमक अलंकार का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग किया गया है। इससे छन्द, लय युक्त होकर श्रुतिसुखद और हृदयहारी हो गये है। शब्द-योजना में कवि के चातुर्य से भाषा भी अत्यन्त सरल बन गई है। कवि की काव्य शैली के कुछ उदाहरण देखिये। कवि के भौगोलिक वर्णनो में भी विशेषता परिलक्षित होती है—

जहिं पवर पायवा राम राम, णिवसहि अमुणिय संगाम गाम।
जहिं पिक्क कमल कल सालि सालि, घर दारि दारि कलसालि सालि।
इच्छु वरहि जिह हरिणारि णारि, वणे वणे कोलिर सुअ सारि सारि।
रयण मय सोहार हार, भूमिउज्ज वईउ सतार तार।
जहि सीमंतिणिउ सकंत कंत, णायण णर वर णिवसंत संत।
जहि साहि सयल सविसाल साल, कीलंति मोट्ठि गोवाल वाल।

१.९

जहिं कलम सालि परिमलु सुसंतु, वावरइ वाउ वासिय दिसंतु।
णउ खिज्जइ दक्खारसु गलंतु, थल पुडइणि पत्तुप्परि पडंतु।
पिज्जइ गोवालहिं वाणरेहिं, जंह तंह गोवालहिं वा णेरहिं।

१. १०

जहिं सारि सरसि सरे सारसाइं, णं पुरहो पउर सर सा रसाइं।
....
जहिं पर मरगय मय वारणाइं, देवुल सिरि गय मय वारणाइं।
सुंदर अवि गयमय वारणाइं, जहिं अरिवर गयमय वा रणाइं ॥[1]

१. १३

अमदा समदा अपि रणरहिमानि

नारी-वर्णन मे कवि की दृष्टि नारी के बाह्यरूप तक ही सीमित न रही। सौंदर्य का प्रभाव भी कवि ने अंकित किया है। शरीर की सुकुमारता, कोमलता और मधुरता की व्यजना कवि ने कोमल और मधुर पदावली द्वारा की है। कवि का विमलावती वर्णन देखिये—

तहं वुहिय वुहरहिय विमलाइमइ कण्ण, कमणीय कुंडल अलक्कंत वरकण्ण।
उद्दित्त संतविय सोवण्ण सुपहाल, पिछंत जणमोहणो सहि व णेहाल।
लंबंत वेणी लया लंकरिय पिट्ठि, चेलंचला चारु चल हार लय सिट्ठि।
सेलिंध परिमल मिलंतालि संदोह, वियलंत गंडाउ सेयंवु विदोह।
कंचणहं घडियव्व पडिमेव सोहंति, वहु गेय कल कुसल मुणिमणु व मोहंति।
वहु गुणहं अहिय परि परपुट्ठि सम वाय, किं एक्क जीहाए वण्णियइ वणिराय ॥[2]

२. ७.

नारी के शारीरिक सौंदर्य का अंकन करते हुए भी कवि ने वासनाजनक शृङ्गार का रूप उपस्थित नही किया है। 'मुणि मणु व मोहंति' पद द्वारा शारीरिक सौंदर्य के हृदय पर पडने वाले प्रभाव की भी व्यजना की गई है।

कवि के प्राकृतिक वर्णन भी परंपरागत शैली से युक्त हैं। कवि ने चन्द्रोदय पर चारों ओर छिटकती हुई चन्द्रिका का भ्रान्तिमान् अलकार से समन्वित वर्णन प्रस्तुत

---

१. कमल कल सालि सा लि—कमल और मधुर शालि धान्य भ्रमर सहित थे। कलसा लि सालि—शाला में द्वार-द्वार पर कलशों की पंक्ति थी। सुअ सारि सारि—शुक सारिका और हंस। सोहार—सहाधार। सतार तार—शुभ्र चंचल और रुक्म। सकंत कंत—प्रिय के साथ और मनोज्ञ। संत—शान्त। साहि—शाखी, वृक्ष। सयल—सजल और शोभायमान। वाल—बालक, अज्ञानी। गोवालहिं—ग्वाले, राजा। सरसि—जल में। सरे—सरोवर में। सर—स्वर, शब्द। वारणाइं—गवाक्ष। गय मय वारणाइं—सिंह। गयमय वारणाइं—राजद्वार पर मदोन्मत्त हाथी। गयमय वारणाइं—मद रहित या मदोन्मत्त भी शत्रु रणरहित थे।

२. कण्ण—कन्या। वर कण्ण—सुन्दर कान। उद्दित्त संतविय—उद्दीप्त और तपाया हुआ। सेयंवु विदोह—प्रस्वेद जल कणों का समूह। परपुट्ठि सम वाय—कोयल के समान वाणी।

किया है। शवर स्त्रियाँ प्रसन्नचित्त से बेर के फलो को मोती समझ कर बीन रही हैं। उलूक कौए को हंस के बच्चे की भ्रान्ति मे विदीर्ण नही करता। ज्योत्स्ना-जल से समग्र विश्व प्रक्षालित हो गया। गृह मे गवाक्षजाल से आती हुई काम-बाधव चन्द्र किरणों को मयूर श्वेत सर्प समझ तत्क्षण दौड कर गवाक्ष में मुँह डालता है। बिल्ली दूध की भ्रान्ति से चन्द्र कर चाटती फिरती है इत्यादि। देखिये—

जं सरिण सपउरिस सिरि मुणेवि, कउ एय छत्तु इह जगु जिणे वि।
मत्ताहल भंतिए समरियणु, वीणइं बोरी हलु हवियमणु।
सिसु पट्टुल भंतिए लंपडऊ, काकहो ण वियारइ घूयडऊ।
जोण्हा जलेण जगु खालियउ, सीययरहिं सुहियणु लालियउ।
किं अंवराउ णिब्भर घणइं, विहडंति सुहाहिल कंकणइं।
किं सिरि चंदण रस सीयरइं, गयणाउ लुलिर ससहर करइं।
मयरद्धय बंधव चंद करा, गेहाण गवक्खए विसि विवरा।
मण्णेवि पंडुरु फणि वण फणिणा, घल्लिउ मुहुं धाइवि तक्खणिणा।
पेछिवि गोरस भंतिए वहइ, विसदंसउ णिय जीहए लिहए।
परिगिण्हइं वावड मुद्धडिया, मुत्ताहल हारहो लंपडिया।

घत्ता—

इय कइरव णंदिणि चंदिणिए, णिय वहूइ सुविसिट्ठउ,
कइ वय परियण सुहियण सहिउं, वरु वास हरे पइट्ठउ॥[1]

२.१६

काव्य में वर्ण वृत्त और मात्रिक दोनों प्रकार के अनेक छदो का प्रयोग कवि ने किया है।

कवि ने ग्रथ की चार संधियो में ही निम्नलिखित छदो का प्रयोग किया है—

विलासिणी, मदनावतार, चित्तंगया, मोत्तियादाम, पिंगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जंभेट्टिया, भुजंगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया पोमणी, चच्चर, पंचचामर, णराच, तिभंगिणिया, रमणीलता, समाणिया चित्तिया, भमरपय, मोणय, अमरपुर सुन्दरी, लहुमत्तिय सिंगिणी, ललिता इत्यादि।

---

१. समरियणु—शबर स्त्रियाँ। बोरी हलु—बद्रीफल, बेर। हवियमणु—प्रसन्न चित्त से। सिसु पट्टुल—हंस बालक। वियारइ—विदीर्ण करता है। घूयडऊ—उलूक। सीय यरहिं—शीत किरणों से। सुहाहिलकं कणइं—अमृत जल कण। सिरि चंदन—उत्तम चन्दन। वण फणिणा—मयूर। विस वंसउ—विडाल। वावड—व्याकुल हुई। णिय वहूइ—अपनी वधू के साथ।

णेमिणाह चरिउ (नेमिनाथ चरित)

यह कृति अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पाटोदी शास्त्र भण्डार, जयपुर मे है [1] और दूसरी पचायती मन्दिर देहली मे। कृति के रचयिता का नाम लखम देव (लक्ष्मण देव) है। सन्धि की पुष्पिकाओ मे कवि ने अपने आपको रयण (रत्नदेव) का पुत्र कहा है।[2] आरम्भ की प्रशस्ति से विदित होता है कि कवि मालवा देश के समृद्ध नगर गोणंद में रहता था। यह नगर उस समय जैन धर्म और विद्या का केन्द्र था। कवि पुर वाड वंश मे उत्पन्न हुआ था। कवि अति धार्मिक, धन-धान्य-सम्पन्न और रूपवान् था। काव्य-रचना मे कवि को साढे आठ मास लगे। रचना-काल का कवि ने निर्देश नही किया। पचायती मन्दिर देहली मे प्राप्त इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति का लेखन काल वि० स० १५९७ है। किन्तु इसी ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति वि० सं० १५१० की लिखी उपलब्ध हुई है।[3] अतएव इतना ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ग्रंथ की रचना इस काल से पूर्व हुई।

इस ग्रंथ मे कवि ने २२ वे तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित अकित किया है। ग्रंथ में ४ सन्धियाँ और ८३ कडवक है।

कथानक—ग्रंथ का आरम्भ जिन स्तुति और सरस्वती वदना से होता है। मनुष्य जन्म की दुर्लभता का निर्देश कर कवि सज्जन-दुर्जन स्मरण और अपनी अल्पज्ञता का प्रकाशन करता है।[4] मगध देश और राजगृह के वर्णन के अनन्तर श्रेणिक

---

१. पं० परमानन्द जैन—जयपुर में एक महीना, अनेकान्त वर्ष ६, किरण १०-११, पृ० ३७४।

२. इयणेमिणाह चरिए अबुह कय रयण सुअ लखम एवेण विरइए, भव्वयण जणमणाणंदो णेमि कुमार संभवो णाम पठमो संधी परिछेऊ समत्तो ॥संधि ॥१॥

३. प्रो० हीरालाल जैन—नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, दिसं० १९४२, पृ ९२.

४. अहवा जिण गुण कित्तणु करेमि, णिय सत्तियता दुज्जण डरेमि।
दुज्जण जलणहो एक्कुवि सहाउ, पर दिहिविउ पावइ पवर छाउ।
दुज्जोहुवि पर छिद्दाणु वेखि, जिह कोसिउ ण सहइ रवि पयाउ।
तिह खलु ण डहेइ गुणागुराउ, जा णिव्वउ इय दुज्जण सहाउ।
गुणु मेलिवि दोसु गहेइ पाउ, मेल्लि घउ परिहरि दुट्ठ सोउ।
जलणु व जलेइ सइ भूइ होइ, जइ को कुविससि विरुयउ भणेइ।
तां इयर लोइ किण अमिउ देइं, जइ दोसइं दुज्जणु करइ हासु।
तव सुयणु करेसइं गुण पयासु, १.३
कि वुह रंजमि जाणमि ण अत्थु।
ण समास ण छंदु ण बंधु भेउ, णउ हीणाहिउ मत्ता विवेउ।
णउ सक्कउ पायउ देस भासि, णउ सद्दु वणु जाणमि समासु। १.४

राज का वर्णन कर कवि बतलाता है कि किस प्रकार श्रेणिक की जिज्ञासा को शांत करने के लिए गणधर नेमिनाथ की कथा का वर्णन करता है । वराडक देश स्थित द्वारवती नगरी में जनार्दन नामक राजा राज्य करता था । वहीं गुण संपूर्ण समुद्रविजय रहता था। उसकी पत्नी का नाम शिवदेवी था । उसके पुत्र उत्पन्न होने पर देवता आकर उसके बालक का संस्कार करते हैं (संधि १) । दूसरी संधि में नेमिनाथ की युवावस्था, वसंत वर्णन, जल क्रीडादि के प्रसंगो का वर्णन है । कृष्ण को नेमिनाथ से ईर्ष्या होने लगती है और वह उन्हे विरक्त करना चाहते है। नेमि का विवाह निश्चित होता है और उस अवसर पर अनेक बलि पशुओ के दर्शन से नेमि विरक्त हो जाता है । उसकी भावी पत्नी राजीमती अति दु खित होती है । तीसरी संधि मे इसी के वियोग का वर्णन है । नेमि को सांसारिक विषयो के प्रति आसक्त करने का प्रयत्न किया जाता है किन्तु सब व्यर्थ होता है । उसकी माता भी दु खी होती है । नेमि अपने पूर्व जन्म की कथा कहता हुआ संसार की निस्सारता का प्रतिपादन करता है और वैराग्य धारण करता है। अन्तिम सन्धि में नेमि के समवसरण का, अनेक धार्मिक प्रवचनो और नेमि की निर्वाण प्राप्ति का वर्णन है ।

धार्मिक और उपदेशात्मक भावना प्रधान होते हुए भी काव्य में अनेक सुन्दर और अलंकृत स्थल हैं ।

कवि की कविता के उदाहरण के लिए निम्नलिखित उद्धरण देखिये। कवि समुद्र-विजय की पत्नी का वर्णन करता हुआ कहता है—

तहि गुण संपुण्ण संमुद्द विजउ, भुअदंड चंड संगाम अजउ।
तहि गेहिणि णिव सिवएविणा म, सोहइ रइ णं संजुत्त काम।
वय राम रुणावइं वज्जदित्ति, णं सुर गिरि रेहइं कणय कित्ति।
णं ससि कलाइं अमियहो पयासु, णं दिणमणि पंरपण्णहि तिमिर णासु।
णं मुणि वरु रेहइं (कणय कित्ति) णं खत्तिएण, णं तिणयणु णरवइ गिरि सुएण।

१. १४

इसी प्रकार निम्नलिखित उद्धरण मे कवि ने संसार की विवशता का अंकन किया है—

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाण छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु ऊइ लोहु अत्थि।
जसु मयण राउ तसि णत्थि भाम, जसु भाम तासु उछवण काम॥ ३ २

अर्थात् जिस मनुष्य के घर मे अन्न भरा हुआ है उसे भोजन के प्रति अरुचि है। जिसमें भोजन खाने की शक्ति है उसके पास शस्य नही । जिसमे दान का उत्साह है उसके पास द्रविण नही । जिसके पास द्रविण है उसमे अति लोभ है। जिसमे काम का प्रभुत्व है उसके भार्या नही । जिसके पास भार्या है उसका काम शांत है ।

कवि ने स्थान-स्थान पर सुन्दर सुभाषितो और सूक्तियो का प्रयोग किया है—

किं जीयइं धम्म विवज्जिएण,...
किं सुहडइं संगरि कायरेण,...
किं वयण असच्चा भासणेण, किं पुत्तइं गोत्त विणासणेण।

... ... किं फुल्लइं गन्ध विवज्जिएण।
किं भोजइं जत्थ ण होइ लवणु, जहि णयण ण वर सो काहू वयणु। १. ४

इसी प्रकार—

'विणु तरु पत्तइं णउ होइ छाहि'
'विणु छेत्तइं णउ वावियहि धणा'
'विणु देवइ देवलु कत्थ होइं' ३. ५

कवि ने कडवको के आरम्भ मे हेला, दुवई, वस्तुबध आदि छदो का प्रयोग किया है। ग्रथ मे छंदो की बहुरूपता दृष्टिगोचर नही होती। छदो मे कही कही अन्त्यानुप्रास (तुक) उचित रूप से प्रयुक्त नही हुई। यथा—

संसारिउ सुक्ख अणत्थ मूलु, सेवइ मोहंधउ जीव वालु।
....
विसयहो सुहवासहो वेवि होइ, पुणु जीउ अणंतउ दुहु सहेइ। २.२०

बाहु बलि चरित

इस अप्रकाशित ग्रथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर मे वर्तमान है। (प्र० स० पृ० १३८–१४७)।

ग्रंथ के लेखक धनपाल गुर्जर देश के रहने वाले थे। पल्हण पुर इन का वास-स्थान था। इनके पिता का नाम सुहड एव (सुभट देव) तथा माता का नाम सुहडा एवी (सुभटा देवी) था। यह पोखर जाति में उत्पन्न हुए थे। कवि के समय राजा वीसल देव राज्य करते थे। योगिनी पुर (दिल्ली) के शासक का नाम इन्होने महमंद साह लिखा है।[1]

---

१. गुज्जर देस मज्झि णयवट्टणु, वसइ विउलु पल्हणपुरु पट्टणु।
वीसलएउ राउ पयपालउ, कुवलय मंडणु सयलु व मालउ।
तहिं पुर वाड वंस जायामल, अगणिय पुव्व पुरिस णिम्मल कुल।
पुणु हुउ राय सेट्ठि जिण भत्तउ, भोवइं णामें दयगुण जुत्तउ।
सुहडपउ तहो णंदणु जायउ, गुरुसज्जणहं भुअणि विक्खायउ।
तहो सुउ हुउ धणवाल धरायले, परमप्पय पय पंकयरउ अलि।
एतहिं तहिं तहि जिणतित्थण मंतउ, महि भमंतु पल्हणपुरे पत्तउ।
घत्ता— पट्टणे खंभायच्चे, धारणयरि देवगिरि।
मिछामय विहुणंतु, गणि पत्तउ जोइणि पुरि ॥१.३
तहिं भव्वहिं सुमहोछ्छउ विहियउ, सिरि रयण कित्ति पट्टें णिहियउ।
महमंद साहि मणु रंजियउ, विज्जहिं वाइय मउ भंजियउ।
....
पुणु दिट्ठउ चंदवाडु णयरु, १.४

कवि ने ग्रंथ-रचना चदवाड नगर के राजा सारंग के मन्त्री यादव वशोत्पन्न वासद्धर (वासाधर) की प्रेरणा से की थी। कृति समर्पित भी उसी को की गई है। कृति की पुष्पिकाओ में वासद्धर का नाम मिलता है।[1] सधियो के आरम्भ मे और ग्रंथ समाप्ति पर कवि ने आश्रयदाता वासाधर की स्तुति मे सस्कृत पद्य भी दिये है।[2]

कवि ने ग्रथ-रचना, वैशाख शुक्ल त्रयोदशी—सोमवार स्वाति नक्षत्र में वि० सं० १४५४ मे की।[3]

कृति में कवि ने अपने से पूर्वकाल के अनेक दर्शन, व्याकरणादि के विद्वानो का और कवियो का उल्लेख किया है। विद्वानो और कवियो के नामोल्लेख के साथ-साथ उनमें

---

१. इय सिरि वाहुवलिदेव चरिए, सुहडदेव तणय वुह
धणवाल विरइए, महाभव्व वासद्धर णामंकिए. . . . इत्यादि

२. सम्मत्त जुत्तो जिण पाय भत्तो, दयाणुरत्तो वहु लोय मित्तो।
मिछत्त चत्तो सुविसुद्ध चित्तो, वासाधरो णंदउ पुण्ण चित्तो॥

३. १

श्री लंव कंच कुल पद्म विकास भानुः
सोमात्मजो दुरितदारुचयकृशानुः।
धर्म्मैकसाधनपरो भुवि भव्य बंधु।
र्व्वासाधरो विजयते गुणरत्नसिंधुः ॥ ४.१

आद्याक्षरं श्री वसु पूज्य सूनोः साधो द्वितीयं धनदात्तृतीयं।
रवेश्चतुर्थं विधिना गृहीत्वा वासाधराख्या विहिता विभूतिः॥

५. १.

यावत्सागरमेखला वसुमती यावत्सुवर्णाचलः।
स्वर्न्नारी कुच संकुलः खममितं यावच्च तत्त्वांचितं।
सूर्याचन्द्रमसौ च यावदभितो लोकप्रकाशोद्यतौ।
तावन्नंदतु पुत्रपौत्रसहितो वासाधरः शुद्धधीः॥

अन्तिम प्रशस्ति

३. "विक्कमणरिंदं अंकिय समए, चउदहसय संवच्छरहं गए।
पंचास वरिस चउअहिय गणि, वइसाहहो सियतेरसिसुदिणि।
साई णक्खत्ते परिठ्ठियइं, वर सिद्धि जोग णामें वियइं।
ससिवासरे रासि मयंकतुले, गोलग्गेमुत्ति सुक्कें सवले।
चउ वग्ग सहिउ णवरस भरिउ, बाहु बलिदेव सिद्धउ चरिउ।"

अन्तिम प्रशस्ति

से अनेक के ग्रथो का भी उल्लेख किया है।[१]

इस ग्रथ की १८ सधियो मे कवि ने जैन सप्रदाय के प्रथम कामदेव बाहुबलि के चरित्र का वर्णन किया है। ग्रथ अपभ्रश काल के उत्तरकाल की रचना है अतएव कवि पूर्ववर्त्ती अनेक कवियो की लम्बी सूची दे सका।

ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से हुआ है—

स्वस्ति। ॐ नमो वीतरागाय।
सिरि रिसहणाह जिण पय जुयलु, पणविवि णासिय कलिमलु।
पुणु पढम कामएवहो चरितु, आहासमि कयमंगलु॥

इसके अनन्तर कवि ने चौबीस तीर्थंकरो का स्तवन किया है। तदनन्तर सरस्वती वन्दन कर कवि ने अपना परिचय दिया है। कवि की वासद्धर से भेट होती है। कवि

---

१. **वाएसरि कीला सरय वास, हुअ आसि महाकइ झुणि पयास।**
सुअ पवणु ड्डाविय कुमयरेणु, कइ चक्कवट्टि सिरि धीरसेणु।
महिमंडलि वण्णिउं विवुह विंदि, वायरण कारि सिरि देवणंदि।
जइणेंद णामु जउ यण दुलक्खु, किउ जेण पसिद्धु सवाय लक्खु।
सम्मत्ताउ वुसु राय भव्वु, दंसण पमाणु वरु रयउ कव्वु।
सिरि वज्ज सूरि गणि गुण णिहाणु, विरइउ मह छद्दंसण पमाणु।
महसेण महामइ विउ समहिउ, घण णाय सुलोयण चरिउ कहिउ।
रविसेणें पउम चरित्तु वुत्तु, जिणसेणें हरिवंसु वि पवित्तु।
मुणि जडिलि जडत्तणि वारणत्थु, णवरंग चरिउ खंडणु पयत्थु।
दिणयरसेणें कंदप्प चरिउ, वित्थरिउ महिहिं णवरसहं भरिउ।
जिण पास चरिउ अइसय वसेण, विरइउ मुणि पुंगव पउमसेण।
अमियाराहण विरइय विचित्त, गणि अंवरसेण भवदोस चत्त।
चंदप्पह चरिउ मणोहि रामु, मुणि विल्हुसेण किउ धम्म धामु।
धणयत्त चरिउ चउवग्गसारु, अवरेहिं विहिउ णाणा पयारु।
मुणि सीहणंदि सद्दत्थ वासु, अणुपेहा कय संकप्प णासु।
ण व यारणेहु णरदेव वुत्तु, कइ असग विहिउ वीरहो चरित्तु।
सिरि सिद्धि सेण पवयण विणोउ, जिणसेणें विरइउ आरिसेउ।
गोविंदु कइंदें मणकुमारु, कह रयण समुद्दहो लद्धसारु।
जय धवल सिद्ध गुण मुणिउंभेउ, सुय सालिहत्थु कइ जीवदेउ।
वर पउम चरिउ किउ सुकइ सेढि, इय अवर जाय धरवलय पीढे।
घत्ता—चउमुहुं दोणु सयंभु कइ, पुप्फयंतु पुणु वीरु भणु।
तेणाण दुमणि उज्जोय कर, हउ दीवो वमु हीणु गुणु॥

१.८

उसका परिचय देता है। वासद्धर बाहुबलि चरित की रचना के लिए कहता है—

किं विज्जए जाए ण होइ सिद्धि, किं पुरिसें जेण ण लद्धलद्धि।
किं किविणएण संचिय धणेण, किं णिण्णेहें पिय संगमेण।
किं णिज्जलेण घण गज्जिएण, किं सुहडें संगर भज्जिएण।
किं अप्पणेण गुण कित्तणेण, किं अविवेएं विउ सत्तणेण।
किं विप्पिएण पुणु रूसिएण, किं कव्वें लक्खण दूसिएण।
किं मणुयत्तणि जं जणि अभव्वु, किं बुद्धिए जाए ण रइउ कव्वु।

१. ७.

इसी प्रसंग मे कवि अपने से पूर्व के आचार्यो और कवियो का उल्लेख करता है। प्राचीन कवियो के पाडित्य को स्मरण कर निराश हुए कवि को प्रोत्साहित करता हुआ वासाघर कहता है—

"तं णिसुणिवि वासाहरु जंपइ, किं तुहुं वुह चिंताउलु संपइ।
जइ मयंकु किरणहिं धवलइ भुवि, तो खज्जोउ ण छंडइ णियछवि।
जइ खयराउ गयणे गमु सज्जइ, तो सिहिंडि किं णियकमु वज्जइ।
जइ कप्पयरु अमिय फल कप्पइ, तो किं तरु लज्जइ णिय संपइ।
जसु जेत्तिउ मइ पसरु पवट्टइ, सो तेत्तिउ धरणियले पयट्टइ।

१. ९

अर्थात् यदि चन्द्रमा किरणो से पृथ्वी को धवलित करता है तो क्या खद्योत अपनी कान्ति छोड देता है ? यदि खगराज गरुड आकाश में उडता है तो क्या शिखण्डी अपनी चाल छोड देता है ? यदि कल्प वृक्ष अमृतफल-संपन्न होता है तो क्या साधारण वृक्ष अपनी संपदा से लज्जित होते हैं ? जिसका जितना मति-प्रसार होता है वह उतना ही धरणीतल पर प्रकट करता है।

इसके अनन्तर कवि सज्जन दुर्जन स्मरण करता है—

णिंवु कोवि जइ खीरहिं सिंचइ, तोवि ण सो कडुवत्तणु मुंचइ।
उच्छु को वि जइ सत्थें खंडइ, तोवि ण सो महुरत्तणु छंडइ॥
दुज्जण सुअण सहावें तप्परु, सूरु तवइ ससहरु सीयरकरु॥

१. ९

इसके पश्चात् कवि ने काव्य-कथा प्रारम्भ की है। बीच-बीच मे संस्कृत पद्य भी उद्धृत किये हैं।[1] अन्त में निम्नलिखित पद्य से ग्रथ समाप्त किया है—

श्रीमत्प्रभा चंद्र पदप्रसादादवाप्त बुद्धया धन पाल दक्षः।
श्री साधु वासाधरनामधेयं स्वकाव्य सौधेयं कलसी करोति॥

---

१. लोक त्रयाभ्युदय कारण तीर्थनाथः इत्यादि २.१८
यद् गौरवं वहति विंशति तण्डुलानाम् इत्यादि। २. २०

ग्रंथ में अनेक काव्यमय और अलंकृत स्थल मिलते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित राजगृह का वर्णन देखिये—

घत्ता—तहिं पट्टणु णामें रायगिहु, चउराणणु समरालउ।
पय कम साहाहिं अलंकरिउ, णं विरिंचि वण्णालउ। १.१०
वहु पऊह पुरिउ वि सायरु, कुवलय मंडणो वि ण णिसायरु।
मंगल वुह गुरु कइ परियरियउ, णं गयणंगणु धणु वित्थरियउ।
वहु वाणिउं मंदाइणि पट्टु व, रंगालउ णं णवरस णट्टु व।
वहु खण णिलउ जईसहो चित्तु व, विउड्ड पवेसु महासइ चित्तु व॥
१.११

कवि विवाहानन्तर वरवधू मिलन का वर्णन करता है—

सोहइ कोइल झुणि महुरसमए, सोहइ मेइणि पहु लद्ध जए।
सोहइ मणि कणयालंकरिया, सोहइ सासय सिरि सिद्ध जुया।
सोहइ संपइ सम्माण जणें, सोहइ जयलछी सुहडु रणें।
सोहइ साहा जलहरस वणें, सोहइ वाया सुपुरिस वयणें।
जह सोहइ एयहिं वहु कलिया, तह सोहइ कण्णा वर मिलिया।
किं वहुणा वाया उब्भसए, कीरइ विवाहु सोमंजसए। ७.५

कवि ने भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे—

धुमु धुमु धुम्मिय मद्दल सद्दें, घुमु घुमियइं वर दुंदुहि णद्दें।
दों दों दो वर तिविली तालहिं, झं झं झं झं किर कंसालहिं।
रण झण रण झण घघर सद्दें, झें झें झें झव्वरिहि सुहद्दें।
७.२८

काव्य में छन्दों की बहुलता उपलब्ध नहीं होती। ग्यारहवीं संधि के कड़वकों के आरम्भ में 'दोहडा' का प्रयोग मिलता है—

दोहडा—
अंदोलिउ गह चक्क णहि, तारायणु सजलद्दु।
धणु हर गुण टंकार रव, गिरि दरि हुउ पडिसद्दु॥
णिरुवमु चाउ करग्गें कलियउ, दिट्ठि मुट्ठि संधाणें मिलियउ।
संधिउ वाणु वसंधरु णाहें, पेसिउ वइरि भवणु सोछाहें।
इत्यादि ११.११

चंदप्पह चरिउ (चन्द्र प्रभ चरित)

चंदप्पह चरिउ यश कीर्ति की अप्रकाशित कृति है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भंडार में वर्तमान हैं (प्र०सं०पृष्ठ ९८)। कृति की रचना कवि ने (हुवउ कुलके) कुमर सिंह के पुत्र सिद्धपाल के आग्रह से की थी। सिद्धपाल गुर्जर देशातर्गत उमत्तगाम

(उन्मत्त ग्राम) के रहने वाले थे।[1] संधियो की पुष्पिकाओ में सिद्धपाल का नाम भी लिया गया है।[2] कृति मे कवि ने न तो रचना-काल दिया है और न अपनी गुरु परपरा का निर्देश किया है। अत निश्चय रूप से नही कहा जा सकता कि चन्द्रप्रभ चरित्र का रचयिता यश कीर्ति और हरिवश पुराण एवं पाण्डव पुराण का रचयिता यश कीर्ति एक ही है या भिन्न-भिन्न व्यक्ति।

चंद्रप्रभ चरित्र ग्यारह संधियो की कृति है। इसमे कवि ने आठवे जिन चद्रप्रभ की कथा का उल्लेख किया है। ग्रंथ का आरम्भ मगलाचरण, सज्जन दुर्जन स्मरण से होता है। तदनन्तर कवि मंगलवती पुरी के राजा कनकप्रभ का वर्णन करता है। ससार को असार जान राजा अपने पुत्र पद्मनाभ को राज्य देकर विरक्त हो जाता है। दूसरी से पाँचवी सधियो तक पद्मनाभ का चरित्र वर्णन और श्रीवर मुनि से राजा का अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त सुनने का उल्लेख है। छठी सधि में राजा पद्मनाभ और एक दूसरे राजा पृथ्वीपाल के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। राजा विजित होता है किन्तु युद्ध से पद्मनाभ विरक्त हो जाता है और राज्यभार अपने पुत्र को देकर श्रीवर मुनि से दीक्षा ले तपस्वी जीवन बिताने लगता है। अगली सधियो मे पद्मनाभ के चन्द्रपुरी के राजा महासेन के यहाँ चद्रप्रभ रूप में जन्म लेने, ससार से विरक्त हो केवल ज्ञान प्राप्त कर अत में निर्वाण पद प्राप्त करने आदि का वर्णन है।

कृति में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है। कही कही कुछ काव्यात्मक स्थल भी मिल जाते हैं। कवि की कविता का आभास निम्नलिखित उद्धरणो से मिल सकता है—

तहिं कणयप्पहु नामेण राउ, जं पिछिवि सुरवइ हुउ विराउ।
जसु भमइं कित्ति भुवणंतरम्मि, वेरिव अइसंकडि निय घरम्मि।
जसु तेय जलणि नं दीवियंगु, जलनिहिं सलिलट्ठिउ सिरिचु वंगु।
आइच्चु वि दिणि दिणि देइ झंप, तत्तेअ तत्तु जय जणिय कंप।
सक्कुवि निप्पाइउ पढमु तासु, अब्भास करणि पडिमहं पयासु।

---

१. गुज्जर देसह उमत्तगामु तहिं छड्डां सुउ हुउ दोण णामु।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्व बंधु, जिण धम्मु भारि जं दिण्णु खंधु।
... ...
तहु लहु जायउ सिरि कुमर सिंह, कलि काल करिवहो हणणसींहु।
तहो सुउ संजायउ सिद्ध पालु, जिण पुज्जदाणु गुण गण रमालु।
तहो उवरोहे इय कियउ गंथु, हउं ण मुणणि किं पि विसत्थ गंथु।
प्रशस्ति सग्रह पृ० ९८-९९

२. इय सिरि चंदप्पह चरिए महाकव्वे, महाकइ जसुकित्ति विरइए, महाभव्व सिद्ध पाल सवण भूसणे चंदप्पहं सामि णिव्वाण गमणो णाम एयारहमो संधी परिछेउ सम्मतो।

रूवाहंकारिउ काम वीरु, किउ तासु अंगु मलिनहु सरीरु।
तहु नयणुप्पलि निवसेइ लच्छि, जा पुव्व वसिय हरि पिहुल वच्छि।
तें कारणे जहिं जहि देइ दिट्ठि, तहिं तहि ऊहट्टइ वुच्छ सिट्ठि।
जसु संगरि संमुहुं धणुहु होइ, णहु पुणु विचित्त पडिवक्खु कोइ।
मुहिं निवसइ सरसइ जासु निच्च, पयमित्तु लहइ कहिं तहिं असच्चु।

घत्ता—

इह
तिहुयणि वहु गुणजणि तसु पडिछंदु न दीसइ।
होसइ गुण लेसइ जसु वाई सरि सी सइ ॥[1] १.९
अह

नारी वर्णन—

सिरिकंताणामें तास कंता, वहुरूव लच्छि सोहगा वंता।
जीयें मुहु इंदहुलंण वाणउ, जं पुण्णिम चंदहु उवमाणउ।
तारु तरलु णिम्मिलु जुउ णित्तहं, णं अलि उरि ठिउ केइय पत्तहं।
जइ सवणू जुवलु सोहाविलासु, णं मयण विहंगम धरण पासु।
वच्छच्छलु नं पीऊस कुंभ, अह मयण गंध गय पीण कुंभ।
अइ कखीणु मज्झु णं पिसुणजणू, थण रमण गुरुत्तणि कुवियमणू।
जह पिहुल णियंवउ अप्पमाणु, ठिउ मयणराय पीढहु समाणु।

घत्ता—

हा इय मयणहु, जय जय जयणहु, ऊरु जुअलु घर तोरणु।
अइ कोमलु रत्तुप्पलु जिय पय कंतिहि चोरणु ॥[2] २.१०.

निम्नलिखित घत्ता से ग्रंथ समाप्त किया गया है—

जा चंद दिवायर, सव्व वि सायर, जा कुलपव्वय भूवलउ।
ता एहु पवट्टउ, हियइ चहुट्टउ, सरसइ देविहि मुहतिलउ ॥ ११.२९

अन्य ग्रंथो के समान छंदो की विविधता इस ग्रंथ मे दृष्टिगत नही होती।

सुकौशल चरित

यह रयधू का लिखा हुआ अप्रकाशित ग्रंथ है। इसकी हस्तलिखित प्रति पंचायती मंदिर देहली मे वर्तमान है।

अपभ्रंश भाषा मे सबसे अधिक रचनाएँ लिखने वाले यही कवि है। यह ग्वालियर के निवासी थे और वही तोमर वंशी राजा डूगर सिंह और उनके पुत्र कीर्ति सिंह के राज्य

---

१. थेरिव—वृद्धा के समान, दीर्घ नारी के समान। सिरि चुवंगु—धरणेंद्र अथवा कृष्ण। सक्कुवि ····पयासु—राजा के प्रतिबिंब को ले कर विधाता ने पहिले शक्र का निर्माण किया। असच्चु—असत्य।

२. अलि उरि—भ्रमर के ऊपर। ऊरु जुअलु—जंघा युगल। जिय—जीता।

काल मे इन्होंने अपने ग्रथो का प्रणयन किया। इनके लिखे २५ के लगभग ग्रंथो का उल्लेख मिलता है। जिन मे से अनेक की हस्तलिखित प्रतियाँ भी अभी उपलब्ध नही हो सकी।[१] आमेर शास्त्र भण्डार मे रयधू के लिखे निम्नलिखित ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ वर्तमान है :

१ आत्म सबोध काव्य (प्र० स० पृष्ठ ८५)
२. धनकुमार चरित्र (प्र० स० पृष्ठ १०४)
३. पद्म पुराण (प्र० स० पृष्ठ ११६)
४ मेघेश्वर चरित्र (प्र० सं० पृष्ठ १५६)
५ श्रीपाल चरित्र (प्र० स० पृष्ठ १७८)
६ सन्मति जिन चरित्रं (प्र० स० पृष्ठ १८१)

रयधू के पिता का नाम हरिसिंह था।[२] यश कीर्ति एव कुमार सेन इन के गुरु थे।[३] रयधू ने अपनी कृतियो में अपने आश्रयदाता और ग्रथ-रचना की प्रेरणा देने वाले श्रावको की मगल कामना एव आशीर्वादपरक अनेक सस्कृत पद्य रचे। इन पद्यो से इनके संस्कृतज्ञ होने की कल्पना की जा सकती है। इनकी कृतियो की शैली के आधार पर १५ वी शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश और १६वी शताब्दी का प्रारम्भिक चतुर्थांश इनका रचना काल अनुमित किया जा सकता है।[४]

सुकौशल चरित की रचना रयधू ने अपने गुरु कुमार सेन के आदेशानुसार रणमल्ल वणिक् के आश्रय मे रहते हुए की। उस समय तोमर वशीय राजा डूँगरसिह शासन करते थे। कवि ने माघ मास कृष्णपक्ष की दशमी तिथि को वि० स० १४९६ मे ग्रंथ की रचना की।[५]

---

१. इनके ग्रंथों की सूची पं० परमानन्द जैन ने अनेकान्त, वर्ष ५, किरण १२, जनवरी सन् १९४३, पृ० ४०४ में दी है। श्री अगरचन्द नाहटा इनमें से कुछ को भ्रान्तिपूर्ण मानते है। जिसका निर्देश उन्होने अनेकान्त वर्ष ६, पृ० ३७४ पर किया है।
२. श्रीपाल चरित्र की अन्तिम प्रशस्ति (प्रशस्ति संग्रह पृ० १८०), 'हर सिंघ संघविहु पुत्तु रइधू कइ गुण गण निलउ।'
सन्मति जिन चरित्र की प्रशस्ति (प्र० सं०पृ० १८२) और मेघेश्वर चरित्र की प्रशस्ति (वही पृ० १५७) में भी ऐसा ही निर्देश है।
३. सुकौशल चरित्र में रयधू ने कुमार सेन को अपना गुरु कहा है और सन्मति जिन चरित्र में यशः कीर्त्ति को। कवि ने मेघेश्वर चरित और सम्मत्त गुण णिहाण में यशः कीर्त्ति का गुणगान किया है। अनेकान्त वर्ष १०, किरण १२, पृ० ३८१
४. अनेकान्त वर्ष ५, किरण १२, पृ० ४०४
५. श्री रामजी उपाध्याय—सुकौशल चरित, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २.

'सिरि विक्कम समयंतरालि·········
चउवह संवच्छर अन्न छण्णउव अहिय पुणु जाय पुण्ण।
माहहु जि किण्ह वहमा विणम्मि, अणुराहरिक्खि पयडियसकम्मि।
गोवागिरि डुंगरणिवहु रज्जि, पहु पालंतइ अरिरायतज्ज।'

(४. २३)

कथानक—कवि ने चार संधियो मे सुकौशल मुनि के चरित्र का वर्णन किया है। ग्रथ रचना के आरम्भ मे कवि ने वन्दना, आश्रयदाता का परिचय और आत्म नम्रता का प्रदर्शन किया है। कवि अपने आप को जडमति और अगर्व कहता है (१·५), शब्दार्थ पिंगल-ज्ञानरहित बतलाता है (१·३·४)। कवि मगध देश, राजगृह और राजा श्रेणिक का वर्णन करता है। श्रेणिक के जिनेश्वर से केवली सुकौशल का चरित्र पूछने पर गणधर कथा कहते हैं।

इक्ष्वाकु वश में कीर्तिधर नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। उल्का देखने के पश्चात् इन्हे प्रतीत हुआ कि ससार असार है। उनकी सन्यासी होकर जीवन बिताने की इच्छा हुई किन्तु मन्त्रियो के कहने पर इन्होने निश्चय किया कि जब तक पुत्रोत्पन्न न होगा मैं संन्यासी न होऊँगा।

कई वर्षों तक इन्हे कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। एक दिन इनकी रानी सहदेवी एक जैन मन्दिर मे गई। वहाँ एक मुनि ने बताया कि तुम्हे पुत्र तो होगा किन्तु वह किसी भी मुनि को देख सन्यासी हो जायगा।

कुछ समय के बाद रानी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह समाचार राजा से छिपाने का प्रयत्न किया गया। किन्तु राजा ने यह समाचार जान ही लिया और राज्यभार कुमार को सौंप वह जगल में चले गये। इस पुत्र का नाम सुकौशल रखा गया।

रानी को पतिवियोग सहना पडा। साथ ही उसे यह भी भय था कि कही पुत्र भी सन्यासी न हो जाय। युवावस्था मे राजकुमार का विवाह बत्तीस राजकुमारियो से कर दिया गया और वह भोग विलास से महल मे जीवन बिताने लगा। उसे बाहर जाने की आज्ञा न थी। किसी मुनि को नगर मे आने की आज्ञा न थी। यदि कोई मुनि दिखाई दे जाता तो उसको पीटा जाता।

एक दिन राजकुमार के पिता जो मुनि हो गये थे नगर मे आये। उनकी भी वही दुर्गति हुई। राजकुमार ने अट्टालिका के ऊपर से मुनि को देख लिया और सूपकार से उस को ज्ञात हुआ कि मुनि उसके पिता कीर्ति धवल थे और मुनियों का नगर में प्रवेश निषिद्ध होने के कारण उन्हें बाँधा गया। जब राजकुमार को यह पता चला तो उसने भी राजपाट छोड सन्यास ले लिया और अपने पिता कीर्ति धवल का शिष्य बन जैन धर्म के व्रतो एव आचारो का पालन करते हुए जीवन व्यतीत किया।

सहदेवी मरने के बाद व्याघ्री हुई क्योकि वह सासारिक मोह माया में पडी हुई थी। एक दिन उसने अत्यधिक क्षुधार्त होने पर पर्वत पर घूमते हुए सुकौशल मुनि को खा लिया। सुकौशल ने मृत्यु के बाद मोक्ष पद पाया। सहदेवी को कीर्ति धवल ने अपने

पूर्व जन्म का स्मरण कराया। मुनि के उपदेशो को सुन कर उसे जाति स्मरण हुआ तथा मन में विरक्ति उत्पन्न हुई और अन्त मे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। कीर्ति धवल ने भी अपने कुकर्मों का नाश कर के मोक्ष पद प्राप्त किया।

ग्रथ की चार सन्धियो में ७४ कडवक है। पहली दो सन्धियो मे कवि ने पुराणो की तरह काल, कुलघर, जिननाथ और देशादि का वर्णन किया है। चतुर्थ सन्धि मे अन्त पुर की रमणियो के हाव-भाव और अलकारो का काव्यमय वर्णन मिलता है। ग्रथ की समाप्ति कवि ने निम्नलिखित वाक्यो से की है·

"राणउ णंदउ सुहि वसउ देसु।
जिण सासण णंदउ विगयलेसु॥"

छन्दो की नवीनता और विविधता की दृष्टि से काव्य में कोई विशेषता नही।

सन्मति नाथ चरित

सम्मति नाथ चरित की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे विद्यमान है (प्र० स० पृ० १८१-१८७)।

रयधू ने १० सन्धियो मे अन्तिम तीर्थंकर महावीर के चरित का वर्णन किया है। इस ग्रथ में कवि ने यश कीर्ति को अपना गुरु कहा है। कवि ने रचनाकाल का निर्देश नही किया।

रयधू के समय मे आधुनिक काल की भारतीय आर्यभाषाये अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थी। रयधू के पश्चात् अपभ्रंश की जो कतिपय अप्रकाशित कृतियाँ मिलती हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीपाल चरित—नरसेन रचित इस कृति की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है (प्र० स० पृष्ठ १७६-१७७)। हस्तलिखित प्रति का समय वि० स० १५१२ है।

वर्द्धमान कथा—यह भी नरसेन द्वारा रचित कृति है। प्र० स० पृ० १७०-१७१।

वर्द्धमान चरित—जयमित्र हल्ल ने ग्यारह सन्धियो मे तीर्थंकर महावीर की कथा लिखी है (प्र० स० पृष्ठ १६७-१७०)। हस्तलिखित प्रति का समय वि० स० १५४५ है।

अमरसेन चरित—माणिक्य राज ने सात सन्धियो मे अमरसेन का चरित वर्णन किया है। रचना काल वि० स० १५७६ है। (प्र० स० पृष्ठ ७९-८५)।

सुकुमाल चरिउ—पूर्णभद्र ने छह सन्धियो मे सुकुमाल स्वामी की कथा का वर्णन किया है। (प्र० स० पृष्ठ १९२)

नागकुमार चरित—यह ग्रथ भी माणिक्य राज ने वि० सं० १५७९ मे रचा। (प्र० स० पृष्ठ ११३-११६)। इसमे नौ सधियो में पूर्व कवियों द्वारा वर्णित कथा के अनुसार

ही नाग कुमार की कथा का वर्णन किया गया है।[1]

शान्ति नाथ चरित--यह कवि महिन्दु द्वारा रचित ग्रथ है। इसकी रचना कवि ने योगिनी पुर (दिल्ली) मे बादशाह बाबर के राज्य काल मे वि० स० १५८७ मे की। इसमे चौपाई, सोरठा आदि छन्दो का प्रयोग कवि ने किया है।[2]

मृगांक लेखा चरित्र

यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी वि० स. १७०० की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार में विद्यमान है (प्र० स० १५४-१५५) । भगवतीदास ने वि० स० १७०० में इस ग्रथ की रचना की।[3] यह अग्रवाल दिगम्बर जैन थे और दिल्ली के भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य थे। यह हिन्दी के भी अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी मे लिखी हुई इनकी अनेक रचनाये मिलती हैं।[4] ग्रथ मे केवल चार सन्धियाँ है। इसकी रचना घत्ता कड़वक शैली मे की गई है किन्तु बीच बीच मे दोहा, सोरठा और गाथा छन्द भी मिल जाते हैं।

भगवतीदास अपभ्रश के ज्ञात कवियो मे सबसे अन्तिम कवि है अत. ग्रथ का संक्षिप्त परिचय अप्रासगिक न होगा।

ग्रंथ का आरम्भ निम्नलिखित वाक्यो मे किया गया है—

ॐ नमः सिद्धेभ्य । श्रीमद् भट्टारक श्री माहेदसेण गुरवे नमः।

पणविवि जिणवीरं, णाणगहीरं, तिहुवण वइ रिसि राइ जई।
णिरुवम विस अच्छं, सील पसच्छं, भणमि कहा ससि लेह सई॥

ग्रथ मे कवि ने शील को अत्यधिक महत्व दिया है—

दोहा—

जो चुक्का गुण संपदा, चुक्का कित्ति मुहाउ।
जो जगु चुक्का सील तें, चुक्का सयल सुहाउ॥ १२

ग्रथ की पुष्पिकाओ मे कवि ने ग्रथ का नाम चन्द्रलेखा भी दिया है।[5]

---

१. अमरसेन चरित और नागकुमार चरित का परिचय पं० परमानन्द जैन ने १६वीं शताब्दी के दो अपभ्रंश काव्य नामक लेख द्वारा अनेकान्त वर्ष १०, किरण ४, पृ० १६०-१६२ में दिया है।

२. अनेकान्त वर्ष ५, किरण ६-७, पृ० १५३-१५६

३. सग दह सय संवदतीदतदा, विक्कमराइ महप्पए।
अगहण सिय पंचमि सोमदिणे, पुण्ण वियउ अवियप्पए॥ ४. १४

४. अनेकान्त वर्ष ५, किरण १-२ में पं० परमानन्द का लेख, कविवर भगवतीदास और उनकी रचनाएँ।

५. इय सिरि चंदलेह कहाए, रंजिय वुह चित्त सहाए,
भट्टारय सिरि महिंदसेण सीस पडिय भगवद् दा विरइए······इत्यादि।

कवि चन्द्रलेखा का वर्णन करता हुआ कहता है—

सुहलग्ग जोइ वर सुहण खत्ति, सुउवण्ण कण्ण ण्णं कांम थत्ति।
कम पांणि कवल सुसुवण्ण देह, तिहं णांउ धरिउ सुमइंक लेह।
कमि कमि सुपवड्ढइ सांगुणाल, दिग मिग ससिवत्तु मराल वाल।
रूव रइ दासि व णियडि तासु, किं दण्णमि अमरी खयरि जासु।
लछी सुदिलछी सोह दित्ति, तिहं तुल्लि ण छज्जइ बुद्धि किति।

१. ३

चन्द्रलेखा की आँखें मृग की आखो के समान, वक्त्र चद्र के समान और चाल हस के समान थी। उसके निकट रति दासी के समान प्रतीत होती थी फिर अमरागना या विद्याधरी उसके सामने कैसी ? इसकी तुलना किस से की जाय ?

ग्रथ के अन्त में दी हुई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने इस ग्रथ की रचना हिसार मे की थी।

ग्रथ की भाषा खिचडी है। पद्धडी वध में अपभ्रश, दोहा सोरठा आदि मे हिन्दी और गाथाओ मे प्राकृत दृष्टिगत होती है।

देखिये—

पद्धडी पयडी

रोवइ व संतपरि यणं सपत्ति, खणीधाह पमिल्लहि अद्धरत्ति।
णारी आइंद्दइं णांह णांह, हा कह गउ सामिय करि अणांह।
हा रोइवि सुई मुअ कंतु, हा कोण वि यांणइ मम्म अंतु।
सं कारु करिवि सज्जण जणेहिं, मिलि सयल जलंजलि तासु देहि।

२.

दोहा—

एक अंग को नेहड़ा, भूलि करउ मति कोइ।
जलु मूरिखु मांनइ नही, मीनुं मरइ तनु खोइ ॥१.४२

सोरठा—

संपति विपति विजोगु, रोगु भोगु भावी उदइ।
हरिखु विषादु रु सोगु, समां न चलई तिहं तणउं ॥१.१३

गाथा—

इय जंपिय पउमाए, परिवार णिवारणाय पुणरुत्तं।
अवगण्णिय सहि सहिया, गिहाउ णिव्वासिया एसा ॥२ १

इस काल तक अपभ्रश भाषा का क्या रूप हो गया था इसका ज्ञान ऊपर के उद्धरणो से स्पष्ट हो जाता है।

भाषा की दृष्टि से निम्नलिखित दो दोहो का स्वरूप देखिये—

जो चुक्का गुण संपदा, चुक्का कित्ति मुहाउ।
जो जण चुक्का सील तें, चुक्का सयल सुहाउ ॥ १.२

'सीलु बड़ा संसार महि सलि सरहिं सब काज।
इह भवि पर भवि सुहु लहइं आसि भणहिं मुणिराज ।।'

चौथी संधि

ये दोहे अपभ्रंश के उस स्वरूप को प्रकट करते है जब कि वह खडी बोली रूप मे परिवर्तित हो रही थी। हेमचन्द्र के निम्नलिखित दोहे से इन दोहो की तुलना कीजिये.

"भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जं तु वयंसियहु जइ भग्गा घर एंतु ।।"

दोनो की भाषा मे शब्दो का आकारान्त रूप मिलता है (जैसे, भल्ला, बडा, भग्गा, चुक्का) जो खड़ी बोली का लक्षण है। खड़ी बोली ने हेमचन्द्र के दोहे से चल कर भगवती दास के दोहो को पार करके आधुनिक स्वरूप को धारण किया। भगवती दास के गुरु भट्टारक महेन्द्र सेन दिल्ली निवासी थे। दिल्ली नगर की भाषा होने के कारण सभवतः आकारान्त स्वरूपवाली अपभ्रश ही नागर भाषा है जो खडी बोली अथवा नागरी की जननी है।

इन कृतियो के अतिरिक्त अनेक कृतियाँ हस्तलिखित रूप मे अप्रकाशित है और जैन भण्डारो मे पडी है। अनेक कृतियों का उल्लेख पाटण (पत्तन) भडार की ग्रथ सूची में मिलता है।[1] इस सामग्री के प्रकाश मे न आने से इस पर विचार अभी सभव नही।

इस अध्याय मे जिन भी खड काव्यो का विवेचन किया गया है, वे सब इस प्रकार के है जिनमे धार्मिक तत्व की प्रधानता है। यदि कोई प्रेमकथा है तो वह भी धार्मिक आवरण से आवृत है, यदि कोई साहस को प्रदर्शित करने वाली कथा है तो वह भी उसी आवरण से आवृत। इस प्रकार ये सब खडकाव्य कवियो ने धार्मिक दृष्टिकोण से लिखे। इस दृष्टिकोण को छोड़ कर शुद्ध प्रेमकथा, राजा की विजय आदि धार्मिक दृष्टि-निरपेक्ष मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाले लौकिक और ऐतिहासिक प्रबंध काव्यो का विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा।

---

१. ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन दी जैन भंडार ऐट पटना, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज जिल्द सं० ७६, ओरियंटल इंस्टिट्यूट बड़ौदा १९३७। इसमें उल्लिखित कुछ ग्रंथ——सुलसा चरित्र। (वही पृ० १८२), भव्यचरितम् (वही पृ० २६५), मल्लिनाथ चरित (वही पृ० २७०), सुभद्रा चरित (वही पृ० १२८), वयसामि चरिउ (वही पृ० १९०) इत्यादि।

आठवाँ अध्याय

अपभ्रंश-खण्ड काव्य (लौकिक)

सन्देश रासक[1]

यह कवि अद्दहमाण—अब्दुल रहमान—का लिखा हुआ एक खंड काव्य है। इसमें तीन प्रक्रम एवं २२३ पद हैं। धर्म-निरपेक्ष, लौकिक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति इस काव्य में मिलती है। अपभ्रश के प्राप्त काव्यो में से यही एक काव्य है जो कि एक मुसलमान कवि द्वारा लिखा हुआ है। अद्दहमाण ही सर्वप्रथम मुसलमान कवि है जिन्होने कि भारत की संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाली साहित्यिक भाषा मे रचना की; हिन्दू सभ्यता या भारतीय सभ्यता को अपना कर प्रचलित भारतीय साहित्यिक शैली पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त किया। इन्ही विशेषताओ के कारण यह काव्य विशेष महत्व का है।

कवि परिचय—कृति में कवि का नाम अद्दहमाण मिलता है जिसका परिवर्तित रूप अब्दुल रहमान समझा जाता है। कवि पश्चिम भारत में म्लेच्छ देशवासी तन्तुवाय मीरसेन का पुत्र था। यह प्राकृत काव्य तथा गीतो की रचना में प्रसिद्ध था।[2] संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश का विद्वान् था। कवि के अपभ्रश और प्राकृत ज्ञान का आभास वर्तमान ग्रंथ से मिलता है।

काव्य में पूर्वकालीन प्राकृत और सस्कृत कवियो के कुछ पद्य रूपान्तर से मिलते हैं। ऐसे पद्यो का आगे यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती अनेक विद्वानो और अपभ्रश, संस्कृत, प्राकृत एवं पैशाची भाषा के कवियो का वन्दन और आदरपूर्वक स्मरण किया है।[3] कवि ने एक स्थान पर प्राकृत काव्य और वेद का उल्लेख किया है।[4] इसी प्रकार नलचरित्र, भारत, रामायणादि के उल्लेख[5] से विदित होता है

---

१. श्री जिन विजय मुनि और श्री हरि वल्लभ भायाणी द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन बंबई से प्रकाशित, वि० सं० २००१.

२. सं० रा० १-३-४ सन्देश रासक के स्थल निर्देश में सर्वत्र प्रथम अंक प्रक्रम का और द्वितीय अंक पद्य संख्या का सूचक होगा।

३. सं० रा० १.५-६

पुव्वच्छेयाण णमो सुकईण य सद्दसत्थ कुसलेण।
तिय लोये सुच्छंदे जेंहि कयं जंहि णिद्दिट्ठं॥ ५
अवहट्टय-सक्कय-पाइयंमि पेसाइयंमि भासाए।
लक्खण छंदाहरेण सुकइत्तं भूसियं जेंहि॥ ६

४. सं० रा० पद्य ४३

५. वही पद्य ४४

कि कवि को भारतीय साहित्य का ज्ञान था । कथा का पथिक सामोरु नगर का वासी था । टीकाकारो ने सामोरु का मूलस्थान—मुलतान—कहा है । सामोरु के वर्णन से कल्पना की गई है कि कवि मुलतान का रहने वाला था और उसने गुजरात तक के प्रदेशो का भ्रमण किया था ।

डा० कात्रे ने कवि का समय ११वी और १४वी शताब्दी के बीच माना है ।[१] ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति की टीका वि० स० १४६५ की लिखी हुई उपलब्ध है ।[२] अतएव इस समय से पूर्व कवि का होना निर्विवाद है । ग्रथ से इतना स्पष्ट है कि कवि के समय मुलतान एक समृद्ध देश था । खभात भी एक प्रसिद्ध व्यापार का केन्द्र था । मुनि जिन विजय जी के अनुसार ग्रथ की रचना विक्रम सवत्सर की १२वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १३वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच मे हुई ।[३] श्री अगरचद नाहटा ग्रथ की रचना वि०सं० १४०० के आसपास मानते है ।[४] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी को यह काव्य ग्यारहवी शती का प्रतीत होता है ।[५]

सदेश रासक एक सदेश काव्य है । इसमे अन्य खंड काव्यो के समान कथानक संधियो मे विभक्त नही है । अपितु कथा तीन भागो मे विभक्त है जिन्हे प्रक्रम का नाम दिया गया है । सस्कृत मे मेघदूत के पूर्व मेघ और उत्तर मेघ के समान प्रत्येक प्रक्रम कथा प्रवाह की गति का सूचक है । प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप मे है, द्वितीय प्रक्रम से वास्तविक कथा प्रारम्भ होती है और तृतीय प्रक्रम मे षड्ऋतु वर्णन है ।

कथानक—कवि ग्रथ का आरम्भ मगलाचरण से करता है । मगलाचरण मे सृष्टि-कर्ता से कल्याण की प्रार्थना की गई है । आत्म-परिचय तथा पूर्वकाल के कवियो के स्मरण के अनन्तर कवि आत्म-विनय प्रदर्शित करता हुआ ग्रथ के लिखने का औचित्य प्रदर्शित करता है । इस प्रसग में दिये विचारो से कवि का जन-साधारण के साथ परिचय प्रतीत होता है । जैसे—रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने पर क्या नक्षत्र प्रकाश नही करते ? यदि कोकिला तरुशिखर पर बैठ मधुर गान करती है तो क्या कौए का-का करना छोड़ देते हैं ? यदि त्रैलोक्य-पावना गगा सागराभिमुख प्रवाहित होती है तो क्या अन्य नदियाँ बहना छोड दे ? यदि अनेक भाव-भगियो से युक्त नव राग रजित नागरिक युवती नृत्य करती है तो क्या एक ग्रामीणा ताली शब्द से ही नही नाचती ? वस्तुत

१. दि करनाटिक हिस्टोरिकल रिव्यू भाग ४, जन-जुलाई १९३७, संख्या १-२ में डा० कात्रे का लेख
२. संदेश रासक भूमिका पृ० ७
३. वही पृ० १२-१३
४. राजस्थान भारती भाग ३, अंक १, पृ० ४८.
५. हिन्दी साहित्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक, अतरचन्द कपूर एंड संस, सन् १९५२, पृ० ७१.

जिसमे जो काव्य शक्ति है उसका उसे प्रकागन अवश्य करना चाहिये । यदि चतुर्मुख ब्रह्मा ने चारो वेदो का प्रकाश किया तो क्या अन्य कवि कवित्व छोड दें ।[1]

कवि की उत्थानिका से ही स्पष्ट होता है कि यह काव्य उसने सामान्य जनो के लिए लिखा है । आगे कवि स्पष्ट कहता है कि—

बुद्धिमान् इस कुकाव्य में मन नही लगायेगे । मूर्खो का अपनी मूर्खता के कारण इसमें प्रवेश नही । जो न मूर्ख है न पण्डित किन्तु मध्यश्रेणी के है, उनके सामने यह काव्य पढा जाना चाहिये ।[2]

द्वितीय प्रक्रम से कथा आरम्भ होती है । विजयनगर की एक सुन्दरी पति के प्रवास से दु.खी, दीन और विरह व्याकुल है । इतने मे ही वह एक पथिक को देखती है । उसे देख विरहिणी उत्सुकता से उसके पास जाती है । दोनो का परिचय होने पर उसे पता लगता है कि पथिक सामोरु मूलस्थान (मुल्तान) से आया है । कवि विरहिणी के सौंदर्य का वर्णन कर सामोरु नगर का और वहा की वारवनिताओ का वर्णन (२.४६–५४) करता है । वहा के उद्यानो के प्रसग मे कवि ने वहाँ की वनस्पतियो की पूरी सूची दी है (२.५५—६४) । पथिक से यह जान कर कि वह खभात जा रहा है विरहिणी व्याकुल हो उठती है । उसका पति भी वही गया है । वह पथिक के द्वारा अपने प्रियतम को सदेश भेजने के लिए तडपने लगती है—सदेश भेजती है । सदेश बडे सवेदना-पूर्ण शब्दो मे दिया गया है । इस काव्य की एक विशेषता है कि सदेश-प्रसग मे कवि ने भिन्न-भिन्न छदो का प्रयोग किया है । कभी विरहिणी एक छद मे सदेश देती है कभी दूसरे मे । जाते हुए पथिक को क्षण भर रोक कर तीसरे छद मे थोडा सा सदेश और दे देती है । विरहिणी के शब्द मार्मिक है और उसके हृदय की पीडा के द्योतक है । भिन्न-भिन्न छदो मे उसने मानो अपना हृदय पथिक के सामने उडेल दिया है । इसी प्रसंग में भिन्न-भिन्न ऋतुओ का कवि. ने वर्णन किया है । विरहिणी का पति ग्रीष्म ऋतु में उसे छोड कर गया था उसी ऋतु से आरम्भ कर वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसत का भी वर्णन किया गया है । ये सब ऋतुए विरहिणी के लिए दुखदायिनी हो गईं ।

अन्त में जब पथिक अपनी यात्रा पर चल पडता है विरहिणी निम्नलिखित शब्दों से अपना सदेश समाप्त करती है—

> **"जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !**
> **घण दुक्खाउन्नियह मयण अग्गि विरहिणि पलित्तिहि,**

---

१. संदेश रासक, १. ८-१७

२. णहु रहइ बुहा कुकवित्तरेसि,
अबुहत्तणि अबुहह णहु पवेसि ।
जि ण मुक्ख ण पंडिय मज्झयार,
तिह पुरउ पढिव्वउ सव्वार ॥
सं. रा० १० २१.

तं फरसउ मिल्हि तु हु विणियमग्गि पभणिज्ज झत्तिहि ।
तिम जंपिय जिम कुवइ णहु तं पभणिय जं जुत्तु,
आसीसिवि वर कामिणिहिं वट्टाउ पडिउत्तु ।।"

अर्थात् हे पथिक ! यदि दुःखाकुला, कामाग्नि-पीडिता और विरह-व्याकुलता मैंने कोई अकथनीय बात कही हो तो उसे न कह कर नम्र शब्दों में प्रिय से कहना । ऐसी कोई बात न कहना जिससे मेरा पति क्रुद्ध हो जाय । जो उचित हो वही कहना । यह कह कर वह पथिक को आशीर्वाद देती है और विदा करती है ।

पथिक को विदा कर जब वह विरहिणी शीघ्रता से वापस लौट रही थी, उसने ज्योंही दक्षिण की ओर देखा उसे अपना पति लौट कर आता दिखाई दिया । उसका हृदय आनन्द मे उद्वेलित हो उठा । कवि आशीर्वाद के शब्दो से ग्रन्थ समाप्त करता है कि जिस प्रकार अचानक ही उस सुन्दरी का कार्य सिद्ध हुआ उसी प्रकार इस काव्य के पढने और लिखने वालो का कार्य सिद्ध हो । अनादि और अनन्त परम पुरुष की जय हो ।[1]

काव्य के इस छोटे से कथानक मे अलौकिक घटनाओ का अभाव है । ग्राम्य जीवन का चित्र काव्य में दिखाई देता है । काव्यगत वर्णनो मे प्रतीत होता है कि कवि का हृदय लौकिक भावनाओं से प्रभावित था ।

वस्तु वर्णन—यह काव्य एक सन्देश काव्य है अत इसमे नगरादि के विस्तृत वर्णनो की अपेक्षा वियोगिनी के हृदय का चित्रण है । ऐसा होते हुए भी काव्य के आरम्भ में कवि ने सामोरु नगर का, वहाँ की वारवनिताओ का (२ ५५–६४) और वहाँ के उद्यानो का वर्णन किया है ।

सामोरु का वर्णन (२.४२ –४६) करता हुआ कवि कहता है कि वह नगर धवल और उच्च प्रासादो मे मण्डित था । उसमें कोई मूर्ख न था, सब लोग पण्डित थे । नगर के अन्दर मधुर छंद और मधुर प्राकृत गीत सुनाई देते थे । कही चतुर्वेदी पंडित वेद को, कही बहुरूपिये रास को प्रकाशित करते थे । कही सुदय वच्छ कथा, कही नल चरित, कही भारत और कही रामायण का उच्चारण होता था । कही बासुरी, वीणा, मुरजादि वाद्य यन्त्र सुनाई देते थे । कही सुन्दरियाँ नाच रही थी । कही लोग विविध नट,

---

१. **तं पडुंजिवि चलिय दीहच्छि**
अइतुरिय, इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,
आसन्न पहावरिउ दिट्ठु णाहु तिणि झत्ति हरसिय ।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु सिद्धु खणद्धि महंतु,
तेम पढंत सुणंतयह जयउ अणाइ अणंतु ।।
संदेश रासक, ३. २२३

नाटकादि देखकर विस्मित हो रहे थे।[1]

वारवनिताओ के नृत्य वर्णन मे भी स्वाभाविकता है। उद्यान वर्णन मे अनेक वृक्षो और वनस्पतियो के नामो की सूची कवि ने प्रस्तुत की है। इन वर्णनो मे कोई विशेषता नहीं।

स्थूल प्राकृत वर्णनो की अपेक्षा कवि मानव हृदय का वर्णन अधिक सुन्दरता से कर सका है। सारा काव्य विरहिणी के वियोगपूर्ण हृदय के भावमय चित्रों से परिपूर्ण है।

रस—काव्य में विप्रलम्भ शृंगार ही मुख्य रूप से व्यक्त किया गया है। विरहिणी के शरीर की अवस्था के वर्णन, उसकी शारीरिक चेष्टाओ के प्रकाशन ओर उसके हृदय के भावो के अभिव्यजन द्वारा कवि ने उसके विरह का साक्षात् रूप अकित किया है।

कवि विरहिणी की अवस्था का वर्णन करता हुआ शब्द-चित्र द्वारा उसका साक्षात् रूप हमारे सामने खडा कर देता है ·

"विजय नयरहु कावि वर रमणि,
उत्तंग थिर थोर थणि, बिरुड लक्क धयरट्ठपउहर।
दीणाणण पहु णिहइ, जलपवाह पवहंति दीहर।
विरहग्गिहि कणयंगि तणु, तह सामलिम पवन्नु।
णज्जइ राहि विडंबिअउ, ताराहिवइ सउन्नु॥
फुसइ लोयण रुवइ दुक्खत्त,
धम्मिल्ल उमुक्क मुह, विज्जंभइ अरु अगु मोडइ।
विरहानलि संतविअ, ससइ दीह करसाह तोडइ।[2]
(२. २४-२५)

अर्थात्—विक्रमपुर की कोई सुन्दरी उन्नत, दृढ और स्थूल कुचवाली, बर्रे के समान कृशकटि वाली, राजहंस के समान गति वाली, दीनानना परदेश मे गये अपने पति को देख रही थी। उसकी आँखो से दीर्घ जलप्रवाह बह रहा था। कनकागी का शरीर विरहाग्नि से श्यामल हो गया था, ऐसा प्रतीत होता था मानो सपूर्ण चन्द्रबिम्ब को राहु ने ग्रस लिया हो। वह आँखे पोछ रही थी, दुःखार्त हो रही थी। केश उसके मुख पर बिखरे हुए थे और जंभाई ले रही थी। कभी शरीर मोडती थी। विरहाग्नि मे संतप्त लम्बी-लम्बी आहे भर रही थी और कभी अंगुलियो को चटका रही थी।

---

१. नर अउव्व विंभविय विविह नडनाडईहिं
संदेश रासक, २.४६

२. विरुडलक्क—लक्क पंजाबी का शब्द है जिसका अर्थ कटि होता है। विरुड़—भिरड, बर्रा या ततैया। कृशकटि के लिए इसका प्रयोग कई कवियो ने किया है। धयरट्ठ पउहर—धार्तराष्ट्र या राजहंस के समान पैर रखती हुई। सउन्न—संपूर्ण। कर साह—कर शाखा, अँगुलियां।

सौन्दर्य वर्णन—सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उस विरहिणी सुन्दरी को 'कुसुम सराउह रूवणिहि' (२ ३१) कहा है। अर्थात् वह काम का आयुध और सौन्दर्य की निधि थी। कवि इन विशेषताओं से नारी सौन्दर्य के हृदय पर पडने वाले प्रभाव की व्यजना करना चाहता है। इससे पूर्व कालीन कवियो ने भी सुन्दरी को 'वम्मह भल्लि' आदि कह कर इसी भाव की व्यजना की है।[1]

कवि ने नारी के अग-वर्णन प्रसग (२.३२–३९) मे उसके केशपाश, निष्कलक मुख, लोचन, कपोल, बाहु, कुच, नाभि, कटि, ऊरू और चरणो की अगुलियो का वर्णन किया है। इस वर्णन मे अधिकतर परम्परागत उपमानो का ही प्रयोग मिलता है। एक स्थल पर नखशिख वर्णन मे कवि ने नारी के कपोलो को अनार के फूलो के गुच्छे से उपमा दे कर लौकिक जीवन से उपमान चुनने का प्रेम भी अभिव्यक्त कर दिया है। यद्यपि अग-वर्णन में कोई विशेषता नही तथापि नारी के अगो के सौन्दर्य का अतिशय प्रभाव निम्नलिखित छन्द में दिखाई देता है

> **"सयलज्ज सिरेविणु पयडियाइँ अंगाइँ तीय सविसेसं।**
> **को कवियणाण दूसइ, सिट्ठं विहिणा वि पुणरुत्तं॥"**
>
> २.४०

अर्थात् विधाता ने शैलजा—पार्वती—को रच कर उसके समान या उससे भी सविशेष अगो को पुन इस स्त्री के शरीर मे रचा। फिर कौन कवियो को पुनरुक्ति के लिए दोष दे जब विधाता ने स्वय पूर्वसृष्ट की पुन सृष्टि की ?

इस पद्य से कवि ने नारी के अग-सौन्दर्य के साथ-साथ उसके दिव्य रूप का भी आभास दिया है।

विरह वर्णन—कवि का विरह वर्णन संवेदनात्मक है, हृदय मे विरहिणी के प्रति सहानुभूति जागृत करने वाला है। विरहिणी अपने प्रियतम को सदेश देती हुई लज्जा का अनुभव करती है :

> **"जसु पवसंत ण पवसिआ, मुइअ विओइ ण जासु।**
> **लज्जिज्जउ संदेसडउ, दिंती पहिय पियासु॥२.७०॥**

अर्थात् जिसके प्रवासार्थ चले जाने पर मै भी प्रोषित नही हुई और जिसके वियोग में मै मर न गई हे पथिक ! उस प्रियतम को सदेसा देती हुई मै लज्जित होती हूँ।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण (८. ४. ४१९) में भी इसी भाव का एक पद्य मिलता है

> **"जउ पवसंते सहुं न गय न मुअ विओएं तस्सु।**
> **लज्जिज्जइ संदेसडा दितेहिं सुहय-जणस्सु॥**

---

१. **"णं वम्मह भल्लि विंधण सील जुवाण जणि"**
भविसयत्त कहा ५. ७. ९.

विरहिणी के अंग-प्रत्यंग विरह प्रहार से संचूर्णित भी विघटित नही होते। कारण स्वय विरहिणी बताती है कि आज या कल प्रियसंमिलन रूपी औषध के प्रभाव से।

"तुह विरह पहर संचरिआइं विहडंति जं न अंगाइं।
तं अज्ज कल्ल संघडण ओसहे णाह तग्गंति॥
(२. ७२)

विरह की आग से जलती हुई भी विरहिणी प्रियतम की मंगल कामना चाहती है और कहती है कि :

"जिम हउ मुक्की वल्लहइ, तिम सो मुक्क जमेण"

अर्थात् जैसे मैं अपने प्रियतम से छोड दी गई वैसे ही मेरा प्रियतम यम से छोड दिया जाय।

विरहाग्नि से सतप्त वियोगिनी मरना नही चाहती। कारण ? हृदय स्थित अपने प्रियतम की सहचरी उसका साथ छोड कैसे अकेली स्वर्गलोक मे चली जाय (२.७५)? वह वियोगिनी प्रियतम के हृदय स्थित होते हुए भी विरह से सताये जाने पर प्रियतम की ही विडम्बना समझती है।

विरहिणी कहती है कि विरहाग्नि बडवानल से सभवत उत्पन्न हुई है क्योकि ज्यो-ज्यो स्थूलाश्रुओ से सिक्त होती है त्यो-त्यो शान्त होने की अपेक्षा और भी अधिक भडक उठती है—

"पाइय पिय वडवानलहु, विरहग्गिहि उप्पत्ति।
जं सित्तउ थोरंसुयहि, जलइ पडिल्ली झत्ति॥ (२.८९)

जैसे तैसे साहस कर वियोगिनी पथिक को सदेश देती है। हे पथिक! प्रियतम से कहना :

"तइया निवडंत णिवेसियाइं संगमइ जत्थ णहु हारो।
इन्हिं सायर-सरिया-गिरि-तरु-दुग्गाइं अंतरिया॥ (२.९३)

अर्थात् हे प्रिय! पहिले तुम से गाढालिंगन किये जाने पर इष्ट सगम के लिए मैंने कभी हार नही धारण किया। बीच में हार का भी व्यवधान असह्य था। अब मेरे और तुम्हारे बीच सागर, नदी, गिरि, तरु, दुर्गादि का व्यवधान हो गया है।

इसी भाव का एक पद सुभाषित रत्न भाण्डागार और हनुमन्नाटक मे मिलता है :

"हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेष भीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः सरित्सागर भूधराः॥"

विरहिणी अपने आपको प्रियतम के लिए उचित संदेश देने मे असमर्थ पाकर पथिक से कहती है कि :

"कहि ण सवित्थरु सक्कउ मयणाउह वहिय,
इय अवत्थ अम्हारिय कंतह सिव कहिय।
अंगभंगि णिरु अणरइ उज्जगउ णिसिहि,
विहलंघल गय मग्ग चलंतिहि आलसिहि॥ (२.१०५)

....

आसाजल संसित्त विरह उन्हत्त जलंतिय,

णहु जीवउ णहु मरउ पहिय ! अच्छउ धुक्खंतिय। (२.१०७)

हे पथिक ! तुम प्रियतम से मेरी अवस्था का वर्णन मात्र कर देना—अग-भंग, अरति, रात भर जगते रहना, आलस्य युक्त और लडखडाती गति, इत्यादि।

आशाजल से सिक्त और विरहाग्नि से प्रज्वलित मै हे पथिक ! न तो जी ही पाती हूँ और न ही मर ही पाती हूँ। सुलगती आग के समान मेरी अवस्था है।

विरहिणी के लिए राते भी और दिन भी बीतने कठिन हो गए। इसी भाव को कवि ने कितनी सुन्दरता से निम्नलिखित पद्य मे अभिव्यक्त किया है :

"उत्तरायणि वड्ढिहि दिवस,

णिसि दक्खिण इहु पुव्व णिउइउ।

दुच्चिय वड्ढहि जत्थ पिय,

इहु तीयउ विरहायणु होइयउ॥ (२.११२)

अर्थात् उत्तरायण में दिन बडे हो जाते है, दक्षिणायन मे राते बडी हो जाती है और दिन छोटे हो जाते है। अब मेरे लिए दोनो दिन भी और राते भी बडी हो गईं—यह तीसरा विरहायण हो गया।

इस प्रकार कवि ने विरह का सवेदनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। वर्णन में कही ताप मात्रा बताने का प्रयत्न नही। विरह-ताप हृदय को प्रभावित करता है। एक आध स्थल पर कुछ ऊहात्मक निर्देश भी कवि ने किये है। उदाहरण के लिए :

"सदेसडउ सवित्थरउ, हउ कहणह असमत्थ।

भण पिय इकत्ति बलियडइ, बे वि समाणा हत्थ॥

संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहणु न जाइ।

जो कालंगुलि मूंदडउ, सो बाहडी समाइ॥ (२ ८०–८१)

अर्थात् हे पथिक ! मै विस्तार से सन्देश देने में असमर्थ हूँ। प्रिय से कहना कि एक हाथ की चूडी में दोनो हाथ आ जाते है। सन्देश तो विस्तृत है पर मुझ से कहा नही जाता। प्रिय से कहना कि कनिष्ठिका अगुली की मुद्रिका बाहु मे पूरी आने लगी।

प्रकृति वर्णन—कवि ने विरह वर्णन के प्रसग में ही षड्-ऋतु-वर्णन प्रस्तुत किया है। विरहिणी को विरहताप के कारण ये सब ऋतुएँ दुखदायिनी और अरुचिकर प्रतीत होती है। ग्रीष्म ऋतु मे ताप को कम करने के लिए प्रयुक्त चन्दन, कर्पूर, कमल आदि साधन उसके ताप को और बढाते है। वर्षा ऋतु मे जल प्रवाह से सर्वत्र ग्रीष्म का ताप कम हो गया किन्तु आश्चर्य है कि विरहिणी के हृदय का ताप और भी अधिक बढ गया—

"उल्हवियं गिम्हहवी धारा निवहेण पाउसे पत्ते।

अच्चरियं मह हियए विरहग्गी तवबइ अहिययरो॥ (३.१४९)

शरद् ऋतु में नदियो की धारा के साथ साथ विरहिणी भी क्षीण हो गई—

"झिज्जउ पहिय जलिहि झिज्झंतिहि"

कार्तिक में दिवाली आई। लोगो ने घर सजाए, दीवे जलाए किन्तु विरहिणी का हृदय उसी प्रकार दु:खी है। शरत् का सारा सौन्दर्य उसके प्रीतम को घर न ला सका। वह आश्चर्य चकित हो कहती है—

"किं तहि देसि णहु फुरइ जुन्ह णिसि णिम्मल चंदह,
अह कलरउ न कुणंति हंस फलसेवि रविंदह।
अह पायउ णहु पढइ कोइ सुललिय पुण राइण,
अह पंचउ णहु कुणइ कोइ कावालिय भाइण।
महमहइ अहव पच्चूसि णहु
ओससिउ घणु कुसुम भरु।
अह मुणिउ पहिय! अणरसिउ पिउ
सरइ समइ जु न सरइ घरु॥[1]

अर्थात् क्या उस देश में रात को शुभ्र चन्द्र की चन्द्रिका नही छिटकती? क्या कमल सेवी हस कलरव नही करते? क्या वहाँ कोई सुललित प्राकृत राग नही गाता? क्या वहाँ कोकिल पचम स्वर में आलाप नही करती? क्या प्रात: काल सूय से विकसित और उच्छ्वासित कुसुम समूह नही महकते? अथवा हे पथिक! ऐसा प्रतीत होना है कि मेरा प्रियतम अरसिक है जो शरत्समय में भी घर नही लौटा।

शरत् के अनन्तर हेमन्त ऋतु आती है। चारो ओर शीत के प्रभाव से कोहरा और पाला दिखाई देना है किन्तु

"जलिउ पहिय सव्वंगु विरह अग्गिण तडयडवि"

विरहिणी का सारा शरीर विरहाग्नि से तप्त है।

इसी प्रकार हेमन्त आई और चली गई किन्तु प्रियतम घर न आया। हेमन्त के अनन्तर वसन्त अपनी पूर्ण संपत्ति के साथ विकसित हो उठा। वसन्त के उल्लास, उसकी पुष्प-समृद्धि, वर्ण-सौन्दर्य आदि का कवि ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है (३ २००-२२१)

ऋतु-वर्णन स्वाभाविक है और कवि की निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। प्रत्येक ऋतु में प्राप्य और दृश्यमान वस्तुओ का वर्णन मिलता ह। इस प्रसग मे ग्राम्यजीवन का चित्र भी स्थान-स्थान पर कवि ने अंकित किया है। वर्षा ऋतु में पथिक हाथ मे जूते उठा कर जल पार करते है (३.१४१) दीपावली के अवसर पर आँखो मे काजल डाले और गाढ़े रग के वस्त्र पहने ग्राम्यनारियाँ भी कवि की दृष्टि से ओझल न हो सकी (३.१७६-१७७)। शिशिर में थोड़ा-सा औटा कर सुगन्धित ईख का रस पीते हुए लोग भी दिखाई देते है। इस प्रकार यह ऋतु-वर्णन उद्दीपन रूप मे प्रयुक्त हुआ हुआ भी स्वाभाविक और आकर्षक है। वर्णन में हृदय की आभ्यन्तर स्थिति का बाह्य प्रकृति में भी कही कही दर्शन हो जाता है। शरत् मे क्षीण जलधारा के साथ साथ विरहिणी भी क्षीण हो जाती है।

'जायसी की भाति अद्दहमाण के सादृश्यमूलक अलकार और बाह्यवस्तु-निरूपक

---

१. जुन्ह—ज्योत्स्ना, चन्द्रिका। रविंदह—अरविन्द के। राइण—राग से।

वर्णन बाह्यवस्तु की ओर पाठक का ध्यान न ले जाकर विरह-कातर व्यक्ति के मर्मस्थल की पीडा को अधिक व्यक्त करते है। कवि प्राकृतिक दृश्यो का चित्र इस कुशलता से अकित करता है कि इस से विरहिणी के विरहाकुल हृदय की मर्मवेदना ही मुखरित होती है। वर्णन चाहे जिस दृश्य का हो, व्यजना हृदय की कोमलता और मर्मवेदना की ही होनी है।"[1]

अलंकार—भाषा में उपमा उत्प्रेक्षादि सादृश्यमूलक अलकारो का ही अधिकता से प्रयोग हुआ है। अलकारो की बहुलता नही। इन सादृश्यमूलक अलकारो में सादृश्य योजना दो वस्तुओ के स्वरूप बोध के साथ-साथ भाव व्यजना एव भाव तीव्रता के लिए भी हुई है। उदाहरण के लिए—

"विरहग्गिहि कणयंगितणु तह सामलिम पवन्नु।
णज्जइ राहि विडंबिअउ ताराहिवइ सउन्नु॥"

अर्थात् उस सुवर्णांगी का शरीर विरहाग्नि से ऐसा काला हो गया था मानो पूर्ण चन्द्रबिम्ब, राहु ने ग्रस लिया हो। इस वाक्य से कवि ने विरहिणी के शरीर की श्यामता की ओर निर्देश करते हुए उसके शरीर की शोभा की अत्यधिक क्षीणता की ओर भी सकेत किया है।

कवि ने सादृश्य योजना के लिए उपमानो का चयन जीवन के लौकिक व्यापारो से भी किया है। यथा—

"पिंडीर कुसुमपुंज तरुणि कवोला कलिज्जंति।" २ ३४

अर्थात् तरुणी के कपोल अनार के फूल के गुच्छो के समान शोभित थे। इस उपमान के चुनने मे कवि पर फारसी साहित्य का प्रभाव प्रतीत होता है।

"सुन्नारह जिम मह हियउ, पिय उक्किंख करेइ।
विरह हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ॥ (२.१०८)

अर्थात् हे प्रिय! मेरा हृदय सुनार के समान है। जैसे सुनार इष्ट प्राप्ति के लिए सोने को आग मे तपा कर पानी मे डाल देता है ऐसे ही मेरा शरीर विरहाग्नि से जलता है और प्रिय समागम के आशारूपी जल से सिक्त रहता है।

इसी प्रकार श्लेष (२ ८६) और यमक (१ १०४, ३ १८३) के उदाहरण भी मिलते हैं।

भाषा:—इस काव्य मे प्रयुक्त भाषा का रूप अधिकतर बोलचाल मे प्रयुक्त होने वाली अपभ्रंश भाषा का रूप है। यह भाषा का रूप साहित्यिक (Classical) अपभ्रंश से भिन्न है। अपभ्रंश भाषा का उत्तर कालीन रूप, जिस पर प्रान्तीय भाषाओ का प्रभाव भी पडने लग गया था, इस काव्य में देखा जा सकता है।

भाषा में भावानुकूल शब्द-योजना हुई है। ग्रीष्म और पावस की प्रचण्डता एव कठोरता

---

१. आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी-साहित्य का आदि काल, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, वि० सं० २००९.

भी विरहिणी के मुख से निकलते शब्दो से दूर हो जाती है। शब्दों में विरहिणी के कोमल और सुकुमार हृदय की झाकी मिलती है। भावानुकूल शब्द-योजना का सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित छन्द में मिलता है:

"झिज्झउ पहिय जलिहि झिज्झंतिहि,
खिज्जउ खज्जोयहि खज्जंतिहि।
सारस सरसु रसहि किं सारसि,
मह चिर जिण्ण दुक्खु किं सारसि॥" (३.१६५)

हे पथिक! शरत् में जलधारा क्षीण हो गई है, मैं भी क्षीण हो गई हूँ। चमकते खद्योतों से मैं भी खिन्न हूँ। सारस सरस शब्द करते हैं। हे सारसि! मुझ दु:खिनी के दुःख को क्यो स्मरण कराती हो?

प्रथम दो पंक्तियों में विरहिणी के हृदय की झुंझलाहट के कारण शब्द-योजना कुछ कठोर है। किन्तु उसे ज्यो ही अपनी असहायावस्था का स्मरण हो आता है शब्द-योजना भी कठोर से सुकुमार हो जाती है। अन्तिम दो पक्तियों में उसी असहायावस्था और विवशता का सकेत है।

इसी प्रकार निम्नलिखित छन्द में भी भाव के साथ ही शब्दयोजना भी बदल जाती है:

"वयण णिसुणेवि मणमत्थसर वट्टिया,
मयउसर मुक्क णं हरिणि उत्तट्टिया।
मुक्क दीउन्ह नीसास उससंतिया,
पढिय इय गाह णियणयणि बरसंतिया॥" (२.८३)

प्रथम दो पंक्तियों में शरविद्ध हरिणी की छटपटाहट और अन्तिम दो पंक्तियों में आँखों से बरसते आँसुओं, सिसकियो और आहो की ध्वनि है।

भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

"काका कर करयंतु" (१.९)
"रव्वडिया मा दडव्वडउ" (१.१६)
"समिग्गर मिरवयणि" (२.२९)
"तडयडिवि तडक्कइ" (३.१४८) इत्यादि।

कवि में शब्दो द्वारा वस्तुचित्र अंकित करने की शक्ति विद्यमान थी। उदाहरणार्थ—

"एय वयण आयन्नवि सिंधुब्भव वयणि,
ससिवि सासु दीहुन्हउ सलिलब्भव नयणि।
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर गिरपसर,
जालंधरि व समीरणि मुंध थरहरिय चिर॥
रुइवि खणद्धु फुसवि नयण पुण वज्जरिउ,
इत्यादि (२.६६)

अर्थात् पथिक के मुख से यह सुनकर कि वह उसी स्थान पर जा रहा है जहाँ उसका

पति गया है, चन्द्रमुखी कमलाक्षी वह विरहिणी लम्बी-लम्बी आहे भरने लगी, हाथ की अंगुलियो को चटकाती हुई गद्गद् वाणी से भरी पवनाहत कदली के समान वह मुग्धा कम्पित हो उठी। क्षण भर रो कर, आँखे पोछ कर फिर बोली।

भाषा मे लोकोक्तियो और वाग्धाराओ का प्रयोग भी मिलता है:

"सप्पुरिसह मरणा अहिउ, पर परिहव संताउ" (२.७६)

सज्जन के लिए पर परिभव मरण से भी अधिक दु खदायी होता है।

(संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते—गीता, २.३४)

"सिंगत्थ गइय उवाडयणि, पिक्ख हराविय णिअ सवण" (३.१९९)

गर्दभी सीगो के लिए गई, देखो अपने कान भी खो आई।

ग्रन्थ की भाषा मे अनेक शब्दो का रूप हिन्दी शब्दो के बहुत निकट है। कही-कहीं पंजाबी शब्दो का आभास भी मिल जाता है।[1]

छंद :—काव्य मे अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है। भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग रासक की विशेषता मानी गई है। ग्रन्थ मे निम्नलिखित छन्दो का प्रयोग मिलता है·

गाहा, रड्डा, पद्धडिया, डोमिलय, रासा, दोहा, कामिणी मोहण, वत्थु, मालिणी, अडिल्ला, फुल्लय, मडिल्ला, चूडिल्लय, खडहडय, दुवइ, नंदिणी, भमरावलि, रमणिज्ज।[2]

इन छन्दो मे से अधिकाश मात्रिक छन्द है। रासा छन्द का प्रयोग काव्य में बहुलता से किया गया है।

---

१. उदाहरण के लिए कुछ शब्द रूप नीचे दिए जाते है। कोष्टक में अंक संख्या पद्य संख्या सूचित करती है।
रहइ—रहता है (१८)। मोडइ—मोडती है (२५)। उत्तावलि—उतावली (२६)। छुडवि खिसिय—छूट कर खिसक गई (२६)। फुडवि—फोड़ कर (२८)। बोलावियउ—बुलाया (४१)। चडाइयइ—चढ़ाया जाता है (५२)। ढक्क—ढाक, सीसम—शीशम, आमरूय—अमरूद, लेसूड—लसूडा, नायरंग—नारंगी, बेरि—बेर, भीड—भीड़, लक्क—कटि (पंजाबी) (पृष्ठ २४-२५)। मन्नाइ—मनाना (७१)। समाणा—समा गये (८०)। पढिय—पढ़ो (८३)। बाउलिय—बावली (९४)। फिरंतये—फिरते हुए (१०३)। हुई—हुई (१३५)। चडिउ—चढ़े (१४४)। मच्छर भय—मच्छरों का भय (१४६)। बद्दलिण—बादल (१४८)। घुट्टिवि—घूंट घूंट पी कर (१६२)। इकट्ठु—इकट्ठा, सारा (१८०)। महमहइ—महकता है (१८३)। इक्कल्लिय—अकेली (१९०)।

२. संदेश रासक, भूमिका, पृष्ठ ७५।

कीर्तिलता[1]

विद्यापति-रचित कीर्तिलता एक ऐतिहासिक चरित काव्य है जिस में कवि ने अपने प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह के यश का गान किया है। अपभ्रंश में इस प्रकार का काव्य अभी तक एकमात्र यही उपलब्ध हुआ है। इस प्रकार के अन्य काव्य भी लिखे गये होंगे किन्तु वे जैनधर्म सम्बन्धी कृति न होने के कारण समवत सुरक्षा न पा सके।

कविपरिचय—विद्यापति ठक्कुर मैथिल ब्राह्मण थे। दरभंगा जिले के अन्तर्गत विसपी ग्राम इनका वास स्थान था। इनके वश के पूर्वज सभी असाधारण पण्डित थे। इनके पिता गणपति ठक्कुर कीर्तिलता के नायक कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर के सभा-पण्डित तथा मन्त्री थे। विद्यापति स्वयं संस्कृत और मैथिली के पण्डित थे। इन्होने अनेक ग्रन्थ इन भाषाओ लिखे थे।[2]

विद्यापति ने ८७-८८ वर्ष की लम्बी आयु भोगी। अपने जीवनकाल में इन्होने जीवन की सभी अवस्थाओ का अनुभव प्राप्त किया, जीवन के सभी रसो का आस्वादन किया। इन्होने वीरता और वदान्यता की भूरि भूरि प्रशसा की है। इनके शृंगार रस पूरित पद इनकी युवावस्था की रसिकता की ओर सकेत करते है। वृद्धावस्था में इनमें वैराग्य और भक्ति की भावना जाग्रत हो उठी, इसका आभास भी इनके पदो से मिलता है। विद्यापति का काल १३६० ई० से लेकर १४४७ ई० तक अर्थात् लगभग १५ वी सदी के मध्य तक कल्पित किया गया है।[3]

कीर्तिलता चार पल्लवो (भागो) में पल्लवित हुई है। यह विद्यापति की सर्वप्रथम रचना है इसकी रचना कवि ने २० वर्ष की अवस्था मे की थी।

कथानक—ग्रथ का आरम्भ सस्कृत में पार्वती और शिव के मगलाचरण से किया गया है। फिर सरस्वती की वन्दना है तदनन्तर कवि कहता है—कलियुग में घर-घर में काव्य मिलते है, नगर-नगर में श्रोता और देश-देश में रसज्ञाता, किन्तु ससार में दाता दुर्लभ है।[4] कीर्तिसिंह उदार हृदय दाता है उनकी कीर्ति इस काव्य में प्रथित की जाती है। आगे कवि आत्मविनय के अनन्तर सज्जन प्रशसा और दुर्जन निन्दा करता हुआ कहता है कि सज्जन मेरे काव्य की प्रशंसा करेगे और दुर्जन निन्दा। निश्चय से चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है और विषधर विष ही उगलता है :

---

१. डा० बाबूराम सक्सेना द्वारा संपादित, इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित, वि० सं० १९८६।

२. कीर्त्तिलता भूमिका पृ० ११-१३

३. वही भूमिका पृ० ७-९

४. गेहे गेहे कलौ काव्यं श्रोता तस्य पुरे पुरे।
देशे देशे रसज्ञाता दाता जगति दुर्लभः॥

वही पृ० ४

सुअण पसंसइ कव्व मझु, दुज्जन बोलइ मन्द।
अवसओ विसहर विस वमइ, अमिअ विमुक्कइ चन्द ॥

किन्तु कवि को पूर्ण विश्वास है कि दुर्जन उसका कुछ विगाड न सकेगा—

बालचन्द विज्जावइ भासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हर शिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ॥

आगे कवि काव्य भाषा प्रयोग के विषय में कहता है—

"सक्कय वाणी वहुअ न भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सव जन मिट्ठा, तँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा ॥"

अर्थात् संस्कृत भाषा बहुतो को अच्छी नही लगती, प्राकृत रस का मर्म नही पा सकती। देशी (वचन) सब को मीठी लगती है, अतएव अवहट्ठ (अपभ्रंश) में रचना करता हूँ।

इसके अनन्तर भृंगी और भृंग के संवाद या प्रश्नोत्तर रूप से कथा प्रारम्भ होती है। भृगी पूछती है—'संसार में सार क्या है ?" भृग उत्तर देता है—"मान पूर्ण जीवन और वीर पुरुष"। भृगी पूछती है—कि यदि वीर पुरुष कहीं हुआ हो तो उसका नाम बताओ। भृंग वीर पुरुष के लक्षण बताकर राजा बलि, रामचन्द्रादि वीर पुरुषो का उल्लेख करता हुआ कीर्तिसिंह का भी निर्देश करता है। भृगी के मन मे कीर्तिसिंह का चरित्र सुनने की इच्छा होती है और भृग उनका चरित्र वर्णन करता है। कीर्तिसिंह के वंश और पराक्रम के वर्णन के साथ-साथ प्रथम पल्लव समाप्त होता है।

दूसरे पल्लव में कवि बतलाता है कि किस प्रकार राजा गणेश्वर ने असलान नामक एक तुरुक को परास्त किया। असलान ने कपट से राजा गणेश्वर को मार दिया। राज्य में अराजकता छा गई। असलान ने अपने किये पर पछताते हुए राज्य कीर्तिसिंह को लौटाना चाहा। कीर्तिसिंह ने अपने पिता का बदला लेने की भावना से क्रुद्ध हो शत्रु द्वारा भिक्षा रूप में दिये राज्य को स्वीकार न किया और अपने पराक्रम से राज्य को जीत कर भोगने का निश्चय किया। वह अपने भाई के साथ पैदल जौनपुर गया। कवि ने राजपुत्रों की पैदल यात्रा का, जौनपुर यात्रा के बीच के मार्ग का, जौनपुर के बाजारो का और वहाँ की वेश्याओ का, मुसलमानो के उद्धत जीवन का और हिन्दुओ की दीन दशा का स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है।

तीसरे पल्लव में कीर्तिसिंह जौनपुर के बादशाह से मिल कर सारी कथा सुनाता है। बादशाह क्रुद्ध हो असलान के विरुद्ध सेना प्रयाण की आज्ञा देता है। सेना सजधज कर कूच कर देती है किन्तु सेना असलान के ऊपर आक्रमण के लिए न जा दिग्विजय के लिए पश्चिम की ओर चल पड़ती है। कीर्तिसिंह को निराशा हुई। सेना चारो ओर दिग्विजय करती रही। कीर्तिसिंह आशा में साथ लगे रहे। केशव कायस्थ और सोमेश्वर के सिवाय उनके सब साथी भी उन्हें छोड़ गये। कीर्तिसिंह ने फिर एक बार सुल्तान से प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकृत हो गई। सेना का मुह पूर्व की ओर असलान के प्रति मोड दिया गया।

चतुर्थ पल्लव मे भृंगी सेना प्रयाण का समाचार पूछती है। भृंग सेना का और उसके प्रयाण का वर्णन करता है। सेना के तिरहुत पहुँचने पर सुल्तान कुछ निराश हो गये। कीर्तिसिंह के प्रोत्साहन से सेना आगे बढी। असलान के साथ घोर युद्ध हुआ। कीर्तिसिंह और वीरसिंह के अद्भुत पराक्रम से असलान युद्ध-भूमि मे भाग गया। कीर्तिसिंह ने भागते हुए असलान पर हाथ उठाना कायरता समझी। कीर्तिसिंह विजित हुए। सुल्तान ने उनका राज्याभिषेक किया। सस्कृत पद्य में आशीर्वाद और मंगल कामना के साथ काव्य समाप्त होता है।

वर्णनीय विषय—यद्यपि कीर्तिलता राजा कीर्तिसिंह के पराक्रम और यश का वर्णन करने की इच्छा से लिखी गई किन्तु अधिकता सुल्तान की सेना के वर्णन की और यात्रा के मार्ग के दृश्यो के वर्णन की है। प्रथम पल्लव में कीर्तिसिंह के दानशील स्वभाव और आत्माभिमान की ओर संकेत किया गया है और अन्तिम पल्लव मे उनके पराक्रम की कुछ झांकी मिलती है। काव्य में वर्णनात्मकता अधिक है किन्तु वर्णनो में स्वाभाविकता है। 'ऐतिहासिक तथ्य कल्पित घटनाओ या सभावनाओ के द्वारा धूमिल नही हो पाये।' बीच बीच में कई स्थल काव्यात्मक वर्णन से युक्त है। वीर पुरुष का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

पुरिसत्तणेन पुरिसओ नहि पुरिसओ जम्ममत्तेन।
जलदानेन हु जलओ नहु जलओ पुञ्जिओ धूमो॥
सो पुरिसओ जसु मानो सो पुरिसओ जस्स अज्जने सत्ति।
इअरो पुरिसाआरो पुच्छ विहूना पसू होइ॥

(कीर्तिलता, पृ० ६)

अर्थात् कोई पुरुषत्व से ही पुरुष होता है जन्म-मात्र से ही पुरुष नही होता। मेघ तभी जलद है जब वह जलदान करे। पुंजीभूत धूम्र को जलद नही कहते। पुरुष वही है जिसका मान हो, जिसमें धनोपार्जन की शक्ति हो। अन्य पुरुष तो पुरुष के आकार में पुच्छविहीन पशु रूप है।

राज गणेश्वर के वध के अनन्तर राज्य में क्रान्ति और अराजकता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

मारन्त राए रण रोल पड मेइनि हाहासद्द हुअ।
सुरराए नएर नाएर रमनि बाम नयन पफुरिअ धुअ॥
ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिअ।
दास गोसाञनि गहिअ धम्म गए धन्ध निमज्जिअ॥
खले सज्जन परिभविअ कोइ नहि होइ विचारक।
जाति अजाति विवाह अधम उत्तम कां पारक॥
अक्खर रस बुज्झनिहार नहि, कइ कुल भमि भिक्खारि भउँ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुणे रा गणेस जबे सग्ग गउँ॥

(वही पृष्ठ १७-१८)

अर्थात् राजा गणेश्वर के मारे जाने पर रण मे कोलाहल मच गया, पृथ्वी मे हाहा-कार मच गया। देवराज इन्द्र के पुर की नागरिक रमणियो के नयन प्रस्फुरित और कम्पित हो उठे। ठाकुर ठग हो गये, चोरो ने घर घेर लिये, नौकरो ने स्वामियों को पकड लिया, धर्म नष्ट हो गया, लोगो के धधे डूब गये, दुष्ट सज्जन का तिरस्कार करने लगे, कोई विचार करने वाला नही रहा, जाति-अजाति-विवाह एव अधम उत्तम का विचार जाता रहा। कोई अक्षर-रस-ज्ञाता नही रहा, कवि कुल घूम घूम कर भिखारी के समान हो गया और तिरहुत के सब गुण तिरोहित हो गये।

वीरसिंह और कीर्तिसिंह राज्य छोडकर जौनपुर के सुल्तान से सहायता लेने के लिए निकल पड़े। दो-तीन पक्तियो में ही कवि ने उनकी करुण दशा का चित्र अकित कर दिया है—

णं वलभद्दह कण्ण ण उँण बन्निअउँ राम लक्खन।
राजह नन्दन पाअे चलु अइस विधाता भोर।
ता पेक्खन्ते कमण काँ नअण न लग्गइ नोर॥

(की० ल० पृ० २२)

क्या वे दोनो बलराम और कृष्ण थे या राम और लक्ष्मण? दोनो राजकुमार पाव पांव चले, विधाता कैसा मूढ! उनको देखकर किस की आँखो मे जल नही भर आया?

जौनपुर का वर्णन (वही पृष्ठ २६–३२) और वहाँ की वेश्याओ का वर्णन (वही पृष्ठ ३४–३८) स्वाभाविक एवं आकर्षक है। वहाँ के बाजारो और उन में व्यापार करने वाले तुर्की मुसलमानो के रहन-सहन और व्यवहार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

सराफे सराहे भरे बे वि वाजू,
तौल्लन्ति हेरा लसूला पेआजू॥
षरीदे षरीदे वहूता गुलामो,
तुरुक्कें तुरुक्कें अनेको सलामो॥
बसाहन्ति षीसा मइज्जल्ल, मोजा,
भमे मीर वल्लीअ सइल्लार षोजा॥
अबे वे भणन्ता सराबा पिबन्ता,
कलीमा कहन्ता कलामे जीअन्ता।
कसीदा कटन्ता मसीदा भरन्ता,
कितेवा पढन्ता तुरुक्का अनन्ता॥

(की० ल० पृष्ठ ३८-४०)

अर्थात् दोनो ओर सुन्दर सराफे की दुकाने थी। दुकानदार लहसन और प्याज तोल रहे थे। बहुत से गुलाम खरीद रहे थे। मुसलमान-मुसलमान मे दुआ सलाम हो रही थी। बटुए, पाजेब और मौजें खरीदे जा रहे थे। मीर, वली, सालार और खोजे घूमते फिर रहे थे। अनन्त तुर्क थे। कोई अबे बे कहते थे, कोई शराब पीते थे, कोई करीमा कहते थे, कोई कलमा पढ़ रहे थे, कोई कसीदा काढ रहे थे अर्थात् प्रशस्तियाँ लिख रहे थे, कोई

मसीदा भर रहे थे अर्थात् मसविदा (draft) तैयार कर रहे थे और कोई किताबें पढ़ रहे थे।

सुल्तान इब्राहीम की सेना के प्रयाण के वर्णन में छन्द योजना भावानुकूल हुई है। सेना के प्रयाण का प्रभाव भी सुन्दरता से अभिव्यक्त हुआ है।

"चलिअ तकतान सुरुतान इबराहिमओ,
कुरुम भण धरणि सुण रणि वल नाहि मो।
गिरि टरइ महि पडइ नाग मन कंपिआ,
तरणि रथ गगन पथ धूलि भरे झंपिआ।
तवल शत बाज कत भेरि भरे फुक्किआ,
प्रलय घण सद्द हुअ णर रव लुक्किआ।
. ...
खग्ग लइ गव्व कइ तुलुक जव जुज्झइ,
अपि सगर सुरनअर संक पलि मुज्झइ।
सोखि जल किअउ थल पत्ति पअ भारहीं,
जानि धुअ संक हुअ सअल संसारहीं।"

(वही पृष्ठ ६४-६५)

अर्थात् सुल्तान की सेना के प्रयाण के समय कूर्म पृथ्वी से बोला कि हे पृथ्वी! सुन मुझ मे युद्ध को सहने का बल नही। उस समय पर्वत टलने लगे, पृथ्वी गिरने लगी, शेष नाग का फन कंपित हो उठा, आकाश मे सूर्य के रथ का मार्ग धूलि भार से ढक गया। सैकड़ों तबले बजने लगे, कितनी ही भेरियाँ बजने लगी। प्रलय घन-गर्जन-सा शब्द हुआ, मनुष्यो का कोलाहल विलीन हो गया।·········तलवार लेकर गर्व से जब तुर्क युद्ध करता है तब सारा सुर नगर भयभीत हो मूर्च्छित हो जाता है। पदातियों ने पैरों के भार से ही जल को सुखाकर स्थल कर दिया, यह जान सारा संसार निश्चय ही सशंकित हो गया।

इसी प्रकार के युद्धोत्साह से भरे हुए स्वाभाविक वर्णन (वही पृष्ठ ९६,१०२,१०४) कवि ने प्रस्तुत किये है। इसी प्रसग में युद्ध जनित जुगुप्सा भाव का दृश्य (वही पृष्ठ १०६) भी सामने आ जाता है।

कीर्तिसिंह के साथ असलान का युद्ध कीर्तिसिंह की वीरता का एक सुन्दर उदाहरण है—

तहि एक्कहि एक्क पहार पले, जहि खग्गहि खग्गहि धार धरे।
हअ लग्गिय चंगिम चारु कला, तरवारि चमक्कइ विज्जु झला।
टरि टोप्परि टुट्टि शरीर रहे, तनु शोणित धारहि धार बहे।
तनुरंग तुरंग तरंग बसे, तनु छड्डइ लग्गइ रोस रसे।
सव्वउँ जन पेक्खइ जुज्झु कहा, महभावइ अज्जुन कन्न जहा।

(वही पृ० ११०)

एक दूसरे पर प्रहार होने लगे, तलवार तलवार की धार को रोकने लगी। सुन्दर

छोडें सुशोभित हो रहे थे। तलवार बिजली की चमक की तरह चमचमा रही थी। शरीर टूट टूट कर गिरने लगे, शरीर पर रक्त धारायें बहने लगी। घोडो का शरीर रुधिर तरगो से रजित हो गया, मानो क्रोध शरीर छोड वहा लग गया हो। सब लोग युद्ध देख रहे थे और अर्जुन एव कर्ण के युद्ध की कथा की कल्पना कर रहे थे।

इसी प्रसग मे असलान के रणभूमि से मुंह मोड लेने पर कीर्तिसिह की उदारता का परिचय मिलता है।

"जइ रण भग्गसि तइ तोज्जे काअर,
अरु तोइ मारइ से पुनु काअर।"

(वही पृष्ठ ११२)

इस प्रकार काव्यगत भिन्न-भिन्न वर्णनो को देखने से प्रतीत होता है कि कवि के अन्दर वर्णनो का सहज प्रत्यक्ष चित्र अकित करने की क्षमता थी। किन्तु वर्णनो में संवेदना और हृदयस्पर्शिता नही। काव्य में कवि की उत्कृष्ट कल्पना और प्रतिभा के दर्शन नही होते। कवि की आरम्भिक अवस्था के कारण सभवतः उसका काव्य-सौन्दर्य निखर नही सका।

भाषा—काव्य मे गद्य का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर मिलता है। इस दृष्टि से इसे चपू भी कहा जा सकता है। ग्रथ की भाषा मैथिल अपभ्रश है जो उत्तरकालीन अपभ्रश का रूप है। इसमे संस्कृत पदावली, प्राकृत शब्द-योजना, अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग और मैथिली का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गद्य में तत्सम प्रधान संस्कृत पदावली और गाथाओं में प्राकृत प्रभाव अधिक उदग्र है। पद्य के समान गद्य में भी तुक का प्रयोग मिलता है। जैसे—

"हृदय गिरि कन्दरा निद्राण पितृ वैरि केशरी जागु" (पृ० १८)
"विस्मृत स्वामि शोकहु, कुटिल राजनीति चतुरहु" (पृ० २०)

आदि गद्य वाक्यांशों में संस्कृत पदयोजना और

"पुरिसत्तणेन पुरिसओ" इत्यादि और "सो पुरिसओ जसु मानो" इत्यादि पद्यों (पृ० ६) में प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट है।

तुर्कों मुसलमानों के वर्णन में बाजू, सलाम, मोजा, कलीमा, कसीदा, कबाबा, पएदा (प्यादा) बाग, रोजा, षाण उमरा, महल, मजेदे, सुरतान (सुल्तान), दारिगह, नियाजगह, उज्जीर (वजीर) खोदालम्ब, पातिसाह, फौद आदि अनेक अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन शब्दो को उच्चारण की सुविधा के लिए तोड मरोड कर प्रयोग मे लाया गया है।

छन्द—संस्कृत के पद्यो में मालिनी, शार्दूल विक्रीडित आदि सस्कृत के छन्दो का प्रयोग हुआ है। अन्यत्र दोहा, छप्पय, मणवहला, गीतिका, भुजंगप्रयात, पद्मावती, निशिपाल, मधुकर, णाराच, अरिल्ल इत्यादि छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

इस प्रकार जैन धर्म सम्बन्धी विषय के अतिरिक्त लौकिक विषय को लेकर लिखे गए काव्यों की संख्या अत्यन्त अल्प हैं। सदेस रासक और कीर्तिलता के समान अन्य

काव्यो की रचना ही न हुई ऐसी कल्पना असंगत सी प्रतीत होती है। इस प्रकार की अन्य रचनायें सभवत लिखी गई होंगी किन्तु उनका जैन भण्डारों मे या तो प्रवेश नही हो सका या उनका उचित सरक्षण न हो सका। जो कुछ भी हो इस प्रकार के खंड काव्यो की संख्या वर्तमान उपलब्ध अपभ्रश खडकाव्यो मे अतीव स्वल्प है। सदेश रासक और कीर्तिलता ये दोनो काव्य अपभ्रश साहित्य के उत्तर काल की रचनायें है और उत्तर कालीन साहित्य के इस रूप को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है।

नवां अध्याय

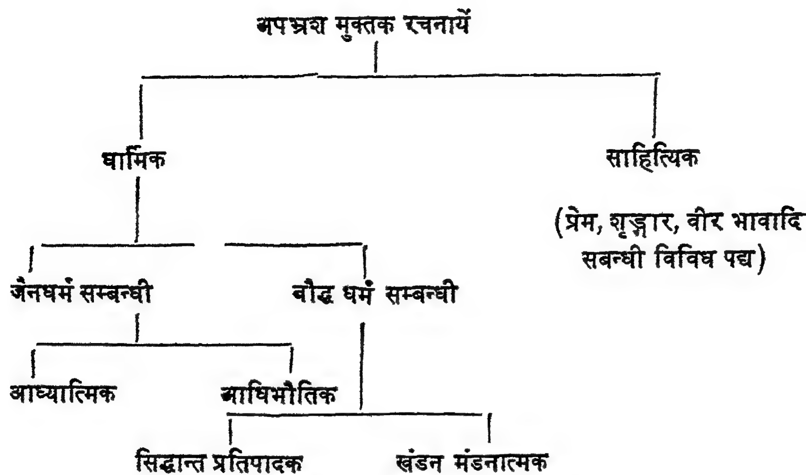
अपभ्रंश मुक्तक काव्य--
(१) धार्मिक--जैनधर्म सम्बन्धी

पिछले अध्यायो में अपभ्रश के कतिपय प्रबन्ध काव्यो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इनमे से अधिकाश प्रबन्ध काव्य किसी तीर्थंकर, महापुरुष, धार्मिक पुरुष आदि के चरित से सबद्ध विशालकाय या लघु काय ग्रन्थ है। इनमे कवि का लक्ष्य चरित वर्णन के साथ साथ किसी धार्मिक भावना का प्रचार भी है। इस अध्याय मे ऐसी मुक्तक रचनाओ का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा जिनका प्रधानतया किसी व्यक्ति विशेष के जीवन के साथ सबन्ध नही और जिनमें धर्मोपदेश की भावना मुख्य है।

ये रचनाये कुछ तो जैनधर्म संबन्धी है और कुछ बौद्ध सिद्धो की वज्रयान एव सहजयान सबन्धी। प्रथम प्रकार की रचनाये अनेक लेखको द्वारा लिखी हुई कृतियो के रूप मे उपलब्ध होती है, दूसरे प्रकार की स्फुट दोहो और गानो के रूप मे। इन धार्मिक रचनाओ के अतिरिक्त अनेक स्फुट मुक्तक पद्य, प्राकृत ग्रन्थो मे इतस्तत विकीर्ण या व्याकरण, छन्द आदि के ग्रन्थो में उदाहरण स्वरूप मे प्राप्त पद्यो के रूप मे, उपलब्ध होते है। इनमे प्रेम, शृगार, वीर भाव आदि किसी हृदय के तीव्र भाव की व्यजना मिलती है।

इन मुक्तक रचनाओं में से जैनधर्म या बौद्धधर्म सम्बन्धी रचनाओ मे अपेक्षाकृत काव्य रस गौण है और स्फुट पद्यो के रूप मे प्राप्त मुक्तक पद्यो मे काव्य रस मुख्य है। धार्मिक रचनाओ का विवरण भाषा के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

जैन धर्म सम्बन्धी रचनाये हमें दो रूपो मे मिलती है—आध्यात्मिक और आधिभौतिक। आध्यात्मिक रचनाओ मे लेखक का लक्ष्य जीव, आत्मा, परमात्मा का चिन्तन आदि धार्मिक तत्व विश्लेषण या धर्म के अगो का प्रतिपादन रहा है। आधिभौतिक रचनाओ मे नीति, सदाचार आदि सर्वसाधारण के योग्य लौकिक जीवन को उन्नत करने वाले उपदेशो का प्रतिपादन मिलता है। बौद्ध सिद्धो की रचनायें भी दो प्रकार की है एक धार्मिक सिद्धान्त प्रतिपादन करने वाली और दूसरी खडन मडन परक। इस प्रकार अपभ्रश के मुक्तक काव्य का निम्नलिखित विभाजन किया जा सकता है:—



पहिले हम जैनधर्म सम्बन्धी धार्मिक कृतियों का विवेचन करेंगे। उनमें से भी प्रथम आध्यात्मिक कृतियो का और फिर आधिभौतिक एव उपदेशात्मक कृतियो का।

(क) आध्यात्मिक रचनायें

आध्यात्मिक रचना करने वाले कवि प्रायः जैन धर्मावलम्बी ही है। इस प्रकार की रचनाओ में जैन धर्म का जो रूप प्रस्तुत किया गया है उसमे संकीर्णता, कट्टरता और अन्य धर्मों के प्रति विद्वेष-भावना की गन्ध नही। इन कवियो का लक्ष्य मनुष्य को सदाचारी बना कर उसके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना था। इनका हृदय उदार था। इनके हृदय की तन्त्री चिर प्राचीन करुणा की तारो से झंकृत रहती थी।

इन लेखको ने बाह्य आचार, कर्म कलाप, तीर्थयात्रा, व्रत आदि को गौण बताया और सदाचार एव आन्तरिक शुद्धि को प्रधानता दी। इन्होने बताया कि परम तत्व इसी शरीर मन्दिर में प्राप्य है और उसी की उपासना से मानव शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार इन कवियो का जीवन स्वयं धर्म-प्रवण था। ये लेखक पहिले सत थे पीछे कवि। हृदय के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति इनका ध्येय था। भाव प्रधान था, भाषा गौण थी। इसलिये भाषा-सौन्दर्य या काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से सभवत. इनका मूल्य आकना अनुचित होगा। इसी प्रकार की आध्यात्मिक कृतियो का विवरण नीचे दिया जाता है।

परमप्पयासु (परमात्म प्रकाश)[1]

यह ग्रन्थ योगीन्द्राचार्य या योगीन्दु द्वारा लिखा गया है। लेखक ने ग्रन्थ में अपने

---

१. डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा संपादित, प्रकाशक सेठ मनिलाल रेवा शंकर झावेरी, परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई, १९३७ ई०

विषय में कुछ सूचना नही दी। डा० उपाध्ये ने परमात्म प्रकाश की भूमिका मे हेमचन्द्र और परमात्म प्रकाश की भाषा की तुलना करते हुए बताया है कि हेमचन्द्र के भाषा सम्बन्धी कुछ नियमो का पालन योगीन्द्र के परमात्म प्रकाश में नही मिलता। इससे यह परिणाम निकलता है कि परमात्म प्रकाश की रचना हेमचन्द्र के शब्दानुशासन से पूर्व हुई। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरणमे अपभ्रश विषयक अध्याय (८ ४) मे कुछ दोहे ऐसे दिये है जो परमात्म प्रकाश से लिये गये है।[1] अत इतना निश्चित है कि योगीन्द्र देव हेमचन्द्र से पूर्व हुए। चड के प्राकृत लक्षण मे परमात्म प्रकाश का एक दोहा उद्धृत किया हुआ मिलता है जिसके आधार पर डा० उपाध्ये योगीन्द्र का समय चड से पूर्व ईसा की छठी शताब्दी मानते है।[2] किन्तु सभव है कि वह दोहा दोनो ने किसी तीसरे स्रोत से लिया हो। इसलिये इस युक्ति से हम किसी निश्चित मत पर नही पहुँच सकते। भाषा के विचार से योगीन्द्र का समय ८वी ९वी शताब्दी के लगभग प्रतीत होता है। श्री राहुल साकृत्यायन ने इनका समय १००० ई० माना है।

ग्रन्थ दो अधिकारो मे विभक्त है। भट्ट प्रभाकर, सभवत. योगीन्द्र का कोई शिष्य, उनसे आत्मा परमात्मा सबन्धी कुछ प्रश्न पूछता है (प० प्र० १. ८) और उन्ही का उत्तर, देने के लिए योगीन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना की। प्रथम अधिकार मे बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप, विकल परमात्मा और सकल परमात्मा का स्वरूप, जीव के स्वशरीर प्रमाण की चर्चा और द्रव्य, गुण, पर्याय, कर्म निश्चय, सम्यग् दृष्टि, मिथ्यात्व आदि की चर्चा की गयी है। द्वितीय अधिकार मे मोक्ष स्वरूप, मोक्ष फल, मोक्ष मार्ग, अभेद रत्नत्रय, समभाव, पापपुण्य की समानता और परम समाधि का वर्णन है।

योगीन्द्र बताते हैं कि परमात्मा ज्ञानस्वरूप, नित्य और निरजन है। देह आत्मा से भिन्न है। परम समाधि मे स्थित जो इस प्रकार आत्मा और शरीर में भेद करता है वही पडित है :

"देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम समाहि परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥ १.१४

वह परमात्मा देह भिन्न है किन्तु इसी देह मे स्थित है। उसी की अनुभूति से पूर्व कर्मों का क्षय होता है।

---

१. उदाहरण के लिये—

संता विसय जु परिहरइ बलि किज्जउं हउं तासु।
सो दइवेण जि मुंडियउ सीस खडिल्लउ जासु"॥
प० प्र० २. १३९

संता भोग जु परिहरइ तसु कंतहो बलि कीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डियउं जसु खल्लिहडउं सीसु॥ हे० च० ८.४.३८९

२. आ० ने० उपाध्ये का लेख, जोइन्दु एंड हिज अपभ्रंश वर्क्स, एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जिल्द १२, सन् १९३१, पृ० १६१-१६२।

"जें दिठ्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ॥" १.२७॥

विमल स्वभाव वाले उस परमात्मा को छोड़ कर तीर्थ यात्रा, गुरु सेवा, किसी अन्य देव की चिन्ता करना व्यर्थ है—

"अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुअ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुं अप्पा विमलु मुएवि॥" १.९५॥

वह आत्म तत्व न देवालय में, न शिला में, न लेप्य में और न चित्र में है। वह अक्षय, निरंजन, ज्ञानमय शिव समचित्त में है। अर्थात् समदर्शी योगियो द्वारा जाना जाता है—

"देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम चित्ति॥"

रागादि से मलिन चित्त में शुद्धात्म स्वरूप के दर्शन नही होते (१. १२०)। उसी आत्मा के ध्यान से अनन्त सुख की प्राप्ति होती है (१. ११७)।

यदि क्षण भर भी कोई उस परमात्मतत्व से अनुराग कर ले तो उसके समग्र पाप इसी प्रकार नष्ट हो जाते है जिस प्रकार आग की चिनगारी से लकड़ियो का विशाल ढेर—

"जइ णिविसद्धु वि कुवि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठ-गिरी डहइ असेसु वि पाउ॥" १.११४

ज्ञानमय आत्मा को छोड़कर दूसरी वस्तु ज्ञानियों के मन में नही लगती। जिस ने मरकत को जान लिया उस को काँच से क्या प्रयोजन ?

योगीन्द्र ने बताया कि ज्ञानी पाप को भी अच्छा समझते हैं क्यो कि ये पाप जीवों में दुःख उत्पन्न कर उनमें सद् बुद्धि पैदा करते है। अतएव पुण्यों का निराकरण करने को भी प्रस्तुत रहना चाहिये—

"वर जिय पावइँ सुंदरइँ णाणिय ताइँ भणंति।
जीवहँ दुक्खइँ जणिवि लहु सिवमइँ जाइँ कुणंति॥" २.५६॥
"पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ॥" २.६०॥

मोक्ष मार्ग का उल्लेख करते हुए कवि ने बताया कि चित्त शुद्धि ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है—

"जहिं भावइ तहिं जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।
केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहं सुद्धि ण जंजि॥" २.७०॥

सांसारिक विषयो की नश्वरता और असारता का प्रतिपादन करते हुए कवि ने विषय त्यागी की प्रशंसा की है—

"मूढ़ा सयलु वि कारिमउ भुल्लउ मं तुस कंडि।
सिव पहि णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि ॥"[१]

(२.१२८)

अर्थात् हे मूढ जीव ! शुद्ध जीव के अतिरिक्त अन्य सब विषयादिक कृत्रिम, विनाशशील है। तू भ्रम से भूसे को मत कूट। निर्मल मोक्ष मार्ग से प्रेम कर। शीघ्र गृह परिजनादि को छोड़।

योगीन्द्र देवकुल, देव, शास्त्र, तीर्थ, वेद, काव्य, सब को नश्वर मानते हैं। जो कुछ कुसुमित दिखाई देता है सब कुछ (कालानल मे) ईंधन है।

"देउलु देउ वि सत्थु गुरु तित्थु वि वेउ वि कव्वु।
वच्छु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु[२] ॥"२.१३०॥

"जे दिट्ठा सूरुग्गमणि ते अत्थवणि न दिट्ठ।
तें कारणिं वढ धम्मु करि धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ ॥"

(२.१३२)

हे मूर्ख ! सूर्योदय पर जो दिखाई देता है वह सूर्यास्त पर नही रहता। इस कारण धर्माचरण कर। धन मे और यौवन मे क्या तृष्णा ?

निम्नलिखित दोहे में विषयो की क्षण-भगुरता का सुन्दरता से प्रतिपादन किया है—

"विषय-सुहइं बे दिवहडा पुणु दुक्खहँ परिवाडि।
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुँ अप्पण खंधि कुडाडि[३] ॥"२.१३८॥

विषय त्यागी की प्रशसा करता हुआ कवि कहता है—

"संता विसय जु परिहरइ वलि किज्जउँ हउँ तासु।
सो दइवेण जि मुंडियउ सीसु खडिल्लउ जासु ॥२.१३९॥

हे सतो ! जो विषयो का परित्याग करता है मै उस पर बलिहारी जाऊँ। जिसका सिर गजा है उसका सिर भाग्य ने ही मूण्ड दिया।

इसी अध्यात्म-चिन्तन मे कवि ने नीति और सदाचार के उपदेश भी दिये है। कुसंगति से बचने का (२. ११०, ११४), मन को वश में करने का (२. १४०), क्रोध से दूर रहने (२ १८६) आदि का आदेश दिया है।

योगीन्द्र के विषय प्रतिपादन मे कही धार्मिक सकीर्णता नही दिखाई देती। विषयो की निस्सारता और क्षण-भगुरता का उपदेश देते हुए भी कवि ने कही पर कामिनी, काचन और गृहस्थ जीवन के प्रति कटुता प्रदर्शित नही की।

भाषा—लेखक ने सरल भाषा मे अनेक उपमाओं और दृष्टान्तो द्वारा भाव को सरल, सुबोध और स्पष्ट बनाया है। उपमा और दृष्टान्तो मे उपमानो को सामान्य जीवन की

---

१. तुलना कीजिये पाहुड़ दोहा संख्या १३.
२. देखिये वही संख्या १६१.
३. तुलना कीजिये पाहुड़ दोहा संख्या १७.

घटनाओ और दृश्यो से चुन कर लिया गया है। उदाहरण के लिए :

"राएँ रंगिए हियवडए देउ ण दीसइ संतु।
दप्पणि मइलए बिंबु जिम एहुउ जाणि णिभंतु॥"१.१२० ।

अर्थात् राग रंजित हृदय में शांत देव इसी प्रकार नही दीखता जिस प्रकार मलिन दर्पण मे प्रतिबिम्ब। यह निश्चय जानो।

"भल्लाहँ वि णासंति गुण जहँ संसग्ग खलेहिं।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ तें पिट्टियइ घणेहिं॥"२.११०॥

अर्थात् भद्र जनो के गुणो का भी खलो के ससर्ग से नाश हो जाता है। वैश्वानर अग्नि मलिन लोहे के ससर्ग से हथौड़ो से पीटा जाता है।

"जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्कहिं केम समंति वढ बे खंडा पडियारि" ॥१.१२१॥

अर्थात् जिसके हृदय में हरिणाक्षी सुन्दरी वास करती है वह ब्रह्म विचार कैसे करे? एक ही म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती है?

निम्नलिखित दोहे में श्लेषालकार का प्रयोग मिलता है।

"तलि अहिरणि वरि घण-वडणु संडस्सय-लुंचोडु।
लोहहँ लग्गिवि हुयवहहँ पिक्खु पडंतउ तोडु" ॥२.११४॥

अर्थात् देखो लोहे का सम्बन्ध पाकर अग्नि नीचे रखे हुए अहरन (निहाई) के ऊपर घन की चोट, सडासी से खीचना, चोट लगने से टूटना आदि दु खो को सहती है। अर्थात् लोहे की संगति से लोक-प्रसिद्ध देवतुल्य अग्नि दुःख भोगती है इसी तरह लोह अर्थात् लोभ के कारण परमात्मतत्व की भावना से रहित मिथ्या दृष्टि वाला जीव घन-पात सदृश नरकादि दु खो को भोगता है।

कवि की भाषा में वाग्धाराओ और लोकोक्तियो का प्रयोग मिलता है—

"बहुएँ सलिल विरोलियइँ करु चोप्पडउ ण होइ।" (२.७४)

बार बार पानी मथने से भी हाथ चिकने चुपडे नही होते।

"भुल्लउ जीव म वाहि तुहुं अप्पण खंधि कुहाडि" (२.१३८)

हे जीव! भ्रम से अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी मत मार।

"मूल विणट्ठइ तरुवरहँ अवसइँ सुक्कहिं पण्ण।" (२.१४०)

अर्थात् सुन्दर वृक्ष के भी मूल नष्ट हो जाने पर उसके पत्ते अवश्य सूख जायंगे।

"मरगउ जें परियाणियउ तहुँ कच्चें कउ गण्णु"। (२.७८)

इत्यादि

भाषा में विभक्ति सूचक प्रत्यय के स्थान पर परसर्ग का प्रयोग भी कही कही दिखाई देता है :

"सिद्धिहिं केरा पंथडा (२.६९)**—सिद्धि का मार्ग।**

ग्रन्थ की भाषा में अनेक ऐसे शब्द-रूपो का प्रयोग मिलता है जो हिन्दी शब्दों के रूपा-

न्तर से प्रतीत होते हैं।[1]

परमात्म प्रकाश दोहों मे रचा गया है। बीच-बीच में कुछ गाथायें भी मिलती हैं।

---

१. इस प्रकार के शब्दों की सूची उनके संस्कृत पर्यायवाची शब्दों के साथ नीचे दी जाती है।

होसहिं—भविष्यन्ति (१. २); गउ—गतः (१. ९); अप्पा—आत्मा (१. १. ५१); लेइ—गृह्णाति (१. १८) हिन्दी लेना; लेति (२. ९१); लेवि (२. १५०); छिवइ—स्पृशति (१. ३४); वड्ढइ खिरइ—वर्धते क्षरति (१. ५४); बोल्लहिं—ब्रुवन्ति (१. ५४), (२. १०); देखइ—पश्यति (१.६४); जाइ—याति (१. ६६); उप्पज्जइ—उत्पद्यते—उपजना (१. ६८); पावहि—प्राप्नोषि (१. ७२, २. २०५, २१३); मेल्लिवि—छंडेविणु—त्यक्त्वा (१. ७४); छंडि—त्यज (२. १२८); बाहिरउ—बाह्यं (१. ७५, २.१०९); बूढउ—वृद्धः (१. ८२); जोइ—पश्यति (१.८६); जोअ—देखना (१. १०९); (२. ३४); लहइ—लभते (१. ११७); मइलए—मलिने (१. १२०); (२. १७७); खंडा—खड्ग (१. १२१); अक्खहि—आख्याहि पंजाबी आख (२. १); जाणउं—जानूं (२. १); तुट्टइ—त्रुट्यति (२. ११); पेच्छइ—पश्यति (२. १३); छह—षट् (२. १६); रयणहं—रत्नानां (२. २१); चडेइ—आरोहति (२. ४६); भल्लाइं—भद्राणि (२. ५७) (२. ११०); पडंतउ—पतन्तम् (२. ६८); सिद्धिहिं केरा पंथडा—सिद्धेः संबन्धी पन्थाः (२. ६९); जाहि—याहि हिन्दी जा (२. ७०); लग्गइ—लगति (२. ७८); बुज्झइ—बुध्यते हिन्दी बूझना (२. ८२) (२. २०४); पढिज्जइ—पठ्यते (२. ८४); चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिं—चेला, चेली, पुस्तकादिक से (२. ८८); छारेण—क्षारेण, राख से (२. ९०); डहंति—दहति (२. ९२); विहाणु—विभातः (२. ९८); णाव—नौः (२. १०५); पिट्टियउ—पिट्यते (२. ११०); संडस्सय—संदेशक, हिन्दी सँडासी (२. ११४); धंधइ—धंधे में (२. १२१); घरु—गृह (२. १२४); भुल्लउ—भ्रान्तः (२. १२८); रुक्खें—वृक्षेण (२. १३३); बप्पेण—पित्रा (२. १३४); चरिवि—चरित्वा-चर कर (२. १३६); लहीसि—लभसे (२. १४१); (२. १७०); चोप्पडि—म्रक्षय-चुपडो (२. १४८); घिणावणउ—घृणास्पद-घिनौना (२. १५१); बलि किज्जउं—बलि मस्तकस्योपरि तनभागेनावतारणं क्रियेहमिति, बलि जाऊँ (२. १६०); झंपियएहिं—आच्छादितैः, ढके हुए (२. १६९); कोइ—कश्चित् (२. १८३); विलाइ—विलीयते (२. १८४); बुड्डहिं—मज्जन्ति—डूबते है (२. १८९); केत्तिउ या कित्तिउ—कियद् (२. १४१); जित्तिउ—यावन्मात्रं (२. ३८)। इत्यादि।

गाथाओं की भाषा प्राकृत से प्रभावित है। छन्दो मे स्रग्धरा और मालिनी नामक दो वर्ण-वृत्तो का भी प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा भी प्राकृत से प्रभावित है।

योगसार[1]

इसका लेखक भी योगीन्द्र ही है। ग्रन्थकार ने निर्देश किया है कि ससार से भयभीत और मोक्ष के लिये उत्सुक प्राणियो की आत्मा को जगाने के लिये जोगिचन्द्र साधू ने इन दोहो को रचा (पद्य सख्या ३.१०८)। अन्तिम पद्य में ग्रन्थकर्ता के जोगिचन्द्र नाम का उल्लेख, आरम्भिक मगलाचरण का सादृश्य, प्रतिपाद्य विषय की एकरूपता, वर्णन शैली और अनेक वाक्यो तथा पंक्तियो की समानता से कल्पना की जा सकती है कि यह जोगिचन्द्र परमात्म प्रकाश के रचयिता योगीन्द्र ही हैं।

योगसार का विषय भी परमात्म प्रकाश के सदृश ही है। लेखक ने बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का स्वरूप बतलाते हुए परमात्मा के ध्यान पर बल दिया है। इसमें लेखक ने पाप पुण्य दोनो ही प्रकार के कर्मो के त्याग का आदेश दिया है। सासारिक बन्धनो को और पाप पुण्यो को त्याग कर आत्म-ध्यान-लीन ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

लेखक सब देवताओं को सन्मान की दृष्टि से देखता है। निम्नलिखित दोहों से इन की धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है

"सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्दवि सो बुद्ध।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु" ॥१०५॥
"एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्झहि सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ" ॥१०६॥

भाषा हृदय को स्पर्श करने वाली है। सीधी और सरल भाषा में सुन्दरता से लेखक ने भावो को अभिव्यक्त किया है। लेखक की रचना शैली और भाषा का ज्ञान निम्नलिखित पद्यों से हो सकता है

"पुण्णि पावइ सग्ग जिउ पावएं णरयणिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तो लब्भइ सिव-वासु" ॥३२॥

जीव पुण्य से स्वर्ग को पाता है और पाप से नरक निवास को। जब वह दोनों का परित्याग कर आत्मा को जानता है तो शिव वास प्राप्त करता है।

"आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ णवि अप्प-हिउ इम संसार भमेइ" ॥४९॥

आयु क्षीण होती जाती है न तो मन क्षीण होता है और न आशा ही। मोह स्फुरित होता है आत्महित नही। इस प्रकार जीव भ्रमण करता रहता है।

"जेहउ मणु विसयहं रमइ तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु णिव्वाणु लहेइ" ॥५०॥

---

१. डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा संपादित और परमात्म प्रकाश के साथ ही प्रकाशित।

योगी कहता है, हे योगियो ! जिस प्रकार मन विषयो मे रमता है उसी प्रकार यदि आत्म चिन्तन करे तो शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त हो।

ग्रन्थ की भाषा मे अनेक शब्द रूप हिन्दी शब्दो के पूर्व रूप से प्रतीत होते है।[1]

पाहुड दोहा[2]

इस ग्रन्थ के रचयिता मुनि रामसिंह समझे जाते है। इसमे ग्रन्थकार के विषय में कोई उल्लेख नही मिलता। एक हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका मे इन दोहो के रचयिता मुनि रामसिंह कहे गये है।[3] ग्रन्थ के एक दोहे मे भी ऐसा ही निर्देश है।[4] कुछ प्रतियो मे इसके रचयिता योगीन्द्र माने गये है।[5] सम्भव है कि भाव साम्य, भाषा साम्य और योगीन्द्र की प्रसिद्धि के कारण इसका रचयिता भी उनको ही मान लिया गया हो। डा० उपाध्ये का विचार है कि सम्भवत ग्रन्थ योगीन्द्र कृत ही है और रामसिह केवल एक परम्परागत नाम है।[6]

ग्रन्थ-कर्ता के काल के विषय मे भी निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। इस ग्रन्थ के कुछ पद्य हेमचन्द्र ने उद्धृत किये है।[7] अत इतना निश्चित है कि लेखक हेमचन्द्र से पूर्व हुआ। 'पाहुड दोहा' के कुछ दोहे 'सावय धम्म दोहा' मे भी मिलते है। ये दोहे सावय-धम्म दोहा से लिये गये। सम्भवत लेखक के समय तक सावयधम्म दोहा की रचना हो चुकी थी। अत रामसिंह सावयधम्म दोहा के रचयिता देवसेन (वि० स० ९९०, ९३७ ई०) और हेमचन्द्र (सन् ११००) के बीच सन् १००० ई० के लगभग हुए होगे। लेखक के जैन

---

१. कहिया—कथिताः दोहा संख्या १०; करहि—करोषि, पावहि—प्राप्नोषि सं० १५; छंडहु—त्यज सं० २१; चउरासी लक्खहिं फिरिउ—चौरासी लाख योनियों में फिरा सं० २५; चाहहु—इच्छत सं० २६; पावइ—पाता है, छंडिवि—छोड़ कर सं० ३२; छह—षट् सं० ३५; चाहहि—इच्छसि सं० ३९; पियहि—पिब ४६; पढियइं—पठितेन सं० ४७, ५३; पोत्था—पुस्तक सं० ४७; धंधइ-धन्धे में सं० ५२; गहहि—गृहाण सं० ५५; मण्णहिं—मन्यन्ते सं० ५६; दहिउ—दही, घीव—घी सं० ५७; ठाइ—तिष्ठति सं० ९१; विलाइ—विलीयते सं० ९१।

२. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा, बरार, वि० सं०, १९९०

३. पाहुड़ दोहा भूमिका पृ० २६ तथा परमात्म प्रकाश भूमिका पृ० ६२

४. पाहुड़ दोहा संख्या २११—"रामसीहु मुणि इम भणइ"

५. पाहुड़ दोहा भूमिका पृ० २६, परमात्म प्रकाश भूमिका पृ० ६२

६. एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जिल्द १२, सन् १९३१, पृ० १५२-१५४

७. पाहुड़ दोहा भूमिका पृ० २२

होने की कल्पना ग्रन्थ में वर्तमान अनेक उल्लेखो से की जा सकती है।[1]

पाहुड शब्द का अर्थ जैनाचार्यों ने विशेष विषय के प्रतिपादक ग्रन्थ के अर्थ में किया हैं। कुन्द कुन्दाचार्य के प्राय सभी ग्रन्थ पाहुड कहलाते हैं। पाहुड शब्द संस्कृत शब्द प्राभृत का रूपान्तर माना गया है, जिसका अर्थ है उपहार। अत पाहुड दोहा का अर्थ "दोहों का उपहार" समझा जा सकता है।

विषय :—इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भी अध्यात्म चिन्तन है। आत्मानुभूति और सदाचरण के बिना कर्म काण्ड व्यर्थ है। सच्चा सुख इन्द्रिय निग्रह और आत्म ध्यान में है। मोक्ष मार्ग के लिये विषय परित्याग आवश्यक है। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, मन्दिर निर्माणादि की अपेक्षा देहस्थित देव का दर्शन करना चाहिये। कुछ दोहों में रहस्य भावना भी मिलती है।

लेखक कहता है कि आत्मा इसी देह में स्थित है किन्तु देह से भिन्न है और उसी का ज्ञान परमावश्यक है :

"हत्थ अहुट्ठहं देवली वालहं णा हि पवेसु।
संतु णिरंजणु तहिं वसइ णिम्मलु होइ गवेसु" ॥९४॥

यह साढे तीन हाथ का छोटा सा शरीर रूपी मन्दिर है। मूर्ख लोग इसमे प्रवेश नही कर सकते। इसी में निरजन वास करता है। निर्मल हो कर उसे खोजो।

"भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु" ॥२८॥

जब आत्मज्ञान हो गया तो देहानुराग कैसा ?

"अप्पा बुज्झिउ णिच्चु जइ केवल णाण सहाउ।
ता पर किज्जइ काइं वढ तणु उप्परि अणराउ" ॥२२॥

आत्मातिरिक्त अन्य का ध्यान व्यर्थ है :

"अप्पा मिल्लिवि जग तिलउ मूढ म झायहिं अण्णु।
जि मरगउ परियाणियउ तहु किं कच्चहु गण्णु" ॥७२॥

जिसने आत्मज्ञान रूपी माणिक्य को पा लिया वह ससार के जंजाल से पृथक् हो आत्मानुभूति मे रमण करता है :

"जइ लद्धउ माणिक्कडउ जोइय पुहवि भमंत।
बंधिज्जइ णिय कप्पडइं जोइज्जइ एक्कंत" ॥२१६॥

विषयो का त्याग किये बिना आत्मानुभूति नही हो सकती अतः विषय त्याग आवश्यक है। विषय त्यागी ही परम सुख पाता है।

"जं सुहु विसय परंमुहउ णिय अप्पा झायंतु।
तं सुहु इंदु वि णउ लहइ देविहिं कोडि रमंतु" ॥३॥

---

1. वही भूमिका पृ० २७

"विसया चिंति म जीव तुहुं विसय ण भल्ला होंति।
सेवंताहं वि महुर वढ पच्छइं दुक्खइं दिंति" ॥२००॥
"मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहुं तुस कंडि।
सिव पइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि" ॥१३॥[1]

विषय सब क्षणिक है—

"विसय सुहा दुइ दिवहडा पुणु दुक्खहं परिवाडि।
भुल्लउ जीव म वाहि तुहुं अप्पा खंधि कुहाडि" ॥१७॥[2]
"देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइं सव्वइं कव्वु।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु" ॥१६१॥[3]

विषयोपभोग—इन्द्रिय सुख और मोक्ष दोनो भिन्न-भिन्न मार्ग है। दोनो पर चलना असम्भव है, एक ही को चुनना पडेगा।

"बे पंथेहिं ण गम्मइ बे मुह सूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति आयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खं च" ॥२१३॥

अर्थात् दो मार्गों पर नही जाया जा सकता, दो मुख वाली सूई से कथा नही सीयी जा सकती। अरे अज्ञानी! इद्रिय सुख और मोक्ष दोनो साथ-साथ नही प्राप्त हो सकते।

बाह्य कर्म-कलाप से यदि आन्तरिक शुद्धि न हो तो उसे भी व्यर्थ ही समझो। यदि कर्म-कलाप से आत्मानुभूति न हो तो वह किस काम का?

"सप्पि मुक्की कंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ" ॥१५॥

अर्थात् साप केंचुली को छोड देता है विष को नही छोडता। इसी प्रकार विषय भोगो के परित्याग से यदि विषय वासना और भोग भाव नही छूटता तो अनेक वेष और चिह्नो को धारण करने से क्या लाभ?

"मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।
चित्तहं मुंडणु जि कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ" ॥१३५॥

कबीर के निम्नलिखित दोहे से तुलना कीजिये—

"दाढ़ी मूंछ मुंड़ाय के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहीं मूडिये, जामे भरिया खोट॥"

कवि सब कर्म साधनो को व्यर्थ समझता है यदि वे आत्मदर्शन न करा सकें—

"हलि सहि काइं करइ सो दप्पणु।
जहिं पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु" ॥

---

१. तुलना कीजिये परमप्पयासु, २.१२८ पृ० २७०
२. " " वही २.१३८ पृ० २७०
३. " " वही २.१३० पृ० २७०

धंधवालु मो जगु पडिहासइ।
घरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

वह ज्ञान भी व्यर्थ है जिससे आत्मज्ञान नही होता—

"अक्खर चडिया मसि मिलिया पाढंता गय खीण।
एक्क ण जाणी परमकला कहिं उग्गउ कहिं लीण" ॥१७३॥
"बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिव पुरि गम्मइ जेण" ॥९७॥

कबीर के निम्नलिखित दोहे से तुलना कीजिये—

पढ़ पढ़ के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकौ आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

वही ज्ञान स्फुलिंग प्राप्त करना चाहिए जिसके संधुक्षित होने से पाप पुण्य जल जाय—

"णाण तिडिक्की सिक्खि वढ किं पढियइं बहुएण।
जा संधुक्की णिड्डहइ पुण्णु वि पाउ खणेण" ॥८७॥

कवि तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, मन्त्र तन्त्र आदि सब का निषेध करता है—

"तित्थइं तित्थ भमेहि वढ धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धोएसि तुहुं मइलउ पावमलेण" ॥१६३॥
"जो पइं जोइउं जोइया तित्थइं तित्थ भमेइ।
सिउ पइं सिहुं हिंडियउ लहिवि ण सक्किउ तोइ" ॥१७९॥

अर्थात् हे जोगी! जिसे देखने के लिए तू तीर्थ से तीर्थ घूमता फिरता है वह शिव तो तेरे साथ-साथ घूमता फिरा तो भी तू उसे न पा सका।

"पत्तिय तोडि म जोइया फलहिं जि हत्थु म वाहि।
जसु कारणि तोडेहि तुहुं सो सिउ एत्थु चडाहि" ॥१६०॥

कवि ने पत्ती-फल तोड कर शिव पर चढ़ाने वालो पर व्यंग्य किया है। यदि शिव को पत्ती प्रिय है तो उस शिव को ही क्यों न वृक्ष पर चढा दिया जाय!

कवि मन के आत्मलीन हो जाने में सबसे बडी पूजा समझता है—

"मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसर जि मणस्स।
बिण्णि वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चडावउं कस्स" ॥४९॥
"मूढा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं" ॥१८॥

मूर्ख! मनुष्यों से निर्मित मन्दिरो को देखता है। अपने शरीर को नही देखता जहा शात शिव स्थित है।

अपने को स्त्री और आत्मा को प्रिय मानकर एकाकार हो जाने की हलकी सी भावना निम्नलिखित दोहे में मिलती है—

"हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु" ॥१००॥

कवि इन्द्रिय निग्रह को आवश्यक समझता है—

"पंच बलद्द ण रक्खियइं णंदण वणु ण गओ सि।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु वि एमइ पव्वइओ सि" ॥४४॥

न तो पाच बैलो से—पाच इन्द्रियो—से रक्षा की, न नन्दन वन—आत्मा—मे गया। न आत्मा को न पर को जाना ऐसे ही परिव्राजक हो गया।

कवि अहिंसा और दया को ही सब से बडा धर्म समझता है। दशविध धर्म का सार ही अहिंसा है—

"दहविहु जिणवर भासियउ धम्मु अहिंसा सारु ॥२०९॥
जीव वहंति णरयगइ अभय पदाणें सग्गु।
बे पह जव ला दरिसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु" ॥१०५॥

जीववध मे नरक और अभय प्रदान से स्वर्ग प्राप्त होता है। दोनो मार्ग जाने के लिये बतला दिये। जहा भावे वही लग।

"दया विहीणउ धम्मडा णाणिय कह वि ण जोइ।
बहुएं सलिल विरोलियइं करु चोप्पडु ण होइ" ॥१४७॥

कवि सत्सग का उपदेश देता है—

"भल्लाण वि णासंति गुण जहिं सहु संगु खलेहिं।
वइसाणरु लोहहं मिलिउ पिट्टिज्जइ सुघणेहिं" ॥१४८॥[1]

ग्रन्थ मे सस्कृत का भी एक पद्य मिलता है—

"आपदा मूर्च्छितो वारि चुलुकेनापि जीवति।
अंभः कुंभ सहस्राणां गतजीवः करोति किम्" ॥२२२॥

अर्थात् आपत्तियो से मूर्च्छित नर चुल्लू भर पानी से होश में आ जाता है। प्राण-नाश हो जाने पर हजारो घडे पानी मे भी क्या ?

ऊपर दिए उदाहरणो से निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

रामसिंह के "पाहुड दोहा" और योगीन्द्र के 'परमात्म प्रकाश' एवं 'योगसार' में अनेक दोहे अश रूप से या पूर्ण रूप से मिलते जुलते है।[2] रामसिंह ने गुरु भाव को महत्व दिया है (पद्य १, ८०, ८१, १६६)। कर्मकाण्ड का कट्टरता से खडन किया है। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, मन्त्र, तन्त्र आदि सबको व्यर्थ बताते हुए आत्म शुद्धि पर बल दिया है। कवि ने अनेक साकेतिक शब्दो द्वारा भाव को अभिव्यक्त किया है। जैसे पाच इन्द्रियों को पाच बैल, आत्मा को नन्दन कानन, मन को करहा—करभ (उष्ट्र), देह को देवालय या कुटी, आत्मा को शिव, इन्द्रिय वृत्तियो को शक्ति इत्यादि। अपने को स्त्री

---

१. तुलना कीजिये परमप्पयासु २.११०, पृ० २७१
२. दे० एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट जिल्द १२, सन् १९३१ ई०, पृ० १५२. डा० उपाध्ये ने ऐसे २४ दोहों का निर्देश किया है जो रामसिंह के और योगीन्दु के ग्रंथ में समान हैं।

और आत्मा को प्रिय मान उसको प्राप्त करने और उसमें एकाकार हो जाने की हल्की सी भावना भी एक दोहे मे मिलती है।

कवि ने अनेक उपमाओ, रूपको और हृदयस्पर्शी दृष्टान्तो द्वारा भाव को अभिव्यक्त किया है। इसकी भाषा सरल और सरस है। वाग्धाराओ का प्रयोग भी अनेक दोहो में मिलता है। इस ग्रन्थ मे कुल २२२ पद्य है जिनमें से कुछ पद्य प्राकृत के और संस्कृत के भी है किन्तु बाहुल्य अपभ्रंश पद्यो का ही है। प्राकृत और संस्कृत के पद्यो मे भी कुछ पद्यो को छोड कर शेष सब दोहा छद में ही है।

वैराग्य सार[1]

वैराग्यसार सुप्रभाचार्य-कृत ७७ पद्यो की एक छोटी सी रचना है। केवल कुछ पद्यों से ही ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जैन धर्मावलम्बी था, अन्यथा कवि ने सामान्य धर्म तत्त्वो का ही इस कृति में व्याख्यान किया है। । सुप्रभ दिगम्बर जैन थे (पद्य ४६)। कवि के काल और स्थान के विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। कृति में वही भावधारा मिलती है जो इससे पूर्वकालीन लेखकों की थी। विचारधारा, शैली और भाषा की दृष्टि मे लेखक के ११ वी और १३ वी शताब्दी के बीच में होने की कल्पना की जा सकती है।

विषय—वैराग्य सार नाम से ही ग्रन्थ के विषय का आभास मिल जाता है। आरम्भ के पद्य में ही कवि वैराग्य भाव का आदेश करता है—

> "इक्कहिं घरे वधामणा अण्णहिं घरि धाहहिं रोविज्जई।
> परमत्थइ सुप्पउ भणइ, किम वडरायभाउ ण किज्जइ॥ (पद्य. सं. १)

एक घर में बधाई मंगलाचार है, दूसरे घर में धाड़ मार-मार कर रोया जा रहा है। सुप्रभ परमार्थ रूप से कहते हैं कि क्यो वैराग्य भाव नहीं धारण करते ?

सासारिक विषयो की अस्थिरता और ससार की दुःख-बहुलता का प्रतिपादन करता हुआ कवि कहता है—

> "सुप्पउ भणइ रे धम्मियहु, खसहु म धम्म णियाणि।
> जे सूरुग्गमि धवलहरि, ते अंथवण मसाण"॥२॥

अर्थात् सुप्रभ कहते है हे धार्मिको ! निदान धर्म से स्खलित न होवो। जो सूर्योदय पर शुभ्र गृह थे वे सूर्यास्त पर श्मशान हो गए।

> "सुप्पउ भणइं मा परिहरहु पर उवचार (यार) चरत्थु।
> ससि सूर दुहु अंथवणि अण्हं कवण थिरत्थु"॥३॥

सुप्रभ कहते हैं कि परोपकार आचरण मत छोडो। संसार क्षणिक है जब चन्द्र

---

१. प्रो० हरिपाद दामोदर वेलणकर ने एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जिल्द ९, (पृ० २७२-२८०) में इसे संपादित किया है।

और सूर्य भी अस्त हो जाते हैं तो अन्य कौन स्थिर है ?

यह संसार सचमुच विडबना है जिसमे जरा यौवन, जीवन मरण, धन दारिद्र्य जैसे विरोधी तत्त्व हैं (पद्य २५) । कवि कहता है बंधु बाधव नश्वर हैं फिर उनके लिए पाप कर कर के धन संचय कैसा ?

"जसु कारणि धणु संचइं, पाव करेवि गहीरु ।
तं पिछहु सुप्पउ भणइं, दिणि दिणि गलइ सरीरु" ॥३३॥

कवि घर गृहस्थी की शोभा निर्मल धर्म से ही समझता है (पद्य ७५) और धन यौवन से विरक्त हो, घर छोड, धर्म में दीक्षा लेने का आदेश देता है । वह घर परिजनादि के लिए भी धर्मत्याग सहन नही करता और धर्माचरण को ही सबसे प्रमुख वस्तु समझता है—

"रे जीय सुणि सुप्पउ भणइं, घणु जोवणहं म मज्जि ।
परिहरि घरु, लइ दिखडी, मणु णिव्वाणहं सज्जि" ॥५०॥
"जीव म धम्मह हाणि करि, घर-परियण - कज्जेण ।
कि न पिखहि सुप्पउ भणइं, जणु खज्जंतु मरेण" ॥५१॥

जिसके पीछे प्रिय गृह-गृहिणी रूपी पिशाच लग गया है अर्थात् जो ससार में आसक्त है वह निरंजन का कैसे ध्यान कर सकता है ?

"जसु लग्गइ सुप्पउ भणइं, पिय-घर-घरणि-पिसाउ ।
सो किं कहिउ समायरइ, मित्त णिरंजण भाउ" ॥६१॥

सुप्रभाचार्य दान की महत्ता स्वीकार करते हैं और दान का उपदेश देते हैं (पद्य १९, २२) । जो दीनो को धन देता है और जिसका मन धर्म मे लीन है विधि भी उसकी दासता स्वीकार करता है—

"धणु दीणहं गुण सज्जणहं, मणु धम्महं जो देइ ।
तहं पुरिसं सुप्पउ भणइं, विह दासत्तु करेइं" ॥३८॥

दाता समृद्ध होता और सचय करने वाला क्षीण होता है—

"रे मूढा सुप्पउ भणई, धणु दिंतह थिरु होय ।
जइ कल सचै ससि गयणि, पुणु खिज्जंतो जोइ" ॥५३॥

कवि ने अदाता की निन्दा के साथ साथ याचक की भी निन्दा की है (पद्य ३६) । पुण्य-संचय, परोपकार, इन्द्रिय-निग्रह और मन को वश मे करने का उपदेश दिया है। जिस मनुष्य का मन विषयो के वश मे है वह जीता हुआ भी मृतक के समान है । जिसने मन को मार लिया वही मनुष्य जीवित समझो ।

"जसु मणु जीवइं विसयवसु, सो णरु मुवो भणिज्ज ।
जसु पुण सुप्पय मणु मरइं, सो णरु जीउ भणिज्ज" ॥६०॥

कवि मानव देह की दुर्लभता की ओर सकेत करता हुआ धर्माचरण की ओर निर्देश करता है (पद्य ३९) । वह धार्मिक संकीर्णता से रहित है । देव-पूजा में देव की अपेक्षा भाव को प्रधान समझता है—

"अह हरु पुज्जहु अहव हरि, अह जिण अह बंभाण ।
सुप्पउ भणें रे जोइयहु, सव्वहं भाउ पवाणु" ॥५७॥

कवि ने सरल भाषा में सुन्दर रूपकों द्वारा भाव को अभिव्यक्त किया है। इंद्रिय-चोरों से धर्म-धन की रक्षा का आदेश दिया है (पद्य ५४)। माया-निशा में मन-चोर से जिसने आत्म-रक्षा की वह निर्मल ज्ञान-प्रभात प्राप्त करता है—

"मण चोरह माया-निसिहि, जिय रक्खहि अप्पाणु ।
जिम होही सुप्पउ भणइं, णिम्मलु णाणु-विहाणु" ॥४२॥

कवि ने घर, गृहिणी, सखि, बधु बाधव को रगस्थली बताया है जिसमें मोह-नट मनुष्यों को नाना रूप में नाच नचाता है—

"एहु घरि घरिणि एहु सहि, एहु बंधउ गिहरंग ।
मोह नडावउ माणुसहं, नच्चावइ बहुभंगि" ॥७६॥

कवि का हृदय दुःखातुर मानव के लिए विक्षुब्ध था। उसने बधु बांधवों के मोह को छोड़कर परमात्मा के ध्यान में लीन हो जाने की अति मार्मिकता से व्यजना की है। कवि के निम्नलिखित दोहे अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं—

"हिवडा संवरि धाहडी, मुवउ वि आवै कोई ।
अपउ अजरामरु करिवि, पच्छइ अण्हुं रोइ" ॥१४॥

हृदय से दुःख शोक को दूर करो। मरने पर क्या फिर कोई लौट कर आ सकता है? अपने आप को अजर अमर करो जिससे तुम्हारे पीछे अन्य रोयें।

"जिम झाझ (इ) ज्जइ वल्लहउ, तिम जइ जिय अरिहंतु ।
सुप्पउ भणइं ते माणसहं, सुगु घरिंगणि हुंतु" ॥९॥

जैसे निज वल्लभ का ध्यान किया जाता है वैसे ही यदि अर्हंत का ध्यान किया जाय तो सुप्रभ कहते हैं कि मनुष्यों के लिए घर के आगन में ही स्वर्ग हो जाय।

ससार अस्थिर है, परिवर्तनशील है, इसमें कोई किसी का साथी नहीं, इस भाव की अतीव मार्मिकता से निम्नलिखित दोहों में व्यजना की गई है—

"रे हियडा सुप्पउ भणइं, कि न फुट्टहि रोवंतु ।
पिउ पछेहि मसाण डइं, एकल्लउ डज्झंतु" ॥७१॥

"जेंहि जि णयणिहिं वल्लहउ, दीसइं रज्जु करंतु ।
पुण तेणजि सुप्पउ भणइं, सइ दीसइ डज्झंतु" ॥६२॥

अर्थात् जिन आँखों से वल्लभ को राज्य करते देखा फिर उन्ही आँखों से स्वय उसे जलते देखा।

"मुवउ मसाडि ठवेवि लहु, बंधव णियघर जंति ।
वर लक्कड सुप्पउ भणई, जे सरिसा डज्झंति" ॥१०॥

मरे हुए को शीघ्र ही बंधु बाधव श्मशान में रख कर घर लौट जाते है। सुप्रभ कहते हैं कि वे लक्कड ही भले जो साथ ही जल जाते है।

निम्नलिखित दोहे मे सस्कृत के एक पद्य की छाया दिखाई देती है, जिस से कवि के सस्कृत-ज्ञाता होने का आभास मिलता है

"सुप्पउ वल्लह मरण दिणि। जेम विरच्चै (विरज्जइ) चित्तु।
सव्वावत्थहं तेम जइ। जिम (य) णिव्वाण पहुत्तु" ॥२४॥

निम्नलिखित सस्कृत पद्य से तुलना कीजिये—

"आपत्प्रतिपन्नस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यात्फलोदयः॥"

ग्रथ की भाषा मे कही कही सुन्दर सुभाषितो का भी प्रयोग मिलता है—

"जज्झरि भंडइ नीरु जिमु, आउ गलंति पि (पे) च्छि। २०

टटे बर्तन मे से पानी के बहने के समान आयु क्षीण होती जाती है।

योगवासिष्ठ मे भी इसी प्रकार का एक पद्य मिलता है—

'शनैर्गलिततारुण्ये भिन्न कुम्भादिवाम्भसि।' सभव है कवि योगवासिष्ठ की वैराग्य-भावना से प्रभावित होकर इसकी रचना में प्रवृत्त हुआ हो।

"जीव वहंतह नरय गई, मणु मारंतह मोक्खु" ॥७४॥

अर्थात् जीववध करने वाले को नरक और मन मारने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है।

कवि की वर्णन शैली में एक विशेषता है कि प्रायः प्रत्येक दोहे मे कवि ने अपना नाम दिया है। हिन्दी में पाई जाने वाली, कहै कबीर, कह गिरिधर कविराय की उत्तर कालीन परिपाटी इस कवि में दिखाई देती है। इस काल के अन्य साधको मे यह शैली उपलब्ध नही होती। इस आधार पर और भाषा में प्राप्त कुछ शब्द-रूपो को दृष्टि में रखते हुए कवि का काल १३ वी शताब्दी के लगभग प्रतीत होता है।

सुप्रभ की भाषा में अनेक शब्द-रूप ऐसे है जो हिन्दी शब्दो के पर्याप्त निकट से प्रतीत होते है।[1] विभक्तियो में कर्ता और कर्म के बहुवचन में शब्द के बाद ह या हं प्रत्यय का प्रयोग मिलता है (जैसे—माणसह = मनुष्यो को, भमतह = घूमते हुए)। सबोधन के बहुवचन में हु प्रत्यय का प्रयोग भी सुप्रभ के दोहो की भाषा में पाया जाता है। (जैसे—जोइयहु-हे जोगियो!)। वैराग्य सार में पद्य प्रायः दोहा छन्द मे है।

---

१. उदाहरण के लिए—
खसहु—स्खलित हो पद्य सं (१), मसाण—श्मशान (२, १०), कलि—कल (४, ८, २३), माणस—मनुष्य (९), लक्कड—लकड़ियाँ (१०), मुवउ कि आवै कोई—क्या मर कर कोई (वापस) आ जाता है (१४), दूर—दूर (१७), किंतु—किंतु (२०), अवसि—अवश्य (३७), दासतु—दासता (३८), पराग्रउ—पराया (४७), लक्खु—लाख (५५), फुट्टहिं रोवंतु—फूट फूट कर रोना (मुहावरा) (७१), जायतु जाय—जाये तो जाये (७५) इत्यादि।

आनंदा-आनंद स्तोत्र

डा० रामसिंह तोमर ने महाणदि या आनद द्वारा रचित ४३ पद्यो की छोटी सी कृति का उल्लेख किया है। कृति में प्राप्त निर्देशो से लेखक जैन धर्मावलम्बी प्रतीत होता है। रचनाकाल, देशादि अनिश्चित है।

कृतिकार ने साम्प्रदायिक भेद भावना से रहित सामान्य धार्मिक साधना की ओर निर्देश किया है। योगीन्द्र आदि अध्यात्मवादी उपदेशको से मिलती जुलती विचार-धारा ही ग्रंथ में अभिव्यक्त की गई है—बाह्य कर्मकाण्ड का निषेध, गुरु महत्ता, आत्मा की देह स्थिति आदि। एक उदाहरण देखिये—

"जिण वइसाणर कठ्ठमहि, कुसुमइ परिमलु होइ।
तिहं देह मह वसइ जिव आणंदा, विरला बूझइ कोइ" ॥१३॥

दोहा पाहुड

दोहा पाहुड मुनि महचद द्वारा रचित ३३३ दोहो का एक ग्रथ है। आमेर शास्त्र भडार में इसकी हस्तलिखित प्रति वर्त्तमान है। हस्तलिखित प्रति विक्रम सं० १६०२ की है अत कवि इस काल से पूर्व हुआ होगा। कवि के विषय में अन्य कोई सूचना नही मिलती।

इस ग्रंथ में दोहो के आदि अक्षर वर्णमाला के अक्षरो के क्रमानुसार है। इस ग्रथ का विषय पूर्ववर्त्ती आध्यात्मिक विचारधारा के कवियो के समान ही, गुरु महत्त्व, विषयो का तिरस्कार, आत्म ज्ञान इत्यादि है।

(ख) आधिभौतिक रचनायें

आधिभौतिक रचनाओ से हमारा अभिप्राय उन धार्मिक रचनाओ से है जिनमें सर्वसाधारण के लिये नीति, सदाचार सम्बन्धी धर्मोपदेशो का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार की आधिभौतिक उपदेशात्मक रचनाओ का विवरण नीचे दिया जाता है।

सावयधम्म दोहा[1]

यह देवसेन की रचना है। लेखक सस्कृत और प्राकृत का भी पण्डित था। इस ग्रंथ के अतिरिक्त देवसेन ने संस्कृत में आलाप पद्धति और प्राकृत में दर्शनसार,

---

१. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित, अम्बादास चवरे दिगंबर जैन ग्रंथमाला २, वि० सं० १९८९

आराधना सार, तत्वसार और भावसग्रह नामक ग्रथ भी लिखे ।[1] भाव सग्रह में और सावयधम्म दोहे में विषय का साम्य है। लेखक ने इस ग्रथ की रचना वि० स० ९९० के लगभग मालवान्तर्गत धारा नगरी मे की थी।[2] लेखक दिगम्बर जैन था।

इस ग्रथ मे लेखक ने अध्यात्म विवेचन का प्रयत्न न कर श्रावको-गृहस्थो के योग्य कर्त्तव्यो का उपदेश दिया है। यद्यपि योगीन्द्र के परमप्पयासु और योगसार मे भी इस प्रकार की उपदेश भावना दृष्टिगोचर होती है तथापि उनमे प्रधानता अध्यात्मचिन्तन की ही है। किन्तु इस ग्रथ मे प्रधानता उपदेश भावना की है।

ग्रथ के आरम्भ मे मंगलाचरण और दुर्जन स्मरण है। तदनन्तर श्रावक धर्म के भेद, सम्यक्त्व प्राप्ति के साधन, अनेक दोषो का परित्याग, रात्रि-भोजन निषेध, अहिंसा व्रत पालन आदि का विधान किया गया है। गृहस्थो को दान की महत्ता समझाते हुए धर्म पालन, इद्रिय निग्रह, मन वचन और शरीर की शुद्धि, तथा उपवास व्रतादि पालन करते हुए पाप पुण्य के बंधन से छुटकारा पा कर कर्म नाश द्वारा सुख प्राप्त करने का आदेश दिया गया है। लेखक जैन धर्मावलम्बी था अत. उसने गृहस्थो को जिन भगवान की पूजा और जिन मन्दिरो के निर्माण का भी आदेश दिया है।

ग्रंथ के आरम्भ में लेखक दुर्जनो का स्मरण करता हुआ कहता है—

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण।
अमिउ विसें वासरु तमिण जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥

अर्थात् दुर्जन सुखी हो जिससे जगत् मे सज्जन प्रकाश मे आता है। जैसे विष से अमृत, अन्धकार से दिन और काँच से मरकत मणि।

लेखक धर्माचरण का उपदेश देता हुआ कहता है कि यह मत सोचो कि धन होगा तो धर्म करूँगा। न जाने यम का दूत आज आ जाय या कल।

"धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि" ॥८८॥

धर्म से ही धन प्राप्त होता है—

"धम्मु करंतहं होइ धणु इत्थु ण कायउ भंति।
जलु कड्ढंतहं कूवयहं अवसइं सिरउ घडंति" ॥९९॥

अर्थात् धर्माचरण करने वाले को निस्सदेह धन प्राप्त होता है। कुएँ से जल निकालने वालों के सिर पर अवश्य घड़ा होता है।

लेखक ने धर्म का लक्षण और उसका मूल कितना सुन्दर बताया है—

"काइं बहुत्तइं जंपियइं जं अप्पहु पडिकूलु।
काइं मि परहु ण तं करहि एहु जु धम्महु मूलु" ॥१०४॥

---

१. दर्शनसार के अतिरिक्त सभी ग्रंथ माणिक्यचन्द्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित हो चुके हैं।

२. सावयधम्म दोहा भूमिका पृ० १९.

अर्थात् बहुत कहने से क्या ? जो अपने को प्रतिकूल लगे उसे दूसरो के लिये भी न करो। संस्कृत के पद "आत्मन. प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" का ही भाव लेखक ने अभिव्यक्त किया है ।

लेखक ने विषयो के त्याग का आदेश दिया है—

"रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत ।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीवि पडंत" ॥१२६॥

रूप पर रति मत कर। उधर जाते हुए नयनो को रोक। रूप में आसक्त पतग को दीपक पर पडते हुए देख।

किन्तु साथ ही भोगो को मर्यादा में रखने का भी सकेत करता है—

"भोगहं करहि पमाणु जिय इंदिय म करि सदप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया दुद्धें काला सप्प" ॥६५॥

हे जीव ! भोगो का भी प्रमाण रख। इन्द्रियो को अभिमानी न कर। दूध से काले साँप को पोसना अच्छा नही होता।

माया का परित्याग करना चाहिये—

"माया मिल्लहो थोडिय वि दूसइ चरिउ विसुद्धु ।
कंजिय बिंदुइं वित्तुडइ सुद्धु वि गलियउ दुद्धु" ॥१३३॥

थोड़ा सा भी दोष महान् पुण्य का नाश कर देता है—

"मट्टु आसायउ थोडउ वि णासइ पुण्णु बहुत्तु ।
वइसाणरहं तिडिक्कडउ काणणु डहइ महंतु" ॥२३॥

पाप से सुख प्राप्ति असंभव है—

"सुहियउ हुवउ ण को वि इह रे जिय णर पावेण ।
कद्दमि ताडिउ उठ्ठियउ गिंदउ दिठ्ठउ केण" ॥१५३॥

लेखक पाप पुण्य में समता का उपदेश देता है—

"पुण्णु पाउ जसु मणि ण समु तसु दुत्तरु भवसिंधु ।
कणय लोह णियलइं जियहु किं ण कुणहि पयबंधु" ॥२११॥

जिसके मन में पुण्य और पाप समान नही है उसके लिये भवसिंधु दुस्तर है। क्या कनक या लोहे की निगड़ (शृंखला) प्राणी का पादबधन नही करती ?

सैकडों शास्त्रों के ज्ञान से युक्त ज्ञानी अवश्यम्भावी रूप से धार्मिक नही हो सकता। सैकडो सूर्यों के उदय हो जानेपर भी उल्लू अंधा ही रहता है—

"सत्थ सएण वियाणियहं धम्मु न चढइ मणे वि ।
दिणयर सउ जइ उग्गमइ घूयडु अंधउ तो वि" ॥१०५॥

लेखक दान की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ सत्पात्र में दान का आदेश करता है—

"जं जिय दिज्जइ इत्थुभवि तं लब्भइ परलोइ ।
मूलें सिंचइ तरुवरहं फलु डालहं पुणु होइ" ॥९५॥

कुपात्र को दिया दान व्यर्थ होता है। खारे घड़े में डाला जल खारा ही हो जाता है—

"दंसण रहिय कुपत्ति जइ दिण्णइ ताह कुभोउ ।
खारघडइं अह णिवडियउ णीरु वि खारउ होइ" ॥८१॥

लेखक ने दया को धर्म का प्रधान रूप माना है ।

"दय जि मूलु धम्मंघिवहु सो उप्पाडिउ जेण ।
दलफल कुसुमहं कवण कह आमिसु भक्खिउ तेण" ॥४०॥

अर्थात् दया ही धर्म वृक्ष का मूल है । उसे जिसने उखाड फेंका, पत्र फल, कुसुम की कौन कथा मानो उसने मास भक्षण कर लिया ।

गृहस्थो के लिए द्यूतहानि की ओर निर्देश करता हुआ लेखक कहता हैं ।

"जूएं धणहु ण हाणि पर वयहं मि होइ विणासु ।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर इयरहं डहइ हुयासु" ॥३८॥

अर्थात् जूए से धन ही की हानि नही होती व्रतो का विनाश भी होता है । काठ में लगी आग उसी काठ को नही अपितु अन्यो को भी जला देती हैं ।

मानव जन्म की दुर्लभता का वर्णन करता हुआ लेखक उसके सदुपयोग का आदेश देता है—

"मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि भोयहं पेरिउ जेण ।
इंधण कज्जे कप्पयरु मूलहो खंडिउ तेण" ॥२१९॥

अर्थात् दुर्लभ मनुजत्व को भी प्राप्त कर जिसने उसे भोगो मे लिप्त किया उसने मानो इधन के लिए कल्पवृक्ष को समूल उखाड डाला ।

कवि जिन-भक्त है अतएव जिन-भक्ति भावना का सुन्दरता से वर्णन किया है—

"जो वयभायणु सो जि तणु किं किज्जइ इयरेण ।
तं सिरु जं जिण मुणि णवइ रेहइ भत्तिभरेण ॥११६॥
दाणच्चण विहि जे करहिं ते जि सलक्खण हत्थ ।
जे जिण तित्थहं अणुसरहिं पाय वि ते जि पसत्थ ॥११७॥
जे सुणंति धम्मक्खरइं ते हउं मण्णमि कण्ण ।
जे जोयहिं जिणवरह मुहु ते घर लोयणि धण्ण ॥११८॥

अर्थात् शरीर वही समझो जो व्रतो का भाजन हो अन्य शरीर से क्या लाभ ? वही सिर सिर हैं जो भक्तिभार से सुशोभित हो जिनमुनि के आगे नमे । हाथ वही प्रशस्त हैं जो दानार्चन विधि विधान करते है । वही पैर प्रशस्त है जो जिन तीर्थों का अनुसरण करते है । जो धर्म के अक्षरो का श्रवण करते है मैं उन्हे ही कान समझता हूँ और जो जिनवर के मुख का दर्शन करती है वही आँखे उत्कृष्ट और धन्य है ।

लेखक के इन वचनो की रसखान के निम्नलिखित सवैये से तुलना कीजिये —

"बैन वही उन को गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सों सानी ।
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ॥

देवसेन के दोहों में जाति भेद की भावना नही दिखाई देती । ब्राह्मण हो या शूद्र जो धर्माचरण करता है वही श्रावक है ।

"एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ" ॥७६॥

कवि रचित इन दोहों में अभिमान और अक्खडपन नहीं दिखाई देता।

भाषा—ऊपर दिये गये उदाहरणो से स्पष्ट है कि कवि ने सरल और चलती हुई भाषा में हृदयस्पर्शी दृष्टान्तो के द्वारा भाव को अभिव्यक्त किया है।

भाषा वाग्धारा और सुभाषितो से अलकृत है।

"जहि साहस तहि सिद्धि" (७१)
किं सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ ॥७६॥

आधुनिक प्रचलित मुहावरा है सिर पर सीग होना। उसी भाव में यहा सिर पर मणि होना इसका प्रयोग किया गया है।

प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने दैनिक जीवन से नित्य-सबद्ध अप्रस्तुतो का, अलकारो और दृष्टान्तो में अप्रस्तुत विधान के लिए प्रयोग किया हैं। जैसे हल, बैल, खारी जल, कूआँ, धतूरा, नौका, वृक्ष, साँप, दीपक, पतंग, उल्लू, गेंद, आरती, इत्यादि।[1]

लेखक की भाषा के शब्दो मे परसर्गों का प्रयोग भी दिखाई देता हैं। घरतणउ = घर का (६२), जमभडतणउ = यम भट का (८८) इत्यादि।

कवि की इस रचना में अनेक शब्दो का रूप हिन्दी भाषा के शब्दो के समान सा प्रतीत होता है। कही कही मराठी और पजाबी के शब्द भी प्रयुक्त हुए है।[2]

---

१. देखिये सावय धम्म दोहा संख्या ३, ४६, ६५, ७६, ८१, ८७, ९९, १०५, १२६, १३५, १५३, १९६।

२. उदाहरण के लिये निम्नलिखित शब्द देख सकते हैं। शब्दो के आगे की संख्या दोहों की संख्या है—

कच्चासण	कच्चा भोजन	१४
थोडउ	थोड़ा	२३
बहुत्तु	बहुत	२३
लोणि (मराठी)	मक्खन, नवनीत	२८
दोदिण वसियउ	दो दिन का बासी	३५
खेत्ती	खेती	५५
कप्पडि	कपड़े पर	५६
ढुक्कइ	ढौक्यते-आवे	६०,११२,१८७
डालह	डाल का	६१
घरतणउ	घर का	६२
दुद्धें (पंजाबी)	दूध से	६५

उपदेश रसायन रास[1]

उपदेश रसायन रास जिनदत्त सूरि की रचना है। यह जिन वल्लभ सूरी के शिष्य थे। यह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के विद्वान् थे। अपभ्रश के अतिरिक्त सस्कृत और प्राकृत में भी इन्होने ग्रथ लिखे। इनका जन्म वि० स० ११३२ मे हुआ था। इन का जन्म का नाम सोमचन्द्र था। बाल्यावस्था से ही इनकी प्रतिभा दिखाई देने लगी थी। जिन वल्लभ के मरणोपरान्त इन्होने सूरि पद और जिनदत्त नाम प्राप्त किया। मरु देश,

सप्प (पंजाबी)	सांप	६५
घड	घट-घड़ा	८१
वडह्	वट का, बड़ का	९०
पडिउ	पतित, पड़ा	
जगि (जग में)	घरु (घर)	८७
हक्कारउ—हरकारा	अज्जु—आज, कल्लि—कल	८८
बबूलइं	बबूल	९४
लहंति	लभंते	९६
कूव	कूप	९९
दीवि	दीये	१२६
पोट्ट	पेट	१०६
बोरिहिं	बेरों से	११०
वलंत	ज्वलंत (पंजाबी) जलना	१२१
छित्त	स्पृष्ट (छूत)	१३१
कंजिय	कांजी	१३३
हलुव	हलका, लघुक	१३४, १३५
धत्तूरिय	धत्तूरिक, धतूरा पीने वाला	१३६
तलाउ	तलाब, तडाग से	१७०
गेहु	गेह, गृह	१८४
जाइ	याति	१८८
रुक्खडा	वृक्ष	१९०
आरत्तिअ	आरती, आरात्रिक	१९६
चंदोव	चन्द्रोपक, चंदोआ	१९८

१. ला० भ० गान्धी द्वारा संपादित, अपभ्रंश काव्यत्रयी ओरियंटल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा, सन् १९२७, में इनकी तीनों रचनाओं का संग्रह है।

नागपुर, अजमेर आदि स्थानो मे विहार किया। यह देश देश में अपना धर्मोपदेश करते रहते थे। स० १२१० मे अनशन समाधि द्वारा इन्होने देहत्याग किया।[1] उपदेश रसायन रास के अतिरिक्त, काल स्वरूप कुलक और चर्चरी की इन्होने रचना की।

उपदेश रसायन रास ८० पद्यो की एक रचना है। आरम्भ में मंगलाचरण है। आगे लेखक कहता है कि आत्मोद्धार से मनुष्य जन्म सफल होता है। तदर्थ सुगुरु की आवश्यकता होती है। गुरु नौका के बिना ससार-सरिता को पार करना संभव नही। तदनन्तर धार्मिको के कृत्यो का निर्देश है। अनेक प्रकार के चैत्य धर्मों और कर्मों का प्रतिपादन है। ३६वें पद्य में कृतिकार ने ताल रास और लगुड रास का निर्देश किया है। आगे युग प्रधान गुरु का और सघ का लक्षण दिया है। गृहस्थो को कुछ सदुपदेश दिये हैं। कृति के जन्त को जो कर्णाञ्जलि से पान करते हैं वे अजरामर होते हैं, इन वाक्यों से कृति समाप्त होती है।

कवि के निम्नलिखित पद्य में अहिंसा का रूप देखिए—

"धम्मिउ धम्मुकज्जु साहंतउ।
पर मारइ कीवइ जुज्झंतउ।
तु वि तसु धम्मु अत्थि न हु नासइ
परमपइ निवसइ सो सासइ" ॥२६॥

अर्थात् जो धार्मिक धर्म कार्य को सिद्ध करता हुआ कदाचित् किसी धर्म मे विघात करने वाले को युद्ध करता हुआ मार देता है तो भी उसका धर्म बना रहता है वह नष्ट नही होता। वह व्यक्ति शाश्वत परम पद में वास करता है।

निम्नलिखित पद्य में कृतिकार ने देवगृह में ताल रास और लगुड रास का निषेध किया है .

"उचिय थुत्ति थुयपाढ पढिज्जहिं।
जे सिद्धंतिहिं सहु संधिज्जहिं।
तालारासु वि दिंति न रयणिहिं
दिवसि वि लउडारसु सहुं पुरिसिहिं" ॥३६॥

कृति के प्रारम्भ में संस्कृत टीकाकार ने उल्लेख किया है कि यह उपदेश रसायन रास प्राकृत भाषा में लिखा गया है।[2] यहां प्राकृत भाषा शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिये। ग्रन्थ की भाषा अपभ्रंश ही है।

कृति में पद्धटिका—पज्झटिका-छन्द का प्रयोग हुआ है।

---

१. वही, पृ० ६०

२. श्रीमद्भिर्जिनदत्तसूरिभिः.......प्राकृत भाषया धर्म रसायनाख्यो रासक श्चक्रे"
अपभ्रंश काव्यत्रयी पृ० २९

काल स्वरूप कुलक

यह जिनदत्त सूरि रचित ३२ पद्यो की कृति है। इसका दूसरा नाम उपदेश कुलक भी है।

मगलाचरण के अनन्तर लेखक ने विक्रम की १२वी शताब्दी मे किसी सुखनाश—आपत्ति—का निर्देश किया है। इस आपत्ति मे लोगो में धर्म के प्रति अनादर, मोह-निद्रा की प्रबलता और गुरु वचनो मे अरुचि हो गई थी। आगे कृतिकार ने सुगुरु का महत्व बताया है। सुगुरु-वचन-लग्न-मानव सोते हुए भी जागरूक रहते हैं। सुगुरु और कुगुरु का भेद बताते हुए कृतिकार दोनो को क्रमश गोदुग्ध और अर्क दुग्ध के समान बताता है। कुगुरु धतूरे के फूल के समान होता है। सुगुरु-वाणी और जिन-वाणी मे श्रद्धा का उपदेश दिया है। बंधुवर्ग में एकता का प्रतिपादन करते हुए, माता पिता के प्रति आदर-भावना का उपदेश देते हुए और सुगुरु प्राप्ति से यमभय के भी नष्ट हो जाने का निर्देश करते हुए कृति समाप्त होती है।

इस कृति का विषय धर्मोपदेश है और इसका नाम कुलक है। कुलक ऐसे पद्य समूह को कहते हैं जिसमे पाच या पाच से अधिक ऐसे पद्य हो जिनका परस्पर अन्वय और सम्बन्ध हो।[1] इस कृति मे यद्यपि ३२ पद्यो का परस्पर अन्वय नही, विषय भी भिन्न है किन्तु सारी कृति एक ही धर्मतन्तु से अनुस्यूत होने के कारण सम्भवतः कुलक कही गई है। श्री अगरचन्द नाहटा का विचार है कि जिस रचना मे किसी शास्त्रीय विषय की आवश्यक बाते सक्षेप मे संकलित की गई हो या किसी व्यक्ति का सक्षिप्त परिचय दिया गया हो उसकी सज्ञा 'कुलक' या 'कुलउ' होती है। उन्होने इस प्रकार के अनेक प्राकृत में लिखित कुलकों का भी निर्देश किया है।[2]

'काल स्वरूप कुलक' के अतिरिक्त निम्नलिखित अपभ्रंश मे लिखित कुलक कृतियों का निर्देश पत्तन भण्डार की ग्रथ सूची में मिलता है—

जिनेश्वर सूरि रचित भावना कुलक	(वही, पृ० २४)
नवकार फल कुलक	(वही, पृ० ४४)
मृगापुत्र कुलक	(वही, पृ० १२०)
पश्चात्ताप कुलक	(वही, पृ० २६३)
जिन प्रभ रचित सुभाषित कुलक	(वही, पृ० २६४)
गौतम चरित्र कुलक	(वही, पृ० २६६)

कृतिकार ने अपने दृष्टान्तो के लिये ऐसे सर्व-साधारण-गोचर विषयो को लिया है जो सर्व साधारण के लिए बोधगम्य हो। जैसे सद्गुरु की तुलना गौ के दूध से, कुगुरु की आक

---

१. द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम्।
कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्॥

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५८, अक ४, पृ० ४३५

के दूध से और धतूरे के फूल से की है। इसी प्रकार घर की एकता का दृष्टान्त मार्जनी, झाड़ू से दिया है। वस्तुतः कृतिकार का लक्ष्य किन्ही आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्वों का विवेचन न था। श्रावक श्राविकाओ और गृहस्थों को धर्मोपदेश द्वारा सदाचार मार्ग की ओर प्रवत्त करना और देवगृहो—चैत्य गृहो-के जीवन को आदर्श बनाना ही इसका उद्देश्य था।

कालस्वरूप कुलक के उदाहरण स्वरूप कुछ पद्य नीचे दिये जाते है—

"दुद्धु होइ गो-यक्किहि धवलउ
पर पेज्जंतइ अंतरु बहलउ।
एक्कु सरीरि सुक्ख संपाडइ
अवरु पियउ पुणु मंसु वि साडइ" ॥१०॥
"कुगुरु सुगुरु सम दीसहिं बाहिरि
परि जो कुगुरु सु अंतरु बाहिरि!
जो तसु अंतरु करइ वियक्खणु
सो परमप्पउ लहइ सुलक्खणु" ॥११॥

अर्थात् गौ का दूध और आक का दूध दोनो श्वेत वर्ण होते है किन्तु उनके पान करने में परिणाम भिन्न-भिन्न होते है, एक शरीर में सुख उत्पन्न करता है और दूसरा शरीर को जला देता है। इसी प्रकार सुगुरु और कुगुरु बाहर मे एक समान दीखते है किन्तु कुगुरु आभ्यन्तर व्याधि रूप है। जो बुद्धिमान् उन दोनो में भेद करता है वह परम पद को प्राप्त करता है।

घर में ऐक्य का सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित पद्य में मिलता है—

"कज्जउ करइ बुहारी बद्धी
सोहइ गेहु करेइ समिद्धी।
जइ पुण सा वि जुयं जुय किज्जइ
ता कि कज्ज तीए साहिज्जइ?" ॥२७॥

भावना संधि प्रकरण[1]

यह जयदेव मुनि कृत्त छह कडवको की एक छोटी सी रचना है। प्रत्येक कडवक में १० पद्य है। आरम्भिक और अन्तिम कडवक में मंगलाचरण और स्तुति सम्बन्धी एक-एक पद्य अधिक है। कृति के अन्तिम पद्य में रचयिता का और उसके गुरु शिवदेव सूरि का नाम मिलता है।[2] रचयिता के विषय में कुछ ज्ञात नही। इसका काल और स्थान

१. एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिटयूट पूना, भाग ११, सन् १९३० पृ० १-३१ पर एम० सी० मोदी द्वारा संपादित

२. निम्मल गुण भूरिहिं सिव दिव सूरिहिं, पढमसीसु जयदेव मुणि।
किय भावण संधी सिभावु सुगंधी, निसुणवि अन्न वि धरउ मणि ॥६२

अनिश्चित है। कृति मे मालव नरेन्द्र मुज (१०५४ वि० स० मृत्युकाल) के निर्देश से कल्पना की जा सकती है कि जयदेव विक्रम की ११वी शताब्दी के बाद ही हुए होगे। भाषा की दृष्टि से सपादक का विचार है कि कृति १३वी–१४वी शताब्दी की रचना है।[1]

कृति का विषय नैतिक और धार्मिक जीवन का उपदेश है। ससार की दु ख बहुलता वैराग्य भावना, विषय त्याग, मानव जन्म की दुर्लभता, पाप त्याग कर पुण्य सचय करना इत्यादि विषयो का ही कवि ने उपदेश दिया है।

रचयिता ने ससार को इन्द्रजाल (पद्य २) बता कर प्रिय मित्र, गृह, गृहिणी इत्यादि सबको मिथ्या बताया है—

"पिय पुण मित्त घर घरणि जाय
इह लोइ य सव्वि व सुहु सहाय।
नवि अत्थि कोइ तुह सरणि मुक्ख
इक्कुलउ सहसि तउं नरय दुक्ख" ॥३॥

अर्थात् प्रिय मित्र, गृह, गृहिणी सब इस लोक मे सुख के साथी है। हे मूर्ख! दु ख में तेरा कोई शरण-दाता नही, अकेले ही तू नरक दु ख सहन करेगा।

ससार से विरक्ति का उपदेश देता हुआ कवि कहता है—

"मन (त) रच्चि रमणि रमणीय देहि
वस मंस रुहिर मल मुत्त गेह।
दढ देवि रत्तु मालवु नरिंद
गय रज्ज पाण हुय पुहवि चंदु" ॥५॥

अर्थात् वसा मास रुधिर मल-मूत्र-निधान रमणी के सुन्दर देह में अनुरक्त न हो। देवी मे अत्यन्त आसक्त मालवराज पृथ्वी चन्द्र अपने राज्य और प्राणो से हाथ धो बैठा।

आगे कवि निर्देश करता है कि काम क्रोधादि एवं आश्रवादि का त्याग कर श्रद्धा युक्त हो जिन वचनो के श्रवण से सुख प्राप्ति होती है (६, ९)। हिंसा से अकाल मरण या परवचना एवं द्रव्यापहरण से दारिद्र्य प्राप्त होता है (२७, २८)। सरल और सुन्दर भाषा मे जयदेव विषय त्याग कर धर्म सचय का उपदेश देते है—

"दहइ गोसीसु सिरिखंड छारक्कए, छगलगहणट्ठमेरावणं विक्कए।
कप्पतरु तोडि एरंडु सो वव्वए, जुज्जि विसएहि मणुयत्तणं हारए" ॥१६॥
"सुमिण पत्तंमि रज्जंमि सो मुच्छए, सलिल संकं ससि गिन्हिउं वंछए
अबियखित्तेसु धन्नाइ सो कंखए, जुज्जि धम्मेण विण मुक्ख आविक्ख ए" ॥१७॥

अर्थात् जो विषयो के लिए मनुष्यत्व खो बैठता है वह मानो क्षार के लिए गोशीर्ष और श्री खड को जला डालता है, छाग को पाने के लिए ऐरावत को बेच डालता है और

कल्पतरु को काट कर ऐरंड को बोता है। जो धर्म के बिना मोक्ष प्राप्ति चाहता है वह स्वप्न प्राप्त राज्य मे मूर्च्छित रहता है, जल मे प्रतिबिम्बित चन्द्र को ग्रहण करना चाहता है और बिना बोये खेत से ही धान्य पाना चाहता है।

कर्मफल भोग का मुन्दर शब्दो मे प्रतिपादन निम्नलिखित पद्य में मिलता है—

> **"धंमु न करेसि वंछेसि सुह मुत्तिए**
> **चणय विक्केसि वंछेसि वर मुत्तिए।**
> **जं जि वाविज्जए तं जि (ति) खलु लुज्जए**
> **भुज्जए जं जि उग्गार तस्स किज्जए"** ॥५२॥

अरे तुम धर्म नही करते और मुक्ति सुख चाहते हो ? चने बेचते हो और (बदले मे) मुन्दर मोती चाहते हो ? जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है। जो मनुष्य जो भी कुछ खाता है उसी का उद्‌गार करता है।

सुकृतोपार्जन, दुष्कृत त्याग और सकल जीवो के प्रति मैत्री के उपदेश से कृति समाप्त होनी है।

कृति में कई व्यक्तियो, दृष्टान्तो और कथाओ के निर्देश मिलते ह—मालव नरेन्द्र पृथ्वी चन्द्र (५), अगारदाह दृप्टान्त (२०), शालिभद्र, भरत, सगर (२२), सनत्कुमार चक्री (५३), सुभट चरित (५४), गय सुकुमालक (५५), पु डरीक मरुदेवी, भरतेश्वर, प्रसन्न चन्द्र दृष्टान्त (५६) और नन्द दृष्टान्त (५७)।

भाषा—कृति की भाषा सरल और चलती हुई है। बीच-बीच में पाण्डित्य-मय भाषा के भी दर्शन हो जाते हैं (जैसे पद्य ३३, ३६, इत्यादि)। अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी कही-कही मिलता है—

> **"अगुढक्कहि भुत्तउ तडफडंत, अंतेहि निपीडिय कडयडंत।**
> **रहि जुत्तउ तुट्टउ तडयडंतु, वज्जावलि पक्कउ कढकढंतु"** ॥४६॥

इस कृति की भाषा व्याकरण की दृष्टि से कहीं कही अव्यवस्थित है (पद्य सख्या ४६, ६२)।

पादपूर्ति के लिए 'ए' के प्रयोग का हलका सा आभास, जैसा कि उत्तरकालीन हिन्दी कविता में मिलता है, कही कही इस कृति के पदो में भी मिलता है। जैसे—

> **"घरि पलित्तमि खणि सकइ को कूव ए** ॥५७॥
> **बुड्ढ भावंमि पुण मलिसि नियहत्थ ए** ॥५८॥

सुभाषित और वाग्धारायें—इस ग्रन्थ की भाषा में सुभाषितो और वाग्धाराओ का प्रयोग भी दिखाई देता है—

> **"किं लोहइं घडिउं हियं तुज्झ"** ॥ २५॥

क्या तुम्हारा हृदय लोहे का बना है ?

> **"छगल गहणट्ठ मेरावणं विक्कए**
> **कप्पतरु तोडि एरंडु सो वव्वए"** ॥१६॥

बकरी को लेने के लिए ऐरावत को बेचता है। कल्पवृक्ष को तोड़ कर ऐरड को

बोता है।

"घरि पलित्तंमि खणि सकइ को कूवए" ॥५७॥

घर के प्रदीप्त हो जाने पर कौन कुआ खोद सकता है ?

"बुड्ढ भावंमि पुण मलिसि नियहत्थए" ॥५८॥

बुढापे मे फिर अपने हाथ मलोगे।

"चणय विक्केसि वंछेसि वर मुत्तिए
जं जि वाविज्जए तं जि (ति) खलु लुज्जए" ॥५२॥

चने बेचते हो और बदले मे सुन्दर मोती चाहते हो ? जो, जो कुछ बोयेगा वह वही काटेगा ।

द्वादश भावना

सोमप्रभाचार्य[1] कृत कुमारपाल प्रतिबोध (पृ ३११) मे द्वादश भावनाओ का उल्लेख है। कवि ने संसार की अनित्यता और क्षण भगुरता का चित्रण किया है। जयदेव मुनि-कृत 'भावना सधि प्रकरण' और इस 'द्वादश भावना' में कई वाक्य समान हैं।

"चलु जीविउ जुव्वणु धणु सरीरु, जिम्व कमल दलग्ग विलग्गु नीरु।
अहवा इहत्थि जं किं पि वत्थु, तं सव्वु अणिच्चु ह हा धिरत्थु॥
पिय माय भाय सुकलत्तु पुत्तु, पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु।
पहवंतु न रक्खइ को वि मरणु, विणु धमह अन्नु न अत्थि सरणु॥
....
एक्कलउ पावइ जीवु जम्म, एक्कलउ मरइ विढत्त-कम्मु।
एक्कलउ परभवि सहइ दुक्खु, एक्कलउ धम्मिण लहइ मुक्खु॥
(पृ० ३११)

अर्थात् जीवन यौवन, धन, शरीर सब कमलपत्र स्थित जल के समान अस्थिर हैं। जो भी वस्तु इस ससार में है सब अनित्य है। प्रियतम माता, भाई, पत्नी, पुत्र, स्वामी, परिजन, स्नेहीमित्र कोई मरण से रक्षा नही कर सकता। धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नही।· · जीव अकेला ही धर्म को प्राप्त करता है और कर्मों से लिप्त अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जन्मान्तर में अकेला ही दु ख सहता है और धर्म के द्वारा अकेला ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

इस प्रकार कवि ने चौदह पद्धडिया छन्दो मे द्वादश भावनाओ के पालन का महत्व प्रतिपादित किया है।

---

१. सोम प्रभाचार्य के परिचय के लिये देखिये १२वें अध्याय में 'जीवमनः करण संलाप कथा', पृ० ३३५।

संयम मंजरी[1]

यह महेश्वर सूरि द्वारा रचित ३५ दोहों की एक छोटी-सी कृति है।

महेश्वर सूरि के जन्म, काल और स्थान के विषय में कुछ निर्देश नही मिलता। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति वि० स० १५६१ की है अत इनका उस काल से पूर्व होना निश्चित है। कालकाचार्य कथानक भी महेश्वरसूरि की कृति है, जिसकी हस्तलिखित प्रति का काल वि० सं० १३६५ है। यदि दोनो महेश्वर सूरि एक ही हो तो सयम मंजरी की रचना इस काल (वि० स० १३६५) से पूर्व हो गई होगी ऐसी कल्पना की जा सकती है।[2] दोहो के विषय और सूरि उपाधि से इनके जैन होने की कल्पना की जा सकती है।

जैसा कि कृति के नाम से ही प्रकट होता है इसमें कवि ने सयम से रहने का उपदेश दिया है। सयम के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है ऐसी कवि की बद्धमूल धारणा थी। कवि ने संयम के १७ प्रकारो का उल्लेख (दोहा ४) कर कुकर्म त्याग और इन्द्रिय-निग्रह का विधान किया है। जीवहिंसा, असत्य, अदत्तादान-चोरी, मैथुन और परिग्रह ये पांच पाप बताये हैं। मनोदण्ड, वाग्दण्ड या जिह्वादण्ड और कायदण्ड इन तीन दण्डों से बचने का आदेश दिया है।

ग्रथ के आरम्भ में पार्श्वनाथ जी की वन्दना की गई है। आगे कवि कहता है—

"संजमु सुरसत्थिहिं थुअउ संजमु मोक्ख दुवारु।
जेहिं न संजमु मणि धरिउ तह दुत्तर संसारु" ॥दोहा २॥

कवि जिन भक्त था। उसके विचार मे जिन आँखो ने जिननाथ के दर्शन नही किये वे व्यर्थ हैं।

"ये जिणनाहह मुहकमल अवलोअण कयतोस।
धन्न तिलोअहं लोअणइं मुह मंडण पर सेस" ॥१४॥

स्त्री रूप की आसक्ति के विषय में कवि कहता है—

पर रमणी जे रूव भरि पिक्खिवि जे वि हि (ह) संति।
राग निबंधण ते नयण जिण जम्मवि नहु होन्ति ॥१५॥

इन्द्रिय-निग्रह का आदेश देते हुए महेश्वर सूरि कहते हैं—

"गय मय महुअर झस सलह नियनिय विसय पसत्त।
इक्किक्केण इ इन्दियण दुक्ख निरंतर पत्त ॥१७॥
इक्किणि इंदिय मुक्कलिण लब्भइ दुक्ख सहस्स।
जसु पुण पंचइ मुक्कला कह कुसलत्तण तस्स ॥१८॥

---

१. गुणे द्वारा एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यट पूना, भाग १, १९१८-२० पृ० १५७-१६६ पर तथा दलाल—गुणे द्वारा संपादित 'भविसयत्त कहा' की भूमिका पृ० ३७-४१ पर प्रकाशित हुई है।

२. वही, पृ० १५७।

अर्थात् गज, मृग, मधुकर, मत्स्य और शलभ अपने-अपने विषय में प्रसक्त हैं। एक-एक इन्द्रिय-विषय मे आसक्ति के कारण ये निरन्तर दुःख पाते रहते है। एक ही इन्द्रिय की विषय प्रसक्ति से सहस्रो दु·ख प्राप्त होते हैं। जिसकी पाँचो इन्द्रिया विषयों की ओर उन्मुक्त हो उसकी कुशलता कहा ?

उपरिलिखित दोहो की भागवत पुराण के निम्नलिखित पद्य से तुलना कीजिये।

> कुरंग मातंग पतंग मीना
> भृंगा हताः पंचभि रेव पंच।
> एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
> यः सेवते पंचभिरेव पंच॥

मनोनिग्रह के विषय में कवि कहता है—

> "जेणि न रुद्धउ विसय सुहि धावंतउ मणुमीणु।
> तेणि भमेवउ भव गहणि जंपंतइ जण दीणु" ॥२८॥
> "संजम बंधणि बंधि धरि धावन्तउ मण हत्थि।
> जइ का दिसि अहु मुक्कुलु ता पाडिहइ अणत्थि" ॥२९॥

अन्तिम पद्य में सयम मजरी का महत्व बतलाया गया है और महेश्वर सूरि के गुरु का निर्देश किया गया है।

> समणह भूसण गय वसण संजम मंजरि एह।
> (सिरि) महेसर सूरि गुरु कन्नि कुणंत सुणेह ॥३५॥

चूनड़ी[1]

यह कृति भट्टारक विनयचन्द्र मुनि रचित है। विनयचन्द्र माथुर सघीय भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य थे। चूनडी ग्रंथ ३१ पद्यो की एक छोटी सी रचना है। इसकी रचना कवि ने गिरिपुर में रहते हुए अजय नरेश के राज-विहार में बैठकर की थी।[2] कवि के कालादि के विषय में कुछ निश्चित नही। पं० दीपचन्द्र पाण्ड्या ने जिस गुटके में से इसे सपादित किया था, उसका लिपि काल वि० सं० १५७६ है। अतः इस काल से पूर्व तो इस कृति की रचना निश्चित ही है। चूनडी के अतिरिक्त, कल्याणकरासु और णिझर पंचमी विहाण कथा भी विनयचन्द्र ने लिखी।

चूनडी स्त्रियो के ओढने का दुपट्टा होता है जिन्हें रगरेज, रग बिरंगी बेल बूटे छाप,

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, संख्या १-२, पृ० १११;
जैन हि० सा० का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ७०;
अनेकान्त वर्ष, ५, किरण ६-७, पृ० २५७-२६१ पर दीपचन्द पाण्ड्या का लेख —चूनड़ी ग्रंथ।

२. अनेकान्त वर्ष ५, किरण ६-७ पृ० २६१।

कर रगता है। चूनडी का दूसरा नाम चुण्णी-चुर्णी-भी है, जिसका अभिप्राय है इधर उधर बिखरे हुए प्रकीर्णक विषयो का लेखन अथवा चित्रण। एक मुग्धा पति से ऐसी चूनडी की प्रार्थना करती है जिसे ओढ कर जिन शासन में विचक्षणता प्राप्त हो। इसी को ध्यान में रखकर कृतिकार ने इसकी रचना की है। इस प्रकार कवि ने इस कृति के द्वारा धार्मिक भावनाओ और सदाचारो की रगी चूनड़ी ओढने का सकेत दिया है।

कृति का आरम्भ कृतिकार ने पचगुरु वन्दना और सरस्वती वन्दना से किया है। आत्म-विनय का प्रदर्शन करने के अनन्तर कवि ने जैन धर्म के तत्वो का निर्देश किया है।

विणएँ वंदिवि पंचगुरु, मोह महा तम तोडण दिणयर।
णाह लिहावहि चूनडिय, मुद्धउ पभणइ पिउ जोडिवि कर॥
ध्रुवकं।

पणवउँ कोमल कुवलय णयणी, ...
पसरिवि सारद जोण्ह जिम, जा अंधारउ सयलु वि णासइ।
सा मह्नु णिवसउ माणसहि, हंस-वधू जिम देवि सरासइ॥१॥

× × ×

हीरादंत पंति पयडंती, गोरउ पिउ बोलइं विहसंती।
सुन्दर जाइ सु चेइ हरि, मह्नु दय किज्जउ सुहय सुलक्खण।
लइ छिपावहि चूनडिय, हउँ जिण सासणि सुट्ठु वियक्खण[1] ॥१॥

ग्रंथ मे पद्धडिया छन्द की ही प्रधानता है।

चूनडी के विषय की कबीर के निम्नलिखित पद से तुलना कीजिए।

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया॥१॥
आठ कंवल दल चरखा डोले, पांच तत्व गन तीनि चदरिया।
साइं को सियत मास दस लागे, ठोंक ठोंक के बीनी चदरिया॥२॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन सों ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥३॥

कबीर ने उपदेश दिया कि मनुष्य शरीर देवता का मन्दिर है, इसे अपवित्र न होने दो। इस प्रकार कबीर की चदरिया अध्यात्म भाव-प्रतिपादक है, विनयचन्द्र की लौकिक भाव प्रतिपादक। इसी चूनडी की भावना से कबीर की भावना का विकास प्रतीत होता है। अतः यह कवि कबीर से पूर्व ही किसी काल में हुआ होगा ऐसी कल्पना की जा सकती है।

ऊपर जिन जैन धर्म सम्बन्धी रचनाओ का निर्देश किया गया है उनके अतिरिक्त भी अनेक छोटी छोटी रचनाएँ जैन भण्डारो मे विद्यमान है। जैसा कि पाटन भण्डार

---

१. अनेकान्त वर्ष ५, किरण ६-७ से उद्धृत।

की ग्रन्थ सूची से स्पष्ट होता है। जिन कृतियो का ऊपर विवरण दिया गया है हमारे विचार को तथा इस धार्मिक भावना की विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए ये कृतियाँ पर्याप्त हैं।

आध्यात्मिक और आधिभौतिक उपदेश प्रधान रचनाओ में हमे निम्नलिखित समानतायें दृष्टिगत होती हैं—

१. इनमे सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा के सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर भाव की ओर दृष्टि रखी गई है।

२. जिन दृष्टान्तो द्वारा भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है वे इस प्रकार के हैं कि जिनका सर्व साधारण के जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार के दृष्टान्तो के प्रयोग के द्वारा कृतिकारो ने अपने भावो को सुबोध और हृदयगम बनाने का प्रयत्न किया है।

३. दोनो प्रकार के कृतिकारो के हृदय उदार थे। इनकी कृतियो मे धर्म सम्बन्धी सहिष्णुता और उदार भावो के दर्शन होते है।

आध्यात्मिक रचनाओ के रचयिताओ—साधको—की कृतियो में निम्नलिखित विशेषताये मिलती हैं

१. इनकी कृतियो मे गुरु का महत्व बतलाया गया है। सुगुरु और कुगुरु में भेद बतलाते हुए सुगुरु को प्राप्त करने का आदेश दिया गया है।

२ इन्होने बाह्य कर्मकाण्ड का विरोध किया है। मन्त्र, तन्त्र, पूजा ध्यान, शास्त्राभ्यास आदि सबको व्यर्थ बता कर आन्तरिक शुद्धि पर बल दिया है। यद्यपि बाह्य कर्म काण्ड का खडन इनकी रचनाओं मे मिलता है किन्तु कही पर भी पर-निन्दा या कटुता का आभास नही मिलता।

३ ससार को क्षणिक बताते हुए विषयो के परित्याग का उपदेश इन्होने दिया है। विषय त्याग के लिए इन्द्रिय-निग्रह और मन को वश मे करने का उपदेश भी दिया गया है।

४. ससार को क्षणिक, विषयो को अग्राह्य बन्धु बाधवो के सम्बन्ध को मिथ्या बताते हुए वैराग्य भावना को उद्‌बुद्ध करने का प्रयत्न, इनकी कृतियो में मिलता है। इस प्रकार प्रवृत्तिमार्ग की अपेक्षा निवृत्तिमार्ग का उपदेश यद्यपि इनकी रचनाओं में प्रमुख है तथापि ये साधक गृहस्थाश्रम और स्त्री की अवहेलना नही करते। इनको वही तक त्याज्य बताते हैं जहा तक ये साधना मार्ग में बाधक हो।

५ सब कुछ क्षणिक, नश्वर और हेय बताते हुए आत्मानुभूति और आत्म स्वरूप ज्ञान का उपदेश इनकी रचनाओ मे मिलता है। आत्मा देह स्थित है। तीर्थयात्रा, देवालय आदि में भटकने की अपेक्षा स्वदेहस्थित आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। "यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे" की भावना को सदा जागरूक रखने का प्रयत्न इन साधको ने किया।

६. इन साधकों का विचार है कि समरस होने पर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।

आधिभौतिक उपदेश प्रधान रचनाओ की निम्नलिखित विशेषताये हैं—

१ इस प्रकार की रचना करने वालो का मुख्य लक्ष्य था समाज के स्तर को ऊँचा करना और समाज में सदाचारमय जीवन की प्रतिष्ठा करना। एतदर्थ इन उपदेशको ने अधिकतर धर्म, नीति, उपदेश, स्तुति आदि को ही अपनी रचना का विषय बनाया है।

२. इनके उपदेश अधिकतर गृहस्थो के लिए थे अत. उनके योग्य कर्तव्यो का उपदेश इनकी रचनाओ में मिलता हैं। इनका विचार है कि माता पिता की सेवा करना अन्य धर्मावलम्बी होने पर भी उनका आदर करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, बन्धु-बान्धवो का परस्पर एकता से रहना इत्यादि उपदेशो का पालन करने से एक गृहस्थ सद्‌गृहस्थ बन सकता है।

३. गृहस्थियो के लिये पूजा पाठ आवश्यक हैं एतदर्थ मन्दिरो तथा पूजास्थानो के विधि-विधानो का निर्देश भी इन्होने किया है।

४. इन उपदेशकों ने गृहस्थियो को धर्म का पालन करते हुए सुख प्राप्त करने का आदेश दिया है। इसी कारण गृहस्थाश्रम और स्त्री की अनुचित निन्दा इनके उपदेशो में नही मिलती।

५. इन उपदेशको ने यद्यपि गृहस्थों को प्रवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया किन्तु गृहस्थ में रहते हुए भी कर्मों से अलिप्त रहने की ओर भी निर्देश किया है। भोगमय जीवन बिताते हुए भी दानादि की प्रशसा करते हुए उन्हें त्यागमय जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया है।

इस प्रकार इन साधको और उपदेशको की भावना निरन्तर आगे बढती गई। जिसका प्रभाव आगे चल कर हिन्दी साहित्य के सतो, भक्त कवियो और नीतिकारो में दिखाई देता है।

दसवाँ अध्याय

अपभ्रंश मुक्तक काव्य-(१) धार्मिक-बौद्ध धर्म सम्बन्धी

बौद्ध सिद्धो द्वारा रचित अनेक दोहे और गीत मिलते है जिनके सग्रह और अध्ययन का प्रयत्न अनेक विद्वानो ने किया है। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय पं० हर प्रसाद शास्त्री ने 'हाजार बछरेर पुराण बागला भाषाय बौद्ध गान ओ दोहा' नाम से इनकी रचनाओ का सग्रह बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता से सन् १९१६ में प्रकाशित करवाया था। इसी के साथ सरह और कान्ह के दोहा कोष भी प्रकाशित हुए थे। इनके अनन्तर डा० शहीदुल्ला ने इनकी रचनाओ का अध्ययन फ्रेंच भाषा मे प्रस्तुत किया। तदनन्तर डा० प्रबोध चन्द्र बागची ने 'दोहा कोष' और 'मैटीरियल्स फौर ए क्रिटिकल एडिशन आफ दि ओल्ड बेंगाली चर्या पदस्' नाम से जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट्स आफ लैटर्स भाग २८ और ३० मे पूर्व प्रकाशित सिद्धो के दोहो और गानो को तिब्बती अनुवाद के आधार पर सशोधित रूप मे प्रस्तुत किया। श्री राहुल साकृत्यायन ने भी तिब्बती ग्रन्थो के आधार पर इन सिद्धो की रचनाओ पर प्रकाश डाला। पहले उनका एक लेख गगा पुरातत्त्वाक मे प्रकाशित हुआ था तदनन्तर उन्होने 'पुरातत्त्व निबन्धावली' में सन् १९३७ मे हिन्दी के प्राचीनतम कवि नामक लेख द्वारा इनकी रचनाओ को हिन्दी में प्रकाशित करवाया। इसी निबन्धावली मे 'वज्रयान और चौरासी सिद्ध' नामक लेख द्वारा उनकी विचारधारा पर भी प्रकाश डाला।

सिद्धो के अनेक दोहो और गीतो का सग्रह राहुल जी ने 'हिन्दी काव्य धारा' मे दिया है। इसी मे उन्होने सिद्धो द्वारा रचित अनेक कृतियो का निर्देश भी किया है। ये कृतियाँ अभी तक प्रकाशित नही हो सकी और ना ही प्राप्य है। इसलिये इनकी भाषा के विषय मे निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। इस अध्याय से पूर्व महाकाव्य और खड काव्य के अध्यायो मे प्रबन्ध काव्यो का अध्ययन ग्रन्थ क्रम से प्रस्तुत किया गया था। सिद्धो के ग्रन्थो का पृथक्-पृथक् प्रकाशन न होने के कारण इस प्रकार का अध्ययन सभव नही। ऊपर निर्देश किया जा चुका है कि अनेक सिद्धो के दोहो और गानो के कुछ सग्रह प्रकाशित हुए है उन्ही के आधार पर इस धार्मिक साहित्य को समझने का प्रयत्न किया जायगा।

सिद्धो की रचनाएँ दो रूपो मे मिलती है—कुछ में धर्म के सिद्धात, मन, तत्व, आदि का प्रतिपादन है और कुछ मे तन्त्र, मंत्र आदि कर्मकाण्ड का खडन मिलता है। इन्होंने वज्रयान और सहजयान विषयक विचारो को ही अधिकतर अपनी रचनाओ मे प्रकट किया है।

बौद्ध धर्म क्रमश हीनयान और महायान इन दो धाराओ मे विभक्त हो गया। नागार्जुन, महायान का प्रबल पोषक था। नागार्जुन के बाद मैत्रेयनाथ, आर्यदेव, असग

इत्यादि विद्वानों ने इसकी प्रतिष्ठा को सुदृढ करने का प्रयत्न किया। इन्होंने अपने अपने मत और सिद्धातो का प्रचार किया। असंग ने ईसा की पाचवी शताब्दी के लगभग महायान में तन्त्र का आविर्भाव किया।[1] धीरे धीरे महायान में तन्त्र, मन्त्र, बीजमन्त्र, धारणी, मंडल आदि का प्रवेश होता गया। तन्त्र के साथ साथ शक्ति–पूजा का भी आविर्भाव हो गया।

हीनयान और महायान मे मुख्य भेद है– बुद्ध और निर्वाण के स्वरूप के विषय में। हीनयान, बुद्ध, धर्म और सघ के त्रित्व में विश्वास करते हुए बुद्ध को धर्म का उत्पादक एक महापुरुष मानता है। महायान उसे अलौकिक पुरुष से ऊपर देव-रूप मे मानता है तथा बुद्ध, धर्म और सघ के स्थान पर धर्म, बुद्ध और सघ इस क्रम को उपयुक्त मानकर धर्म को या प्रज्ञा को प्रधानता देता है। उसके अनुसार धर्म–प्रज्ञा–नित्य है, यही सर्वोच्च लक्ष्य है। उस धर्म–प्रज्ञा को प्राप्त करने का उपाय बुद्ध है। धर्म प्राप्ति का यह उपाय इसी बुद्ध के द्वारा प्रसारित होता है। इसी प्रकार महायान में सघ का अर्थ बोधि सत्व—बोधि चित्त की प्राप्ति का प्रयत्न करने वाला—जीव हो गया।

इसके अतिरिक्त हीनयान ससार के दुःखो से, जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पा जाने में ही सन्तुष्ट है। यही उसका निर्वाण है। उसका यह निर्वाण उस के लिए ही है। महायान लोक मगल के लिए उस चित्त वृत्ति को पाना चाहता है जिसे बोधि चित्त कहा गया है और जिसे प्राप्त कर जीव उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।

क्रमश. निर्वाण के स्वरूप का प्रश्न उठा। निर्वाण क्या है? नागार्जुन ने उसे शून्य बताया। शून्य से महायानी सन्तुष्ट न हो सके। मैत्रेय नाथ ने उसमे विज्ञान को भी मिला दिया। उनका विचार था कि शून्य में भी विज्ञान या चेतना बनी रहती है। इसी को विज्ञानवाद कहा गया और आगे चलकर इसी का नाम योगाचार पडा। विज्ञानवाद भी जनता को संतुष्ट न कर सका। माध्यमिको का विचार था कि शून्य, न सत्, न असत्, न सदसत् और न सदसत् का अभाव है।

बौद्ध धर्म की साधारण जनता निर्वाण के इस सूक्ष्म विचार को कैसे समझ सकती थी? धर्म गुरुओ ने शून्य के लिए एक नए शब्द 'निरात्मा' का आविष्कार किया। निरात्मा का अर्थ है जिस में आत्मा लीन हो जाए। बोधिसत्व इसी निरात्मा मे लीन हो जाता है और वही अनन्त सुख (महासुख) मे डूबा रहता है। इस प्रकार ८ वी शताब्दी के लगभग शून्य में महासुखवाद का तत्व भी मिला दिया गया। निरात्मा शब्द स्त्रीलिंग में है अतः निरात्मा देवी मानी गई। उसी के आलिंगन में बोधिचित्त लीन रहता है। इस प्रकार महासुखवाद के परिणाम स्वरूप वज्रयान की उत्पत्ति हुई।[2]

---

१. बी. भट्टाचार्य—ग्लिम्प्सस आफ वज्रयान, प्रोसीडिंग एंड ट्रांजेक्शन्स आफ दि थर्ड ओरियंटल कान्फ्रेन्स, मद्रास, दिसम्बर १९२४ ई०, पृ० १३०।

२. बी. भट्टाचार्य—इंडियन बुद्धिस्ट इकोनोग्राफी, सन् १९२४, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, भूमिका पृ० १७।

वज्रयान का अभिप्राय है वज्र अर्थात् शून्य के द्वारा निर्वाण प्राप्त करना। शून्य का वज्र नाम इसलिए पड़ा क्योंकि वह नित्य है, अच्छेद्य है, अदाह्य है। धर्म गुरुओ के निर्वाण प्राप्ति के इस नए साधन से जनता वज्रयान की ओर आकृष्ट हुई किन्तु उसे स्वरूप ज्ञान के लिए किसी गुरु या वज्राचार्य की आवश्यकता हुई। परिणामस्वरूप वज्रयान मे गुरु-महत्ता प्रतिष्ठित हुई।

इस प्रकार इन्द्रभूति के महासुख वाद सबन्धी सिद्धान्त की स्थापना हो जाने पर ऊँचे विचार वाले शिक्षित बौद्धो को निर्वाण का सिद्धान्त भले ही न्याय्य और सर्वोच्च प्रतीत हुआ हो किन्तु साधारण जनता को वज्रयान की यह विचारधारा अधिक आकर्षक हुई। वज्रयान मे एक ओर बौद्ध-धर्म के उच्च से उच्च सिद्धान्तो का प्रतिपादन था और दूसरी ओर नीच से नीच अनैतिक कार्यों का समर्थन भी। इन्द्रभूति के अनुयायियो ने वज्रयान के प्रचार के लिए और जनता को वज्रयान से प्रभावित करने के लिए प्रचलित लोक भाषा मे कविता की। जन साधारण की भाषा मे कविता करके इन्होने अपने विचारो को जनता के समझने योग्य तो बना दिया किन्तु इन्हें सदा इस बात का भय रहता था कि कहीं हमारे विरोधी इस आचार बाह्य कर्म-कलाप का विरोध कर जनता में हमारे प्रति घृणा का भाव न पैदा कर दे। अतएव ये अपनी कविता सब को सुनने का अवसर न देते थे। अधिकारी और सत्पात्र को ही ये लोग कवितायें सुनाते थे और इसीलिए इन्होने ऐसी द्व्यर्थक भाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया जो योगाचार और वज्रयान उभय पक्ष वालों के लिए उपयुक्त होती थी। इसी कारण इस भाषा को सन्ध्या भाषा कहा गया। भाषा की अस्पष्टता के कारण बिना टीका की सहायता के कही कही सिद्धो के पदो का समझना कठिन हो जाता है। अतएव रहस्य भावना का समावेश होने लगा। क्रमशः गुह्य समाज की परम्परा चल निकली।

वज्रयान का इतना प्रभाव बढ़ गया कि वज्रयान के प्रचारकों और उनकी पुस्तको के नाम के आदि या अन्त में वज्र शब्द का प्रयोग बहुलता से होने लगा। वज्र गुरुओ ने अशिक्षित जनता के निर्वाण या परमसुख के लिये अनेक मुद्रा, मन्त्र, मडल, पूजा, धारणी, स्तोत्र, स्तव आदि का साधन आवश्यक बतलाया। सिद्धों और वज्राचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के पालन से ही अशिक्षित शिष्य या तो दिव्य शक्ति या सिद्धि या निर्वाण प्राप्त कर सकता है, ऐसा उनका दावा था। वज्रयान के जनता में फैलने का प्रमुख कारण यह था कि इसमें भिन्न-भिन्न स्तर और विचारधारा वाले लोगों के लिये अभीष्ट सब साधन वर्तमान थे—योग, देव पूजा, मन्त्र, सिद्धि, विषय भोग इत्यादि।

बौद्धों के अनुसार संसार में २६ लोक है जो तीन विभागो में विभक्त है—काम, रूप और अरूप। बोधिचित्त निर्वाण की प्राप्ति के लिए इन लोको में प्रवेश करता है। काम और रूप लोकों को पार कर वह अरूप लोक में पहुँचता है। रूप लोक में सर्वोच्च शिखर पर अकनिष्ठ है वहां अमिताभ बुद्ध वास करते है। उससे भी ऊपर सर्वोच्चस्थान है सुमेरु शिखर। उस स्थान पर पहुँच कर बोधि चित्त अपने आप को शून्य में डुबा देता है और उसी में विलीन हो जाता है। बोधि चित्त में विज्ञान के अतिरिक्त कुछ अव-

शेष नही रहता। वह अनन्तसुख या महासुख वाद की अनुभुति से युक्त हो जाता है।

बोधिचित्त की कल्पना एक शून्यरूप पुरुषाकार देव के रूप मे की गई है और शून्य की कल्पना एक नैरात्मा देवी के रूप मे। जिस प्रकार पुरुप स्त्री के आलिंगन मे सुख प्राप्त करता है उसी प्रकार बोधिचित्त, शून्य या नैरात्मा देवी के आलिंगन से अनन्त सुख प्राप्त करता है इसका ऊपर निर्देश किया जा चुका है। नैरात्मा को ही शक्ति, प्रज्ञा, स्वाभाप्रज्ञा, प्रज्ञा पारमिता, मुद्रा घटा आदि नामो से पुकारा जाता है। बोधिचित्त को ही वज्र और उपाय कहा गया है।

वज्रयानियो द्वारा प्रतिपादित मार्ग का ब्राह्मणो ने विरोध किया ही होगा। इसी कारण वज्रयानियो ने भी हिन्दुओ के कर्मकाण्ड का घोर कट्टरता से खंडन किया।[1]

वज्रयान मार्ग मे योगी के लिये किसी कर्म का निषेध नही, किसी प्रकार का भोजन अभक्ष्य नही। मास, मदिरा, मैथुन आदि पंच मकारो का भी निषेध नही किया गया है—

> "कर्मणा येन वै सत्वाः कल्पकोटि शतान्यपि।
> पच्यन्ते नरके घोरे तेन योगी विमुच्यते॥

वज्रयानी अन्य साकार देवो की पूजा न कर स्वय अपनी पूजा को सर्वश्रेष्ठ समझता है। वही सबसे बडा देव है। उसके समक्ष शुचि-अशुचि, भक्ष्य-अभक्ष्य, गम्य-अगम्य सब भेद नष्ट हो जाते है।

वज्रयान मार्ग मे गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। गुरु से ही सच्चे मार्ग और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति बताई गयी है।

क्रमश यह वज्रयान मार्ग इस सीमा तक पहुँच गया कि—

> "संभोगार्थ मिदं सर्वं त्रैधातुकमशेषतः।
> निर्मितं वज्रनाथेन साधकानां हिताय च॥"

इस प्रकार की घोषणा में भी इन्हें कोई संकोच न रहा।

बुद्ध, दु ख-बहुल ससार के दु.खो को दूर करने के लिये घर छोड बाहर निकल पड़े थे। अवलोकितेश्वर, दु खी प्राणियो के दु ख दूर किये बिना स्वय भी निर्वाण को न पाना चाहते थे। वज्रयानियो ने महायान की शून्यता एवं करुणा को क्रमश प्रज्ञा एवं उपाय के नाम दे दिये और दोनो के मिलन को युगनद्ध की दशा बतलाकर प्रत्येक साधक के लिए इसी अवस्था को प्राप्त करना, अन्तिम लक्ष्य बताया। प्रज्ञा और उपाय के भौतिक प्रतीक स्त्री और पुरुष के पारस्परिक मिलन की अन्तिम दशा समरस या महासुख के नाम से कहलाई।[1] इस दशा की प्राप्ति के लिये महामुद्रा (वज्रयानीय योग की सहचरी योगिनी) की साधना का विधान होने से उस मे अनाचर बढने लगा।

---

१. परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार प्रयाग, वि० सं० २००८।

वज्रयान की ही एक शाखा सहजयान के नाम से प्रसिद्ध हुई। सभी साधक इस प्रकार पतित नही समझे जा सकते। वज्रयानियो मे सफलता को प्राप्त करने वाले अनेक साधक हुए जो सिद्ध नाम से पुकारे गये। इस साधना के सच्चे स्वरूप को वे सहज के नाम से पुकारते थे। वे सहज के द्वारा सहज सिद्धि या सभी प्रकार की सिद्धियो की प्राप्ति सभव समझते थे। इन सिद्धों का विश्वास था कि साधना मे चित्त विक्षुब्ध नही होना चाहिए। चित्त विक्षुब्ध होने पर साधना सभव नही। सहज सिद्धि के लिए इन साधको ने वज्रयान मत्रयान सम्बन्धी मन्त्र, मण्डल आदि बाह्य साधनाओ की उपेक्षा कर यौगिक एव मानसिक शक्तियो के विकास पर बल दिया। वज्रयान मार्ग के अनेक प्रतीको की व्याख्या इन्होने अपने ढग से की। वज्र शब्द का अभिप्राय उस प्रज्ञा से माना जाने लगा जो बोधि चित्त का सार है और जो शक्ति का सूचक है। इन साधको का सम रस का अभिप्राय वज्रयानियो से भिन्न था। वज्रयानियो के भिन्न-भिन्न प्रतीको की इन्होने अपनी भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न व्याख्या की और भिन्न-भिन्न रूपको के द्वारा अपने भावो को स्पष्ट किया। यद्यपि वज्रयान और सहजयान दोनो का लक्ष्य एक ही था—महासुख या पूर्ण आनन्द की प्राप्ति और समरस की दशा का ही दूसरा नाम सहज था,[1] तथापि दोनो यानो मे से सहजयान मे जीवन के परिष्कार एव सुधार की कुछ भावना थी।

वज्रयान की तरह सहजयान के आचार्यों ने भी गुरु की आवश्यकता बताई। बाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा आन्तरिक चित्त शुद्धि पर बल दिया। उस समय प्रचलित ब्राह्मण शैव, जैन व बौद्ध साधना पद्धतियो की कटुता से आलोचना की और सहज साधना का प्रचार किया। चित्त की शुद्धि और चित्त की मुक्ति ही सहज सिद्धि है—निर्वाण है, साधक का अन्तिम लक्ष्य है। सहजयान के अनुसार चित्त शुद्धि से सहजावस्था की प्राप्ति होती है और यही 'सहज' हमारा परम लक्ष्य है। इस सहज को ही बोहि (बोधि), जिणरअण (जिनरत्न), महासुह (महासुख), अणुत्तर (अनुत्तर), जिनपुर, धाम आदि नामो से पुकारा गया है।[2]

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सिद्धो ने वज्रयान के प्रतीको की भिन्न रूप से व्याख्या की। इन के अनुसार "प्रज्ञा", चन्द्र नाडी इडा है और "उपाय", सूर्य नाड़ी पिगला। दोनो के संयोग के निकट ही महासुख का उत्पत्ति स्थान है जिसे पवन के नियमन से प्राप्त किया जा सकता है। इस स्थान की कल्पना सिद्धो ने मेरु दण्ड या सुषुम्ना के सिरे के रूप मे की। इसी को पर्वत का सर्वोच्च शिखर, महामुद्रा या मूल शक्ति नैरात्मा का निवासस्थान माना। इस साधना की कारण भूता काया को पवित्र तीर्थस्थान माना गया। जो ब्रह्माण्ड मे है वह पिण्ड में भी वर्तमान है फिर इधर उधर भटकना क्यो?

सिद्धो की कविता के मुख्य विषय थे—रहस्यमयी भाषा में सिद्धान्त-प्रतिपादन, सहज

---

१. डा० रमेशचन्द मजुमदार, हिस्ट्री आफ बेंगाल, भाग १, प० ४२०-४२१।
२. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ४१।

मार्ग, गुरु की महत्ता काय रूपी पुण्य तीर्थ, तन्त्र-मन्त्र आदि का खंडन, धर्म के बाह्य रूप बोधक कर्मकलाप का कट्टरता से विरोध इत्यादि।

सिद्धो की कविता काव्यदृष्टि से चाहे उत्कृष्ट कोटि की कविता न कही जा सके तथापि इनकी कविता की अपनी विशेषता है। हृदय के भावो की सरिता चाहे रूढिबद्ध प्रणालियो में बहती हुई प्रतीत न होती हो तथापि उस सरिता मे वेग है, एक अनुपम सौंदर्य है और अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता है जिस के कारण इन कविताओ को पढ कर पाठक की आत्मा तृप्ति का अनुभव करती है।

सिद्धो के काल के विषय मे पर्याप्त मतभेद है। श्री विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपा सिद्ध का समय वि० स० ६९० माना है। श्री राहुल साकृत्यायन इनका काल सन् ७६० ई० मानते है। इस प्रकार श्री राहुल साकृत्यायन सिद्धो का काल ८०० ई० से १२०० ई० तक मानते है। डा० सुनीति कुमार चैटर्जी सिद्धो की भाषा को इस काल के बाद की समझते है और इसी भाषा के आधार पर सिद्धो का काल १००० ई० से १२०० ई० के लगभग मानते है।[१]

सिद्धो की सख्या चौरासी मानी गई है। राहुल जी ने चौरासी सिद्धो की नामावली भी दी है। सिद्ध चौरासी ही थे या इस सख्या का कोई विशेष महत्त्व था कहना कठिन है। इन चौरासी सिद्धो की परम्परा में अनेक सिद्ध समसामयिक है। अनेक सहजयानी सिद्धों के नाम नाथ सिद्धो की सूची में भी समान मिलते है।[२] सिद्धो के नाम के पीछे पाद शब्द सम्मान का द्योतक है। इसी का विकृत रूप पा है।

सिद्धो की रचनाओ की भाषा पूर्वी अपभ्रंश है। पूर्व की प्रादेशिक भाषाओ के प्रभाव के कारण कुछ विद्वानो ने इस भाषा को भिन्न भिन्न पूर्वी देशो की भाषा समझ लिया। श्री विनय तोष भट्टाचार्य इन की भाषा को उडिया,[३] श्री हरप्रसाद शास्त्री बगला,[४] राहुल जी मगही कहते है।[५] किन्तु डा० प्रबोधचन्द्र बागची इन की भाषा को अपभ्रंश मानते है।[६] डा० सुनीति कुमार चटर्जी का भी यही विचार है कि सिद्धों की भाषा अपभ्रंश ही है।[७]

---

१. डा० सुनीति कुमार चैटर्जी, दी ओरिजन एंड डैवल्पमेंट आफ बंगाली लेंग्वेज, पृ० १२३।
२. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन् १९५०, पृ० २७-३२।
३. साधनमाला—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज संख्या ४१, पृ० ५३।
४. बौद्ध गान ओ दोहा, पृ० २४।
५. गंगा पुरातत्वांक, पृ० २५४।
६. डा० प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता, ओरियटल जर्नल, भाग १, अक्तूबर १९३३—सितम्बर १९३४, पृ० २५२।
७ डा० सुनीति कुमार चैटर्जी, दि ओरिजन एंड डैवल्पमेंट आफ दी बंगाली लेंग्वेज पृ० ११२।

चौरासी सिद्धो में से सरह, शबर, लूई, दारिका, कण्हपा और शान्ति मुख्य सिद्ध हुए। इनकी विचारधारा को समझने के लिए इन का सक्षेप मे नीचे विवरण दिया जाता है।

सरह पा—सरह सिद्धो मे सब से प्रथम है। इनका काल डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने वि० सं० ६९० निश्चित किया है। राहुल जी ने इनका काल ७६० ई० माना है।

इनके दूसरे नाम राहुल भद्र और सरोज वज्र भी है । यह जन्म से ब्राह्मण थे। भिक्षु होकर एक अच्छे पंडित हुए। नालन्दा मे कई वर्षों तक रहे। यह संस्कृत के भी ज्ञाता थे। पीछे इनका ध्यान मन्त्र तन्त्र की ओर आकर्षित हुआ और यह एक बाण (शर-सर) बनाने वाले की कन्या को महामुद्रा बनाकर किसी अरण्य मे रहने लगे। वहा यह भी शर (बाण) बनाया करते थे, इसीलिये इनका नाम सरह पडा। शबर पाद इनके प्रधान शिष्य थे। कोई तान्त्रिक नागार्जुन भी इनके शिष्य थे। भोटिया तन् जूर में इनके ३२ ग्रन्थो का अनुवाद मिलता है । इनकी मुख्य कृतियाँ है—काया कोष, अमृत वज्र गीति, चित्तकोष-अज-वज्र गीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहा कोष उपदेश गीति, दोहाकोष, तत्वोपदेश-शिखर- दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्त-तिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष , महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरह पाद गीतिका।[1]
ये सब ग्रन्थ वज्रयान पर लिखे गये है।

सरह की कविता के विषय है—रहस्यवाद, पाखंडो का खडन, मन्त्र देवतादि की व्यर्थता, सहजमार्ग, योग से निर्वाण प्राप्ति, गुरुमहिमागान आदि।

इनकी कविता की भाषा सीधी और सरल है—बीच-बीच में मुहावरो के प्रयोग से प्रभावोत्पादकता बढ गई है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है।[2]

कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए सरह कहते है:

बह्मणहि म जाणन्त हि भेउ। एवंइ पढिअउ ए चउवेउ॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरहीं बइसी अग्गि हुणन्त॥
कज्जे विरहइ हुअवह होयें। अक्खि डहाविअ कडुएं धूयें॥

× × ×

किन्तह दीवें कि तह णेवज्जें। किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वे॥
किन्तह तित्थ तपोवण जाई। मोक्ख कि लब्भइ पाणीन्हाई॥

सरह मन्त्र तन्त्र को व्यर्थ समझते है —

"मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण। सव्व वि रे बढ़ विब्भम कारण॥

यह भोग मे ही निर्वाण प्राप्ति समझते है:

"खाअन्त पिअन्ते सुहींहि रमन्ते। णित्त पुण्णु चक्का वि भरन्ते।
अइस धम्म सिज्झइ पर लोअह। णाह पाए दलीउ भअलोअह॥

---

१. राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्व निबन्धावली, १९३७, पृ० १६९
२. उदाहरण दोहाकोष, चर्यापद और हिन्दी काव्यधारा से लिये गये है।

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस।
तहि वढ़ ! चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उएस ॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥

सरह ने काया को ही सर्वोत्तम तीर्थ मानकर उसी से परम सुख प्राप्ति की ओर निर्देश किया है —

"एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थु से गंगा साअरु।
एत्थु पआग बणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु ॥
खेत्तु पीठ उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिठ्ठओ।
देहा सरिसउ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओ ॥

गुरु की महत्ता की ओर सरह निम्न लिखित पद्यो मे निर्देश करते है —

"गुरु उवएसे अमिअ रसु, धाव ण पीअउ जेहि।
वहु - सत्थत्थ - मरुत्थलहि, तिसिए मरिअउ तेहि ॥
चित्ताचित्ति वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु।
गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥
जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ।
गुरु-उवएसें विमल - मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥
विसअ विसुद्धें णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ।
उड्डी वोहिअ-काउ जिमु, पलुटिअ तह वि पड़ेइ ॥

"उड्डी वोहिअ-काउ जिमु" इस उपमा का प्रयोग सूरदास ने अपने अनेक पदो में किया है —

"थकित सिन्धु नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत।"
(भ्रमर गीत ६०)
'भटकि फिर्यौ बोहित के खग ज्यों पुनि फिरि हरि पै आयो।'
(वही ११९)
'थकित सिन्धु नौका के खग ज्यों फिरि फिरि वोइ गण गावति।"
(वही २१३)

सरह ने इस वाक्य का अर्थ विषय-भोग-परक किया है अर्थात् मन बार-बार विषयो की ओर आता है। किन्तु सूर ने इसका अर्थ भक्ति-परक किया है—"गोपियो का मन बार-बार कृष्ण की ओर ही लौटता है जैसे सिन्धु में नौका स्थित पक्षी इधर-उधर भटक भटक कर फिर उसी की शरण मे आता है।" इस प्रकार इन सिद्धो की कविता का प्रभाव हिन्दी के संत कवियो पर ही नही पड़ा अपितु अन्य कवि भी उनकी कविता से प्रभावित हुए। अनेक उपमाओ, वाक्यांशों, विचारो और वाग्धाराओ को जिनका प्रयोग सिद्धो ने सहजमार्ग के लिये किया सूर आदि भक्त कवियो ने भक्ति-परक अर्थ में किया।

चित्त शुद्धि पर सरह ने बहुत ध्यान दिया है।

"चितेके सअल बीअ भवणिव्वाणो वि जस्स विफुरंति।
तं चिंतामणि रूअ पणमह इच्छा फलं देंति॥
चित्ते बज्झे बज्झइ मुक्के मुक्कइ णत्थि संदेहा।
बज्झति जेण वि जडा लहु परिमुच्चंति तेण बि बुहा॥

अर्थात् चित्त ही सबका बीजरूप है। भव या निर्वाण भी उसी से प्राप्त होता है। उसी चितामणि-रूप चित्त को प्रणाम करो। वही अभीष्ट फल देता है। चित्त के बद्ध होने पर मानव बद्ध कहा जाता है। उसके मुक्त होने पर निस्सन्देह मुक्त होता है। जिस चित्त से जड मूर्ख बद्ध होते है उसी से विद्वान् शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

यह चित्त ही सब कुछ है। इस सर्वरूप चित्त को ख-सम, आकाश के समान शून्य अथवा निर्लेप, बना देना चाहिये। मन को भी शून्य स्वभाव का बना देना चाहिये। इस प्रकार वह मन अमन हो जाय अर्थात् अपने चंचल स्वभाव के विपरीत निश्चल हो जाय, तभी सहज स्वभाव की प्राप्ति होती है।

"सव्व रूअ तहि खसम करिज्जइ, खसम सहावे मणवि धरिज्जइ।
सो वि मणु तहि अमणु करिज्जइ, सहज सहावे सो परु रज्जइ॥

सरह ने राग रागनियो मे बद्धगानो में भी यही विचार प्रकट किये है। निम्नलिखित गान मे सरह ने सहज मार्ग का निर्देश किया है—

राग—देशाख

"नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल
चिअ राअ सहावे मुकल॥
उजु रे उजु छाडि मा लेहुरे वंक
निअडि बोहि मा जाहुरे लाक॥
हाथरे कांकण मा लेउ दापण
अपणे अपा बुझतु निअ मण॥
पार उआरें सोइ गजिअ
दुज्जन संगे अवसरि जाइ॥
वाम दाहिण जो खाल बिखला
सरह भणइ बापा उजु बाट भइला॥

(चर्यापद ३२)

अर्थात् नाद और विन्दु, सूर्य और शशि मंडल कुछ नही, चित्तराज स्वभाव से युक्त है। अरे! ऋजु मार्ग को छोडकर कुटिल मार्ग का आश्रय न लो। "बोधि निकट है कही दूर (लंका) मत जाओ। हस्तस्थित कंकणके होते हुए दर्पण क्यो लेते हो? अपने आप आत्म तत्व को निश्चय से (या निजमन से) जानो। इसी मार्ग का अनुगामी पार पहुँच आनन्द में मग्न हो जाता है। दुर्जन सग से मानव भटक जाता है, मरण को प्राप्त

होता है। सरह कहते है कि सहज मार्ग के अनुगमन से बाये दाये जो खाई और गड्ढे ह सरल हो जाते है।

निम्न लिखित पद मे सरह उपदेश देते है —

"काया रूपी सुन्दर नौका मे मन रूपी नौकादण्ड लगाकर, सद्गुरु वचन रूपी पतवार को धारण कर स्थिरचित्त से नौका को चलाओ। पार जाने का अन्य उपाय नही। नाविक नौका को रस्सी से खीचता है। मानव सहजमार्ग मे ही पार जा सकता है अन्य उपाय नही। मार्ग मे अत्यधिक भय है। प्रचड लहरो से सब प्रकंपित है। कूल पर प्रचड स्रोत मे भली भाँति नौका चलाने से ही, सरह कहते है, गगन समाधि प्राप्त होगी।

राग भैरवी

"काअ णावडि खांटि मण केडुआल।
सद्गरु वअणे धर पतवाल॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ
आण उपाय पार ण जाइ॥
नौवाही नौका टाणअ गुणे।
मेलि मेलि सहजें जाउ ण आणें॥
वाटत भअ खाट वि बलआ
भव उलोलें सव वि बोलिआ॥
कुल लइ खरे सोत्तें उजाअ
सरह भणइ गअणे समाअ[1]॥

(चर्यापद, ३८)

शबर पा : यह सरह पाद के शिष्य थे। लुई पा इन के शिष्य थे। सभवत. शबरो या कोल-भीलो के समान रहन सहन के कारण इन्हे शबर पाद कहा जाने लगा। राहुल जी ने तन् जूर मे इन के अनूदित ग्रन्थो की सख्या २६ बताई है और उन मे निम्नलिखित ग्रन्थो का निर्देश किया है—चित्त गुह्य गम्भीरार्थ गीति, महामुद्रा वज्र गीति, शून्यता दृष्टि इत्यादि।

ऊपर निर्देश किया जा चुका है कि सिद्ध, मेरुदण्ड या सुषुम्णा के सिरे पर पवन एवं मन को एक साथ निश्चल करते है। इस मेरुदण्ड को पर्वत के समान माना गया है

१. खांटि—सुन्दर। केडुआल—पतवार। नाइ—नाविक। नौवाही—नाविक। टाणअ—खीच। वाटत—मार्ग में। भअ—भय। खांट—अत्यधिक। बलआ—बलवान्, प्रचंड। बोलिआ— कम्पित हो गया। कुल—कूल, किनारा। खरे सोत्तें—प्रचंड धारा में। उजाअ—बहाओ, चलाओ।

जिस के सर्वोच्च शिखर पर महामुद्रा—मूलशक्ति—नैरात्मा का वास स्थान है। शबर पा इसी का वर्णन निम्न लिखित पद मे करते हे—

राग वलाड्डि

"ऊँचा ऊँचा पावत तहि वसइ सवरी बाली।
मोरंगि पीच्छ परहिण सवरी गिवत गुञ्जरी माली॥
उमत सवरो पागल सवरो मा कर गुली गुहाडा तोहोरि।
णिअ घरिणी नामे सहज सुन्दरी॥
नाना तरुवर मोउलिल रे गअणत लागे ली डाली।
एक ली सवरी ए वण हिण्डइ कर्ण कुण्डल वज्र धारी॥
तिअ धाउ खाट पडिला सवरो महासुखे सेजे छाइली।
सवरो भुजंग नैरामणि दारी पेम्ह राति पोहाइली॥
हिअ तॉबोला महासुहे कापुर खाइ।
सुन नैरामणि कंठे लइआ महासुहे राति पोहाइ॥
गुरुवाक् पुछिआ बिन्ध निअमण बाणे।
एके शरसन्धानें बिन्धह बिन्धह परमणिवाणे॥
उमत सवरो गरुआ रोषे।
गिरिवर सिहर सन्धि पइसन्ते सवरो लोडिब कइसे[1]॥

(चर्यापद, २८)

अर्थात् ऊँचे पर्वत पर शबरी बालिका (नैरात्मा) रहती है। उस का अंग मोर पंखों से शोभित है, गले मे गुंजा माला है। शबर इसे पाने के लिये पागल है। वही तुम्हारी गृहिणी है- सहज सुन्दरी है। उस उच्च शिखर पर अनेक वृक्ष मुकुलित है उनकी शाखाये गगन स्पर्शी हे। अकेली शबरी (नैरात्मा) वन में विचरती है। वही त्रिधातु-निर्मित खट्वा रखी है, महासुख रूपी शय्या बिछी हुई है। साधक वहा पहुँच कर उसी नैरात्मा रूपी दारिका के साथ आनन्द से विहार करता है—प्रेम से रमण करता है। वही महासुख है। उस का साधन, गुरु वाक्य रूपी पंखो से बने धनुष को लेकर उस पर निज मन रूपी बाण का सन्धान कर परम निर्वाण का भेद करना है। उन्मत्त साधक जब उस पर्वत शिखर पर पहुँच जाता है तब वहां से उसका लौटाया जाना कैसे संभव है?

उत्तर काल मे भगवान को स्त्री रूप मे आराध्य मानकर उससे प्रेम करना और उसकी प्राप्ति का प्रयत्न सिद्धो की इसी विचारधारा का परिणाम प्रतीत होता है।

---

१. पावत—पर्वत। गुंजरी माली—गुँजा माला। उमत—उन्मत्त। मोउलिल—मुकुलित। गअणत—गगन से। तिअ धाउ—त्रिधातु की। नैरामणि—नैरात्मा। पेम्ह—प्रेम से या देखते हुए। पोहाइली—बिताई। लोडिब—लौटाया जाय।

लुई पा—यह राजा धर्मपाल (७६९–८०९ ई०) के कायस्थ—लेखक—थे। पीछे से शबरपाद से प्रभावित हो उन के शिष्य बन गए। सिद्धो मे इनका ऊँचा स्थान है। राहुल जी ने इन के तन्जूर मे सात अनूदित ग्रन्थो का निर्देश किया है और इन की निम्नलिखित रचनाओ का उल्लेख किया है—अभिसमय विभंग, तत्व स्वभाव दोहा कोष, बुद्धोदय, भगवदभिसमय, लुई पाद गीतिका।

लुईपा इन्द्रिय और चित्त के निग्रह का उपदेश रहस्यमयी भाषा में देते हुए कहते हैं कि चित्त वृत्तियो के शमन तथा इन्द्रियों के दमन का उपाय गुरु से पूछो।

राग—पट मंजरी

काआ तरुवर पंचवि डाल। चंचल चीए पइट्ठा काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण।
सअल समाहिअ काहि करिअइ। सुख दुखे त निचित मरिअइ।
ए डिएउ छान्दक बान्ध करण कपटेर आस। सुनु पाख भिडि लेहुरे पास[1]॥
भणइ लुई आम्हे झाणे दिट्ठा। धमण चमण वेणि पाण्डि बइट्ठा[2]॥
(चर्या० १)

निम्नलिखित पद में लुइपा विज्ञान—शून्य—का स्वरूप बताते हुए कहते हैं—

राग—पट मंजरी

भाव न होइ अभाव ण जाइ
अइस सँबोहें को पतिआइ॥
लुइ भणइ वढ दुलक्ख विणाणा
तिअ धाए विलसइ उह लागे णा॥
जाहेर बाण-चिह्न रुव ण जाणी।
सो कइसे आगम वेएँ वखाणी॥
काहेरे किस भणि मइ दिबि पिरिच्छा
लइ भणइ मइ भावइ किस
जा लइ अच्छम ताहेर उह ण दिस॥[3]
(चर्यापद, २९)

---

१. राहुल जी ने इस पंक्ति को निम्नलिखित रूप में दिया है—
"छडिअउ छंद बांध करण कपटेर आस। सुण्ण पक्ख भिड़ि लेहु रे आस॥"

२. काल—काला अंधकार। धमण · बइट्ठा—चन्द्र सूर्य दोनों के ऊपर बैठ कर।

३. विणाणा—विज्ञान, चमत्कार। उह लागे णा—ऊहा, चिह्न अर्थात् इसकी आकृति का ग्रहण नहीं किया जा सकता; वह किसी स्थूल आकार में प्राप्त नहीं हो सकता। बाण—वर्ण। वेएं—वेदों से। दिबि—दी जाय। मिच्छा—मिथ्या।

जल प्रतिविम्बित चन्द्र के समान वह तत्व न सत्य है न मिथ्या। उस का ज्ञान कठिन है, क्योकि उसके वास्तविक स्वरूप का कोई चिह्न नही। उसका व्याख्यान भी नही किया जा सकता है।

दारिक पा—यह लुई पा के शिष्य थे। प्रसिद्धि है कि पहिले यह ओडीसा के राजा थे बाद मे लुईपा से प्रभावित होकर उन के शिष्य बन गए। इन के साथ इन के मंत्री डेंगी पा भी उन के शिष्य बन गये। गुरु के आदेश से सिद्धि प्राप्ति के लिए यह अनेक वर्षों तक काचीपुरी मे एक गणिका की सेवा मे लगे रहे। सिद्धि प्राप्ति के अनन्तर इन का नाम दारिक पा पडा। इन के शिष्य वज्र घटा पाद थे।

इन की महासुखवाद परक एक रहस्यमयी कविता का उदाहरण देखिये—

राग वराही

सुन करुण रे अभिनचारें काअ वाक् चिएँ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें॥
....
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाण वखाणे
अपइठान महासुहलीले दुलक्ख परम निवाणे॥
. .....
राआ राआ राआरे अवर राअ मोहे रे बाधा
लुइ पाअ पए दारिक द्वादश भुअणे लाधा॥
(चर्यापद, ३४)

शून्य करुणा की अभिन्नता से दारिक पा गगन के परम पार तट पर विलास करता है। तन्त्र मन्त्र ध्यान व्याख्यान सब को व्यर्थ समझता है। इस अवस्था मे पहुँच कर ही वह वास्तव मे राजा हुआ, अन्य राज्य तो मोह के बन्धन है। लुई पा के चरणो का आश्रय लेने से दारिक पा ने बारह भुवन प्राप्त कर लिए।

कण्ह पा (कृष्ण पाद)—कर्णाटक देश मे एक ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने के कारण इन को कर्ण पा और शरीर का रग काला होने से कृष्ण पा या कण्ह पा कहते थे। राहुल जी ने यद्यपि इन्हे ब्राह्मण कुलोत्पन्न माना है किन्तु श्री भट्टाचार्य ने इन्हे जुलाहा जाति में उत्पन्न उडिया भाषी कहा है।[१] महाराज देवपाल (८०९–८४९ ई०) के समय में यह एक पण्डित भिक्षु थे और कितने ही दिनो तक सोमपुरी विहार (पहाड पुर, जि० राज शाही) मे रहे। पीछे से यह सिद्ध जालन्धर पाद के शिष्य हो गए। चौरासी सिद्धों में कवित्व और विद्या की दृष्टि से यह सब से बडे सिद्ध माने जाते थे। चौरासी सिद्धो में से सात से अधिक इन के शिष्य गिने गए है। उस समय सिद्धो का गढ विहार प्रदेश था। इन के दर्शन पर लिखे छह और तन्त्र पर लिखे चौहत्तर ग्रन्थो के तन्जूर मे मिलने का राहुल जी

---

१. साधनमाला, भाग २, प्रस्तावना, पृ० ५३।

ने निर्देश किया है। उन्होन इन के निम्नलिखित कविता ग्रन्थो को, जिन के भोटिया अनुवाद तन्जूर मे मिलते हैं, मगही मे लिखित बताया है—

१. कान्ह पाद गीतिका, २. महाढुण्ढन मूल, ३. वसन्त तिलक, ४. असम्बन्ध दृष्टि, ५. वज्र गीति, ६. दोहा कोष। 'बौद्ध गान ओ दोहा' मे इनका दोहा कोष जिस में बत्तीस दोहे है, सस्कृत टीका सहित छपा है।

जालन्धर पाद और कृष्ण पाद दोनो सिद्धो की गणना शैव सिद्धो मे भी की गई है। इससे इनके महत्व की सूचना मिलती है।

कृष्णपा, आगम, वेद, पुराण और पडितो की निन्दा करते हुए कहते है—

लोअह गब्ब समुब्बहइ, हउँ परमत्थ पवीण।
कोडिअ मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण लीण॥
आगम वेअ पुराणे (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क सिरीफले अलिअ जिम बाहेरीअ भमन्ति॥

(दोहा कोष)

अर्थात् व्यर्थ ही मनुष्य गर्व मे डूबा रहता है और समझता है कि मै परमार्थ में प्रवीण हूँ। करोडो मे से कोई एक निरजन में लीन होता है। आगम, वेद, पुराणो से पण्डित अभिमानी बनते है, किन्तु वे पक्व श्रीफल के बाहर ही बाहर चक्कर काटते हुए भौरें के समान आगमादि के बाह्यार्थ मे ही उलझे रहते है।

कण्हपा निम्नलिखित दोहो में मन को निश्चल कर सहज मार्गप्राप्ति का उपदेश देते है—

जइ पवण गमण दुआरे, दिढ तालावि दिज्जइ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ॥
जिण रअण उअरें जइ, सो वरु अम्वरु छुप्पइ।
भणइ काण्ह भव भज्जन्ते, णिव्वाणो वि सिज्झइ॥

दोहो के अतिरिक्त अनेक राग रागनियो में भी कण्ह पा ने अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। देखिये निम्नलिखित पद में वह अपनी भावना को एक गान के रूप मे अभिव्यक्त करता है—

राग——देशाख

नगर बाहिरे रे डोम्बि तोहोरि कुडिआ।
छोइ छोइ जाइसो बाह्मण नाडिआ॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब म सांग।
निघिण काह्न कापालि जोइ लांग॥
एक सो पदुमा चौषठी पाखुड़ी।
तहिं चड़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥

इत्यादि (चर्यापद, १०)

ऊपर बताया जा चुका है कि शरीर का प्रधान आधार रीढ या मेरुदण्ड है। इसके भीतर तीन नाडियो से होता हुआ प्राण वायु सचरित होता है। बाईं नासिका से ललना और दाईं नासिका से रसना नामक प्राणवायु को वहन करने वाली नाडियाँ चलती हैं। इनमे पहली प्रज्ञा–चन्द्र–है और दूसरी उपाय–सूर्य। इन्ही को इडा और पिंगला कहा गया है। मध्यवर्ती नाडी अवधूती है। यह सुषुम्णा भी कही जाती है। इसी अवधूती नाडी से जब प्राणवायु ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है तो ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नही रहता। अत एव अवधूती नाडी ग्राह्य ग्राहक वर्जिता कही गई है। मेरु गिरि के शिखर पर महासुख का आवास है वहा एक चौसठ दलो का कमल है। यह कमल चार मृणालो पर स्थित है। इसी चौसठ दलो वाले कमल (पद्म) पर स्थित वज्रधर (योगी) इस पद्म का आनन्द वैसे ही लेता है जैसे भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का। इन चार मृणालों के दलों को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य, और सर्व शून्य नाम दिया गया है। सर्व शून्य के आवास का नाम ही उष्णीष कमल है। यही डाकिनी जालात्मक जालन्धर गिरि नामक महामेरु गिरि का शिखर है। यही महासुख का आवास है। इसी गिरि शिखर पर पहुँचने पर योगी वज्रधर कहलाता है। यही वह सहजानन्द रूप महासुख का अनुभव करता है।[1]

ऊपर कण्हपा के पद में अवधूती नाडी ही डोम्बिनी या डोमिनी है और चंचल चित्त ही ब्राह्मण है। डोमिन से छू जाने के भय से वह अभागा ब्राह्मण भागा भागा फिरता है। विषयो का जजाल एक नगर के रूप में है और अवधूती रूपी डोमिन इस नगर से बाहर रहती है। कण्ह पा कहते है कि हे डोमिन तुम चाहे नगर के बाहर कही रहो यह निर्घृण और नग्न (लाग) कापालिक कण्हपा तुम्हारा ही सग करेगा। उसी उपरि निर्दिष्ट चौसठ पँखुडियो के दल पर डोमिन नाच रही है।

इसी अवधूती के सग से उत्पन्न महासुख का कण्हपा ने निम्नलिखित विवाह के रूपक द्वारा वर्णन किया है—

राग—भैरवी

भव निर्वाणे पड़ह मादला।
मण पवण वेणि करण्ड कशाला॥
जअ जअ दुन्दुहि साद उछलिला।
काह्न डोम्बी विवाहे चलिला॥
डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम।
जउतुके किउ आणुतु धाम॥
अह निसि सुरअ पसंगे जाअ।
जोइणि जाले रअणि पोहाअ॥

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ संप्रदाय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९५०, पृ० ९३।

डोम्बी एर संगे जो जोइ रत्तो।
खणह न छाड़अ सहज उन्मत्तो॥[1]
(चर्यापद, १९.)

कण्हपा और डोमिन के विवाह मे पटह, ढोल आदि का शब्द उठ रहा है। मन पवन दोनो वाद्य यन्त्र हो गये। जय जय शब्द होने लगा। कण्हपा ने डोमिन को वधू रूप में स्वीकार कर लिया। दहेज मे उसे अनुत्तर धाम मिला। उसने जन्म मरण के बधन को नष्ट कर दिया। दिन रात उसी के संग से महासुख मे लीन रहता है। इस प्रकार उसने पूर्ण निर्वाण अवस्था को प्राप्त कर लिया।

मन रूपी वृक्ष की पाच इन्द्रिय रूपी शाखाये हैं। वे अनन्त आशा रूपी पत्र फलो से लदी हुई हैं। यह वृक्ष शुभाशुभ रूपी जल से बढता है। कण्हपा ने गुरु वचन रूपी कुठार से इसे काटने का, निम्नलिखित पद मे उपदेश दिया है—

राग—मल्लारी

मण तरु पांच इन्दि तसु साहा।
आसा बहल पात फल बाहा॥
वर गुरु वअणे कुठारें च्छिजअ।
काहन भणइ तरु पुण न उइजअ।
बाढइ सो तरु सुभासुभ पाणी।
च्छेवइ विदु जन गुरु परिमाणी॥
इत्यादि (चर्यापद, ४५.)

सहज यान मे गुरु की महत्ता का निर्देश तो है किन्तु वह महासुख क्योकि वाणी द्वारा व्यक्त नही हो सकता, अतएव गुरु भी उसका स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं कर सकता, उसका आभास मात्र दे सकता है। कण्हपा कहते हैं—

राग—मालसी गवुड़ा

जो मणगोअर आला जाला।
आगम पोथी इष्टामाला॥
भण कइसें सहज बोल वा जाअ।
काअ वाक् चिअ जसु ण समाअ॥
आले गुरु उएसइ सीस।
वाक् पथातीत कहिब कीस॥
(चर्यापद, ४०.)

---

१. जअ जअ—जय जय। साद—शब्द। जाम—जन्म। आणुतु—अनत्तर।

सहज सुख प्राप्त हो जाने पर साधक योग निद्रा मे लीन हो जाता है। चेतना वेदना सब नष्ट हो जाती है। अपने पराये का भेद नष्ट हो जाता है। इस स्वसवेद्यावस्था मे सारा ससार स्वप्नवत् प्रतीत होने लगता है। इस ज्ञान निद्रा मे त्रिभुवन शून्यमय हो जाता है। आवागमन के बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते है। इसी का वर्णन कृष्णपा ने निम्नलिखित पद मे किया है—

राग——पट मंजरी

सुण बाह तथता पहारी।
मोह भण्डार लइ सअला अहारी॥
घुमइ ण चेवइ स पर बिभागा।
सहज निदालु काह्निला लांगा॥
चेअन न बेअन भर निद गेला।
सअल सकल करि सुहे सुतेला॥
स्वपणे मइ देखिल तिहुवण सुण।
घोलिआ अवणागमण-विहुण॥

इत्यादि (चर्यापद, ३६.)

शान्ति पा——यह ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। सिद्धो मे यही सबसे अधिक प्रकाण्ड विद्वान् माने गये है। यह उडन्तपुरी, विक्रमशिला, सोमपुरी, मालवा और सिंहल मे ज्ञानार्जन करते-करते धर्म-प्रचार भी करते फिरते थे। अपनी गम्भीर विद्वत्ता के कारण ही यह "कलि काल सर्वज्ञ" कहे जाते थे। यह गौड राज के राजगुरु और विक्रमशिला के प्रधान थे। इनका समय १००० ई० के लगभग माना जाता है।[1]

निम्नलिखित पद मे शान्तिपा सहजमार्ग की प्रशंसा करते हुए कहते है कि यह मार्ग स्वसवेदन और स्वानुभूति का मार्ग है। इसका यथार्थ वर्णन सभव नही। माया-मोह-समुद्र मे यही नौका है जिससे पार पहुँच सकते है। इस मार्ग मे वाम व दक्षिण नामक दोनो पार्श्वों का परित्याग कर आँखो देखी राह से और आँखे मूँद कर सीधे चलना पडता है। इस प्रकार आगे बढने से तृण कटक इत्यादि या ऊवड खाबड स्थानो की अडचनें किसी प्रकार भी बाधा नही पहुँचा सकती।

राग——रामक्री

सअ संवेअण सरुअ विआरें अलक्ख लक्ख ण जाइ।
जे जे उजवाटे गेला अनावाटा भइला सोइ॥
माआ मोहं समुदारे अन्त न बुझसि थाहा।
आगे नाव न भेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि नाहा॥

---

1. हिन्दी काव्य धारा, अवतरणिका, पृ० ५३।

सुना-पान्तर उह न दीसइ भान्ति न बाससि जान्ते।
एवा अटमहासिद्धि सिझइ उजूवाट जाअन्ते ॥
वाम दाहिण दो वाटा छाड़ी शान्ति बुलथेउ संकेलिउ।
घाट ण गुमा खड़तड़ि ण होइ आखि बुजिअ वाट जाइउ ॥[1]

(चर्यापद, १५.)

निम्नलिखित पद मे शान्तिपा रूई को धुनने के रूपक द्वारा शून्यता को प्राप्त करने का आदेश देते हैं—

राग—शबरी

तुला धुणि धुणि आँसुरे आँसु।
आँसु धुणि धुणि णिरवर सेसु ॥
तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।
पुण लइआ अपणा चटारिउ ॥
बहल बढ़ दुइ मार न दिशअ।
शान्ति भणइ बालाग न पइसअ ॥
काज न कारण ज एहु जुगति।
सअ संवेअण बोलथि सान्ति ॥

(चर्यापद, २६.)

अर्थात् रूई को धुनते धुनते उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अँश-रेशे-निकालते चलो फिर भी उसका कारण दृष्टिगत नही होता। उसको अश अश रूप से विभाजन और विश्लेषण कर देने पर अन्त मे कुछ भी अवशिष्ट नही रहता अपितु अनुभव होने लगता है कि रूई शून्यता को प्राप्त हो गई। इसी प्रकार चित्त को भली भाँति 'धुनने' पर भी उसके कारण का परिज्ञान नही होता। उसे समग्र वृत्तियो से रहित और नि स्वभाव कर शून्य तत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार सिद्धो के विवरण और उनकी कविता के उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होने प्राय अपने ही सिद्धान्तो को दोहो और गानो में अभिव्यक्त किया है। कही कही अपने भावो को अभिव्यक्त करने के लिये इन सिद्धो ने रूपको का भी प्रयोग किया है किन्तु इन रूपको मे ऐसे ही पदार्थ चुने गये है जिनका मानव जीवन के

---

१. अनावाटा—टीकाकार ने इस शब्द का अर्थ 'सः सः मार्गे अन्यत्र गतः' ऐसा दिया है। हम समझते हैं कि इसका अर्थ अनावृत्त या अनावर्त्त है। अर्थात् जो ऋजु मार्ग पर चलता है वह फिर इस संसार बन्धन में लौट कर नहीं आता—अनावृत्त हो जाता है। अथवा इस संसार सागर के आवर्त्त–भंवर–से छूट जाता है। भेला—वेड़ा। सूना पान्तर—शून्य प्रान्तर। उह—चिह्न, लक्षण। भान्ति—बाससे—भ्रान्ति वासना में।

साथ सबन्ध है। ऊपर शान्तिपा के रूई धुनने के रूपक का और कण्हपा के विवाह के रूपक का उल्लेख किया जा चुका है। इसी प्रकार नौका का रूपक[१], हरिण का रूपक[२], चूहे का रूपक[३], हाथी[४], सूर्य, वीणा आदि के रूपक भी सिद्धो के गानो मे मिलते है। रूपको के अतिरिक्त अप्रस्तुत विधान के लिए भी कच्छप, कमल, भ्रमर, नक्र, करह आदि मानव जीवन सबद्ध पदार्थो को ही अधिकतर प्रयुक्त किया।

इन सिद्धो की रचनाये कुछ तो दोहो मे मिलती है और कुछ भिन्न-भिन्न गेय पदो के रूप मे। चर्यापद मे सगृहीत सिद्धो के प्रत्येक पद के प्रारम्भ मे किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है। इन गेय पदो मे कही कही पादाकुलक, अडिल्ला, पज्झटिका, रोला आदि छन्द भी मिल जाते है।

उपरिनिर्दिष्ट सिद्धो की कविता के उदाहरणो से स्पष्ट है कि सिद्धो की यही विचार धारा नाथ पथियो द्वारा कुछ परिवर्त्तित एव परिष्कृत होकर हिन्दी-साहित्य के सत कवियो तक पहुँची। रहस्य की भावना, बाह्य कर्म कलाप का खण्डन, गुरु की महत्ता, अक्खडपन आदि की प्रवृत्तियाँ दोनो मे समान रूप से मिलती है। कबीर के दोहे भी इसी प्रकार प्रसिद्ध है जिस प्रकार सिद्धो के। अपने भावो को सक्षेप से अभिव्यक्त करने का साधन दोहा छन्द से अच्छा और क्या हो सकता है? इस प्रकार भावधारा और शैली दोनो दृष्टियो से परवर्ती हिन्दी साहित्य इन सिद्धो का ऋणी है।

---

१. का अ णावडि खांटि मण केडुआल। सद्गुरु वअणे धर पतवाल॥
इत्यादि, सरह, चर्यापद, ३८
गंगा जउँना मांझे बहइ नाई, इत्यादि
डोम्बी, चर्या० १४
सोन भरिती करुणा नावी इत्यादि। कमरिपा, चर्या० ८

२. अप्पण मांसे हरिणा बइरी। खणह ण छाडअ, भूसुक अहेरी॥
इत्यादि भूसुक, चर्या० ६

३. णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा। अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा॥
इत्यादि, भूसुक, चर्या० २१

४. तीनिए पाटे लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ता सुनि मार भयंकर विसअ-मंडल सअल भाजइ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ। इत्यादि महीपा, चर्या० १६।

ग्यारहवाँ अध्याय

अपभ्रंश मुक्तक काव्य (३) विविध-साहित्यिक

(प्रेम, शृङ्गार, वीर भावादि संबंधी फुटकर पद्य)

इस से पूर्व अपभ्रश साहित्य की मुक्तक परपरा में धार्मिक साहित्य का विवेचन किया गया। अब इसी मुक्तक परपरा मे ऐसे मुक्तक पद्यो का उल्लेख किया जायगा जो सस्कृत प्राकृत के ग्रन्थो मे इतस्तत विकीर्ण मिलते हैं। ये मुक्तक पद्य, अलंकार, व्याकरण और छन्दो के ग्रन्थो मे नियमो और उदाहरणो के रूप मे प्रस्तुत किये गये हैं। इन पद्यो का प्रयोग प्राय जन साधारण के जीवन से संबद्ध घटनाओं और दृश्यो मे हुआ हैं। ये पद्य प्रबन्ध ग्रन्थो मे प्रबन्धो के अन्तर्गत चारण, गोप आदि पात्रो द्वारा व्यवहृत हुए दिखाई देते हैं और सुन्दर साहित्यिक सुभाषितो और सूक्तियो के उदाहरण प्रस्तुत करते ह।

ये साहित्यिक सुभाषित रूप मे प्राप्त मुक्तक पद्य हमे मुख्य रूप से निम्नलिखित ग्रन्थो मे मिलते हैं:—

१. कालिदास के विक्रमोर्वशीय नामक नाटक का चतुर्थ अक।

२. हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का ८ वा अध्याय, छन्दोऽनुशासन और प्राकृत द्व्याश्रय काव्य।

३. सोमप्रभाचार्य कृत कुमारपाल प्रतिबोध।

४. मेरुतुगाचार्य कृत प्रबंधचिन्तामणि।

५. राजशेखर सूरि कृत प्रबन्ध कोश।

६. प्राकृत पैंगल।

७ पुरातन प्रबन्ध संग्रह।

इनके अतिरिक्त आनन्द वर्धन के ध्वन्यालोक, रुद्रट के काव्यालंकार, भोज के सरस्वती कण्ठाभरण, धनंजय के दशरूपक आदि अलंकार ग्रन्थो में भी कतिपय अपभ्रंश पद्य मिलते हैं।

इन पद्यों के विषय मे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि विविध ग्रन्थो में प्राप्त इन अपभ्रंश पद्यो के काल के विषय में निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। जिन ग्रन्थों में ये पद्य उद्धृत किये गये मिलते हैं वे पद्य ग्रन्थकार के अपने भी हो सकते हैं

और यह भी सभव है कि उनको ग्रन्थकार ने अपने से पूर्वकालीन किसी कवि के ग्रन्थ से उदाहरण रूप मे उद्धृत किया हो। कौन सा पद्य स्वय ग्रन्थकार का बनाया हुआ है और कौन सा उसने किसी दूसरे कवि का उदाहरण रूप से उद्धृत किया है, इसका ज्ञान सरल नही। ऐसी परिस्थिति में इन पद्यो के विषय मे इतना ही कहा जा सकता है कि ये पद्य जिस भी ग्रन्थकार ने उद्धृत किये है उन पद्यो की उस काल मे या उस काल से पूर्व रचना हो गई थी।

इन पद्यो मे श्रृगार, वीर, वैराग्य, नीति, सुभाषित, प्रकृति चित्रण, अन्योक्ति, राजा या किसी ऐतिहासिक पात्र का उल्लेख, आदि विषय अकित हुए है। इन पद्यो मे कवित्व है, रस है, चमत्कार है और हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है। ये पद्य साहित्यिक सुभाषित और सूक्ति रूप मुक्तक काव्य के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते है। ये पद्य गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती, सुभाषित रत्नावली आदि रूपो की तरह यद्यपि सगृहीत रूप मे नही मिले तथापि सभवत इनका कोई सग्रह ग्रन्थ होगा जिनमे से अनेक कवियो ने उदाहरण के लिये अपनी रुचि के अनुकूल अनेक पद्य चुने, ऐसी कल्पना उचित जान पडती है। एक ही पद्य का अनेक ग्रन्थकारो के ग्रन्थो में उल्लेख इसी दिशा की ओर सकेत करता है। उदाहरण के लिये निम्न लिखित पद्य हमे सोमप्रभ के कुमारपाल प्रतिबोध में और प्रबन्ध चिन्तामणि में मिलता है :—

"रावणु जायउ जहिं दियहि दह-मुहु एक्क-सरीरु।
चिंताविय तइयहि जणणि कवणु पियावहुं खीरु॥"
(कु० पा० प्र० पृष्ठ ३९०)

"जईयह रावणु जाईयउ दह मुहु इक्कु सरीरु।
जणणी वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउ खीरु॥"
(प्र० चि० पृष्ठ २८)

इसी प्रकार हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्रबन्ध चिन्तामणि के अनेक पद्य समान रूप है। हेमचन्द्र के और सोमप्रभ के अनेक पद्यो मे एकरूपता है। इससे हम कल्पना कर सकते है कि इन ग्रन्थकारो ने इस प्रकार के पद्यो को किसी सग्रह ग्रन्थ से लिया होगा।

नीचे इसी विविध साहित्यिक सुभाषित और सूक्ति रूप में प्राप्त मुक्तक परपरा का सक्षिप्त विवरण दिया जाता है :—

कालिदास—कालिदास के विक्रमोर्वशीय नामक नाटक के चतुर्थ अक मे सोन्माद राजा पुरूरवा के मुख से अनेक अपभ्रश पद्य सुनाई देते है। इस नाटक के अतिरिक्त अन्य किसी नाटक में अपभ्रश पद्य नही मिलते। सस्कृत के अन्य नाटको मे कुछ शब्द, वाक्याश या वाक्य, अपभ्रश या अपभ्रशाभास रूप में दिखाई देते है किन्तु अपभ्रश के इस साहित्यिक सौष्ठव का अन्य नाटको में प्रायः अभाव है। इन पद्यो की प्रामाणिकता के विषय मे विद्वान् एक मत नही। पद्यों के प्रारम्भ में द्विपदिका, चर्चरी, खण्डक, खुरक, कुटिलिका आदि कुछ गीतों का निर्देश है। कालिदास का समय निश्चित न होने से इन पद्यो के

समय के विषय में भी निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। पद्यों के कुछ उदाहरण देखिये —

"मइ जाणिअ मिअलोअणि णिसिअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडिसामलि धाराहरु बरिसेइ॥"

विक्षिप्त राजा नव तडित् से युक्त श्यामल मेघ को बरसते देख कहता है—मैंने समझा कि कोई राक्षस मृगनयनी उर्वशी को हरण कर लिये जा रहा है।

उन्मत्त राजा बादल से प्रार्थना करता है कि :—

"जलहर संहर एहु कोप मिआढत्तओ
अविरल धारासार दिशा मुह कन्तओ।
ए मइं पुहवि भमन्ते जइ पिअं पेक्खिहिमि,
तच्छे जं जु करीहसि तं तु सहीहिमि॥"

हे जलधर! अपना क्रोध रोको। यदि मुझे पृथ्वी पर घूमते घूमते प्रियतमा मिल गई तो जो-जो करोगे सब सहन करूँगा। वह वन में कभी मोर से, कभी कोयल से, कभी चक्रवाक से, कभी हाथी से, कभी पर्वत से, कभी मृग से और कभी वन लता से उर्वशी का समाचार पूछता फिरता है—

"परहुअ महुर पलाविणि कन्ती,
णन्दण वण सच्छन्द भमन्ती।
जइं पइं पिअअम सा महु दिट्ठी
ता आअक्खहि महु परपुट्ठी॥"

"हउं पै पुच्छिमि आअक्खहि गअवरु
ललिअ पहारे णासिअ तरुवरु।
दूर विणिज्जिअ ससहरकन्ती,
दिट्ठी पिअ पै समुह जन्ती॥"

"फलिह सिलाअल णिम्मल णिब्भरु
बहुविह कुसुम विरइअ सेहरु।
किंणर महुरगीअ मणोहरु
देक्खावहि महु पिअअम महिहरु[1]॥

हेमचन्द्र—यह श्वेतांबर जैन थे। इनका संबंध गुजरात के जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल नामक दो बड़े बड़े राजाओ के साथ था। इनका जन्म गुजरात के एक जैन वैश्य परिवार में वि० स० ११४५ में हुआ।[2] यह जैन मठ के आचार्य बने और अन्हिलवाड़

---

१. परहुअ—परभृता, कोकिल। कन्ती—कान्ते, प्रिये। पइं—तूने। पिअअम—प्रियतमा। परपुट्ठी—पर पुष्टा, कोकिल। हउं पै—मैं तुमसे। गअवरु—गजवर। फलिह····णिब्भरु—स्फटिक शिला के समान अत्यन्त निर्मल।

२. हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया, भाग ३, पृष्ठ ४११

मे रहे। इनकी मृत्यु ८४ वर्षों मे वि० स० १२२९ मे हुई। इनका जन्म का नाम चगदेव था, दीक्षा पर सोमचन्द्र और सूरि पद प्राप्त करने पर हेमचन्द्र नाम हुआ। यह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होने द्व्याश्रय काव्य, प्राकृत व्याकरण, छन्दोऽनुशासन, देशी नाम माला नामक ग्रन्थ लिखे। इनके विषय मे प्रसिद्ध है कि एक बार किसी ब्राह्मण ने इन्हे व्यग्य से कहा कि व्याकरण के लिये अन्त मे तुम्हे ब्राह्मण पण्डित का ही सहारा लेना पडा। यह सुनकर इन्होने अपने संस्कृत प्राकृत व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण किया। इस व्याकरण ग्रन्थ का एक हाथी पर रख कर जलूस निकाला गया। स्वय हेमचन्द्र भी उस हाथी पर बिठाये गये और अन्त में इसे राजकीय कोश में रख दिया गया। यह ग्रन्थ जयसिंह सिद्धराज को समर्पित किया गया था। अतएव इसका नाम सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन या सिद्ध हैम रखा गया। इन्होने भारत के अन्य देशो में यद्यपि भ्रमण न किया था तथापि इनका प्रभाव दूर दूर तक था। कुमारपाल भी इनसे अत्यधिक प्रभावित था और इन्होने उस राजा से जैनो के लिये अनेक अधिकार प्राप्त किये थे। जैनो के अनेक पवित्र दिनो पर पशु हिंसा भी बन्द करवा दी थी। यह कलि काल सर्वज्ञ माने गये है।

हेमचन्द्र ने शब्दानुशासान के प्रथम सात अध्यायों मे सस्कृत, आठवे अध्याय के प्रथम तीन पादो मे प्राकृत और चतुर्थ पाद में ३२९ सूत्र से अपभ्रंश के नियमो का उल्लेख किया है। इन नियमो के उल्लेख के साथ साथ उदाहरण स्वरूप अनेक अपभ्रश पद्य भी दिये है। इसी प्रकार कुछ अपभ्रंश पद्य छन्दोऽनुशासन में भी मिलते है। इन पद्यो के विषय सयोग, वियोग, वीर, उत्साह, हास्य, अन्योक्ति, नीति, प्राचीन कथानक निर्देश, सुभाषित आदि है। इन मे सुन्दर साहित्यिक सरसता के साथ साथ लौकिक जीवन और ग्राम्य जीवन के भी दर्शन होते है।

इसी प्रकार हेमचन्द्र के कुमारपाल चरित या द्व्याश्रय काव्य के २८ सर्गों में से अन्तिम आठ सर्ग प्राकृत और अपभ्रश में है। अन्तिम सर्ग मे १४ से ८२ तक के पद्य अपभ्रश में मिलते है। इन पद्यो मे धार्मिक उपदेश भावना प्रधान है। हेमचन्द्र के अन्य मुक्तक पद्यो के समान स्वच्छन्द वातावरण इन मे नही मिलता। हेमचन्द्र के भिन्न भिन्न ग्रन्थो में प्राप्त मुक्तक पद्यो के उदाहरण नीचे दिये जाते है[1]:

संयोग शृंगार—"बिट्टीए मइ भणिय तुहुं मा करु वंकी दिट्ठि।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिव मारइ हिअइ पइट्ठि॥"
(हेम० प्राकृत व्याकरण, ८.४.३३०)

"जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सरु खर-पत्थरि तिक्खेइ॥"
(हे० प्रा० व्या० ८.४.३४४)

---

१. सूत्रों का निर्देश डा० परशु राम वैद्य द्वारा संपादित हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण, सन् १९२८ के अनुसार है।

अर्थात् ज्यो ज्यो वह श्यामा लोचनो की वक्रता—कटाक्ष पात सीखती है त्यो त्यों कामदेव अपने बाणो को कठोर पत्थर पर तेज करता है।

"पिय सगमि कउ निद्दडी पिअहो परोक्खहो केम्व।
मइ विन्नि वि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व॥

(हे० प्रा० व्या० ८.४.४१८)

अर्थात् नायिका कहती है—न तो प्रिय संगम मे निद्रा है और न प्रिय के परोक्ष होने पर। मेरी दोनो प्रकार की निद्रा विनष्ट हो गई, न इस प्रकार से नीद है न उस प्रकार से।

निम्नलिखित पद्य मे नारी के मुख सौन्दर्य की सुन्दर व्यजना मिलती है—

"गयणुप्परि कि न चडहिं, कि नरि विक्खरहिं दिसिहि वसु,
भुवणत्तय-संतावु हरहिं, कि न किरवि *सुहारसु।
अंधयारु कि न दलहिं, पयडि उज्जोउ गहिउल्लओ,
कि न धरिज्जहिं देवि सिरहँ, सइँ हरि सोहिल्लओ।
कि न तणउ होहि रमणायरहु, होहि किं न सिरि-भायरु।
तुवि चंद निअवि मुह गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु॥

(छंदोऽनशासन पृ० ३४)

वियोग—

"जे महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण॥

(हे० प्रा० व्या० ८.४.३३३)

अर्थात् प्रिय ने प्रवासार्थ जाते हुए जितने दिन बताये थे उन्हे गिनते गिनते नख से मेरी अगुलियाँ जीर्ण हो गईं।

कौए के शब्द को सुनकर निराश हो कौए को उड़ाती हुई विरहिणी के नैराश्य भाव और प्रिय दर्शन से उत्पन्न आनन्दोल्लास का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पद्य मे मिलता है—

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥

(हे० प्रा० व्या० ८.४.३५२)

प्रवासी नायक गरजते मेघ को सबोधन करके कहता है—

"जइ ससणेही तो मुअइ अह जीवइ निन्नेह।
विहिं वि पयारेहिं गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥

(वही ८.४.३६७)

अर्थात् यदि वह मुझ से प्यार करती है तो मर गई होगी, यदि जीवित है तो नि.स्नेह होगी। अरे खल मेघ! दोनों ही तरह से वह सुन्दरी मैंने खो दी, व्यर्थ क्यों गरजते हो?

विरहिणी की आँखो से बरसते आँसुओ और गरम आहो की सुन्दरता से व्यंजना

निम्नलिखित पद्य मे मिलती है—

"चूडुल्लउ चुण्णी होइसहि मुद्धि कवोलि निहित्तउ।
सासानल-जाल-झलक्किअउ वाह-सलिल-संसित्तउ ॥

(वही ८.४.३९५)

विरहिणी के लिये वह प्रिय सन्देश व्यर्थ है जिससे प्रिय मिलन नही होता

"संदेसें काइं तुहारेण जं संगहो न मिलिज्जइ।
सुअणन्तरि पिएं पाणिएण पिअ पिआस किं छिज्जइ ॥

(वही ८.४.४३४)

वीरता—

"भल्ला हुआ ज मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु ॥"

(वही ८.४.३५१)

अर्थात् बहिन अच्छा हुआ जो मेरा पति रणभूमि मे मारा गया। यदि पराजित हो वह घर लौटता तो मै अपनी सखियो के सामने लज्जित होती।

"अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहालहि गयणयलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥"

(वही ८.४.३७६)

निम्नलिखित पद्य मे प्रियतम की युद्ध-वीरता के साथ दान-वीरता की प्रशसा करती हुई कोई नायिका कहती है—

"महु कन्तहो वे दोसड़ा हेल्लि म झंखहि आल।
देन्तहो हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्तहो करवालु ॥"

(वही ८.४.३७९)

अर्थात् हे सखि! मेरे प्रियतम में केवल दो दोष है, झूठ मत कहो। उस के दान देते हुए केवल मैं बच रहती हूँ और युद्ध करते हुए केवल तलवार।

एक क्षत्रिय बाला क्या वर मांगती है—

"आयहिं जम्महिं अन्नहिं वि गोरि सु दिज्जहि कन्तु।
गयं मत्तहं चत्तंकुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु ॥"

(वही ८.४.३८३)

हे गौरी! मुझे इस जन्म मे और अन्य जन्मो मे ऐसा ही पति देना जो हँसता हँसता निरंकुश मत्त गजों के साथ भिड़ने वाला हो।

"जसु भुअबलु हेलुद्धरिअ-धरणि,
णिसुणिवि वणयर-गण-उवगीउ सुविक्कमु।
अज्जवि हरिसिअ नव-दब्भंकुर-वभिण,
पयडहिं कुल-महिहर पुलउग्गमु ॥"

(छन्दोऽनुशासन पृ० ४५)

सुभाषित—सद्‌भृत्य की अवहेलना करने वाले स्वामी पर कितना सुन्दर व्यंग्य निम्नलिखित पद्य मे मिलता है—

"सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ सम्माणेइ खलाइं॥"
(हे० प्रा० व्या० ८.४.३३४)

"जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्स।
तसु हउ कलि जुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु॥"
(वही ८.४.३३८)

खलो के दुष्ट वचनो के कान में पडने की अपेक्षा वन में वृक्षो के फल खाकर सतुष्ट रहना अच्छा है।

"दइवु घडावइ वणि तरुहुं सउणिहं पक्क फलाइं।
सो वरि सुक्खु पइट्ठ णवि कण्णहिं खल-वयणाइं॥"
(वही ८.४.३४०)

"जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर-निवडिआइं तिण-सम गणइ विसिट्ठु॥"
(वही ८.४.३५८)

प्रेम के लिए दूरी का व्यवधान तुच्छ होता है। दूर स्थित सज्जनो का भी प्रेम असाधारण होता है—

"कहिं ससहरु कहिं मयरहरु कहिं बरिहिणु कहिं मेहु।
दूर -ठिआहं वि सज्जणहं होइ असड्ढलु नेहु॥"
(वही ८.४.४२२)

"जे निअहिं न पर-दोस। गुणिहिं जि पयडिअ तोस।
ते जगि महाणुभावा। विरला सरल-सहावा॥
पर-गुण-गहणु स-दोस-पयासणु। महु महुरक्खरहि अमिअ भासणु।
उवयारिण पडिकिओ वेरिअणहं, इअ पद्धडी मणोहर सुअहं॥"
(छन्दोऽनुशासन, पृ० ४३)

अन्योक्ति—

"वच्छहे गृण्हइ फलइं जणु कडु-पल्लव वज्जेइ।
तो वि महद्दुमु सुअणु जिवं ते उच्छंगि धरेइं॥"
(हे० प्रा० व्या० ८.४.३३६)

मनुष्य वृक्ष के कडवे पत्तो को छोड कर फलो को ग्रहण कर लेता है, तथापि महाद्रुम सज्जन के समान उन्हें अपनी गोदी में धारण करता है।

"एत्तहे मेह पिअन्ति जलु एत्तहे बडवानल आवट्टइ।
पेक्खु गहीरिम सायरहो एक्कवि कणिअ नाहिं ओहट्टइ॥"
(वही ८.४.४१९)

इसके अतिरिक्त कृपणो के प्रति व्यग्य (८.४.४१९) दान की प्रशसा (८४.४२२) इन्द्रिय निग्रह (८४४२७) सज्जन प्रशसा (८४४२२) आदि विषयो पर भी पद्य मिलते हैं।

कुमारपाल चरित के ८वे सर्ग मे प्राप्त अपभ्रश पद्यो का ऊपर निर्देश किया जा चुका है, इनमे धार्मिक उपदेश भावना ही प्रधान है। जैसे—

"गिरिहेवि आणिउ पाणिउ पिज्जइ
तरुहँवि निवडिउ फलु भक्खिज्जइ।
गिरिहुंव तरुहुंव पडिअउ अच्छइ,
विसर्याहं तहवि विराउ न गच्छइ॥" (८.१९)

"जेम्वँइ तेम्वँइ करुण करि, जिम्वँ तिम्वँ आचरि धम्मु।
जिहविहु तिहविहु पसमु धरि, जिध तिव तोडहिं कम्मु॥

दृष्टान्त और अप्रस्तुत विधान के लिए मानव जीवन से सबद्ध उपमानो का प्रयोग अनेक पद्यो मे मिलता है। जैसे—

"जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु।
पाणीउ नवइ सरावि जिवँ सव्वगें पइसीसु॥
(हे० प्रा० व्या० ८.४.३९६)

अर्थात् यदि प्रियतम मिल जाय तो मै अकृतपूर्व कौतुक करूँ। जिस प्रकार पानी मट्टी के सकोरे में समा जाता है उसी प्रकार मै भी सर्वांग रूप से उस मे समा जाऊँ।

चन्द्र के बादल मे छिप जाने के कारण की सुन्दर कल्पना निम्नलिखित पद्य में मिलती है—

"नव-वहु-दंसण-लालसउं वहइ मणोरह सोइ।
ओ गोरी-मुह-निज्जिअउ बद्दलि लुक्कु मियंकु॥
(वही ८.४.४०१)

इसी प्रकार कवि ने एक स्थान पर राम और रावण मे उतना ही अन्तर बताया है जितना ग्राम और नगर मे (८४४०८)।

हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत पद्यो मे से प्राकृत व्याकरण और छन्दोऽनुशासन के पद्यो की भाषा मे समानता नही है। इस भाषा-विषमता के कारण कल्पना की गई है कि कुछ पद्य उनके अपने है और कुछ अन्य कवियो के, जो यथास्थान उदाहरण रूप से प्रस्तुत किये गये है।

सोमप्रभाचार्य—सोमप्रभाचार्य (११९५ ई०) कृत कुमारपाल प्रतिबोध में कवि ने वसन्त का (पृष्ठ ३८), शिशिर का (पृष्ठ १५९), मधु समय (पृष्ठ ३५१)। और ग्रीष्म समय का (पृष्ठ ३९८) वर्णन किया है।

वसन्त में कोकिल का आलाप, वन-श्री का सौन्दर्य और सहकार मजरियो पर भ्रमर की गुंजार वर्णित है। वर्णन में प्राचीन परिपाटी होते हुए भी नवीनता है। शीत-काल में शीतनिवारण के लिये स्त्रियो ने शरीर पर घना कस्तूरी का अगराग लगाया है।

कवि कल्पना करता है मानो उनके हृदय मे स्थित अपरिमित प्रियतम का अनुराग बाहर फूट पडा हो। इसी प्रकार ग्रीष्म में सूर्य की तप्त किरणें है, पथिक तृष्णा से व्याकुल है, शरीर पर चदन और स्नानार्थ धारा-यन्त्रो का प्रयोग किया जा रहा है, लोग मधुर द्राक्षा-जल पान कर रहे हैं इत्यादि।

"जहिं तरुणिहिं घण-घुसिणंगराओ निम्मविओ सीयसंगम विघाओ।
मण मज्झि अमंतु पियाणुराओ नं निग्गओ बाहिरि निव्विवाओ॥

इसके अतिरिक्त स्थल स्थल पर स्फुट पद्य भी मिलते है जिनमें सुभाषित, प्रेम प्रसंग, कथा प्रसग, उपदेश आदि मिलते हैं। कुछ पद्यो मे समस्या पूर्ति का ढंग भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिये "कवणु पियावउ खीरु" की समस्यापूर्ति निम्नलिखित पद्य मे देखिये—

"रावणु जायउ जहिं दियहि दहमुहु एक्क-सरीरु।
चिंताविय तइयहिं जणणि कवणु पियावउं खीरु॥
(पृ० ३९०)

कुमारपाल प्रतिबोधान्तर्गत कुछ मुक्तक पद्यो के उदाहरण नीचे दिये जाते है:—

"पडिवज्जिवि दय देव गुरु देवि सुपत्तिहिं दाणु।
विरइवि दीण जणुद्धरणु करि सफलउं अप्पाणु॥"
(कु० पा० प्र० १०७)

"पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु थी आराहइ कंतु।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु इहु भल्लिम पज्जंतु॥"
(वही, पृ० १०८)

"चूडउ चुन्नी होइसइ मुद्धि कवोलि निहित्तु।
सासानलिण झलक्कियउ वाह सलिल संसित्तु॥" (वही पृ० १०८)

हेमचन्द्र ने भी यह दोहा अपने प्राकृत व्याकरण (८.४.३९५) मे उद्धृत किया है।

इउ अच्चब्भुउ दिट्ठ मइं कंठि व लुल्लइं काउ।
कोइवि विरह-करालियहे उड्डाविय उवराउ॥" (वही पृ० ३९१)

"नयणिहिं रोयइ मणि हसइ जणु जाणइ सउ तत्तु।
वेस विसिट्ठह तं करइ जं कट्ठह करवत्तु॥"
(वही पृ० ८६)

"जे परदार-परम्मुहा ते वुच्चहिं नरसीह।
जे परिरंभहि पर-रमणि ताहं फुसिज्जइ लीह॥
(वही पृ० १२५)

"अम्हे थोड़ा रिउ बहुय इउ कायर चिंतन्ति।
मुद्धि णिहालहि गयणयलु कइ उज्जोउ करंति॥"
(वही पृ० १५७)

"रिद्धि विहूणह माणुसह न कुणइ कुवि सम्माणु।
सउणिहि मुच्चइ फल रहिउ तरुवरु इत्थ पमाणु॥"
(वही० पृ० ३३१)

"जइ वि हु सूरु सुरूवु
तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खण।
पुरिस-गुणागुण-मुणण-परम्मुह
महिलह बुद्धि पयंपहिं जं बुह॥" (वही० पृ० ३३१)

मेरुतुंगाचार्य कृत प्रबन्ध चिंतामणि[1]

प्रबन्ध चिंतामणि (वि० स० १३६१) नामक ग्रन्थ मे भी अनेक मुक्तक पद्य मिलते है। इसमें कुछ पद्य राजादि किसी ऐतिहासिक पात्र से सबद्ध हैं, कुछ वीर, शृङ्गार, वैराग्यादि भावो के द्योतक हैं और कुछ सुन्दर सुभाषित हैं। तैलगाधिपति द्वारा मुंज के बदी किये जाने पर उसके मुख से अनेक सुन्दर कारुणिक पद्य सुनाई देते हैं :

"झोली तुट्टवि किं न मूउ किं हूअ न छारह पुञ्जु।
हिण्डइ दोरी दोरियउ जिम मंकडु तिम मुञ्जु॥" (पृ० २३)
"चित्ति विसाउ न चितीयइ रयणायर गुण पुंज।
जिम जिम वायइ विहि पडहु तिम नचिज्जइ मुंज॥" (पृ० २३)
"भोली मुन्धि म गव्वु करि पिक्खिवि पड्डरूयाइं।
चउदह सइं छहुत्तरइं मुंजह गयह गयाइं॥" (पृ० २४)

मुञ्ज के मृणालवती को कहे हुए पद्य भी सरस हैं —

"मुञ्जु भणइ मुणालवइ जुव्वणु गयउं न झूरि।
जइ सक्कर सयखण्ड थिय तोइ स मीठी चूरि॥ (पृ० २३)
"जा मति पच्छइ संपज्जइ सा मति पहिली होइ।
मुञ्ज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ॥' (पृ० २४)
"कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसण वाडी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ पग बेहु झाड़ी॥ (पृ० ५१)
"एहु जम्मु नग्गहं गियउ भडसिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खा तुरिय न वाहिया गोरी गलि न लग्ग॥" (पृ० ३२)

दिगंबर व्रत पालन करते करते जन्म बीत गया। किसी योद्धा के सिर पर न खड्ग प्रहार किया न तेज घोडा चलाया और न किसी सुन्दरी का कण्ठालिंगन किया।

निम्नलिखित पद्य मे "कवणु पियावउ खीरु" पर समस्या पूर्ति मिलती है

"जई यह रावणु जाईयउ दहमहु इक्कु सरीरु।
जणणि वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउ खीरु॥" (पृ० २८)

---

१. मुनि जिन विजय जी द्वारा संपादित सिंघी जैन ग्रंथमाला में शान्ति निकेतन बंगाल से वि० सं० १९८९ में प्रकाशित।

निम्नलिखित पद्य, भोजदेव के गले में पडे आभरण को देख कर, एक गोप कहता है :—

"भोयएव गलि कण्ठलउ मूं भल्लउ पडिहाइ।
उरि लच्छिहि मुहि सरसतिहि सीम विहंची कांइ॥" (पृ० ४५)

अर्थात् मानो वह कठाभरण हृदय में लक्ष्मी और मुख में सरस्वती की सीमा का सूचक हो।

कही कहीं पद्यो में प्राचीन गुजराती और राजस्थानी का पुट भी मिलता है जैसा कि ऊपर उद्धृत पद्यो से स्पष्ट है। दोहा छन्द के अतिरिक्त सोरठा छन्द का भी प्रयोग मिलता है। यथा

"को जाणइ तुह नाह चीतु तुहालउं चक्कवइ।
लहु लंकह लेवाह मग्ग निहालइ करण उत्तु॥" (पृ० ५८)

राजशेखर सूरिकृत प्रबंध कोष[1]—

प्रबन्ध कोश में भी पूर्व वर्णित विषयो पर कुछ मुक्तक पद्य मिलते है। ग्रन्थ का समय वि० सं० १४०५ माना गया है इसमें प्राप्त पद्य इस काल के और इस काल से पूर्वकाल के भी हो सकते है। ग्रन्थान्तर्गत कुछ मुक्तक पद्य देखिए—

चिंतित कुमारपाल को सबोधन करके कहा गया एक पद्य—

"कुमारपाल! मन चिंत करि चिंतिइं किंपि न होइ।
जिणि तुहु रज्जु सम्मप्पिउ चिंत करेसइ सोइ॥" (पृ० ५१)

निम्नलिखित पद्य में पूजा का विरोध मिलता है—

"अणफुल्लिय फुल्ल म तोडहिं मा रोवा मोडहिं।
मण कुसुमेहिं अच्चि णिरंजणु हिंडहि कांइ वणेण वणु॥"
(पृ० १८)

इसी प्रकार निम्नलिखित पद्यो में भी सुन्दर सुभाषित और अन्योक्ति शैली के दर्शन होते है :

"उवयारह उवयारडउ सव्व लोउ करेइ।
अवगुणि कियइ जु गुणु करइ विरलउ जणणी जणेइ॥"
(पृ० ८)

अर्थात् उपकारी के प्रति उपकार तो सब लोग करते है। अवगुणी और अपकारी के प्रति भी उपकार करने वाला कोई विरला ही उत्पन्न होता है।

"वरि वियरा जहिं जणु पियइ घुट्टु घुट्टु चुलुएहिं।
सायरि अत्थि बहुत्तु जलु छि खारा किं तेण॥" (पृ० १११)

एक छोटो सी बाउली अच्छी जहा चुल्लू से घूट घूट पानी पिया जा सकता है।

---

१. मुनि जिन विजयजी द्वारा संपादित, सिंघी जैन ग्रंथमाला ग्रंथांक ६, शान्ति निकेतन, बंगाल से प्रकाशित, वि० सं० १९९१,

समुद्र मे अगाध जलराशि है किन्तु उस खारे जल से क्या लाभ ?

प्राकृत पैंगल[१]—

प्राकृत पैंगल मे भी कुछ साहित्यिक सुभाषित स्फुट पद्य मिलते है। इसमे सगृहीत और उद्धृत पद्य भिन्न भिन्न काल के है । ग्रन्थ के रचयिता और रचना के विषय में कुछ निश्चित नही। किसी हरि बंभ (हरि ब्रह्म) नामक कवि ने मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिह (१३१४–१३२५ स०) के मन्त्री चण्डेश्वर की प्रशसा मे कुछ पद्य लिखे थे जो प्राकृत पैंगल मे उद्धृत है।[२] अत ग्रन्थ की रचना १३ वी शताब्दी से पूर्व नही हो सकती। ग्रन्थ मे कही कही हम्मीर का उल्लेख भी मिलता है।[३] हम्मीर का समय सन् १३०२ से १३६६ ई० तक माना गया है । अत. ग्रन्थ रचना का काल १४ वीं १५ वी शताब्दी ही अनुमित किया जा सकता है ।

ग्रन्थ में श्रृगार, वीर, नीति, राजा देवादि स्तुति सबन्धी भिन्न-भिन्न विषयो के पद्य मिलते है, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणो से स्पष्ट होगा—

नारी रूप वर्णन—नारी के रूप का वर्णन निम्नलिखित पद्यो मे मिलता है—

"महामत्त माअंग पाए ठवीआ, महातिक्ख वाणा कडक्खे धरीआ।
भुआ पास भौंहा धणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥
(पृ० ४४३)

"तरल कमल दल सरि जुअ णअणा, सरअ समअ ससि सुअरिस वअणा।
मअगल करिवर सअलस गमणी, कवण सुकिअ फल विहि गढ़ रमणी ॥
(पृ० ४९६)

वीरता—

"सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥" (पृ० १३९)

अर्थात् कल्पवृक्ष, सुरभि और पारसमणि तीनो पदार्थ वीर की समानता नही कर सकते। एक वल्कल युक्त और कठोर शरीर वाला है, दूसरा पशु और तीसरा पाषाण है।

युद्धोद्यत वीर हम्मीर अपनी पत्नी से विदाई लेता हुआ कहता है—हे सुन्दरि ! चरण छोड, हँस कर मुझे खड्ग दो । म्लेच्छो ने शरीर को काट कर निश्चय ही हम्मीर

---

१. प्राकृत पैंगल, चन्द्र मोहन घोष द्वारा संपादित, बिब्लियोथिका इंडिका, १९००-१९०२ ईस्वी।

२. हिन्दी काव्य धारा, पृ० ४६४

३. पउभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिय झंपिय।
कमठ पीठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ ॥
कोह चलिय हम्मीर वीर गअ जूह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ हा कंद मुच्छि मेच्छह के पुत्ते ॥
प्रा० पैं० पृष्ठ १५७

तुम्हारे मुख के दर्शन करेगा।

"मुंचहि संदरि पाव अप्पहि हसिऊण सुम्मुहि खग्गं मे।
कप्पिअ मेच्छ सरीर पेच्छइ वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥"
(पृ० १२७)

युद्धोद्यत सेना का दृश्य निम्नलिखित पद्य मे अनुरणनात्मक-शब्द-योग द्वारा कितना प्रभावोत्पादक हो गया है।

"खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ,
ण ण ण णगिदि करि तुरअ चले।
ट ट ट गिदि पलइ टपु धसइ धरणि वपु
चकमक करि बहु दिसि चमले।
चलु दमकि दमकि वल चलइ पइक्क वलु
धुलकि धुलकि करि करि चलिआ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल,
हमिर वीर जअ रण चलिआ[1] ॥" (पृ. ३२७)

निम्नलिखित युद्ध वर्णन भी अत्यन्त सजीव है—

"गअ गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ।
रह रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प पर णहि बुज्झिआ ॥
वल मिलिअ आइअ पत्ति जाइउ, कंप गिरिवर सीहरा।
उच्छलइ साअर दीण काअर, वइर वड्ढिअ दीहरा ॥" (पृ० ३०९)

ऋतु वर्णन—

"णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि! जाणए,
मम्मह खग्ग किणीसइ जलहर-साणए।
फुल्ल कअंबअ अंबर डंबर दीसए,
पाउस पाउ घणाघण सुमुहि! वरीसए ॥" (पृ० ३००)

पावस मे बिजली चमकती है वियोगिनी के लिए मानो कामदेव मेघ रूपी सान पर तलवार को तेज कर रहा है।

कवि वसन्त का वर्णन करता है—

"वहइ मलअ-वाआ हंत! कपंत काआ,
हणइ सवण-रंधा कोइला-लाव-बंधा।
सुणिअ दह दिहासु भिंग-झंकार-भारा,
हणिअ हणइ हंजे! चंड-चंडाल-मारा ॥" (पृ० ४९३)

---

१. कलइ—करती है। तुरअ—तुरग, घोडे। पलइ टपु—टाप पड़ती है। चमले—चमर। पइक बल—पदाति सेना। विपख—विपक्ष, शत्रु।

शिव की स्तुतिः—

"जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि हारा।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिधण दीसा, संतारिअ संसारा।
किरणावलि कंदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता।
सो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी कंता[1]॥
(पृ० १६९)

कुछ सद्गृहस्थ, सतोष, परोपकारादि विषयक पद्य भी मिलते हैं—

"सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणवत गेहा, कुणंति के बब्वर सग्ग-णेहा॥"
(पृ० ४३०)

"सेर एक्क जइ पावइ घित्ता। मंडा वीस पकावउ णित्ता।
टंकु एक्क जइ सेंधव पाआ। जो हउ रंको सो हउ राआ॥"
(पृ० २२४)

"सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ, जो कर पर-उवआर हसंतउ।
जे पुण पर-उपआर विरुज्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ बंझउ॥
(पृ० ४७०)

पुरातन प्रबन्ध संग्रह[2]:—

पुरातन प्रबन्ध सग्रह मे प्राप्त कुछ अपभ्रश पद्यो का पीछे अपभ्रश महाकाव्य के प्रकरण में निर्देश किया जा चुका है। इसमे पृथ्वीराज विषयक पद्यो के अतिरिक्त अन्य अपभ्रश पद्य भी मिलते हैं।

उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थो के अतिरिक्त जिनेश्वर सूरि रचित कथा कोष प्रकरण[3], गुणचन्द्र मुनि कृत महावीर चरित[4], उपदेश तरगिणी[5], लक्ष्मण गणि कृत सुपासनाह चरिय[6], आदि ग्रन्थो में भी इतस्तत· विकीर्ण कुछ अपभ्रश पद्य मिल जाते हैं।

ऊपर जो भी विविध–साहित्यिक सुभाषित रूप में मुक्तक पद्य दिये गये हैं वे उसके रूप को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं। भिन्न भिन्न स्थलो पर प्राप्त अपभ्रश पद्य

---

१. गोरि अधंगा—पार्वती अर्द्धांगिनी है। कंठट्ठिअ······-दीसा—जिसके कण्ठ में विष स्थित है और दिशायें ही जिसका परिधान है।

२. मुनि जिन विजय जी द्वारा, सिंघी जैन विद्यापीठ, कलकत्ता, वि० सं० १९९२

३. संपादक मुनि जिन विजय जी, सिंघी जन ग्रंथमाला, ग्रंथांक ११, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४९ ई०।

४. देवचन्द्र लालाभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रंथांक ७५, बम्बई, वि० सं० १९८५।

५. एम. बी. शाह, काशी।

६. पं० गोविन्द दास सेठ द्वारा, जैन विविध साहित्य शास्त्र माला, काशी १९१८ ई० में प्रकाशित।

विवाह, गोष्ठी, लौकिकाख्यान-प्रसंगादि लौकिक-जीवन से सबद्ध अवसरों पर प्रयुक्त हुए है। अनेक अवसरो पर ये पद्य गोपो और चारणो के मुख से सुने जाते हैं। इस प्रकार इस मुक्तक परपरा का जन-साधारण के साथ सपर्क बना हुआ था ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

इस साहित्यिक सुभाषित रूप में प्राप्त मुक्तक पद्य का जो रूप हमे अपभ्रंश साहित्य मे दिखाई देता है इसका अधिकाश प्रभाव आगे चल कर हिन्दी साहित्य के रीतिकाल पर पड़ा। उस काल मे भी दोहा शैली मे रचनाएँ हुईं और इसी भाव धारा को अभिव्यक्त करने वाले पद्य कवियो के मुख से निकले। जिस प्रकार अपभ्रश मुक्तक काव्य की धार्मिक धारा ने हिन्दी-साहित्य के भक्ति काल को प्रभावित किया उसी प्रकार विविध-साहित्यिक (सुभाषित) धारा ने हिन्दी-साहित्य के रीति काल को।

बारहवा अध्याय

अपभ्रंश रूपक-काव्य

भारतीय साहित्य मे रूपकात्मक साहित्य एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमे अमूर्त भावो को मूर्त रूप मे उपस्थित किया जाता है। हृदय के सूक्ष्म अमूर्त भाव इन्द्रियो का विषय नही बन सकते। जब वही भाव उपमा या रूपक द्वारा स्थूल—मूर्त रूप—ग्रहण कर लेते हैं तो वे इन्द्रियगोचर हो जाने से अधिक स्पष्ट और बोधगम्य बन जाते है। इन्द्रियो के द्वारा साक्षात् रूप मे प्रत्यक्ष होने पर ये सूक्ष्म भाव सजीव रूप धारण कर लेते है और हृदय को अत्यधिक प्रभावित करने मे समर्थ होते है। इसी कारण काव्य में अमूर्त का मूर्त रूप मे—अरूप का रूपाकार में—विधान प्रचलित हुआ।

इस रूपक शैली के बीज हमे उपनिषदो में दिखाई देते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् के उद्गीथ ब्राह्मण (१ ३) मे और छान्दोग्य उपनिषद् (१ २) मे एक रूपकात्मक आख्यायिका का सकेत है। बौद्ध साहित्य मे जातक निदान कथा के "अविदूरे निदान" की मार विजय सम्बन्धी आख्यायिका में इसी शैली के दर्शन होते है। इसी प्रकार जैन कथा साहित्य में भी अनेक रूपकात्मक आख्यान मिलते हैं।[1] रूपक-काव्य-शैली सर्व प्रथम सिद्धर्षि कृत उपमिति भव प्रपच कथा (वि० स० ९६२) में मिलती है। इस ग्रन्थ की भाषा सस्कृत है। इस मे जीव के ससार परिभ्रमण की कष्ट कथा और उसके कारणो का उपमा के द्वारा सुन्दर ढग से प्रतिपादन किया गया है।

कृष्ण मिश्र ने अपना प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक इसी शैली में लिखा। इसमे मोह, विवेक, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, दम्भ, श्रद्धा, भक्ति आदि अमूर्त भावो को स्त्री और पुरुष पात्रों का रूप दिया गया है।

तेरहवी शताब्दी मे यश पाल ने "मोह पराजय"[2] नामक नाटक लिखा। इसमे ऐतिहासिक पात्रो के साथ लाक्षणिक चरित्रो का समिश्रण और मोह पराजय का चित्रण दिखाई देता है। मोहराज द्वारा समाचार जानने के लिए भेजा हुआ गुप्तचर-ज्ञानदर्पण आकर बतलाता है कि मोहराज ने मनुष्य के मानस नामक नगर को घेर लिया है और उसका राजा विवेकचन्द्र अपनी शान्ति नामक पत्नी और कृपा सुन्दरी नामक कन्या के साथ वहा से निकल भागा है। कुमारपाल की स्त्री—शिष्टाचार और सुनीति की कीर्ति मजरी नाम की कन्या—पति परित्यक्ता हो मोहराज से सहायता की प्रार्थना करती है और मोहराज कुमारपाल पर शीघ्र ही चढ़ाई करना चाहता है।

---

१. कवि नागदेव कृत मदन पराजय, संपादक प्रो० राजकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वि० सं० २००४, प्रस्तावना, पृष्ठ ४३।

२. गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज बड़ौदा से प्रकाशित।

हेमचन्द्राचार्य के तपोवन में कुमारपाल की विवेकचन्द्र के साथ भट होनी है और कुमारपाल उसकी कन्या कृपासुन्दरी पर आसक्त हो जाते हैं। अन्त मे विवेकचन्द्र इस शर्त पर कन्यादान करते है कि सात व्यसनो को आश्रय नही दिया जायगा। द्यूत, मद्य, मास आखेट आदि सभी व्यसन देश से निर्वासित कर दिये जाते हैं। मोहराज की पराजय होती है और अन्त मे विवेकचन्द्र पुन सिहासनारूढ होते है।[1]

मोह पराजय के समान ही एक रूपकात्मक प्रबन्ध मेरुतुंगाचार्य की प्रबन्ध चिन्तामणि (वि० सं० १३६१) के परिशिष्ट मे मिलता है।[2] इसमे भी राजा कुमारपाल का अर्हद्धर्म और अनुकम्पा देवी की कन्या अहिसा को आचार्य हेमचन्द्र के आश्रम में देख कर उस पर मुग्ध होना और अन्त मे उनका परिणय वर्णित किया गया है। रूपक शैली में लिखा गया नागदेव कृत मदन पराजय लगभग १४वी शताब्दी की रचना है।[3]

इसी प्रकार वेकटनाथ कृत सकल्प सूर्योदय[4] नामक नाटक, जय शेखर सूरि कृत प्रबोध चिन्तामणि नामक प्रबन्ध, भूदेवशुक्ल कृत धर्मविजय नामक नाटक,[5] कवि कर्णपूरविरचित चैतन्यचन्द्रोदय नामक नाटक, वादिचन्द्र सूरि कृत ज्ञान सूर्योदय नाटक, इसी रूपकात्मक शैली मे रचे गये। इनके अतिरिक्त विद्यापरिणयन (१७वी शताब्दी का अन्त), जीवानन्दन (१८वी शताब्दी का आरम्भ) और अनन्त नारायण कृत माया विजय आदि रूपक-प्रधान कृतियो की रचना अठारहवी शताब्दी तक चलती रही।[6]

अपभ्रश मे रूपकात्मक शैली का सर्वप्रथम दर्शन हमे "जीवमन. करणसलाप कथा" नामक खड-काव्य में होता है।

जीवमनः करण संलाप कथा

सोमप्रभाचार्य कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध'[7] प्राकृत-प्रधान ग्रन्थ है। इसमें कुछ अंश अपभ्रंश के भी हैं। उसी का एक अश (पृ० ४२२-४३७) जीवमन करण सलाप कथा है।

---

१. वही, पृ० ४७।
२. प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० १२६।
३. मदन पराजय, प्रस्तावना, पृ० ९४।
४. आर. कृष्णमाचारि द्वारा संपादित, मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से प्रकाशित।
५. नारायण शास्त्री खिस्ते द्वारा संपादित, प्रिंस आफ वेल्स सरस्वती भवन सिरीज, बनारस से प्रकाशित, सन् १९३०।
६. मदन पराजय, प्रस्तावना, पृ० ५३।
७. लुडविग आल्सडर्फ, देर कुमारपाल प्रति बोध, हेम्बर्ग, जर्मनी, सन् १९२८। कुमारपाल प्रति बोध, मुनिराज जिन विजयजी द्वारा संपादित, सेन्ट्रल लाइब्रेरी बड़ौदा, सन् १९२०।

सोमप्रभ सस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। कुमारपाल प्रतिबोध के अतिरिक्त इन्होंने सुमति नाथ चरित, सूक्तिमुक्तावलि, शतार्थ काव्य इत्यादि ग्रन्थ भी लिखे। शतार्थ काव्य में निम्नलिखित एक वसन्त-तिलका वृत्त की सौ प्रकार से व्याख्या की गई है :—

कल्याण सार सविता न हरेक्ष मोह कान्तार वारण समान जयाद्यदेव।
धर्मार्थ कामद महोदय वीर धीर सोम प्रभाव परमागम सिद्ध सूरे[1] ॥

इस काव्य से कवि के अगाध पाण्डित्य का आभास मिलता है। इसी ग्रन्थ के कारण सोमप्रभ का नाम शतार्थिक भी पड गया।

कवि ने कुमारपाल प्रतिबोध की रचना श्रेष्ठि-मुख्य श्रावक अभयकुमार के पुत्रो की प्रीति के लिये की थी। अभयकुमार दीनो और अनाथो के पालन-पोषण के लिये कुमारपाल द्वारा खोले गये सत्रागार, दान भण्डार आदि का अधिष्ठाता था। सोमप्रभ का जन्म प्राग्वाट कुल के वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सर्वदेव था। सोमप्रभ ने कुमारावस्था मे ही जिन दीक्षा ले ली थी। यह तर्क शास्त्र, काव्य शास्त्रादि के पडित और धार्मिक-उपदेश-प्रदान मे चतुर थे।[2] कवि ने कुमारपाल प्रतिबोध की रचना वि० स० १२४१ में की थी।[3]

जीवमन करण सलाप कथा कुमारपाल प्रतिबोधान्तर्गत (पृ० ४२२-४३७) एक धार्मिक कथा बद्ध रूपक काव्य है। इसमें इन्द्रियो को पात्र का रूप देकर उपस्थित किया गया है। देह नामक नगरी है। वह लावण्य लक्ष्मी का वासस्थान है। नगरी के चारो ओर आयु कर्म का प्राकार है। नगरी में सुख, दु.ख, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि अनेक प्रकार की नाडियाँ अनेक मार्ग है। उस नगरी मे आत्मा नामक नरेन्द्र, बुद्धि नाम की महादेवी के साथ राज्य करता है। उनका प्रधान मन्त्री मन है। पचेद्रिय पाच प्रधान राजपुरुष है। एक वार राज्य-सभा मे विवाद उठ खडा हुआ—मन ने जीवो के दु खो का मूल कारण अज्ञान बताया। राजा ने उसी (मन) को दुःखो का मूल कारण बताते हुए उसे धिक्कारा। विवाद बढ़ता गया। पांचो प्रधान राज पुरुषो की निरंकुशता और अहम्मन्यता की भी चर्चा हुई।

मन ने इन्द्रियो को दोषी ठहराया। एक इन्द्रिय की निरकुशता से ही व्यक्ति का विनाश हो जाता है, जिसकी पांचों इन्द्रियाँ निरंकुश हों उसका फिर कल्याण कैसे हो सकता है?

"इय विसय पलक्कओ, इहु एक्केक्कु,
इंदिउ जगडइ जग सयलु।

१. कुछ व्याख्यायें वहीं परिशिष्ट पृ० १०-१४ में दी गई है।
२. वही, भूमिका पृ० १४-१५।
३. शशि जलधि सूर्य वर्षे शुचिमासे रवि दिने सिताष्टम्याम्।
जिनधर्मः प्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गूर्जरेन्द्रपुरे॥
वही पृ० ४७८

जेसु पंच वि एयइं, कयबहु खेयइं,
खिल्लहि पहु ! तसु कउ कुसलु ॥२६॥

जिन भृत्यो के जन्म कुलादि का विचार किये बिना उन्हें रखा जाय वे दु ख देते हैं। उनके कुल का विचार होने पर इन्द्रियाँ कहने लगी —हे प्रभु ! चित्तवृत्ति नामक महाटवी मे महामोह नामक नरपति है। उसकी महामूढा महादेवी है। उसके दो पुत्र है—एक राग-केसरी जो राजसचित्त-पुर का स्वामी है। और दूसरा द्वेष-गयद जो तामसचित्त-पुर का स्वामी है। उसका मिथ्या दर्शन नामक महामन्त्री है। मद, क्रोध, लोभ, मत्सर, काम प्रभृति उसके भट हैं। एक बार मिथ्यादर्शन नामक मत्री ने आकर दुहाई दी कि हे राजन् ! आश्चर्य है, चारित्र्य धर्म नामक राजा का चर सतोष आपके प्रजाजनो को विवेक गिरि पर स्थित जैनपुर में ले जाता है। तब मोहराज ने सहायता के लिये इन्द्रियो को नियुक्त किया इस प्रकार रूपकान्तर्गत दूसरा रूपक मिलता है।

मन द्वारा दोष दिये जाने पर इन्द्रियो ने मन को दोषी ठहराया और कहा कि मन के निरोध करने पर हमारा व्यापार स्वय रुक जाता है।

"जं तेसु फुरइ रागो दोसो वा तं मणस्स माहप्पं।
विरमइ मणम्मि रुद्धे जम्हा अम्हाण वावारो" ॥४९॥

इस प्रकार क्रमश कभी इन्द्रियो को, कभी कर्मो को और कभी काम वासना को दु ख का कारण वताया गया। वाद-विवाद बढ जाने पर आत्मा, स्वानुभूति से उन्हें प्रशम का उपदेश देता है —

"इय परोप्परु मणहु इंदियहु,
पंचन्ह वि कलह भरि,
वट्टमाणि अह अप्पराइण,
संलत्तु भो ! निठ्ठुर ! हु,
करहु पसमु नणु किं विवाइण ?
भवि भवि एत्तिउ कालु किउ मइ तुम्हह संसग्गु।
जइ पुणु लग्गइ पसम गुणु सो थेवो वि न लग्गु ॥६५॥

अन्त में मनुष्य-जीवन की दुर्लभता का प्रतिपादन करते हुए तथा जीव-दया और व्रतो के पालन का उपदेश देते हुए कथा समाप्त होती है।

इस प्रकार कथा मे उपदेशवृत्ति ही प्रधान है। काव्यत्व का अभाव है। कथा में भी मनोरजकता का अभाव है।

बीच बीच मे सुभाषितो का प्रयोग अवश्य मिलता है :—

जं पुणु तुहु जंपेसि जड ! तं असरिसु पडिहाइ।
मण न्निल्लक्खण किं सहइ नेऊरु उड्ढह पाइ ॥७॥

हे मूर्ख ! तुम जो कहते हो वह तुम्हारे योग्य नही प्रतीत होता। हे निर्लक्षण मन ! क्या ऊट के पैर में नूपुर शोभा देते हैं ?

पहु ! अप्पहु नरिंदाणं दुम्मंती दूसए गुण-कलावं ।
एक्कं पि तुंबिणीए बीयं नासेइ गुलभारं ।।५३।।

हे प्रभो ! कुमन्त्री, राजा के समग्र गुणो को दूषित कर देता है जिस प्रकार तुम्बिनी का एक ही बीज सारे लता गुल्म को ढाक लेता है ।

कृति के अपभ्रंश पद्यो में रड्डा, पद्धडिया और घत्ता छन्दो का ही प्रधानता से प्रयोग हुआ है ।

मयण पराजय चरिउ

यह हरिदेव कृत दो सन्धियो की एक रूपक कृति है । इस अप्रकाशित कृति की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार में उपलब्ध है (प्र० स० पृष्ठ १५३-१५४) । कृति में रचनाकाल का कोई निर्देश नहीं मिलता । हस्तलिखित प्रति का समय वि० स० १५७६ है । अतः इतना ही निश्चय से कहा जा सकता है कि कृति की रचना इस समय से पूर्व हो चुकी होगी । भाषा की दृष्टि से भी कृति १५ वी–१६ वी शताब्दी की ही प्रतीत होती है ।

कृति में घत्ता शैली है किन्तु बीच-बीच में दुवई और वस्तु छन्दो का भी प्रयोग मिलता है ।

कथा सक्षेप में इस प्रकार है—

राजा कामदेव, मोह नामक मन्त्री और अहकार, अज्ञान आदि सेनापतियो के साथ भव नगर में राज्य करते हैं । चरित्रपुर के राजा जिनराज उनके शत्रु है क्योकि वह मुक्ति अगना से विवाह करना चाहते है । कामराज, राग-द्वेष नामक दूत के द्वारा उनके पास यह सन्देश भेजते है कि या तो आप अपना यह विचार छोड दें और अपने तीन रत्न–दर्शन, ज्ञान और चरित्र–मुझे सौंप दें या युद्ध के लिये तैयार हो जाय । जिनराज ने कामदेव से लोहा लेना स्वीकार किया । अन्त मे काम परास्त होता है[1] ।

कृति की शैली के परिज्ञान के लिये निम्नलिखित उदाहरण देखिये । कामदेव से लोहा लेने के लिये युद्धोद्यत जिन भटों के वचन अधोलिखित उद्धरण में अकित है—

वज्ज घाउ को सिरि ण पडिच्छइ, असि धारा पहेण को गच्छइ ।
को जम करणु जंतु आसंघइ, को भवदंडइं सायरु लंघइ ।
को जम महिस सिंग उप्पाडइ, विप्फुरंतु को दिणमणि तोडइ ।
को पंचायणु सुत्तउ खवलइ, काल कुट्टु को कवलहिं कवलइ ।
आसीविस मुहि को करु च्छोहइ, धगधगंत को हुववहि सोवइ ।
लोह पिंडु को तत्तु धवक्कइ, को जिण संमुहु संगरि धक्कइ ।
निय घर मज्झि करहि बहु धिट्ठिव, महिलहं अग्गइ तेरी वट्ठिम । २.७

युद्धार्थ जाते हुए कामदेव के अपशकुनो का चित्रण निम्नलिखित उद्धरण में दिखाई देता है—

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५०, अंक ३-४ में प्रो० हीरालाल का लेख ।

कलसु विहडइ पवणु पडिकूडु। पच्छिलइं च्छिक हुव।
लवइ नयणु वाम्वउ सुनिब्भरु। एकट्ठिउ साणु खरु।
वेवि मिलिवि विरसइं निरंतरु। तं अवसवणु निएवि तर्गाहि।
उब्भउ घक्कइ ताम। इत्तहि जिण सामिय बलहो चिंघइं दिट्ठहिं त म।

सुर विंद नवियस्स, सिरि जिण वरिंदस्स।
तहु सिन्नु संचलइ, तइलोउ खलभलइ।
गिरि राउ टलटलइ, जलरासि झल झलइ।
फणि राउ लवलवइ, सुरराउ चलवलइ।
घरणियलु खलभलइ, जयजीव जण लवइ।
दर भड सहायस्स, तह मयण रायस्स।
निय बल सउन्नाइं, चलियाइं सिन्नाइं।
धावंत भर भडइं, फरहरिय धयवडइं।
चल वलिय हय घडइं, गुडुगुलिय गय घडइं।
भवणयल पूराइं, पडु पडह तूराइं।
वर वीर धीराइं, पुलइय सरीराइं। २.८

नागदेव ने अपनी मदन पराजय नामक कृति की रचना इसी ग्रथ के आधार पर की।

मयण जुज्झ

कवि बुच्चराय कृत मयण जुज्झ नामक एक रूपकात्मक कृति का निर्देश प्रो० राजकुमार जैन ने मदन पराजय की प्रस्तावना (वही पृ० ५०) में किया है। इसकी रचना कवि ने वि० स० १५८९ में की।

कृति में भगवान् पुरुदेव द्वारा किये गये मदन पराजय का सुन्दरता से वर्णन किया गया है।

कवि आरम्भ में ही उपदेश देता है—

रिसह जिणवर पढम तित्थयर,
जिण धम्मउ धरण, जुगल धम्म सव्वइ निवारण,
नाभिराय कुलि कवल, सव्वाणि संसार तारण।
जो सुर इंदह वंदीयउ, सदाचलण सिर धारि।
कहि किउ रतिपति जित्तियउ, ते गुण कहउं विचारि॥

इस प्रकार रूपक-काव्य शैली की परम्परा सस्कृत और अपभ्रंश के अनन्तर हिन्दी में भी प्रवाहित होती रही। सूफियो के प्रबन्ध काव्य इसी परम्परा के अन्तर्गत है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने भारतदुर्दशा और भारतजननी नामक नाटको में इसी शैली का अनुसरण किया। आधुनिक युग में जयशकर प्रसाद के कामायनी नामक काव्य में इसी परम्परागत शैली की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

तेरहवाँ अध्याय

अपभ्रंश कथा-साहित्य

ऊपर से अध्ययन से अपभ्रश साहित्य के अनेक विषयो का ज्ञान प्राप्त होता है, अब कथा साहित्य के विषय मे विचार किया जाता है।

वाङ्मय के विकास मे जैनाचार्यों का प्रशसनीय योग रहा है। उन्होने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, कन्नड, गुजराती, हिन्दी इत्यादि अनेक भाषाओ मे लिखा। साहित्य के अगो मे दार्शनिक और धार्मिक विषयो के अतिरिक्त व्याकरण, कोष, अलकार शास्त्र, अक गणित, फलित ज्योतिष, गणित ज्योतिष, राजनीति शास्त्र आदि वाङ्मय की शाखाओ को सपन्न किया।[1]

जैनियो के साहित्य का मुख्य उद्देश्य जन-साधारण के हृदय तक पहुँचना था। एतदर्थ उन्होने अपने सभी ग्रन्थो को अनेक प्रकार की कथाओं से सरस और मनोरजक बनाने का प्रयत्न किया। अपभ्रश कवियों के महापुराणो मे वर्णित अनेक महापुरुषो के जीवन वृत्तान्तो के साथ साथ अनेक कथाओ और अवान्तर कथाओ का सहयोग हम ऊपर देख चुके हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय के पुराण साहित्य के समान श्वेताम्बर संप्रदाय मे अनेक चरित-ग्रन्थ लिखे गये। इनमे अनेक महापुरुषो या धार्मिकपुरुषो का वर्णन न होकर किसी एक ही महापुरुष या तीर्थंकर का वर्णन किया गया है। ये चरित-ग्रन्थ भी अनेक पूर्व जन्म की कथाओ और अन्य सरस एव उपदेश-प्रद कथाओ से ओतप्रोत हैं।

उपरिनिर्दिष्ट पुराण और चरित ग्रन्थो की शैली के कतिपय कथा-ग्रन्थो से भिन्न इस प्रकार के भी कथा-ग्रन्थो का एक वर्ग मिलता है जो संस्कृत साहित्य के वासवदत्ता, दशकुमार चरितादि लौकिक कथा-ग्रन्थो के ढग पर रचा गया। इस प्रकार के कथा-ग्रन्थो मे किसी लोकप्रसिद्ध पुरुष या स्त्री की किसी जीवन घटना को केन्द्र बनाकर उसका काव्यमय भाषा मे शृगारादि रसो से युक्त, वर्णन किया गया है। कथा-प्रवाह में वीर शृगारादि रसो से पाठकों का आस्वादन होता है। अन्त मे पात्र वैराग्यप्रधान हो जाते हैं। कथा-प्रवाह के विस्तार के लिये नायक नायिका के अतिरिक्त उपनायक उपनायिका की कथा भी किसी किसी ग्रन्थ में जोड दी गई है। कथा प्रवाह में पात्रो के पूर्वजन्म के कर्मों का निर्देश कर उनके कर्म फल के अनुसार अन्त में सद्गति या दुर्गति का चित्रण कर कथा समाप्त होती है।

कथा साहित्य के कुछ ग्रन्थो मे तो एक ही कथा का विस्तार दिखाई देता है, कुछ

---

१. मौरिस विंटरनित्स, ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५९५

मे मुख्य कथा के साथ पात्रो के पूर्वजन्म की कथाये और अवान्तर कथाये भी मिलती जाती है। सब कथाये मिलकर पूर्णता को प्राप्त होती है। कुछ कथा-ग्रन्थ ऐसे भी मिलते हैं जिनमें भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र कथाओ द्वारा धार्मिक उपदेश भावना या श्रावक एव गृहस्थ के किसी सद्धर्म का व्याख्यान किया गया है।

कथा-साहित्य जैन साहित्य का विशेष अग रहा है। जैन कथाकारो का एक मात्र लक्ष्य सद्भाव, सद्धर्म और सन्मार्ग प्रेरक सत्कर्म का जनसमुदाय मे प्रचार कर उसके नैतिक और सदाचारमय जीवन के स्तर को ऊँचा करना था। इस उच्चता द्वारा व्यक्ति लौकिक और पारमार्थिक सुख का भोक्ता बनता है। इन कथाकारो ने व्यक्ति के जीवन-विकास के लिये सद्धर्म और सन्मार्ग के जिन प्रकारो का उल्लेख किया है वे सर्व साधारण के लिये है। कोई व्यक्ति, किसी धर्म का मानने वाला, किसी विचारधारा का, किसी देश और किसी जाति का हो, आस्तिक हो या नास्तिक, धनी हो या दरिद्र, सबके लिये यह मार्ग लाभप्रद और कल्याण कारी सिद्ध होता है। मानव के नैतिक-स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से इन कथाग्रन्थो का अधिक महत्व है।

इन कथाग्रन्थो मे अनेक प्रकार के पात्रो का, उनके आचार व्यवहार का, उनकी विचार परपरा का और उनके बहुमुखी जीवन का चित्र होने से तत्कालीन समाज एवं तत्कालीन सस्कृति का आभास मिल सकता है और तत्कालीन समाज के इतिहास की रूपरेखा पर यत्किचित् प्रकाश भी पड सकता है। इस दृष्टि से इस कथा-साहित्य का सास्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व भी है।

कथा—कहानी का मानव जीवन मे अत्यधिक महत्व है। कथा साहित्य चिरकाल से चला आ रहा है। वाड्मय के प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप मे साहित्य का यह अग भी दिखाई देता है।

भारतीय कथा-साहित्य में जैन कथा-ग्रन्थो का स्थान बड़ा ही महत्वशाली है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, कन्नड, तामिल आदि प्रधान भारतीय भाषाओ मे जैन कथा साहित्य बिखरा पडा है। कई कई कथाये तो इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि उनमें से प्रत्येक कथा पर एक ही भाषा मे पचास-पचास जैन विद्वानो ने रचना कर डाली। परिमाण की दृष्टि से कई कथाये अति विस्तृत है कई लघुकाय। विषय की दृष्टि से यद्यपि जैन लेखको का प्रधान लक्ष्य धार्मिक उपदेश रहा तथापि बुद्धिवर्धक, हास्य विनोद युक्त, कौतूहल मिश्रित, ऐतिहासिक आदि विविध प्रकार की कथाएँ भी उपलब्ध होती है। कथा साहित्य के कई सग्रह ग्रन्थो में १०० से २०० और ३६० तक कथाएँ संगृहीत हैं। लोक भाषा मे रचित रास, चौपाई सज्ञक कई कथा ग्रन्थ जैन भण्डारो में सचित्र मिलते है जिनका कलात्मक मूल्य भी है। कई कथा ग्रन्थ अतीव सरस और महाकाव्य सदृश है।

जैनागमो मे वाड्मय के चार भाग किये गये है —प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। प्रथम मे सदाचारी स्त्री पुरुषो का जीवन अकित है। किस धार्मिक विधान को किस व्यक्ति ने किस प्रकार आचरित किया, अनेक विघ्न

बाधाये उपस्थित होने पर भी किस प्रकार उसने सदाचार की प्रतिज्ञा को निबाहा और परिणामत उसे कौनसा फल मिला, इसका चित्रण प्रथमानुयोग में किया गया है।

जनसाधारण, जो अधिकाश उच्च शिक्षा से रहित होता है, प्रथम अनुयोग को ही महत्वशाली मानता है। जैन साहित्य मे धर्म चर्चा को ही धर्म कथा और इतर कथाओ को विकथा कहा गया है। जैन विद्वानो ने लोकरुचि की ओर अधिक ध्यान दिया और समय-समय पर जन-साधारण मे प्रचलित प्रसिद्ध कथानको पर भी पर्याप्त ग्रन्थ लिखे।

व्रतकथाओ एव धार्मिक अनुष्ठानो—दान, पूजा, शील इत्यादि के माहात्म्य प्रदर्शन में भी सैकडो कथाये लिखी गईं।[1]

अपभ्रंश में कथा-ग्रन्थो की परपरा संस्कृत और प्राकृत से चली आ रही है। जैन साहित्य में सिद्धर्षि कृत उपमिति भव प्रपच कथा (ई० ९०६), धन पाल कृत तिलक मंजरी आदि ग्रन्थ सस्कृत मे लिखे गये। पादलिप्त सूरि की तरग वती–तरग लोला–, संघदास गणी की वसुदेव हिण्डी (छठी शताब्दी से पूर्व), हरिभद्र (८वीं शताब्दी सेपू र्व) की समराइच्च कहा, उद्योतन सूरि की कुवलयमाला कथा (वि० स० ८३६), विजय सूरि की भुवन सुन्दरी कथा, महेश्वर सूरि की ज्ञान पंचमी कथा, जिनेश्वर सूरी का कथा कोश प्रकरणआदि अनेक ग्रन्थ प्राकृत मे लिखे गये।[2]

इससे पूर्व के अध्यायो में अपभ्रंश के भविसयत्त कहा, पज्जुण्ह कहा, पउम सिरि चरिउ आदि अनेक कथाओ का वर्णन अपभ्रंश महाकाव्यो और खड काव्यो के अन्तर्गत किया जा चुका है। उनमे कथाश के साथ काव्यत्व की मात्रा भी पर्याप्त परिमाण में थी। इस अध्याय में कुछ ऐसे प्रमुख कथाग्रन्थो का निर्देश किया जायगा जिन में लेखक का उद्देश्य भिन्न-भिन्न कथाओ द्वारा किसी धार्मिक या उपदेशात्मक भावना का प्रचार करना रहा है। इनमे अनेक छोटी छोटी कथाओ का सग्रह है और उनमें काव्यत्व की अपेक्षा कथात्मक उपदेश वृत्ति अधिक स्पष्ट है। कथा द्वारा रोचकता उत्पन्न कर लेखक अपने मत की स्थापना करना चाहता है।

जैन कवियों की एक विशेषता रही है कि उन्होने लौकिक पात्रो को भी जैन धर्म का बाना पहिना दिया है। उनका रूप अपनी भावना के साचे में ढाल लिया है। अनेक शृंगारिक आख्यानो को भी उपदेशप्रद बनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकरण में अपभ्रंश के प्रमुख कथा ग्रन्थो का विवरण दिया जाता है।

धम्म परिक्खा (धर्म परीक्षा)

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। आमेर शास्त्र भण्डार में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ

---

१. अगरचन्द नाहटा, जैन कथा साहित्य, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १२, किरण १।

२. जैन कथा साहित्य के संस्कृत प्राकृत-ग्रंथों के लिए देखिए विन्टर नित्स—ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५०९ और आगे।

वर्तमान है। (प्र० स० पृष्ठ १०८–११०)

हरिषेण ने ग्यारह सन्धियो मे इस ग्रन्थ की रचना की है। सन्धियो मे कडवकों की कोई निश्चित सख्या नहीं। कम से कम १७ कडवको की १० वी और अधिक से अधिक २७ कडवको की ११ वी सन्धि है। प्रत्येक सन्धि के अन्तिम घत्ता में किसी न किसी रूप मे ग्रन्थकार ने अपने नामका प्रयोगकिया है। सन्धि की पुष्पिकाओ मे भी लेखक का नाम मिलता है।[1]

लेखक के पिता का नाम गोवर्धन था। गोवर्धन मेवाड के सिरि उजपुर में धक्कड वश में उत्पन्न हुआ था। हरिषेण चित्तौड मे रहता था। कभी निज कार्य वश वहा से अचलपुर गया और वही उसने इस ग्रन्थ की रचना की।[2] लेखक के गुरु का नाम सिद्धसेन था। कृति की रचना लेखक ने वि० स० १०४४ मे की थी।[3]

ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने जिन स्तुति और गुरु वन्दना से किया है। आत्म नम्रता के साथ कवि अनेक प्राचीन कवियो का स्मरण करता है। कवि अल्पज्ञ होते हुए भी काव्य रचना में प्रवृत्त होता है और उसे विश्वास है कि श्री जिनेन्द्र धर्मानुराग के कारण एव अपने गुरु श्री सिद्धसेन के प्रसाद द्वारा नलिनी दल के शोभन सहवास से मौक्तिक कान्ति को प्राप्त करने वाले जल बिन्दु के सदृश, यह काव्य भी उन के सपर्क से छविमान होगा। इसी प्रसंग मे कवि ने अपने से पूर्व जयराम की गाथा छन्दों मे विरचित प्राकृत भाषा की धर्म-परीक्षा का निर्देश किया है। जिस से यह प्रतीत होता है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना जयराम कृत धम्म परिक्खा के आधार पर की थी। जयराम की यह कृति अभी तक उपलब्ध नही हो सकी।[4]

---

१. इय धम्म (परि) परिक्खाए चउवग्गाहि ट्ठियाए चित्ताए,
बुह हरिसेण कयाए एयारसमो संधी परिच्छेउ समत्तो।

२. इय मेवाड़ देसे जण संकुले, सिरि उजपुर णिग्गय धक्कड कुले।
गोवद्धणु नामें उप्पत्तउं जो सम्मत्त रयण संपुत्तउं।
तहो गोवद्धणासु पिय घणवइ, जा जिणवर मुणिवर पिय गुणवइ।
ताइं जणिउं हरिसेणु णामे सुउ, जो संजाउ विवुह कइ विस्सुउ।
सिरि चित्तउडु चएवि अचलउरहो, गउ णिय कज्जें जिणहर पउरहो
तहि छंदालंकार पसाहिय, धम्मपरिक्ख एह तें साहिय। ११.२६

३. दो भिन्न भिन्न प्रतियों में ये उद्धरण मिलते हैं—
"विक्कम णिव परि वत्तिय कालए, गयए वरसि सहसेहि भवालए।"
"विक्कम णिव परिय कालइ, अव गय वरिस सइस चउतालए।"
ध० प० ११.२७

४. ॐ नमः सिद्धेभ्य.।।

प्राकृत और संस्कृत में भी अनेक लेखको ने 'धर्म परीक्षा' लिखी है ।[१]

हरिषेण ने अपनी धम्मपरिक्खा अमित गति की धर्म परीक्षा (सस्कृत) से २६ वर्ष पूर्व लिखी। दोनो मे पर्याप्त समानता है । अनेक कथाये, पद्य और वाक्य दोनो में समान रूप से मिलते ह। किन्तु फिर भी जब तक हरिषेण द्वारा निर्दिष्ट जयराम की धर्म-परीक्षा की जाँच न हो, इस परिणाम पर नही पहुँच सकते कि किसने किसको प्रभावित किया। संभवत दोनो का स्रोत जयराम की धर्म-परीक्षा हो।[२]

धम्म परिक्खा मे कवि ने ब्राह्मण धर्म पर व्यग्य किया है। उस धर्म के अनेक पौराणिक आख्यानो और घटनाओ को असगत बताते हुए, जैन धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

प्राकृत मे हरिभद्र सूरि (८ वी शताब्दी) रचित धूर्त्ताख्यान,[३] विषय की दृष्टि

सिद्धि पुरंधिहि कंतु, सुद्धें तणुमय वयणें।
भत्तिए जिणु पणवेवि, चिंतिउ बुह हरिसेणें ॥
मणुय जम्मि बुद्धिए किं किज्जइ, मणहर जाइ कव्वु ण रइज्जइ।
तं करंत अवियाणिय आरिस, हासु लहहि भड रणि गय पोरिस।
चउमुह कव्वु विरयणि सयंभुवि, पुप्फयंतु अण्णाणु णिसंभिवि।
तिण्णि वि जोग्ग जेण तं सीसइ, चउमुह मुह थिय ताव सरासइ।
जो सयंभु सो देउ पहाणउं, अह कह लोयालोय वियाणउं।
पुप्फयंतु णउ माणुसु वुच्चइ, जो सरसइए कया वि ण मुच्चइ।
ते एवंविह हउ जड माणउ, तह छंदालंकार विहीणउ।
कव्वु करंतु के मण बि लज्जमि, तह बि सेस पिय जण किं हरंजमि।
तो वि जिणिंद धम्म अणुरायइ, वुह सिरि सिद्धसेण सुपसाइं।
करमि सयं जिह णलिणि दलथिउ जलु, अणुहरेइ णित्तुलु मुत्ताहलु।

घत्ता—

जा जयरामें आसि विरइय गाह पबंधि।
सा हम्मि धम्म परिक्ख सा पद्धडिय बंधि ॥ ध० प० १-१

१. जिन रत्न कोश, भाग १, संपादक प्रो० हरि दामोदर वेलणकर, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना, १९४४ ई०, पृ० १८९।

२. डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, हरिषेण की धम्म परिक्खा, एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, भाग २३, पृ० ५९२-६०८।

३. धूर्त्ताख्यान, संपादक प्रो० आ० ने० उपाध्याय, बबई, १९४५ ई०।
धूर्ताख्यान की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—चार धूर्त्त पुरुष और एक धूर्त स्त्री अपने-अपने जीवन के असंगत, असंभव तथा असंबद्ध अनुभवों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं। अपने जीवन की अविश्वसनीय घटनाओ की रामायण, महाभारतादि में वर्णित अनेक कपोल-कल्पित मिथ्या घटनाओं से पुष्टि करते हैं।

से हरिषेण की तथा अन्य कवियो की 'धर्म परीक्षा' का आदि रूप कहा जा सकता है। दोनो में भेद इतना ही है कि धम्मपरिक्खा के रचयिता ने तीव्रता से पुराणो की निन्दा कर के जैन धर्म को थोपने का प्रयत्न किया है किन्तु धूर्ताख्यान मे पुराणो पर केवल हलका सा व्यग्य किया है, उसमे प्रचडता और कटुता नही।

ग्रन्थ का कथानक इस प्रकार है—

कवि मगलाचरण के पश्चात् अनेक प्राचीन कवियो का उल्लेख करते हुए आत्म विनय प्रदर्शित करता है। तदनन्तर जबू द्वीपान्तर्गत भरतक्षेत्र का काव्यमय भाषा मे वर्णन किया गया है। उसी क्षेत्र के अन्तर्गत मध्य प्रदेश मे वैताढ्य पर्वत का वर्णन करता हुआ कवि वैजयन्ती नगरी का सौन्दर्य प्रस्तुत करता है। वैजयन्ती नगरी के राजा की रानी का नाम वाउवेय (वायुवेगा) था। उनके मनवेग नामक एक अत्यन्त धार्मिक पुत्र था। उसका मित्र पवनवेग भी धर्मात्मा और ब्राह्मणानुमोदित पौराणिक धर्म मे आस्था रखने वाला था। इसी सन्धि मे कवि ने अवन्ती देश और ब्राह्मणो के देश पाटलिपुत्र का वर्णन किया है। मनवेग विद्वान् ब्राह्मणो की सभा मे कुसुमपुर गया। पवनवेग भी उसके साथ था। तीसरी सन्धि में अंग देश के राजा शेखर का कथानक देकर कवि अनेक पौराणिक उपाख्यानो का वर्णन करता है। चौथी सन्धि मे अवतारवाद पर व्यंग्य किया गया है। विष्णु दस जन्म लेते है और फिर भी कहा जाता है कि वह अजन्मा है। इस प्रकार परस्पर विरोधी बातें कैसे सभव हो सकती है? स्थान-स्थान पर कवि ने 'तथा चोक्त तैरेव' 'तद्यथा' इत्यादि शब्दो द्वारा सस्कृत के अनेक पद्य भी उद्धृत किये है। इसी प्रसग में शिव के जाह्नवी और पार्वती प्रेम एव गोपी कृष्ण-लीला पर भी व्यंग्य किया है।

तद्यथा—

का त्वं सुन्दरि जाह्नवी किमिह ते भर्त्ता हरो नन्वयं
अंभस्त्वं किल वेत्सि मन्मथ रसं जानात्ययं ते पतिः।
स्वामिन् सत्य मिदं न हि प्रियतमे सत्यं कुतः कामिनां
इत्येवं हर जाह्नवी गिरि सुता संजल्पनं पातु वः॥

तद्यथा— ४.१०

अंगुल्या कः कपाटं प्रहरति कुटिले माधवः किं वसंतो
नो चक्री किं कुलालो न हि धरणिधरः किं द्विजिह्वः फणीन्द्रः।
नाहं घोराहि मर्द्दी किमसि खगपति र्नो हरिः किं कपीशः
इत्येवं गोपवध्वा प्रहसितवदनः पातु वश्चक्रपाणिः॥ ४.१२

पाँचवी सन्धि में ब्राह्मण धर्म की अनेक अविश्वसनीय और असत्य बातों की ओर निर्देश कर मनवेग ब्राह्मणो को निरुत्तर करता है। इसी प्रसग में वह कहता ह कि राम

इस प्रकार व्यंग्य रूप से हरिभद्र ने ब्राह्मणो के पुराणादि को असत्य प्रतिपादित किया है।

जो सृष्टि, प्रलय आदि के भी ज्ञाता है, अपनी नारी के हरण को कैसे न जान पाये ? और उसके विषय मे वन वन पूछते फिरे। इसके पश्चात् सातवी सन्धि मे गान्धारी के सौ पुत्रो की उत्पत्ति और पाराशर का धीवर कन्या से विवाह वर्णित किया गया है। आठवी सन्धि मे कुती से कर्ण की उत्पत्ति और रामायण की कथा पर व्यग्य किया गया है। नवी सन्धि मे मनवेग अपने मित्र पवन के सामने ब्राह्मणो से कहता है कि एक बार मेरे सिर ने धड से अलग होकर वृक्ष पर चढकर फल खाये। अपनी बात की पुष्टि के लिए वह रावण और जरासध का उदाहरण देता है। इसी प्रसग मे मनवेग श्राद्ध की असत्यता का प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि यह कैसे सभव है कि इस लोक में ब्राह्मण भोजन करें तो परलोक मे नाना योनियो मे जाकर शरीर धारण करने वाले मृत और दूरंगत पितर, उसे प्राप्त कर ले ? इस प्रकार नाना कपोल कल्पनाओ को मिथ्या बतला कर केवल धार्मिक भावनाओ की निम्नलिखित सस्कृत पद्य से पुष्टि की गई है—

प्राणापातान्निवृत्तिः परधन हरणे संयमः सत्य वाक्यं
लोके शक्त्या प्रदानं युवति जन कथा मूक भावः परेषां।
तृष्णा स्रोतो विभंगो गुरुषु च विनतिः सर्वं सत्वानकंपा
सामान्यं सर्वं मपेष्वनुपहृत मति श्रेयसामेष पन्थाः॥

९.२४

दसवी सन्धि मे भी गोमेध, अश्वमेधादि यज्ञो और नियोगादि पर व्यग्य किया है। इस प्रकार मनवेग अनेक पौराणिक कथाओं का निर्देश कर और उन्हे मिथ्या प्रतिपादित कर ब्राह्मणो को परास्त करता है। पवनवेग भी मनवेग की युक्तियो से प्रभावित होता है। उसका विश्वास ब्राह्मण धर्म से उठ जाता है और वह जैनधर्म मे दीक्षित हो जाता है। जैनधर्मानुकूल उपदेशो और आचरणो के निर्देश के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है।

यह काव्य ब्राह्मण धर्म पर व्यग्य करने के हेतु ही रचा गया जान पडता है। स्थान स्थान पर इस धर्म के आख्यानो पर गहरे व्यग्य किये गये है और परिणामस्वरूप जैनधर्म के प्रति रुचि जागृत की गई है। कृति मे धार्मिक तत्व की प्रधानता होने के कारण कवित्व अधिक प्रस्फुटित नही हो सका। कवित्व की दृष्टि से पहली और ग्यारहवी सन्धियाँ उल्लेखनीय है।

कवि की कविता का उदाहरण निम्नलिखित उद्धरणों में देखा जा सकता है। कवि वैजयन्ती नगरी का वर्णन निम्नलिखित शब्दो में करता है—

तहिं पंचासह मज्झि सुरिद्धी, णयरी वइजयंति सुपसिद्धी।
कामिणि व्व जा णयण पियारी, जहिं दीसइ तहिं सुहय जणेरी।
जा सुरतरु व वणेण विसालें, अइरेहइ णेत्तेण व णीलें।
परिहइ सारस हंस रवालए, मेहलाइ णं किंकिणि मुहलए।
सिय पायार भित्ति कंचुलियए, पंच वण्ण धयमाल घुलियए।
उप्परियण सोहइ सोहंती, कणय कलस उरोज दरिसंती।
गोउरेण(हि) णं रुंदें वयणें, हसइ व तोरण मोत्तिय रयणें।

भवण रयण णयणेहिं णिहालइ, अहिणव तरु पल्लव कर चालइ।
मंदिर सिहर थक्क सिहि जूहें, सोहइ देइ णं केस समूहें।
संचरंत माणिणि पब्भारें, चल्लइ णं णेउर झंकारें।
अइ सोहा हुय(व) किह वणिज्जइ, जाहि सुराहिव णयरि ण पुज्जइ।
घत्ता—महि हर पीय उच्छंगे पउर भोय गुणवंती।
वसइ तरट्ठिव कंत्ति रयण दित्ति दीवंती॥ १.४

इस उद्धरण में कवि ने वैजयन्ती नगरी को एक सुन्दर नारी के समान मनोहारिणी बतलाया है। यद्यपि कवि ने इस नगरी को सुराधिप की नगरी से भी बढकर बताया है किन्तु नगरी की वह सुन्दरता और समृद्धि शब्दो मे अभिव्यक्त नहीं हो सकी है।

कवि वाउवेय रानी का वर्णन करता हुआ कहता है—

तहो वाउवेय णामेण घरिणि, पइवय णावइ परलोय कुहिणि।
णारी सुह लक्खण लक्खियंगि, मुहणयणहिं जियच्छण ससि कुरंगि।
तहि अहिणव जोव्वणु सवणु णाइ, अरुणच्छवि णह अंकुरिउ लाइ।
(तहि जोव्वणु जणि णं बहु विहाइ, अरुण छवि णं अंकुरिउ भाइ)
अइ रत्त पाणि पल्लव चलंतु, विल्लहल बाहु वल्ली ललंतु।
कोमल जंघा रंभा सहंतु, सिय असिय णयण कुसुमइ वहंतु।
पिहु पीण पउहर फलणवंतु, अलयावलि अलिउल सोह देंतु।
रत्ताहर बिंबीहल फुरंतु, असच्छाउ (सज्जाउ) सविज्झमु तिलयवंतु।
चंदण कप्पूरहिं महमहंतु, खयर वर विसय वर (सुहु) दिहि जणंतु।
१.६

नारी के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने परंपरागत उपमानो का प्रयोग किया है। कवि की दृष्टि केवल बाह्य सौन्दर्य तक ही पहुँच पाई है।

कवि का मेवाड देश-वर्णन देखिये—

जो सिहरि सिहिण केक्कारइल्लु, सरि तडि रहट्ट जव सेयगिल्लु।
तरु कुसुमगंध वासिय दियंत, णीसेस सास सपुंण्ण च्छित्त।
चूय वण कोइलाराव रम्मु, वर सर सारस वय जणिय पेम्मु।
भिस किसलय पासायण तुट्ठ हंस, मयरंद मत्त अलिउल णिघोस।
करवंद जाल किडि विहियतोसु, वण तरु हल सउणिगण पोसु।
कय सास चरणु गो महिसि महिसु, उच्छ वण पद रिसियरस विसेसु।
तप्पाणाणंदिय दीण वेंदु, थल णलिणि सयण गय पहिय तंदु।
वर सालि सुगंधिय गंधवाहु, तक्खणि सकण ट्ठविय सुय समूहु।
णियडत्थ गाम मडिय पएसु, जणवय परिपूरिय जाम कोसु।
रिउ जोग्ग सोक्ख रंजिय जणोहु, गय चोर मारि भय लद्ध सोहु।
घत्ता—जो उज्जाणहिं सोहइ खेयर मोहइ वल्ली हरहिं विसालहिं।
मणि कंचण कय पुण्णहिं वण्ण रवण्णहिं पुरहिं स गोउर सालहिं॥ ११.१.

लेखक ने सरल और सरस भाषा मे अपने भावो को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया हैं। भाषा मे अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग भी कवि ने किया है। जैसे—

. . .   . .   .   घव घव घवंत बहु घग्घराइं।
गाइय सरिगमपधणी सराइं, मणिमय कणत किंकिणि सराइं।
फुल्ल हर भमिर महुयर उलाइं, टण टण टणंत घंटाउलाइं॥

११.२५.

कवि ने भाषा को अलकृत करने के लिये यथास्थान अलंकारो का भी प्रयोग किया है। ऊपर दिये गये उद्धरणो मे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के उदाहरण मिलते है। विरोधाभास का उदाहरण निम्नलिखित उद्धरण मे देखा जा सकता है। कवि वैजयन्ती नगरी के राजा के विषय मे कहता है—

. . . .   असिरीहरो वि लच्छी सणाहु।
अपुरंदरो वि विवुहयणह इट्ठु, ...।
अकुमारु वि जो सत्ती पयासु, बंधव परियण परिपूरियासु।
अदिसागउ वि अणवरय दाणु, अदिणेसु वि उग्गपयावथाणु॥

१.५

इसी प्रकार निम्नलिखित मुनि-वर्णन मे भी विरोधाभास अलकार दिखाई देता है—

समलु वि णिम्मलयउ, ...
आसावसणु वि आसा रहिउ, मुक्काहरणु वि तिरयण सहियउ।
णिग्गंथ वि वहुगंथ परिग्गहु, ...
. . . .   वहु सीसु वि ण वुत्तु लंकाहिउ॥

३ १२

इस ग्रन्थ मे नाना छन्दो का प्रयोग किया गया है। "साहम्मि धम्म परिक्ख सा पद्धडिय बधि" द्वारा कवि ने स्पष्ट निर्देश किया है कि ग्रन्थ मे पद्धडिया छद की बहुलता है। इस छन्द के अतिरिक्त मदनावतार (१.१४), विलासिनी (१.१५), स्रग्विणी (१ १७), पादाकुलक (१.१९), भुजग प्रयात (२.६, ३ ८), प्रमाणिका (३.२), रणक या रजक (३.११), मत्ता (३.२१), विद्युन्माला (९ ९), दोधक (१० ३) आदि छन्दो का भी प्रयोग किया गया है। छन्दो मे वर्णवृत्त और मात्रिक वृत्त दोनो मिलते हैं, यद्यपि अधिकता मात्रिक वृत्तो की ही हैं।

कथा कोष

श्रीचन्द्र कवि कृत ५३ सन्धियों का अप्रकाशित ग्रन्थ है। प्रत्येक सन्धि के अन्तिम पद्य में कवि का नाम निर्दिष्ट है।[1] कवि, कुन्द कुन्दाचार्य की परंपरा में वीरचन्द्र

---

१. मुणि सिर चन्द पउत्ते कहकोसे एत्थ जम्मणाणंद इत्यादि।

का शिष्य था ।[1] जिस समय कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की उस समय अणहिल्ल पुर मे मूलराज नामक राजा राज्य करता था। चालुक्य वश मे इस नाम के दो राजा हुए हैं। एक ने ९४१ ई० से ९९६ ई० तक और दूसरे ने ११७६ ई० से ११७८ ई०तक राज्य किया ।[2] स्वरचित रत्न करण्ड शास्त्र की हस्तलिखित प्रति (प्रशस्ति सग्रह पृ० १६४) में प्राचीन कवियो का स्मरण करते हुए कवि ने चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रुतदेव, श्रीहर्ष का नाम भी लिया है और बताया है कि यह ग्रन्थ कवि ने श्रीपालपुर में राजा कर्ण के राज्यकाल में वि० स० ११२३ (१०६६ ई०)मे रचा।[3] अत कथा कोष की रचना भी इसी समय के आसपास हुई होगी।

कथा कोष मे ५३ सन्धियो मे कवि ने ५३ कथायें दी हैं। ये सब कथाये धार्मिक और उपदेशप्रद है। राजा श्रेणिक, मगध देश, पाटलिपुत्र और राजगृह से संबद्ध अनेक कथायें है। कथाओ मे पशु पक्षी भी पात्र रूप से प्रयुक्त हुए है। उदाहरण के लिये एक कथाश नीचे दिया जाता है—

मगहा मंडल पय-सुहयरम्मि, पयपालु राउ पायलि पुरम्मि।
तत्थेव एक्कु कोसिउ उयारि, निवसइ मायावि गोउर-दुवारि ॥१
स कयाइ रायहंसह समीवु, गउ विहरमाणु सुर सरिहे दीवु।
एक्केण तत्थ कय-सागएण, पुच्छिउ हंसे वयसागएण ॥२
भो मित्त, तं सि को कहसु एत्थु, आऊमि पएसहो कहो किमत्थु।
घयरट्ठहो वयणु सुणेवि घूउ, भासइ हउँ उत्तम कुल पसूउ ॥३
कय - सावाणुग्गह-विहि-पयासु, आयहो पहु पुहइ मंडलासु।
वसवत्ति सव्व सामंत-राय, महुं वयणु करंति कयाणु राय ॥४
कीलाइ भमंतउ महिंपसत्थ, तुम्हइं निएवि आऊमि एत्थ।
इय वयणहिं परिऊसिउ मरालु, विणएण पयंपि उमह किसालु[4] ॥५

अर्थात् मगध देश के सुखकर एवं सुन्दर पाटलिपुत्र नगर मे प्रतिपाल नामक एक राजा था। वही एक उजडे गोपुर द्वार में एक मायावी उल्लू रहता था। वह एक बार विहार करता हुआ सुरसरि द्वीप मे राजहसो के पास गया। वहा एक वयोवृद्ध हंस ने उसका स्वागत किया और पूछा—हे मित्र, तुम कौन हो ? कहा से आये हो ?

---

१. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी जर्नल, भाग १, पृष्ठ १७१ ।

२. कैटेलोग आफ संस्कृत एंड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि सी. पी. ऐंड बरार, भूमिका पृ० ५० ।

३. "एयारह तेवीसा वरसण (वासमया) विक्कमस्स णरवइणो।
जइय गयाहु तइया समणियं संदरं एयं ॥
कण्ण णरिंदहो रज्जिसुहिं सिरि सिरिवाल पुरम्मि ।
वुह सिरिचंदे एउ किउ णंदउ कव्वु जयम्मि ॥

४. कामता प्रसाद जैन, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ५३ ।

किस लिये आये हो ? हस के वचन सुन उल्लू बोला—मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मुझ पर सब का अनुग्रह है। मैं राजा के पास से आया हूँ। सब सामत मेरे वशवर्ती है और वे मेरे प्रति प्रेम से मेरा ही कहा करते है। क्रीडा से भ्रमण करता हुआ, राजाओ के साथ, मैं भी यहा तुम्हारे पास आ गया। इन वचनो को सुन हस प्रसन्न हुआ और वह उसके पैरो में गिर पडा। अनन्तर उल्लू ने अपना मायावी रूप प्रकट किया।

इन सब कथाओ का उद्देश्य मनुष्य हृदय में निर्वेद भाव जागृत कराना है। इस का आभास ग्रन्थारम्भ में ही मिल जाता है—

"पणवेप्पिणु जिणु सुविसुद्ध मई। चिंतइ मणि मुणि सिरिचंदु कई।
संसारु असारु सव्वु अथिरु। पिय पुत्त मित्तु माया तिमिरु।
संपय पुणु संपहे अणुहरइ। खणि दीसइ खणि पुणु ऊसरइ।
सु विणय समु पेम्मु विलासविही। देहुवि खणि भंगरु दुक्ख तिही।
जोव्वणु गिरि वाहिणि वेय गउ। लायण्णु वण्णु कर सलिल सउ।
जीविउ जल बब्बुय फेण णिहु। हरि जालु वरज्जु अवज्ज गिहु[1]।"

ग्रन्थ की भाषा में पदयोजना सस्कृत प्राकृत के ढग की है जैसे—"एक्केण कय सागएण हसे पुच्छिउ" (एकेन कृत स्वागतेन हसेन पृष्टम्)। ग्रन्थ में वशस्थ, समानिका, दुहडउ, मालिनी, पद्धडिया, अलिल्लह आदि छन्दो का प्रयोग किया गया।[2] इन छन्दो में सस्कृत के वर्णवृत्तो का भी कवि ने प्रयोग किया है किन्तु इनके प्रयोग मे भी कवि ने नवीनता उत्पन्न कर दी है। उदाहरण के लिये—

"विविह रस विसाले। णेय कोऊ हलाले।
ललिय वयण माले। अत्थ संदोह साले।
भुवण-विदिद-णामे। सव्व-दोसो वसामे।
इह खलु कह कोसे। सुन्दरे दिण्ण तोसे।।"

यह सस्कृत का मालिनी छन्द है। इसमे प्रत्येक पक्ति में ८ और ७ अक्षरों के बाद यति के क्रम से १५ अक्षर होते है। कवि ने प्रत्येक पक्ति को दो भागो में विभक्त कर यति के स्थान पर और पक्ति की समाप्ति पर अन्त्यानुप्रास (तुक) का प्रयोग कर के छन्द को एक नवीन रूप दे डाला।

रत्न करण्ड शास्त्र

यह ग्रन्थ भी अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार में विद्यमान हैं (प्र० स० पृ० १६४–१६७)। यह भी श्रीचन्द्र कवि का २१ सन्धियो मे लिखा हुआ ग्रन्थ है और कथा कोष के समान अनेक उपदेश प्रद धार्मिक और नैतिक

---

१. कैटेलाग आफ संस्कृत एंड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि सी. पी. एंड बरार, पृ० ७२५।

२. वही, भूमिका पृ० ५०।

कथाओ से युक्त हैं। यह स्वामी सामन्तभद्र की सुप्रसिद्ध कृति 'रत्न करण्ड' का विस्तृत व्याख्यान है। यह एक आचार ग्रन्थ है। ग्रन्थ में उदाहरण स्वरूप प्रसंग प्राप्त व्रतोपासक व्यक्तियो के कथानक दिये गये है।

मगलाचरण मे ग्रन्थ का आरम्भ कर कृतिकार २४ तीर्थंकरो का स्तवन करता है। अपने से पूर्व के अनेक प्रसिद्ध कवियो का स्मरण कर स्वयं ग्रथ लेखन का कारण निम्नलिखित शब्दो में प्रकट करता है—

चउमुहु चउमुहु व पसिद्धु भाइ, कइराउ सयंभु सयंभु नाइं।
तह पुप्फयंतु निम्मुक्क दोसु, वणिज्जइ किं सुअए वि कोसु।
सिरि हरस कालियास इ सार, अवरवि को गणइं कइत्तकार।

१.२

इन प्रसिद्ध कवियों के होते हुए भी कवि स्वय काव्य में प्रवृत्त क्यो हुआ—

तहवि जिणिद पय भत्तियाए, लइ करमि किंपि निय सत्तियाए।
जइ करइ समुग्गमु तमविवक्खु, तो किण्ण उयउ गयणम्मि रिक्खु।
जइ वियसइ सुर पिउ पारियाउ, ता इयरु म फुल्लउ भूमिजाउ।

१.२

कवि परम्परा के अनुसार कृतिकार ने सज्जन दुर्जन-स्मरण (१.३) भी किया है। प्रत्येक सन्धि की पुप्पिका में कृतिकार ने अपने नाम का निर्देश किया है। इन पुष्पिकाओ से यह भी स्पष्ट प्रतीत होना है कि लेखक ने इस ग्रन्थ का निर्माण धार्मिक भावना से प्रवृत्त होकर ही किया था।[1]

ग्रन्थ में एक स्थल पर लेखक ने अनेक अपभ्रश छन्दो का उल्लेक किया है—

छंद णियारणाल आवलियहिं, चच्चरि रासय रासहिं ललियहिं।
वच्छु अवच्छू जाइ विसेसहिं, अडिल मडिल पद्धडिया अंसहिं।
दोहय उवदोहय अवभंसहिं, दुवई हेला गाहु वगाहहिं।
ध्रुवय खंडउवखंडय घत्तहिं, सम विसमद्ध समेहिं विचित्तहिं।

१२.३

कृतिकार ने स्वयं भी आरणाल, दुवई, जभिट्टिया उवखडय, गाथा, मदनावतार आदि छन्दो का प्रयोग किया है। प्रधानता पद्धडिया छन्द की ही है।

स्थान स्थान पर विषय स्पष्ट करने के लिए 'उक्तं च' 'तद्यथा' इत्यादि शब्दो द्वारा

१—**इय पंडिय सिरि चंद कए, पयडिय कोऊहल सए, सोहण भावपवत्तए, परिऊसिय वुह चित्तए, दंसण कहरयण करंडए, मिछत्त पऊहि तरंडए, कोहाइ कसाइ विहंडए, सत्यम्मि महागण संडए, देउ गुरु धम्मायरणो गुण दोस पयासणो, जीवाइ वर तव्व णिण्णय करणो णाम पठमो संधी परिछेऊ समत्तो ॥संधि१॥**

कुछ सस्कृत के प्राचीन पद्य भी लेखक ने उद्धृत किये है।[1]

स्थूलिभद्र कथा

यह सोमप्रभाचार्य कृत कुमार पाल प्रतिबोधान्तर्गत (पृ० ४४३-४६१) एक छोटी-सी कथा है। इस मे कवि ने ब्रह्मचर्य व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित किया है।

पाटलिपुत्र नगर मे नवम नन्द राजा राज्य करता था। उसका शकटार नामक मन्त्री था। मन्त्री के ज्येष्ठ पुत्र का नाम स्थूलिभद्र था। स्थूलिभद्र अतीव सुन्दर रूपवान् युवक था। एक बार वसन्त समय मे, जब सर्वत्र उल्लास छाया हुआ था, स्थूलिभद्र कोशा नामक वारवनिता के प्रासाद मे गया। गवाक्ष स्थित परम सुन्दरी कोशा को देख कर स्थूलिभद्र मुग्ध हो गया और उसे ऐसा प्रतीत हुआ—

"रयणालंकिय-सयल-तणु उज्जल-वेस-विसिठ्ठ।
नं सुर-रमणि विमाण-गय लोयण विसइ पविठ्ठ ॥७॥

मानो विमान-स्थित कोई सुर-रमणी उस की आँखो के आगे आई हो। उसके अग प्रत्यग की सुषुमा से स्थूलिभद्र का हृदय विचलित हो उठा—

निम्मल-मुत्तिय-हार मिसि रइय चउक्कि पहिट्ठु।
पढमु पविट्ठउ हियं तसु पच्छा भवणि पविठ्ठु ॥१३॥

उसके भवन मे प्रवेश करने से पूर्व ही वह उसके हृदय मे प्रवेश कर गया। इस प्रकार बारह वर्ष तक स्थूलिभद्र कोशा के साथ भोग-विलास मे लीन रहा।

शकटार की मृत्यु के बाद राजा को चिन्ता हुई कि मन्त्री किसे बनाया जाय। स्थूलिभद्र का आचरण ठीक न था। अत. उन्होने इसके छोटे भाई श्रीपक को मन्त्री का पद स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया। किन्तु बडे भाई के रहते, बिना उसकी अनुमति के उसने मन्त्रि-पद स्वीकार करने मे आपत्ति की। स्थूलिभद्र के पास राजा का सदेश पहुँचा तो उसने इस पर विचार करने का समय मागा। वह सहसा कोशा के रगभवन से बाहर निकल दूर एक उद्यान मे जाकर ध्यान मग्न हो गया। सासारिक भोग-विलास

---

१. उक्तं च।

अपुत्रस्य गति र्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्र मुखं दृष्ट्वा पश्चाद् भवति भिक्षुकः॥ २.१७
कृते प्रतिकृतिं कुर्यात् हिंसिते प्रति हिंसितं
तत्र दोषं न पश्यामि दुष्टे दुष्टं समाचरेत्॥ ८.१२

तद्यथा—

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिक्षे (ष्ये) निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद् दत्वा चानृणी भवेत्॥
एकाक्षर प्रदातारो (रं) यो गुरुं नैव मन्यते।
श्वान योनि शतं गत्वा चांडालेष्वपि जायते॥ इत्यादि १५.१५

से सहसा विरक्त हो गया। मन्त्रि पद का विचार छोड़कर सन्यास-ग्रहण का संकल्प किया। आचार्य संभूति विजय से जैन-धर्म में दीक्षा लेकर कठोर तपस्या मे लीन हो गया।

कालान्तर मे स्थूलिभद्र फिर चातुर्मास्य में कोशा के घर आया। कोशा का सुन्दर मुख, उसके तीक्ष्ण कटाक्ष उस पर कोई प्रभाव न डाल सके। इस प्रकार स्थूलिभद्र के अखंड ब्रह्मचर्य के माहात्म्य वर्णन के साथ कथा समाप्त होती है।

कृति में सरस और सुन्दर वर्णन उपलब्ध होते है। प्रकृति और मानव दोनो का सुन्दरता से वर्णन किया गया है। वसन्त का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"अह पत्तु कयाइ वसत समओ,
संजणिय -सयल- जण- चित्त- पमओ,
उल्लासिय-रुक्ख पवाल- जालु,
पसरत-चारु-चच्चरि व्व मालु ॥१॥
जहिं वण-लय-पयडिय-कुसुम-वरिस,
महु-कंत समागय जणिय हरिस।
पवमाण-चलिर-नव-पल्लवेहिं ,
नच्चंति नाइ कोमल करेहिं ॥२॥
नव- पल्लव- रत्त -असोअ -विडवि,
महु-लच्छिहि सउं परिणयणु घडवि।
जहिं रेहहिं नाइ कुसुंभरत्त,]
वत्थेहिं नियंसिय सयल गत्त ॥३॥
हसइ व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिं,
नच्चइ व्व पवण-वेविर-वणेहिं।
गायइ भमरावलि रविण नाइ,
जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ॥४॥ (पृष्ठ ४४३)

वर्णन मे स्वाभाविकता है। प्रकृति में चेतना अनुप्राणित करते हुए कवि ने चराचर में वसन्त के प्रभाव की व्यंजना की है।

कवि कोशा का सौन्दर्य वर्णन करता हुआ कहता है—

"जसु वयण विणिज्जउ णं ससंकु,
अप्पाणु निसिहिं दंसइ ससंकु।
जसु णयण-कंति-जिय-लज्ज-भरिण,
वण-वासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥
जसु सहहिं केस-घण कसण-वन्न,
नं छप्पय मुह पंकय पवन्न।
भवणिक्क-वीर-कंदप्प-धणह,
सुदरिस विडंबहि जासु भमुह ॥९॥

जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु,
नं विद्दुम सेवइ जलहि खारु।
जसु दंतपंति सुंदेरु रुंदु,
नहु सीओसहं तु वि लहइ कुंदु ॥१०॥
असणंगुलि पल्लव नहपसूण,
जसु सरल भुयाउ लयाउ नूण।
घण-पीण-तुंग -थण- भार- सत्तु,
जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(पृष्ठ ४४५)

अर्थात् जिस (कोशा) के मुख से पराजित चन्द्रमा अपने आप को रात्रि में सशंकित हुआ दिखाता है। जिसकी आँखो की कान्ति से पराजित अतएव अत्यधिक लज्जित हरिणी ने मानो वनवास प्राप्त कर लिया। जिस के घने घने काले केश ऐसे प्रतीत होते है मानो मुख कमल पर भौरे मडरा रहे हो। जिसकी भृकुटी संसार मे एकमात्र वीर काम के धनुष के सौन्दर्य की भी विडम्बना करती है। जिसके अधरो से अपहृत-सौन्दर्य वाले विद्रुम मानो क्षार समुद्र मे चले गये। ·· जिस के सघन, पीन, और उत्तुग स्तन भार को वहन करते-करते मध्यभाग मानो क्षीण हो गया।

इस प्रकार नारी अंग प्रत्यंग वर्णन या नख शिख वर्णन का रूप हमें यहां भी दिखाई देता है। वर्णन मे प्राचीन परम्परा का अनुकरण दिखाई देता है। भाषा समस्त और साहित्यिक रूप धारण किये हुए है। छन्दों मे रड्डा, पद्धडिया और घत्ता की ही प्रधानता है।

छक्कम्मोवएस (षट्कर्मोपदेश रत्नमाला)

अमरकीर्ति रचित १४ सन्धियो की अप्रकाशित कृति है। इसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है (प्र० सं० पृष्ठ १७१–१७४)।

अमरकीर्ति द्वारा ग्रन्थ के आरम्भ में और अन्त मे दिये आत्म परिचय से प्रतीत होता है कि कवि माथुर-सघीय आचार्यो की परंपरा में हुआ था।[1] कवि का आश्रय-दाता नागर कुलोत्पन्न अम्बाप्रसाद था। कवि ने प्रत्येक सन्धि की पुष्पिका मे अम्बाप्रसाद के नाम का उल्लेख किया है और उसी को कृति समर्पित की है।[2]

कृति की अन्तिम प्रशस्ति मे कवि ने मगल कामना करते हुए अम्बाप्रसाद को

---

१. प्रो० हीरालाल जैन, सम रिसेंट फाइंड्स आफ अपभ्रंश लिट्रेचर नागपुर यूनिवर्सिटी जर्नल, दिसं० १९४२, पृ० ८७।

२. क. इय छक्कम्मोवएसे महाकइ सिरि अमरकित्ति विरइए, महाकव्वे गुण पाल चच्चिणि णंदण अंब पसायणु मण्णिए छकम्म णिण्णय वण्णणो णाम पढमो संधी परिच्छेउ समत्तो ॥१॥

अपना छोटा भाई कहा है।[1] कवि की यह उक्ति अम्बाप्रसाद-के प्रति अपनी प्रेम भावना के कारण हो सकती है या ऐसी भी सभावना हो सकती है कवि पहिले अम्बाप्रसाद के ही वश में था और पीछे से विरक्त हो गया।

गुज्जर विषय के महियड देशान्तर्गत गोदहय नगर में चालुक्य वशी राजा कृष्ण के शासन मे वि० स० १२४७ मे कवि ने इस काव्य की रचना की थी। इस रचना में कवि को पूरा एक मास लगा था।[2] कवि ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त णेमिणाह चरिउ, महावीर चरिउ, जसहर चरिउ, धम्म चरिउ टिप्पण, सुहासिअ रयण निहि, धम्मोवएस चूडामणि और झाणा पईउ आदि सात और ग्रन्थो की रचना की और कवि ने अपने आप को इनके अतिरिक्त अन्य सस्कृत प्राकृत के काव्यो का रचयिता भी कहा है। उपरि-लिखित ग्रन्थो मे से णेमिणाह चरिउ ओर जसहर चरिउ के पद्धडिया बध मे रचे जाने का कवि ने स्वयं निर्देश किया है जिससे प्रतीत होता है कि ये ग्रन्थ अपभ्रंश में रचे गये थे।[3]

इस कृति में १४ सन्धियाँ और २१५ कडवक है। इसमे कवि ने गृहस्थ धर्म का उल्लेख करते हुए गृहस्थो के लिए छह प्रकार के कर्तव्यो का निर्देश किया है--देव-पूजा, गुरु-सेवा, शास्त्राभ्यास, संयम, तप और दान। इन धर्मों के पालन का उपदेश अनेक सुन्दर कथाओ के द्वारा रुचिकर रूप से किया गया है।

---

१. णंदउ पर सासण णिणासणु, सयल काल जिण णाहहो सासणु।
णंदउ अंव पसाउ वियक्खणु, अमरसूरि लहु वंधु वियक्खणु।
णंदउ अवरु वि जिणपय भत्तउ, विवुह वाग भाविय रयणत्तउ ॥१४.१८॥

२. अह गुज्जर विसयहो मज्झि देसु, णामेण महीयडु वहुपयेसु।
णयरायर वर गामहिं णिरुद्धु, णाणा पयार संपइ समिद्धु।
तहिं णयरु अत्थि गोदहयणामु, णं सग्गु विचित्तु सुरेसधामु ॥१.४॥
तं चालुक्क वंसि णय जाणउ, पालइ कन्हु णरेंद पहाणउ ॥१.५॥
वारह सयहिं ससत्त चयालिंहिं, विक्कम संवच्छरहे विसालिंहिं।
गयहिंमि भद्दवयहो पक्खंतरि, गुरु वारम्मि चउद्दसि वासरि।
एक्कें मासें एहु समत्थिउ, सइं लिहियउ आलसु अवरुत्थिउ ॥१४-१८॥

३. परमेसर पइं णवरस भरिउ, विरयउ णेमिणाहहो चरिउ।
अण्णइ चरित्तु तच्चत्थ सहिउ, पयडत्थु महावीरहो विहिउ।
तीयउ चरित्तु जसहर णिवासु, पद्धडिया बंधें किउ पयासु।
टिप्पणउ धम्म चरियहो पयड, तिह विरइउ जिह वुज्झेहिंजडु।
सक्कय सिलोय विहि जणिय दिही, गंफियउ सुहासिउ रयणनिही।
धम्मोवएस चूडामणिक्खु, तह ज्झाण पईऊ सुज्झाण सिक्खु।
छक्कवएसें सुह पवंध, किय अट्ठ संख सइ सच्च संधु।
सक्कइ पाइय कव्वइ घणाइ, अवराइं कियइं रंजिय जणाइं ॥१.७॥

धार्मिक तत्व और उपदेशो की प्रधानता के कारण काव्य सौन्दर्य का प्राय अभाव है। षट् कर्म का माहात्म्य बतलाता हुआ कृतिकार कहता है —

"छक्कम्मिहिं सावउ जाणिज्जइ, छक्कम्मिहिं दिणदुरिउ विलिज्जइ।
छक्कम्मिहिं सम्मत्तु वि सुज्झइ, छक्कम्मिहिं घरकम्मि ण मुज्झइ।
छक्कम्मिहिं जिणधम्मु मुणिज्जइ, छक्कम्मिहिं णरजम्मु गणिज्जइ।
... .
छक्कम्मिहिं वसि जायहिं णरवर, छक्कम्मिहिं देववि आणायर।
छक्कम्मिहिं वंछिउ संप्पज्जइ, छक्कम्मिहिं सुरदुंदुहि वज्जइ।
छक्कम्मिहिं उप्पज्जइ केवलु, छक्कम्मिहिं लब्भइ सुहु अवियलु।

(प्र० सं० पृष्ठ० १७१-१७२)

कृति मे पद्धडिया और घत्ता ही प्रधान रूप से प्रयुक्त हुए है। इनके अतिरिक्त गाथा, रचिता, हेळा, मजरी, खडय, दोहडा, आरणालादि छन्द भी बीच बीच मे मिलते है। आठवी सन्धि मे प्रत्येक कडवक के आरम्भ मे दोहा प्रयुक्त हुआ है। कडवक मे चौपाई का प्रयोग मिलता है। जैसे—

दोहडा— कम्मारउ सत्थाहिवहो, एहु तुह णयरि वसेइ।
अण्णु ण याणउ किंपि जइ, सो वुह देव कहेइ॥
सत्थंबाहु वुत्तउ वसु हेसें, हक्कारे वि विहिय सन्तोसें।
कवणु पुरिसु इउ सच्चु पयासहिं, अम्हहं मण संदेहु विणासहिं।

इत्यादि, ८.११

कृतिकार ने इस ग्रन्थ को महाकाव्य कहा है किन्तु यह महाकाव्य के लक्षणो से रहित है। कथानक और कवित्व की दृष्टि से भी महाकाव्य नही कहा जा सकता। सन्धियो का नामकरण भी जलपूया कहा, गधपूया कहा, अक्खय पूया विहाण कहा इत्यादि नामो से किया गया है।

अणुवय रयण पईउ (अणुव्रत रत्न प्रदीप)

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। हस्त लिखित प्रति प्रो० हीरालाल जैन के पास है।[1]

ग्रन्थ कवि लक्खण (लक्ष्मण) द्वारा रचा गया। ग्रन्थ मे आठ परिच्छेद (सन्धियाँ) हैं। इसकी रचना मे कवि को ९ मास लगे। ग्रन्थ वि० सं० १३१३ (ई० सन् १२५६) में रचा गया।[2]

---

१. प्रो० हीरालाल जैन, जैन-सिद्धान्त-भास्कर, भाग ६, किरण १ में पृ० १५५-१७७ और सम रिसेंट फाइन्ड्स आफ अपभ्रंश लिट्रेचर, नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, दिसं० १९४२, पृ० ८९-९१।

२. तेरह सय तेरह उत्तराले परिगलिय विक्कमाइच्च काले।
...

कवि के पिता का नाम साहुल और माता का नाम जइता था। कवि जायस वंश में उत्पन्न हुआ था ।[1] कवि यमुना तट पर स्थित "रायवड्डिय" नाम की नगरी मे रहता था। प्रो० हीरालाल के विचार मे यह नगर आजकल आगरा फोर्ट से बादी कुई जाने वाली रेलवे पर रायभा नामक स्टेशन के नाम से प्रसिद्ध है। सभवत. इस का प्राचीन नाम रायभद्र या रायभद्री होगा जो रायवड्डिय मे परिवर्तित हो गया।[2]

कवि ने आहवमल्ल के मन्त्री कण्ह (कृष्ण) के आश्रय मे और उन्ही की प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना की। आहवमल्ल चौहान वशी थे। इनके पूर्वजो की राजधानी यमुना तट पर चंदवाड नगरी थी। यह राजा म्लेच्छो के साथ वीरता से लडे थे और इन्होने हम्मीर देव की सहायता भी की थी तथा उसके मन के शल्य को नष्ट किया था ।[3] इनके मन्त्री कृष्ण वणिक् वंश के थे। कवि ने प्रत्येक सन्धि की पुष्पिका मे अपने आश्रयदाता के नाम का उल्लेख भी किया है।[4]

जिणदत्त चरिउ के रचयिता लक्खण और यह लक्खण संभवत एक ही व्यक्ति है। उनके पिता माता का नाम भी साहुल और जयता था, वह भी जायस कुल मे उत्पन्न हुए थे और इस ग्रन्थ के कर्ता लक्खण के माता, पिता तथा कुल का नाम भी वही है। उन्होने जिणदत्त चरिउ की रचना वि० स० १२७५ मे की थी और इन्होने इस ग्रन्थ की रचना ३८ वर्ष बाद वि० सं० १३१३ मे की। इतने वर्षो तक कोई काव्य रचना न करने से उन्हे भान हुआ कि मेरी कवित्व शक्ति क्षीण हो रही है।[5] राजनैतिक उथलपुथल के कारण सभवत. उन के वासस्थान और आश्रयदाता का परिवर्तन हो गया हो।

ग्रन्थ मे कवि ने श्रावको के पालन करने योग्य व्रतो (अणुव्रतो) और गृहस्थियो के धर्मों का उल्लेख किया है। विषय प्रतिपादन के लिये अनेक कथाओ का आश्रय लिया है।

नव मास रयतें पायडत्थु सम्मत्तउ कमे कमे एहु सत्थु।
जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ६, किरण १, पृ० १७५।

१. साहुलहो घरिणि जइता-सुएण सुकइत्तण गुण विज्जाजुएण।
जायस कुल गयण दिवायरेण अणसंजमीहिं विहियायरेण।
इह अण-वय-रयण-पईउ कव्वु विरयउ ससत्ति परिहरिवि गव्वु।
वही, पृ० १७४।

२. वही, पृ० १५९।

३. दुप्पिच्छ मिच्छ रण रंग मल्लु, हम्मीर वीर मण नट्ठ सल्ल।
वही, पृ० १६३।

४. इय अणुवय रयण पईव सत्थे महा सावयाण सुपसण्ण
परम तेवण्ण किरिय पयडण समत्थे सगुण सिरि साहुल—
सुव लक्खण विरइए भव्व सिरि कण्हाइच्च णामंकिए—इत्यादि।

५. एमेव कइत्तणगुण विसेसु परिगलइ णिच्च महु णिरवसेसु।
वही, पृ० १६५।

कृति में धार्मिक प्रवचनो की प्रधानता है । उच्च कल्पना, अलकार, चमत्कार आदि का अभाव है ।

कवि की कविता का उदाहरण निम्नलिखित उद्धरण मे देखा जा सकता है—

कवि आहवमल्ल की रानी का वर्णन करता है—

तहो पट्ट महाएवी पसिद्ध ईसरदे पणयणि पणय विद्ध।
णिहिलंतेउर मज्झए पहाण णिय पइ मण पेसण सावहाण।
सज्जण मण कप्प महीय साह कंकण केऊरंकिय सुवाह ।
छण ससि परिसर संपुण्ण वयण मुक्क मल कमल दल सरल णयण।
आसा सिंधुर गइ गमण लील बंदियण मणासा दाण सील ।
परिवार भार धर घरण सत्त मोयइं अंतरदल ललिय गत्त ।
. . . .
अहमल्ल राय पय भत्ति जुत्त अवगमिय णिहिल विण्णाण सुत्त ।
. . . .
गंगा तरंग कल्लोल माल समकित्ति भरिय ककुहंतराल ।
कलयंठि कंठ कल महुर वाणि गुण गरुव रयण उप्पत्ति खाणि ।
अरि राय विसह संकरहो सिट्ठ सोहग्ग लग्ग गोरि व्व दिट्ठ ।[1]

वर्णन में कोई विशेषता नही। कवि ने रानी का शृंगारिक वर्णन न कर उसके सद्गुणो की ही प्रशंसा की है । अपनी धार्मिक भावना के अनुकूल उसकी पार्वती से उपमा दी है ।

मन्त्रि-पत्नी का निम्नलिखित भुजंगप्रयात छन्दो में वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूणं पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायार विंदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ।
सुहायार चारित्त-चीरंक-जुत्ता । सुचेयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
स पासाय-कासार-सारा- मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ।
दया वल्लरी मेह-मक्कंबुधारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा चंद चूडानुगामी भवाणी । जहा सव्व वेईहिं सव्वंग वाणी ॥
इत्यादि

इस वर्णन में भी धार्मिक भावना के अनुकूल शृंगार का अभाव है । स्त्री के पति-भक्ति, चारित्र्य, दया आदि गुणो का ही कवि ने निर्देश किया है ।

---

१. वही, पृ० १६४।
णिहिलंतेउर मज्झ—सारे अन्तःपुर में। छण ससि—पूर्ण चन्द्र बिम्ब के समान मुख। मोइयं अंतर दल—केले के भीतरी दल के समान कोमल शरीर वाली ।

प्रो० हीरालाल जैन ने निम्नलिखित दस कथा ग्रन्थो का निर्देश किया है [1]

१ सुअन्ध दसमी कहा	२ रोहिणि विधान कथा
३ मुक्तावलि विधान कथा	४ अनन्त व्रत कथानक
५. निर्दोष सप्तमी कथानक	६. पाश पइ कहा
७. जिन पुरन्दर कथा	८ उद्धरण कथा
९. जिन रात्रि विधान कथानक	१० सोलह कारण जयमाल

ये दस अपभ्रश ग्रन्थ उत्तर प्रदेश के जसवन्तनगर मे एक जैन मन्दिर मे सुरक्षित ३७ सस्कृत प्राकृत हस्तलिखित ग्रन्थो के साथ मिले। इन मे से प्रथम दो, दो दो सन्धियो के है शेष सब इन से भी छोटे हैं। रोहिणि विधान कथा के रचयिता देवनन्दि मुनि है। अन्यों के विषय में कुछ ज्ञात नही।

सुअन्ध दसमी कहा का एक उद्धरण देखिये—

"जिण चउवीस णवेप्पिणु, हियइ धरेप्पिणु, देवत्तहं चउवीसहं।
पुणु फलु आहासमि, धम्मु पयासमि, वर सुअन्ध दसमिहिं जहं।
पुच्छिउ सेणिएण तित्थंकरु, कहहि सुअंध दसमि फलु मणहरु।
भणइं जिणिंदु णिसुणि अहो सेणिय, भव्वरयण गुणरयणि णिसेणिय॥

रोहिणि विधान कथा का एक उद्धरण देखिये—

"जिणवरु वंदेविणु, भाउ धरेविणु दिव्व वाणि गुरु भत्तिए।
रोहिणि उववासहो, दुरिय विणासहो, फलु अक्खमि णिय सत्तिए॥

श्री अगर चन्द नाहटा ने निम्नलिखित दिगबर जैन व्रत कथाओ का निर्देश किया है[2]—

गुणभद्र लिखित पुष्पाजलि, आकाश पचमी, चन्दन षष्ठि और दुवारसी।

प. परमानंद जैन ने निम्नलिखित कथा ग्रन्थो का भी उल्लेख किया है [3] —

१ पुरदर विहाण कहाः रचयिता भट्टारक अमरकीर्ति, वि० स० १८४७.

२ णिज्झर पचमी विहाण कहाणक : रचयिता विनय चन्द्र। विनय चन्द्र ने चूनडी और कल्याणक रासु नामक दो अन्य ग्रन्थ भी लिखे।[4]

३. निद्दुह सत्तमी कहा : रचयिता विनय चन्द्र के गुरु मुनि बालचन्द्र

४ जिनरत्ति कहा :
५. रविवउ कहा :
} दोनो के कर्ता यशःकीर्ति है। यह यशःकीर्ति वही है जिन्होने हरिवश पुराण और पाण्डव पुराण की भी रचना की थी।[5]

---

१. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी जर्नल, भाग, १, पृ० १८१।
२. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण १।
३. अपभ्रंश भाषा का जैन कथा साहित्य, अनेकान्त वर्ष ८, किरण ६-७।
४. चूनड़ी के लिए देखिये, नवां अध्याय, अपभ्रंश मुक्तक काव्य (१)
५. अनेकान्त वर्ष ८, किरण ६-७ पृष्ठ २७६-२७७।

६. अणथमी कहा . इस में रयधू ने रात्रि भोजन के दोषो और उनसे उत्पन्न होने वाली व्याधियो का उल्लेख किया है।

७. पुण्णासव कहा रयधू ने पुण्य का आश्रव करने वाली व्रत कथाओ का तेरह सन्धियो मे वर्णन किया है ।

८. अणथमी कहा हरिचन्द लिखित १६ कडवको की कथा ।

९. सोखवई विहाण कहा रचयिता विमल कीर्ति

१०. सुअध दसमी कहा रचयिता देवदत्त ।

११. रवि वउ कहा
१२. अणत वय कहा . } दोनो के रचयिता मुनि नेमि चन्द्र है ।

श्री कामता प्रसाद जैन ने विनय चन्द्र कृत "उवएस माल कहाणय छप्पय" का भी उल्लेख किया है ।[1] रचना छप्पय छन्द मे है । एक उदाहरण देखिये—

"इणि परि सिरि उवएसमाल सु रसाल कहाणय,
तव संजम संतोस विणय विज्जाइ पहाणय ।
सावय सम्भरणत्थ अत्थपय छप्पय छन्दिहिं,
रयण सिंह सूरीस सीस पभणइ आणंदिहि ।
अरिहंत आण अणुदिण उदय, धम्मल मत्थइ हुउं ।
भो भविय भत्तिसत्तिहिं सहल सयल लच्छि लीला लहउ ।।

इस संक्षिप्त वर्णन से हमे अपभ्रश कथा साहित्य की रूप रेखा तथा उस की मुख्य प्रवृत्तियो का परिचय प्राप्त होता है । यह भली भाँति विदित होता है कि कथा साहित्य की परंपरा अपभ्रश काल मे भी विद्यमान थी। अनेक लोक कथाएँ जो उस समय मौखिक रूप मे प्रचलित थी अथवा लेख बद्ध हो चुकी थी, हिन्दी के नवयुग मे प्रविष्ट हुई । इन मे से ही कुछ कथाओं को लेकर सूफी कवियो ने अपने आध्यात्मिक प्रेम मार्ग का अपने प्रबन्ध काव्यो मे प्रचार किया ।

---

१. **हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् १९४७, पृ० ३१ ।**

चौदहवाँ अध्याय

अपभ्रंश स्फुट-साहित्य

इससे पूर्व के अध्यायो में अपभ्रश के महाकाव्यो, खडकाव्यो मुक्तककाव्यो, रूपककाव्यो और कथाग्रन्थो का निर्देश किया गया है। इस अध्याय मे अपभ्रंश के कुछ ऐसे ग्रन्थो का विवेचन किया जायगा जिनका पूर्वलिखित अध्यायो मे—विभागो मे—समावेश नही हो सका। कुछ ग्रन्थ अप्रकाशित है और उनके स्वरूप का पूर्ण रूप से परिचय न होने के कारण उनका निर्देश इस अध्याय मे कर दिया गया है। कुछ रासा ग्रन्थ प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह मे सगृहीत है। इन्हे प्राचीन गुजराती ही कहना और अपभ्रश न मानना कहाँ तक सगत होगा, हम नही कह सकते। यद्यपि हमे गुजराती का ज्ञान नही और इसलिये हम नही कह सकते कि ये ग्रन्थ प्राचीन गुजराती के नही किन्तु इतना निस्सन्देह कह सकते है कि ये अपभ्रश ग्रन्थ है और इनकी गणना अपभ्रश ग्रन्थो मे होनी चाहिये। प्रो० हीरालाल जैन के विचार मे ये ग्रन्थ अपभ्रश मे ही है।[1] प्रो० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये का भी, यही विचार मालूम होता है।[2] उपरिनिर्दिष्ट रासा ग्रन्थो के अतिरिक्त चर्चरी, स्तोत्र, फाग, चतुष्पदिका आदि छोटी-छोटी कृतियो का भी इस अध्याय मे अन्तर्भाव कर दिया गया है।

चर्चरी

चच्चरी, चाचरि, चर्चरी आदि सब पर्यायवाची शब्द है। प्रस्तुत चर्चरी में कृतिकार जिनदत सूरी ने ४७ पद्यो मे अपने गुरु जिनवल्लभसूरि का गुणगान किया है और चैत्य विधियो का विधान किया है।

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५० अंक ३-४, पृ० ११०।

२. प्रो० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के लेखक को मिले ७ फरवरी १९५२ के पत्र का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"You will soon find that what we call Old-Hindi, Old-Rajasthani, Old-Gujrati, etc—all these have often a common ground in Apabhramsa or what is often called post-Apabhramsa"

चर्चरी शब्द ताल एव नृत्य के साथ, विशेषतः उत्सवादि में, गाई जाने वाली रचना का बोधक है। इसका उल्लेख विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अक के अनेक अपभ्रश पद्यो मे मिलता है। वहा अनेक पद्य चर्चरी पद्य कहे गये है। समरादित्य कथा, कुवलयमाला कथा आदि ग्रन्थो मे भी इसका उल्लेख मिलता है। श्रीहर्ष ने अपनी रत्नावली नाटिका के प्रारम्भ में भी इसका उल्लेख किया है।[1] सस्कृत-प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रश-कवियो के काव्यो मे भी इसका उल्लेख मिलता है। वीर कवि (वि० सं० १०७६) ने अपने जबुसामिचरिउ में एक स्थान पर चच्चरि का निर्देश किया है।[2] नयनदी (वि० स० ११००) के सुदंसणचरिउ मे भी वसन्तोत्सव-वर्णन के प्रसग में चच्चरि का उल्लेख है।[3] श्रीचन्द्र (वि० सं० ११२३) के रत्नकरड शास्त्र मे भी एक स्थल पर इसका उल्लेख किया गया है।[4] जायसी की पद्मावत में भी फागुन और होली के प्रसंग में चाचरी या चाचर का उल्लेख है।[5] प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह मे सोलण कृत चर्चरी का व्याख्यान है।[6] एक वेलाउली राग मे गीयमान ३६ पद्यो की "चाचरि स्तुति" और दूसरी गुर्जरी राग मे गीयमान १५ पद्यो की "गुरु स्तुति चाचरि"

---

१. अये यथायमभि हन्यमान मृदु मृदंगानुगत गीत मधुरः पुरः पौराणां
समुच्चरित चर्चरी ध्वनि स्तथा तर्कयामि.....इत्यादि।
रत्नावली, काले का संस्करण, बम्बई, १९२५ ई०, पृ० ९।

२. चच्चरि वंधि विरइउ सरसु, गाइज्जइ संतिउ तारु जसु।
नच्चिज्जइ जिण पय सेवर्याहि, किउ रासउ अंवादेवर्याहि।
जं० सा० च० १.४

३. जिण हरेसु आढविय सुचच्चरि, करहि तरुणि सवियारी चच्चरि।
सुदं० च० ७.५

४. छंदणियारणाल आवलियहि, चच्चरि रासय रासहि ललियहि।
वत्थु अवत्थू जाइ विसेसहि, अडिल मडिल पद्धडिया अंसहि।
रत्न करण्ड शास्त्र, १२.३

५ नवल वसंत, नवल सब बारी। सेंदुर बुक्का होइ धमारी॥
खिनहि चलहि, खिन चाँचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई॥
जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत, का० ना० प्र० सभा काशी, सन् १९२४ संस्करण, वसंत खंड पृ० ८८।
होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। विरह जराइ दीन्ह जस होरी॥
वही, षड्ऋतु वर्णन, पृ० १६१
फागु करहि सब चाँचरि जोरी। मोंहि तन लाइ दीन्हि जस होरी॥
वही, नागमती वियोग, खंड, पृ० १७०

६. प्राचीन गर्जर काव्य संग्रह, भाग १, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, संख्या १३, बड़ौदा, १९२० ई०, पृष्ठ ७१।

का पाटण भण्डार की ग्रन्थ सूची में निर्देश मिलता है।[1]

प्रस्तुत चर्चरी की रचना जिनदत्त सूरि ने वागड (वाग्जड) देशान्तर्गत व्याघ्रपुर नगर मे विक्रम की १२वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे की। इस कृति के अतिरिक्त कवि के 'उपदेश रसायन रास' और 'काल स्वरूप कुलक' का पीछे (अध्याय नौ में) उल्लेख किया जा चुका है।

कृतिकार ने सूचित किया है कि यह कृति पढ (ट) मजरी भाषा-राग में गाते हुए और नाचते हुए पढी जानी चाहिये। पट मजरी-राग का निर्देश सिद्धो के अनेक पदो में भी मिलता है। पद्य व्याख्याता ने प्रथम पद्य के अन्त में निर्देश किया है कि इसका छन्द वास्तु छन्द का एक भेद, २१ मात्रा वाला कुन्द नामक छन्द है।

कृतिकार जिनवल्लभ को कालिदास और वाक्पतिराज से भी बढ कर मानता है :

"कालियासु कइ आसि जु लोईहि वन्नियइ,
ताव जाव जिणवल्लहु कइ ना अन्नियइ।
अप्पु चित्तु परियाणहि तं पि विसुद्ध न य
ते वि चित्त कइराय भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥

भरत बाहु बलि रास[2]

यह शालिभद्र सूरि द्वारा रचित रास-ग्रन्थ है। कवि ने प्राचीन पौराणिक कथा को लेकर ही इसकी रचना की है। ग्रन्थ की रचना वि० स० १२४१ में हुई।

यह कथा पुष्पदन्त के महापुराण में १६ से १८ सन्धियो तक विस्तार से वर्णित है। ऋषभ के पुत्र भरत, चक्रवर्ती बन जाने पर दिग्विजय के लिये निकलते है। सब राजा उनके आधिपत्य को स्वीकार करते है किन्तु ऋषभ के पुत्र और भरत के छोटे भाई बाहुबलि उनका आधिपत्य स्वीकार नही करते। दोनो में युद्ध होता है। युद्ध मे भरत पराजित होते है। विजित बाहुबलि, भरत को ही राज्य लौटा कर ससार से विरक्त हो जाते है।

यह वीर रस प्रधान रास ग्रन्थ है। इसकी भाषा प्राचीन गुजराती से प्रभावित है। ग्रन्थ में वस्तु, चउपई, रास, दोहा आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है।

कवि की कविता का उदाहरण देखिए —

चलीय गयवर चलीय गयवर गुहिर गज्जत,
हुंफइं हसमस हणहणइं तरवरंत हय-घट्ट चल्लीय,
पायल पय-भरि टलटलीय मेरु सेस-सीस मणिमउड डुल्लीय।

---

१. पत्तन भांडार ग्रंथ सूची, बड़ौदा, १९३७ पृ० २६७-२६८

२. पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी द्वारा श्री जैन धर्माभ्युदय ग्रंथमाला में अहमदाबाद से गुजराती में प्रकाशित, वि० सं० १९९७।

सिउं मरुदेविहिं संचरीय कुंजरि चडीय नरिंद,
समोसरणि सुर वरि सहिय वंदिय पढम जिणंद ।। (पृ० ८)

सेना की यात्रा का सजीव वर्णन निम्नलिखित पद्यो मे दिखाई देता है :--

वज्जीय समहरि संचरीय, सेनापति सामंत तु ।
मिलीय महाधर मंडलीय, गाढिम गुण गाजंत तु ।।[1]
गडयडंत गयवर गुडीय, जंगम जिम गिरि-शृंग तु ।
सुंडा-दड चिर चालवइ ए, वेलइ अगिहिं अंग तु ।।
गंजइ फिरि फिरि गिरि-सिहरि, भंजइ तरुअर-डालि तु ।
अंकुस-वसि आवइ नही य, करइ अपार जि आलि तु ।।
हींसइं हसमिसि हणहणइं ए, तर वर तार तोषार तु ।
खूंदइं खुरलइं खेडवीय, मन मानइं असुवार तु ।।
पाखर पंखि कि पंखरू य, ऊडा ऊडिहिं जाइ तु ।
हुंफइं तलपइं ससइं, जडइं जकारीय धाइं तु ।। (पृ० १०)

भेरी बज रही है । सेनापति सामत सब चले जा रहे है । जगम पर्वतो के समान हाथी बढे जा रहे है । पर्वतो के शिखर गुञ्जायमान हो गये । वृक्षो की शाखाये टूटने लगी । हाथी अकुश के वश मे नही रहे । ऊँचे-ऊँचे घोडे हिनहिनाते है और वे जीन रूपी पंखो से पक्षी के समान वेग से उडे जा रहे हैं । जोर जोर से हाँफते है--साँस लेते है ।

इसी प्रकार युद्ध का सुन्दर वर्णन पृ० ४६ पर भी मिलता है ।

ग्रन्थ की भाषा मे शब्दो का रूप यद्यपि ओकारान्त है किन्तु अनेक पाद टिप्पणियो में पाठ भेद से उकारान्त रूप भी मिलता है, जो अपभ्रश का चिह्न है । भाषा मे मुहावरो का प्रयोग भी मिलता है । जैसे —

'जिम विण लवण रसोई अलुणी' पृ० २८

पार्श्वनाथ स्तुति

कुमारपाल प्रतिबोधान्तर्गत दशार्ण भद्र कथा (पृ० ४७१–४७२) मे आठ छप्पय छन्दो मे पार्श्वनाथ की वन्दना की गई है । उसी की शरण में जाने का उपदेश दिया गया है । कवि ने यहाँ बताया है कि इन छन्दो का पाठ करते हुए मागध लोग राजा को जगाते थे । उदाहरणार्थ एक छप्पय देखिये —

गयण-मग्ग-संलग्ग-लोल-कल्लोल-परंपरु,
निक्करुणुक्कड-नक्क-चक्क-चंकमण-दुहंकरु,
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ-रिंछोलि-निरंतरु,
विलसमाण-जाला-जडाल-वडवानल-दुत्तरु,

---

१. प्रत्येक पंक्ति के अन्त में तु का प्रयोग आलाप के लिये किया गया है ।

आवत्त-सयायलु जलहि लहु गोपउ जिम्व ते नित्थरहि।
नीसेस-वसण-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहिं।।

अर्थात् जो लोग पार्श्वनाथ का स्मरण करते हैं वे इस भयानक संसार-सागर को गोपद के समान पार कर जाते हैं।

इन छप्पयों की भाषा, अनुप्रासमयी, समस्त और द्वित्व व्यंजन युक्त है। इसी प्रकार की भाषा उत्तरकाल में हिन्दी छप्पय पद्यों में मिलती है।

सिरि थूलि भद्द फाग[1]

यह जिन पद्म सूरि की २७ पद्यों की एक छोटी सी रचना है। जिनपद्म गुजरात वासी जैन साधु थे। उन्होंने इसकी रचना वि० सं० १२५७ के लगभग की। कृति अनेक विभागों में विभक्त है। प्रत्येक विभाग "भास" नाम से पुकारा गया है। इसी प्रकार समरा रासु में प्रत्येक विभाग का नाम "भाषा" दिया गया है। "भास" और "भाषा" पर्यायवाची शब्द हैं। "भास" या "भाषा" अनेक पद्यों के समूह से बनता है। यह भास विभाग या भाषा विभाग वैदिक काल की अनुवाक शैली का स्मरण कराता है।

इस ग्रंथ में प्राचीन स्थूलिभद्र कथा का उल्लेख है।[2] स्थूलिभद्र, चातुर्मास्य में कोशा के घर में जाता है। कवि ने वर्षा का और कोशा की वेशभूषा का अतीव मधुर शब्दों में वर्णन किया है। वर्षा का वर्णन अत्यन्त सजीव है और कोशा की अंग-सुषमा का वर्णन अतीव आकर्षक है। वर्षा का वर्णन देखिये :—

झिरि मिरि झिरि मिरि झिरि मिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वाहला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झबकइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरिहिणि मणु कंपइ।। (पृ० ३८)
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायन्ते।
माण मडप्फर माणणि य तिम तिम नाचंते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मिलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरिहि झलहलिया।। (पृ० ३९)

कोशा की वेशभूषा की छटा निम्नलिखित पद्य में झलकती है —

लहलह लहलह लहलह ए उरि मोतियहारो।
रणरण रणरण रणरण ए पगि नेउर सारो।
झगमग झगमग झगमग ए कानिहि वर कुंडल।
झलहल झलहल झलहल ए आभरणइं मडल।। (पृ० ३९)

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, पृ० ३८।

२. देखिये पीछे तेरहवाँ अध्याय, अपभ्रंश कथा-साहित्य, पृ० ३५२

कोशा पूरी सजधज के साथ स्थूलिभद्र के पास पहुँची। उसे विश्वास था कि उसकी रूप-राशि स्थूलिभद्र के चित्त को विचलित कर देगी किन्तु उसे स्थिर और शान्त देखकर कोशा को निराशा हुई। वह खिन्न होकर बोली—

'बारह बरिसहं तणउ नेहु किहि कारण छंडिउ'

अर्थात् बारह वर्ष तक किया हुआ प्रेम तुमने किस कारण छोड दिया ? स्थूलिभद्र ने उसी धीरता के साथ उत्तर दिया—

वेस अइ खेदु न कीजइ।

... ...

लोहहि घडियउ हियउ मज्झु तुह वयणि न भीजइ॥"

हे कोशा ! खेद न करो। मेरा लोह-घटित हृदय तुम्हारे वचनो से नही भीग सकता।

कामोन्मत्त और उद्विग्न कोशा को समझाता हुआ स्थूलिभद्र बोला—

चिंतामणि परिहरवि कवण पत्थरु गिणेइ ?
तिम संजम सिरि परिनएवि वहुधम्म समुज्वल
आलिगइ तुह कोस कवनु पर संत महावल ?

अर्थात् चिंतामणि को छोडकर पत्थर कौन ग्रहण करेगा ? उसी प्रकार हे कोशा ! धर्म समुज्ज्वल सयम-श्री से प्रेम सबध करके कौन ऐसा है जो तुम्हारा आलिंगन करेगा ?

इस प्रकार कोशा का समग्र विभ्रम-विलास, हाव-भाव, रूप-वैभव, रगभवन की अपरिमित साज-सज्जा और भोज्य पदार्थों का अनुपम आस्वाद स्थूलिभद्र को तनिक भी विचलित न कर सका। चार महीनो मे उसका हृदय एक बार भी प्रकंपित न हुआ, एक पल के लिये भी काम उसे न छू सका। स्थूलिभद्र के इस हिमाचल सदृश अडिग चरित्र से कोशा का गर्व भग हुआ और उसके ज्ञान-नेत्र खुल गये।

नेमिनाथ चतुष्पादिका[1]

यह रत्नसिंह सूरि के शिष्य विनयचन्द्र सूरि द्वारा रचित चालीस पद्यो की एक छोटी सी रचना है।

इसमे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राचीन कथा का ही उल्लेख है। नेमिनाथ प्रसग में ही राजमती और उसकी सखियो के प्रश्नोतर रूप से कवि ने शृंगार और वैराग्य का प्रतिपादन किया है। राजमती या राजुल का विवाह नेमिनाथ से निश्चित हुआ था किन्तु वह पशुओ पर दयार्द्र हो वधू-गृह के तोरण द्वार से ही लौट गये और गिरिनार पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। राजुल के वियोग का ही वर्णन बारह-

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ८-१०।

मासा रूप से कवि ने प्रस्तुत किया है।[1] कृति का आरम्भ कवि ने निम्नलिखित शब्दों से किया है :—

सोहग सुंदरु घण लायन्नु सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।
सखि पति राजल चडि उत्तरिय बारमास सुणि जिम वज्जरिय ॥१॥

एव कृति की समाप्ति भी निम्नलिखित शब्दो से की गई है —

रयण सिंह सूरि पणमवि पाय बारह मास भणिया मइ भाय ॥ ४०॥

कवि ने श्रावण मास से प्रारम्भ कर आषाढ मास तक बारहो मासो का बारहमासा रूप से वर्णन किया है। देखिए—

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि सिद्धी राजल कन्न कुमारि ॥
आंकिणी ॥
श्रावणि सरवणि कडुयं मेहु गज्जइ विरहिरि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन झूरि दुज्जण तणा म वंछित पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयण नत्थी नेमि समं वर रयण।
घरइ तेजु गह गण सवि ताव गयणि न उग्गइ दिणयरु ताव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि सकरुण रोअइ राजल देवि।
हा एकलडी मइ निरधार किम ऊवेखिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर परि पलवंति गिरिवर पुण कउ डेरा हुंति ॥६॥
साचउं सखि वरि गिरि भिज्जंति किमइ न भिज्जइ सामल कंति।
घण वरिसंतइ सर फुट्टंति सायरु पुण घणु ओह डुलंति ॥७॥

इसी प्रकार राजुल प्रत्येक मास में अपनी अवस्था का वर्णन करती है और उसकी सखी उसे सान्त्वना देती है।

हिन्दी में इस रूप के बारहमासे की परम्परा की अनुकृति के लिए हिन्दी सूफी-काव्य मे शाह बरकत उल्ला कृत 'पेम प्रकाश' के अन्तर्गत बारहमासा वर्णन[2] भी ध्यान देने के योग्य है।

पीछे अपभ्रंश मुक्तक-काव्य (१) प्रकरण (अध्याय नौ) में उपदेश रसायन रास का वर्णन किया जा चुका है। भरत बाहु बलि रास का पीछे इसी अध्याय मे वर्णन किया गया है। इन रास ग्रन्थो के अतिरिक्त पत्तन भण्डार की ग्रन्थ सूची (भाग १) में जिनप्रभ रचित नेमि रास (वही पृ० २६९) और अन्तरग रास (वही पृ० २७०) नामक दो और रासा ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है। नेमिनाथ रास में रेवय गिरि मण्डन तीर्थं-

---

१. कामता प्रसाद जैन—हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५६।
२. पेम प्रकाश, डा० लक्ष्मीधर शास्त्री द्वारा संपादित, फ्रैंक ब्रदर्स, दिल्ली, १९४३ ई०।

कर नेमिनाथ की स्तुति है और अन्तरंग रास में प्रात काल पाठ करने योग्य स्तुति है। इनके अतिरिक्त कु ऋ अन्य रास-ग्रन्थो का विवरण प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह मे मिलता है।

जंबू स्वामि रासु[1]

कृति के प्रारम्भ मे कृति का नाम "जबू सामि चरिय" दिया है किन्तु समाप्ति "इति श्री जबू स्वामि रास"इन शब्दो से होती है। कृति की रचना महेन्द्र सूरि के शिष्य धर्म सूरि ने वि० स० १२६६ मे की थी। कृति में पद्यो की संख्या ४१ है।

कृति मे कथानक वही है जो जबू स्वामी के चरित में पहले वर्णन किया जा चुका है।[2] जंबू स्वामी के चरित्र और धर्म की दृढता का प्रतिपादन ही कवि का लक्ष्य था। ग्रन्थ की समाप्ति सघ की मंगल कामना से होती है।

रेवंत गिरि रास[3]

यह विजय सेन सूरि कृत एक छोटी सी रचना है। कृति चार कडवको मे विभक्त है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना वि० स० १२८८ मे की थी। कृति मे सोरठ देश मे रेवत गिरि पर नेमिनाथ की प्रतिष्ठा के कारण रेवत गिरि की प्रशसा और नेमिनाथ की स्तुति की गई है।

कवि की कविता का उदाहरण देखिये। पर्वत का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"जाइ कुंदु विहसंतो जं कुसुमिहि संकुलु।
दीसइ दस दिसि दिवसो किरि तारामंडलु।
मिलिय नवल वलि दल कुसुम झलहालिया।
ललिय सुर महि वलय चलण तल तालिया।
गलिय थल कमल मयरंद जल कोमला।
विउल सिलवट्ट सोहंति तहिं संमला॥ (पृ० ३)

उवएस माल कहाणय छप्पय[4]

यह श्री विनय चन्द्र कृत ८१ छप्पय छन्दो की कृति है। इसमे प्राचीन तीर्थंकरो एवं धार्मिक पुरुषो का उदाहरण देते हुए धर्माचरण का उपदेश दिया गया है। कृति की समाप्ति निम्नलिखित छप्पय से होती है—

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ४१-४६।
२. देखिये पीछे सातवाँ अध्याय, अपभ्रंश खंड-काव्य, पृ० १४७
३. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० १-७।
४. वही, पृ० ११-२७।

"इणि परि सिरि उवएस माल कहाणय।
तव संजम संतोस विणय विज्जाइ पहाणय।
सावय संभरणत्थ अत्थपय छप्पय छंदिहिं।
रयण सींह सूरीस सीस पभणइ आणंदिहिं॥
अरिहंतआण अणु दिण, उदय धम्म मूल मत्थइ हउं।
भो भविय भत्ति सत्तिहिं सहल सयल लच्छि लीला लहउ॥ ८१॥

श्री कामता प्रसाद जैन ने इस कृति की रचना का काल १३ वी शताब्दी माना है।[1]

गय-सुकुमाल-रास[2]

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। हस्त लिखित प्रति जैसलमेर के बडे ज्ञान भडार में प्राप्त है। प्रति १४ वी शताब्दी की लिखी हुई है।

ग्रन्थ के रचयिता संभवतः श्री देल्हण है। श्री देवेन्द्र सूरि के कथनानुसार इसकी रचना की गई। श्री अगरचद नाहटा इनका समय वि० सं० १३०० के लगभग मानते हैं। अतएव ग्रन्थ रचना का काल भी इसी समय के आसपास मानना पडता है।

सिरि देविंद सूरिंदह वयणे।
खमि उवसमि सहियउ।
गय सुकुमाल चरित्तू,
सिरि देल्हणि रइयउ ॥३३॥[3]

प्रस्तुत रास में कृष्ण भगवान् के छोटे सहोदर भाई गज सुकुमाल मुनि का चरित्र वर्णित है।

भाषा परिज्ञान के लिए निम्नलिखित उद्धरण देखिये—

तह सायर-उवकंठे बारवइ पसिद्धिय।
वर कंचण धण धन्नि वर रयण समिद्धिय॥
बारह जोयण जसु वित्थारू
निवसइ सुन्दरु गुणिहि विसालू।
बाहत्तरि कुल कोडि विसिट्ठो
अन्नवि सुहड रणंगणि दिट्ठो॥
नयरिहि रज्जु करेई नंहि कन्हु नरिंदू।
नरवइ मंति सणाहो जिव सुरगणि इंदू॥
संख चक्क गय पहरण धारा।

---

१. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३१।
२. गय–सुकुमाल रास, श्री अगर चन्द नाहटा, राजस्थान भारती, वर्ष ३, अंक २, पृष्ठ ८७।
३. वही, पृ० ९१।

कंस नराहिव कय संहारा ।
जिणि चाणउरि मल्लु वियारिउ
जरासिंधु बलवन्तउ धाडिउ ।।
तासु जणउ वसुदेवो वर रूव निहाणू ।
महियलि पयड पयावो रिउ भड तम भाणू ।।[1]

समरा रासु[2]

इस कृति की रचना अबदेव ने वि० सं० १३७१ मे की। इस मे संघपति देसल के पुत्र समरसिह की दानवीरता का वर्णन किया गया है । उसी वर्ष इसने शत्रुजय तीर्थ का उद्धार किया था। तीर्थ का सुन्दर भाषा मे वर्णन मिलता है । कृति ग्यारह "भाषाओ" मे विभक्त है। यह रास-ग्रन्थ रास-साहित्य के विषय पर भी प्रकाश डालता है। इस रास ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि रास ग्रन्थ का नायक कोई तीर्थंकर या पौराणिक महापुरुष हो, यह आवश्यक न था। एक दानी और श्रेष्ठी भी इस का नायक हो सकता था। अर्थात् धार्मिक विषय के अतिरिक्त रास में किसी दान-वीर की प्रशसा भी हो सकती थी।

कवि की कविता का एक उदाहरण देखिये—

तीर्थ यात्रा के जाने वाले यात्रियो का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

वाजिय संख असंख नादि काहल दुडुदुडिया।
घोड़े चडइ सल्लार सार राउत सींगडिया।
तउ देवालउ जोत्रि वेगि घाघरि रवु झमकइ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ।। (पृ० ३२)

श्री नेमिनाथ फागु[3]

यह राजशेखर सूरि कृत २७ पद्यो की एक छोटी सी कृति है। रचना काल के विषय मे कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता। इस काल की अन्य रचनाओ के समान इसका काल भी संभवत' १३ वी–१४ वी शताब्दी है।

कृति में नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। कवि की कविता का उदाहरण देखिये।

नारी का रूप वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"अह सामल कोमल केशपास किरि मोर कलाउ।
अद्धचंद सम भालु मयणु पोसइ भडवाउ।
वंकुडियालीय भुंहडियहं भरि भवणु भमाडइ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुर सग्गह पाडइ ।।

१. वही, पृ० ८८।
२. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० २७-३८।
३. वही, पृ० ८३-८६।

किरि ससिबिंब कपोल कन्न हिंडोल फुरंता।
नासा वंसा गरुड चंचु दाडिम फल दंता।
अहर पवाल तिरेह कंठु राजल सर रूडउ।
जाणु वीण रणरणइं जाणु कोइल टहकडलउ॥
(नेमिनाथ फागु पृ० ८३-८४)

धर्म सूरि स्तुति

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति का पाटण भण्डार की ग्रन्थ सूचि मे उल्लेख है (वही पृ० ३७०)

यह ५० पद्यो की एक रचना है। इसमे कृतिकार ने धार्मिक बारह-मासे का रूप उपस्थित किया है। प्रत्येक मास के साथ गुरु नाम का स्मरण किया गया है। कृति की समाप्ति भी कृतिकार ने "बारह नावउ सम्मत्तं" से की है।

कृति का आरम्भ निम्नलिखित पद्यो से होता है—

तिहुयण मणि चूडामणिहिं बारह नावउं धमसूरि नाहह।
निसुणेहु सुयणहु! नाण सणाहह पहिलउ सावणु सिरि फुरिय॥१॥
कुवलय दल सामल घणु गज्जइ नं मद्दलु मंडलझुणि छज्जइ।
विज्जुलडी झबकिहिं लवइ मणहरु वित्थारे वि कलासु।
अन्नु करेविणु कलि केकारवु फिरि फिरि नाचहिं मोरला।
मेइणि हार हरिय छमि णवर त्रीजण-भय उहिय नीलंबर।
वियलिय नव मालइ कलिय॥२
हलि! तुह कहियइं गुणहं निहाणु धमसुरि अनु जयसूरि समाणु।
अनु न अत्थि को वि जगि
इहु प्रिय! वरिसंतउ न गणिज्जइ जायवि धमसुरि गुरु वंदिज्जउ।
किज्जउ माणस-जमु सफलु॥३

गुरुस्तुति श्रावण मास से प्रारम्भ हो कर आषाढ मास मे समाप्त होती है। अन्त में अधिक मास का भी उल्लेख है।

सालिभद्दकक्क[1]

यह सम्भवत: पउम रचित ७१ पद्यो की एक छोटी सी कृति है। इस मे प्रत्येक दोहे का आदि वर्ण क, का, ख, खा इत्यादि क्रम से हिन्दी वर्णमाला के वर्णों के अनुसार रखा गया है और इस प्रकार ७१ दोहो की रचना की गई है। कृति का आरम्भ निम्नलिखित पद्यो से हुआ है—

---

१. वही, पृ० ६२-६७ और पत्तन भंडार ग्रन्थ-सूची भाग १, पृ० १९०।

भलि भंजणु कम्मारि बल वीर नाहु पणमेवि।
पउमु भणइ कक्कक्खरिण सालिभद्द गुण केइ ॥१
कत्थ वच्छ कुवलय नयण सालिभद्द सुकमाल।
भद्दा पभणइ देव तु हु कह थिउ इत्तियवार ॥२
कारुन्नामय नीर निहि समवसरणि ठिउ सामि।
अज्जु माइ मइं वंदियउ वीर नाहु सिव गामि ॥३

कृति की समाप्ति क्ष, क्षा, से प्रारम्भ होने वाले पद्यों में की गई है—

क्षमा समणि भद्दातणइं दिक्खिउ जिणिहि कुमारु।
सालिभद्दु बहु तवु करइ आगमु पढइ अपारु ॥६८॥
क्षामे विणु जिण मुनि सहिउ अणसुणु गहिउ उवन्नु।
सव्वट्ठह सिद्धिहि गयउ सालिभद्द तहिं धन्नु ॥६९॥

हिन्दी में यह काव्य शैली जायसी के "अखरावट" में भी दिखाई देती है।

दूहा मातृका

सालिभद्द कक्क के समान ही दूहा मातृका नाम की एक ५७ दोहों की कृति का वर्णन प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह (वही पृ० ६७-७१) में मिलता है। इस में भी दोहों का आदि वर्ण अकारादि क्रम से चल कर क्ष पर समाप्त होता है। कृति में धर्माचरण का उपदेश दिया गया है। कृति के कर्ता और काल के विषय में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।

मंगलाचरण से कृति आरम्भ होती है —

भले भलेविणु जगतगुरु पणमउं जगह पहाण।
जासु पसाइं मूढ जिय पावइ निम्मलु नाणु ॥ (पद्य सं. १)
मण गयवरु झाणुं कुसिण ताणिउ आणउ ठाउं।
जइ भंजेसइ सीलवणु करिसइ सिव फल हाणि ॥४॥
सिज्झइ तसु सवि कज्जडं (उ) जसु हियडइ अरिहंतु।
चिंतामणि सारिच्छ जिम एहु महाफलु मंतु ॥५॥
धंधइ पडियउ जीव तुहुं खणि खणि तुट्टइ आउ।
दुग्गइ कोइ न रक्खिसइ सयणु न बंधवु ताउ ॥६॥

इसके अनन्तर अकारादि क्रम से पद्य प्रारम्भ होते हैं और क्ष में समाप्त होते हैं—

क्षण भंगुरु देहतणउं अरि जिय कोइ विसासु।
भाव न मुच्चइ जिणु मणह जाव फुरक्कइ सासु ॥५६॥

जय तिहुयण स्तोत्र[1]

यह ३० पद्यों का अभयदेव सूरि का लिखा हुआ अप्रकाशित स्तोत्र है। ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में अधिक कुछ निश्चय से नहीं कहा जा सकता। कवि की कविता

१. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, भाग १, पृ० १७९।

का ज्ञान निम्नलिखित उद्धरण से हो सकता है—

जय तिहुयण वर कप्प रुक्ख जय जिण धन्नंतरि।
जय तिहुयण कल्लाण कोस दुरियक्खरि केसरि।
तिहुयण जण अविलंघि आण भुवणत्तय सामिय।
कुणसु सुहाइ जिणेस पास थंभणय पुरि ट्ठिय॥

परमेष्ठि प्रकाश सार

श्रुतकीर्ति रचित यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार मे वर्तमान है (प्र० स० पृष्ट १२०–१२२)। कवि ने इस की रचना वि० सं० १५५३ में की थी।[1] इसमे धार्मिकता अधिक है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त कवि ने हरिवंश पुराण की भी रचना की थी जैसा कि पहिले महाकाव्य प्रकरण मे निर्देश किया जा चुका है।

कृति का विषय धर्मोपदेश है। लेखक ने सातो सन्धियो मे सृष्टि उत्पत्ति, नाना प्रकार के जीवादि धार्मिक विषयो का ही विवेचन किया है। कृति कडवक और घत्ता बद्ध शैली मे लिखी गई है। कृतिकार ने इसे महाकाव्य कहा है[2] किन्तु ग्रन्थ महाकाव्य के लक्षणो से रहित है।

योग शास्त्र

श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल ने श्रुतकीर्त्ति द्वारा लिखित इस अप्रकाशित ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[3] इसका रचना काल भी वि० स० १५५३ के आस पास ही अनुमित किया जा सकता है।

योग शास्त्र दो सन्धियों का ग्रन्थ है। प्रथम सधि में ६४ और दूसरी संधि में ७२ कडवक है। ग्रन्थकार ने इसमें योग धर्म का वर्णन किया है—

"सव्वहु धम्म जोउ जगिसारउ
जो भव्वयण भवोवहि तारउ"

प्राणायाम आदि योग की क्रियाओ का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने योगावस्था में लोक का चिन्तन करने के लिए कहा है। दूसरी सधि में धर्म का वर्णन किया गया

---

१. दहपण (१५) सयते वण (५३) गयवासइं
पुण विक्कम णिव संवच्छर हे।
तह सावण मासहु गुर पंचमि सहुं,
गंथु पुण्णु तय सहसतहें ॥७.७४॥

२. इय परमिट्ठि पयाससारे अरुहादिगुणेहि वण्णणालंकारे
अप्पसुद सुद कित्ति जहासत्ति महाकव्वु विरयंतो
णाम पठम्मो परिछेऊ समोत्तो॥ संधि १॥

३. वीर वाणी वर्ष ६, अक ३-४ दिसं०-जन० १९५३।

है । इसमे षोडश कारण भावना, दशधर्म, १४ मार्गणाओं के अतिरिक्त १४ गुण स्थानो का वर्णन है। ६० वे कडवक से आगे भगवान् महावीर के पश्चात् होने वाले केवली, श्रुतकेवली आदि के नामो का उल्लेख किया है । इस के पश्चात् भद्रबाहु स्वामी का दक्षिण विहार, दिगम्बर श्वेताम्बर सप्रदायो की उत्पत्ति आदि पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है।

कवि ने भूतपूर्व कुन्द कुन्द, भूतबलि, पुष्पदत आदि आचार्यों और उनकी रचनाओ का भी उल्लेख किया है—

कुंदकुंद गणि पुण धम्मुद्धरु जहिं पणविउ जिणु सिरि सीमंधरु।
पुणु धरसेणायरियउ महंतउ चंदगुहाणिवसइ धीमंतउ।
उज्जतिहि ठिउ णियमणिझंकक्खइ सिस्सु ण कोवि गंथु जह अक्खइ।
भूवलि पुष्पदंत मुणिभव्वइं पढिय तत्थ सिद्धंत अउव्वइं।
धवल तह य जयधवलु पवित्तउ महबंद्धवि तदियउ गरउत्तउ॥

वही पृ० ७३.

कवि ने निम्नलिखित आचार्यों और उनकी रचनाओ का भी उल्लेख किया है—

णेमिचंदु सारत्तय कत्तइं उमासादि तच्चत्थ पवित्तइं।
मुणि सिवकोटि भगवतीराहण कय संबोहु मरण अविराणह।
मूलाचारु रयउ वसुणंदिहि महापुराणु जिणसेण अणंदहि।
पोमणंदि पच्चीसी गंथइं णाणणउ सुभचन्द पसत्थइं।
एम माइ बहु गंथ पवित्तइ सूरि परंपर जो सुद कत्तइं।

अन्त मे श्रुतकीर्ति ने तत्कालीन साधु सस्था एवं श्रावक समाज मे फैली अज्ञानता एवं चरित्रहीनता की ओर सकेत किया है और बताया है कि समाज तीन प्रकार की मूढताओ का शिकार हो रहा है । लोक मूढता का लक्षण करता हुआ कवि लिखता है—

सुरसरि सायर ण्हाणु जि वंछहि
वालू पाहण पूय समिछहिं
जलगिरि अग्गिपात कय मरणइं
लोय मढ इय धम्म चरणइ॥

उपरिनिर्दिष्ट कृतियो के अतिरिक्त सप्त क्षेत्रिरासु, मातृका चउपइ और सम्यक्त्व भाई चउपइ नामक लघु कृतियो का वर्णन प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह मे किया गया है।[1] लक्ष्मी चन्द विरचित श्रावकाचार और पूर्णभद्र विरचित सुकुमाल चरिउ का उल्लेख प्रशस्ति संग्रह में मिलता है।[2] पत्तन भण्डार की ग्रन्थ सूची मे भी कुछ लघुकाय स्तोत्र और सन्धि ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है[3] ।

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ४७-५८, ७४-७८ और ७८-८२ ।
२. प्रशस्ति संग्रह, पृ० १७५ ।
३. डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि जनभंडारस् एट पत्तन, भाग

जिन अपभ्रंश ग्रन्थो का विवरण यहा प्रस्तुत किया गया है, वह प्राप्त या ज्ञात अपभ्रंश सामग्री के आधार पर आश्रित है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त पर्याप्त सामग्री अभी तक जैन भण्डारो में वर्तमान है किन्तु प्रकाश मे नही आ सकी। भविष्य मे इस के प्रकाश मे आने पर अपभ्रंश साहित्य का यह अध्ययन और भी पूर्ण किया जा सकेगा ऐसा लेखक का विचार है।

१, बड़ौदा, १९३७; जिन जन्म स्तवन पृ० २७५, जिन स्तुति पृ० ४१२, धर्मघोष सूरि स्तवन पृ० ३०७-३०८, नर्मदा सुन्दरी सन्धि पृ० १८८, मदन रेखा सन्धि पृ० २६८, मुनि सुव्रत स्वामि स्तोत्र पृ० २७५, इत्यादि।

पन्द्रहवाँ अध्याय

अपभ्रंश गद्य

इस अध्याय से पूर्व के अध्यायो मे अपभ्रश-साहित्य के जिन अंगो का विवेचन किया गया है वे सब पद्य रूप मे उपलब्ध है। मस्कृत-साहित्य में भी अधिकाश साहित्य पद्यात्मक ही है, किन्तु गद्यकाव्य का भी अभाव नही। कादम्बरी, वासवदत्ता, दशकुमार चरित आदि गद्यकाव्य के सुन्दर निदर्शन है। प्राकृत मे भी अधिकाश साहित्य पद्य में ही लिखा गया। अपभ्रश मे भी अभी तक प्राय- अधिकाश साहित्य पद्यमे ही प्राप्त हुआ है। अपभ्रश गद्य के स्वरूप का प्राप्त सामग्री के आधार पर, यत्किंचित् निदर्शन इस अध्याय मे किया गया है।

'उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाला कथा' (वि० स० ८३५) मे अपभ्रश गद्य के कुछ वाक्य उपलब्ध होते है —

'जनार्दन पुच्छह कत्थ तुज्झे कल्ल जिमि अल्लया ? तेन भणिउ—साहिंउं जे तेतउ तस्स बलक्खइएल्लयह तणए जिमिअल्लया।'[1]

अर्थात् हे जनार्दन ! मैं पूछता हूँ तुमने कल कहा जीमा ? उसने उत्तर दिया—वही जो बल क्षयिक, उसके यहा।

'(भणिअं च णेण)—यदि पांडित्येन ततो मइं परिणेतव्य कुवलयमाल।
(अण्णेण भणियं)—अरे ! कवणु तउ पाण्डित्यु ?
(तेण भणिअं)—षडंगु पढमि, त्रिगुण मन्त्र पढमि, किं न पाण्डित्यु ?'

अर्थात् उसने कहा—यदि पाण्डित्य का विचार है तो मुझे कुवलयमाला से विवाह करना चाहिये। दूसरे ने कहा—अरे ! तुम मे कौन सा पाण्डित्य है। उसने कहा–षडगो को पढता हूँ, त्रिगुण मन्त्र पढता हूँ। क्या मुझ मे पाडित्य नही ?

इन वाक्यो मे पाण्डित्य, परिणेतव्य, षडग, त्रिगुण मन्त्र इत्यादि तत्सम शब्दो का बाहुल्य है। श्री आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के विचार मे इसका कारण सस्कृत-पाठशाला का वातावरण है। इन्होने 'हिन्दी-साहित्य का आदि काल' नामक अपनी पुस्तक (पृ० २०) में कुवलय माला कथा का एक निम्न लिखितउद्धरण दिया है। यह मथुरा स्थित अनाथालय के कोढियो, पगुओ, अन्धो, अपाहिजो आदि की भाषा का नमूना है।

---

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी पृ० १०४ से उद्धृत

"सयलं पुहईमंडलं परिभमिऊण संपत्तो महुराउरीए । एत्थ एक्कम्मि अणाहमण्डवे पविट्वो। अवि य तत्थ ताव मिलियालए कोड्ढीए। वलक्ख खइयए। दीण दुग्गय। अन्धलय। पंगुलय। ....किं च बहुणा जो माउ-पिउ-रुट्ठेल्लउ सो सो सव्वो वि तत्थ मिलिएल्लउ त्ति। ताहं च तेत्थु मिलिएलय सह समाणह एक्केक्क महा आलावा पयत्ता। भो भो! कयरहिं तित्थे दे (वे) वा गयाहं कयरा वाहि पावं वा पिट्टइ त्ति। एक्केण भणिअं—अमुक्का वाणारसी कोढिएहिं। तेण वाणारसी गयाणं कोढु फ्फिट्टइत्ति।

अण्णेण भणिअं—हुं हुं कहिउ वुत्तंतउ जंपिएल्लउ। कहिं कोढ। कहिं वाणारसी। मलत्थाणु भडारउ भो (को) ढइं जे देइ। उद्दालि लोअहुं।

....

अण्णेण भणिअं—काइं इमेण जत्थ चिर परूढ पाउ फिट्टइ, तुब्भे, उद्दिसह तित्थ।

अण्णेण भणिअं—प्रयागय उपडिअहं चिर परूढ पाय विहत्थ वि फिट्टत्ति।

अण्णेण भणिअं—अरे! पाव पुच्छिय पाय साहहि ?

अण्णेण भणिअं—खेदु मेल्लहं। जइ परमाइं। पिइवह कयइं पि महापावइं गंगा-संगमे ण्हायहं भइरवभडारयपडिअहं णासइ त्ति।"

इस उद्धरण मे पहिले उद्धरण की अपेक्षा सस्कृत के तत्सम शब्दो की बहुलता नही। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। फिर भी प्रयाग, गंगा-सगम, खेद आदि कुछ तत्सम शब्द प्रयुक्त हो ही गये है। इस प्रकार नवी शताब्दी मे शिक्षाभ्यासी या सुशिक्षित लोगो की भाषा मे ही नही, अशिक्षित या अर्ध-शिक्षित लोगो की भाषा मे भी तत्सम शब्द प्रयुक्त होने आरम्भ हो गये थे।

'जगत्सुन्दरी प्रयोग माला' नामक एक वैद्यक का ग्रन्थ है। इसका रचना काल १३वी शताब्दी अनुमान किया गया है।[१] इसमे कही कही पर गद्य का भी प्रयोग मिलता है। एक उदाहरण देखिये .

"सुल घाटी काठे मत्र (शाकिन्यधिकारे)

"कुकासु बाढहि उरामे देवकउ सुज्जाहासु खाड तु,

(सूर्यहास खड्ग) कुकासु बाड़हि हाकउ कुरहाडा लोहा,

राणउ आरणु वम्मी राणी काठवत्तिम साण कीधिणी जे गेउरिहि मंत,

ते रुप्पिणिहिं तोडउ सुलूके मोडलं सूलु घाटी के मोडउं, घाटी तोडउं काठे के मोडउं कांठे सूल घाटी। कांठे मंत्र—'उडमुड स्फुट स्वाहा'[२]

प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह में भी कुछ गद्य के उद्धरण सकलित किये गये है। अपभ्रश गद्य के स्वरूप-ज्ञान के लिये उनका भी यहाँ उल्लेख अप्रासगिक न होगा।[३]

---

१. कामता प्रसाद जैन, हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३०

२. वही, पृ० ५९।

३. प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रहान्तर्गत इन गद्य के उद्धरणो के उल्लेख का कारण पीछे चौदहवें अध्याय के पृष्ठ ३६१ पर स्पष्ट किया जा चुका है।

वि० सवत् १३३० मे लिखित **"आराधना"** की एक हस्तलिखित प्रति के गद्य का नमूना देखिये —

"सम्यक्त्व प्रतिपत्ति करहु, अरिहंतु देवता सुसाधु गुरु जिन प्रणीत धम्मु सम्यक्त्व दंडकु ऊचरहु सागार प्रत्याख्यानु ऊचरहु चऊहु सरणि पइसरहु ।"[1]

वि० सवत् १३४० मे लिखित **'अतिचार'** की हस्तलिखित प्रति का एक नमूना देखिये :—

"प्रतिषिद्ध जीवहिंसादिकतणइ करणि कृत्य देवपूजा धर्मानुष्ठान तणइ अकरणि जि जिनवचन तणइ अश्रद्धानि विपरीत परुपणा एवं बहुप्रकारि जु कोइ अतीचारु हुयउ। पक्ष दिवसमांहि ।[2]**"**

वि० संवत् १३५८ मे लिखित एक हस्तलिखित प्रति का उदाहरण :—

"पहिलउं त्रिकालु अतीत अनागत वर्तमान बहत्तरि तीर्थंकर सर्वपाप क्षयंकर हउं नमस्कारउं ।"[3]

वि० सवत् १३६९ में लिखित एक हस्त लिखित प्रति के गद्य का नमूना देखिये :—

"तउ तुम्हि ज्ञानाचार दरिसणाचार चारित्राचार तपाचार वीर्याचार पंचविध आचार विषइया अतीचार आलोउ ॥"[4]

विद्यापति रचित **"कीर्त्तिलता"**[5] में भी अनेक गद्य के उद्धरण मिलते है । कीर्तिलता की रचना कवि ने १३८० ई० के लगभग की थी । उस समय गद्य का क्या स्वरूप था यह निम्नलिखित उद्धरणो से स्पष्ट हो जायगा :—

"तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि मांझ पवित्र, अगणेय गुणग्राम, प्रतिज्ञा पद पूरणैक परशुराम, मर्यादा मंगलावास, कविता कालिदास, प्रवल रिपु वल सुभट संकीर्ण समर साहस दुर्निवार, धनुर्विद्या वैदग्ध्य धनंजयावतार, समाचरित चन्द्र चूड चरण सेव, समस्त प्रक्रिया विराजमान महाराजाधिराज श्रीमद् वीरसिंह देव ।"[6]

अर्थात उनके पुत्र महाराजाधिराज श्रीमान् वीरसिंह देव हुए, जो युवराजो मे पवित्र, अगणित गुणो के समूह, प्रतिज्ञा-वचन पूर्ण करने में परशुराम, मर्यादा के मगलकारी आवासस्थान, कविता में कालिदास के समान, प्रबल शत्रु सेना के योद्धाओ से पूर्ण युद्ध-भूमि मे अप्रतिहत साहस वाले, धनुर्विद्या की चतुरता मे अर्जुन के अवतार स्वरूप, पूज्य महादेव चरणों के सेवक और सब कार्यों में शोभायमान थे ।

गद्य मे समस्त शब्दो का प्रयोग है । सस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रचुरता है ।

---

१. प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ८६ ।
२. वही, पृ० ८८ ।
३. वही, पृ० ८८ ।
४. वही, पृ० ९१ ।
५. डा० बाबूराम सक्सेना द्वारा संपादित, प्रयाग, वि० सं० १९८६ ।
६. वही, पृ० १२ ।

एक दूसरा उदाहरण देखिये :—

"लोअ छत्तिअ, अवरु परिवार रज्ज भोग परिहरिअ, वर तुरंग परिजन विमुक्किअ, जननि पाअे पन्नविअ, जन्मभूमि को मोह छोड्डिअ, धनि छोड्डिअ......।"[1]

लोगो को छोडकर, अन्य परिवार राज्य भोग छोडकर, अच्छे-अच्छे घोड़े परिजनादि त्याग कर, जननी के चरणो मे प्रणाम कर, जन्मभूमि का मोह संवरण कर, स्त्री को छोड कर··· (गणेश राय का पुत्र चल पडा)।

इस गद्य खंड की भाषा समास रहित और अपेक्षाकृत सरल है।

श्री अगरचन्द नाहटा ने १४वी शताब्दी की '**तत्व विचार**' (तत्त वियार) नामक एक अप्रकाशित कृति का राजस्थान भारती मे निर्देश किया है।[2]

इसमें श्रावक के १२ व्रत, जीवादि नौ पदार्थ, देव गुरु धर्म, त्रिषष्टिशलाका पुरुष आदि का वर्णन है। एक उदाहरण देखिये—

एउ संसारु असारु। खण भंगरु, अणाइ चउ गईउ। अणोरु अपारु संसारु। अणाइ जीवु। अणेग अणादि कर्म संयोगि सुभासुभि कर्म अचेष्टित परि वे णिढिया जीव पुणु नरक गति। पुणु तिर्यंच गति। पुणु मनुष्य गति। पुण देव गति। ईम परि परि भमत्ता जीव जाति कुलादि गुण संपूर्ण दुर्लभु माणुखउ जनमु। सव्वंही भव मढि महा प्रधानु। मन चिंतितार्थ संपादकु। कथमपि देव तणइ योगि पावियइ। ततः अति दुर्लभ परमेश्वर सर्व्वज्ञोक्तु धर्म्म। इत्यादि

श्री नाहटाजी ने इसी समय के आसपास की "**धनपाल कथा**" नामक एक अप्रकाशित कृति का भी निर्देश किया है।[3] इसमें "**तिलक-मंजरी**" के रचयिता प्रसिद्ध विद्वान् धनपाल के जीवन की एक कथा का उल्लेख है। इनके जीवन मे किस प्रकार एक छोटी सी घटना से परिवर्त्तन हुआ और किस प्रकार उनकी तिलक मंजरी के अग्निसात् हो जाने पर पुनः वह लिखी गई, इसका संक्षेप में तत्कालीन प्रचलित लोक-भाषा में वर्णन किया गया है। इसके गद्य का नमूना देखिये—

"उज्जयनी नाम नगरी। तहिंठे भोजदेवु राजा। तीयहितणइ पंचह सयह पंडितह मांहि मुख्यु धनपाल नामि पंडितु। तीयहिं तणइ घरि अन्यदा कदाचित साधु विहरण निमित्तु पइठा। पंडितह णी भार्या त्रीजा दिवसह णी दधि लेउ उठी। ....व्रतिया भणियउं। केता दिवसह णी दधि। तिणि ब्राह्मणी भणियउं, त्रीजा दिवसह णी दधि। महामुनिहिं भणियउं त्रीजा दिवसह णी दधि न-उपगरी। व्रतिया ठाला नीसरता पंडिति धनपालि गवाक्षि उपविष्टि हूंतइ दीठा। विणवियउ, किसइ कारणि ठाला नीसरिया, पंडियाणी दधि दियइ छइ! तदनंतरु गवाक्ष हूंतउ ऊठिउ, महामुनि समीपि आवियउं। महामुनि व्रतिया! भगवंतहु! किसइ कारणि दधि न विहरू? महामुनिहिं भणियउ।

---

१. वही, पृ० २२।

२. अगर चन्द नाहटा—राजस्थान भारती, वर्ष ३, अंक ३-४, पृ० ११८-१२०।

३. अगर चन्द नाहटा—राजस्थान भारती, वर्ष ३, अंक २, पृ. ९३-९६।

तीजा दिवसह णी दधि न-उपगरी।" इत्यादि।

१५ वी शताब्दी की एक अप्रकाशित कृति **"पृथ्वीचन्द्र चरित्र"** उपलब्ध हुई है।[1] माणिक्य चन्द्र सूरि ने इसकी रचना वि० सं० १४७८ में की थी। ग्रन्थ का दूसरा नाम वाग्विलास है। इसमे वाग्विलास रूप चमत्कार प्रधान वर्णनो के कारण सभवत इस का यह नाम भी रचयिता ने रखा हो। उदाहरण—

"विस्तरिउ वर्षाकाल, जो पंथी तणउ काल, नाठउ दुकाल। जिणिइ वर्षाकालि मधुर ध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवतां जय ढक्का वाजइ। चिहुं दिशि वीज झलहलइ, पंथी घर भणी पुलइ। विपरीत आकाश, चन्द्रसूर्य परियास। राति अंधरी, लवइं तिमिरि। उत्तर नऊ उनयण, छायउ गयण। दिसि घोर, नाचई मोर। सबर वरसइ धाराधर। पाणी तणा प्रवाह खलहलइ, वाड़ी ऊपर वेला वलइ। चीखलि चालतां सकट स्खलइं, लोक तणा मन धर्म ऊपरि वलइं। नदी महा पूरि आवइं, पृथ्वी पीठ प्लावइं। नवा किसलय गहगहइं, वल्ली वितान लहलहइं।...." इत्यादि।

पत्तन भण्डार की ग्रन्थ सूची मे भी **'उक्ति व्यक्ति विवृति'**[2] नामक ग्रन्थ में कुछ गद्य मिलता है। सम्भवत यह ग्रन्थ दामोदर की "उक्ति व्यक्ति" की व्याख्या है। उक्ति व्यक्ति का लक्ष्य बनाया गया है कि—

"उक्ति व्यक्तिं बुद्ध्वा बालैरपि सस्कृत क्रियते।" इससे प्रतीत होता है कि उक्ति व्यक्ति बच्चों को संस्कृत सिखाने के लिए लिखी गई थी। उक्ति व्यक्ति विवृति में लेखक ने संस्कृत पदो का अर्थ अपभ्रंश भाषा मे भी दिया है। प्रारम्भिक मंगलाचरण में लेखक कहता है—

नमः सर्वविदे।
गणानां नायकं नत्वा हेरम्बममितद्युतिं।
उक्ति व्यक्तौ विधास्यामो विवृतिं बाल लालिकां ॥१॥

उक्तेर्भाषितस्य व्यक्ति प्रकटीकरणं विधास्यामः। अपभ्रंश भाषाछन्नां संस्कृत-भाषां प्रकाशयिष्याम इत्यर्थः। अपभ्रंस (श) भाषया लोको वदति यथा। धर्म्मु आथि धर्म्मु कीज (इ)। दुह गावि दुध गुआल। यजमान कापडिआ। गंगाए धर्म्मु हो पापु जा। पृथ्वी वरति। मेहं वरिस। आंखि देख। नेहाल। आंखि देखत आछ। जीभें चाख। काने सुण। बोलं बोल। वाचा वदति ॥१०॥ बोलं बोलती। पायं जा पादेन याति। मूतत आछ मूत्र-यन्नास्ते ॥११॥ भोजन कर। देवदत्त कट करिह देवदत्तः कटं करिष्यति। हउं पर्व्वतउ टालउं अहं पर्वतमपि टालयामि सवहि उपकारिआ होउ सवषामुपकारी भूयात् ॥१४॥ धर्म्मु करत आछ धर्मं कुर्वन्नास्ते ॥१५॥ देवता दर्शन कर देउ देख ॥१६॥ वेद पढव वेदः

---

१. अगरचन्द नाहटा—कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य-ग्रन्थ, राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, पृ० ३९-४१।

२. पत्तन भंडार की ग्रंथ सूची भाग १, पृ० १२८।

पठितव्यः ॥१७॥ दुहाव गाइ दुधु गुआलं गोसांवि दोह्यति गां दुग्धं गोपालेन स्वामी ॥१८॥ सिंहासण आछ राजा सिंहासने तिष्ठति राजा ॥१९॥ मेहलि सोअ मेहला स्वपिति ॥२०॥ छात्रें गाउं जाइआ छात्रेण ग्रामे गम्यते ॥२१॥ कारुय दुगु वस्तु के एते द्वे वस्तुनी ॥२५॥ कौ ताहा जेंवत आछ कस्तत्र भुंजान आसीत् ॥२७॥ काह इहा पढिय का किह केनात्र पठ्यते कस्मै ॥३३॥ छात्र इहां काइ पढ काहेंका किहका पास काहां ककरें घर छात्रोत्र किं पठति केन कस्मै कुतः कुत्र कस्य गृहे ॥३६॥ हल्लअ वथु पाणि तरंत लघुकं वस्तु पानीये प्लवते ॥४१॥ इत्यादि।

ग्रन्थ के समय का कोई उल्लेख नही मिलता अत किस काल का गद्य है कुछ निश्चय से नही कहा जा सकता। भाषा में शब्द रूप स्थिर नही। एक स्थान पर 'वस्तु' दूसरे स्थान पर 'वथु' का प्रयोग किया गया है।

अपभ्रंश-गद्य के उपरिलिखित उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपभ्रंश-गद्य में अपभ्रंश-पद्य की प्रथा के विपरीत संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग होता था। इस प्रकार के तत्सम शब्दो का प्रयोग नवी शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया था और यह उत्तरोत्तर बढता ही गया। तत्सम शब्दो के प्रयोग के अतिरिक्त १४वी-१५वी शताब्दी के अपभ्रंश-गद्य में आन्त्यानुप्रासमय (तुकान्त) शब्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होने लग गई थी। अन्त्यानुप्रास की यह प्रवृत्ति अपभ्रश-पद्य में प्रचुरता से उपलब्ध होती है और यह अपभ्रश-पद्य की एक विशेषता मानी गई है। गद्य मे इस प्रवृत्ति के दर्शन के कारण उस काल के गद्य को कुछ विद्वानो ने 'पद्यानुकारी गद्य' कहा है।

सोलहवाँ अध्याय

एक तुलनात्मक विवेचन

सस्कृत-प्रबन्ध-काव्य अधिकतर रामायण, महाभारत, किसी पौराणिक उपाख्यान या किसी राजा के चरित्र को आधार मान कर ही लिखे गये है। जैनाचार्यों ने सस्कृत मे कुछ ऐसे भी प्रबन्धकाव्यो की रचना की जिनमे किसी जैन तीर्थंकर के चरित्र का वर्णन किया। प्राकृत में भी यही परम्परा चलती हुई दिखाई देती है। 'सेतुबन्ध' या 'रावण वध' रामकथा के ऊपर आश्रित है। 'गौडवहो' प्रधान रूप से कन्नौज के राजा यशोवर्मा के चरित्र का वर्णन है। सस्कृत और प्राकृत काव्यो में जो भी विषय चुना गया उसका काव्यमय भाषा मे कवि ने वर्णन किया। उस वर्णन मे धार्मिक उपदेश भावना का विचार नही दिखाई देता।

जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है अपभ्रश के काव्यो का वर्णनीय विषय जैन-धर्मानुकूल रामकथा या कृष्णकथा के अतिरिक्त जैनधर्मानुगत अनेक तीर्थंकरो और महापुरुषो का चरित वर्णन है। इसके अतिरिक्त लौकिक जीवन से सबद्ध विषय या प्रेम-कथा भी अपभ्रश काव्य का विषय हुआ। विषय चाहे कोई भी हुआ सब धार्मिक आवरण से आच्छन्न रहा। इन प्रबन्ध काव्यो मे इस धार्मिक वातावरण के कारण कुछ नीरस एकरूपता आ गई।

विषय विस्तार की दृष्टि से संस्कृत महाकाव्यो मे ही हमे दो प्रकार के महाकाव्य दिखाई देते है। कुछ महाकाव्य ऐसे है जिनमें कथाविस्तार है, घटना-बाहुल्य है और उसके साथ-साथ प्राकृतिक दृश्यो और वर्णनो में काव्य का प्राचुर्य भी है। किन्तु ऐसे भी महाकाव्य सस्कृत मे लिखे गये जिनमें कथा बहुत सक्षिप्त है किन्तु प्राकृतिक वर्णनो के विस्तार में प्रचुर-काव्यत्व दृष्टिगोचर होता है। प्राकृत में भी हमें इन दो काव्यशैलियो के दर्शन होते है। यदि सेतुबन्ध मे रामकथा का विस्तार है और तदन्तर्गत काव्यमय वर्णनो का विधान है तो गौडवहो मे गौड राजा के वध का केवल ३-४ पद्यों में निर्देश मात्र है और काव्यमय वर्णनो का पर्याप्तरूप से स्थल-स्थल पर समावेश है।

अपभ्रश महाकाव्यो मे भी हमें वर्ण्यविषय या कथा का पर्याप्त विस्तार मिलता है। कथा के पात्रो के अलौकिक चमत्कारो, पूर्वजन्म की कथाओं और पौराणिक उपाख्यानो के मिश्रण से कथानक का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि उसमे कथा-सूत्र का पकडना भी कठिन हो जाता है। अनेक कथाओ और अवान्तर कथाओ मे उलझे हुए अनेक स्थल यद्यपि सुन्दर कवित्व के भी निदर्शक है तथापि उनमें कवित्व प्रचुर परिमाण मे प्रस्फुटित नहीं हो सका। विषय-विस्तार और कवित्व-विस्तार का सतुलन इन महाकाव्यो मे नही

दिखाई देता। इसके विपरीत विषय का विस्तार अधिक है किन्तु कवित्व का परिमाण अपेक्षाकृत स्वल्प है।

संस्कृत महाकाव्यो मे सर्गबद्ध रचना होती थी। महाकाव्य के लक्षणकारो ने "सर्ग बन्धो महाकाव्य" कह कर महाकाव्य मे कथा का अनेक सर्गो मे विभाजन आवश्यक माना है।[1] इतना ही नही कि कथा सर्गबद्ध होनी चाहिये उन्होने सर्गो की सख्या की ओर भी निर्देश किया है। प्राकृत महाकाव्यो मे कथा अनेक आश्वासों मे विभक्त होती है। सर्ग शब्द के स्थान पर प्राकृतकवियो ने आश्वास शब्द का प्रयोग किया और इस प्रकार कथा के अनेक विभाग किये। किन्तु प्राकृत मे ऐसे भी महाकाव्य हैं जिनमे सारी की सारी कथा पद्यो मे निरन्तर आगे बढनी जाती है और वह आश्वासो में विभक्त नही की गई। 'गौडवहो' म भिन्न-भिन्न विषयो और घटनाओ को कुलको और महाकुलको में बाँधा गया है। इस प्रकार सर्गों या आश्वासो की परपरा की इतिश्री प्राकृत महाकाव्य में हो गई। प्राकृत की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव संस्कृत महाकाव्यो पर भी पडा। देवप्रभ सूरि ने 'पाण्डव-चरित' १८ सर्गों में रचा। यद्यपि रचना सर्ग बद्ध है तथापि प्रत्येक सर्ग मे अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग किया गया है।

अपभ्रंश महाकाव्यो मे कथावस्तु अनेक सन्धियो में विभक्त होती है और प्रत्येक सन्धि अनेक कडवको से मिलकर बनती है। सन्धियो की सख्या का कोई नियम नहीं। पुष्पदन्त के 'महापुराण' मे १०२ सन्धियाँ हैं और धवल के 'हरिवश पुराण' मे १२२ सन्धियाँ है।

संस्कृत-महाकाव्य में नायक कोई देवता या मानव होता था और ऐसा मानव, धीरोदात्तयुक्त और सत्कुलीन क्षत्रिय होता था। इसमे किसी एक नायक के या एक ही वश में उत्पन्न अनेक नायको के चरित्र का वर्णन होता था। जैन कवियो ने संस्कृत में जो महाकाव्य लिखे उनमें कोई एक तीर्थंकर या अनेक जैन धर्मावलम्बी महापुरुष भी नायक हुए। वाग्भट का 'नेमि निर्वाण' और हेमचन्द्र का 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित' इसके क्रमशः उदाहरण हे। प्राकृत महाकाव्यो में भी नायक की यह परंपरा चलती रही।

अपभ्रश मे जैन-कवियो ने अपने सस्कृत-महाकाव्यो के ढग पर ऐसे महाकाव्य लिखे जिनमें किसी तीर्थंकर को या अनेक जैन धर्मावलम्वी महापुरुषो को नायक बनाया। संस्कृत की परपरा से भिन्न एक लौकिक पुरुष भी अपभ्रश महाकाव्य में नायक बनने लगा, यद्यपि उसके चरित्र का उत्कर्ष कवि ने किसी व्रत के माहात्म्य या जिन भक्ति के कारण प्रदर्शित किया है। धनपाल रचित 'भविसयत्त कहा' का नायक एक श्रेष्ठी पुत्र था। नायक और नायिका के विषय मे जो नियम-विधान और ढाँचा सस्कृत में बताया गया, उसकी अपभ्रश काव्यो में प्रायः अवहेलना पाई जाती है।

कथा का आरम्भ सस्कृत में जिस शैली से किया गया वही शैली हमें प्राकृत काव्यों

---

१. साहित्य दर्पण, निर्णय सागर प्रेस प्रकाशन, तृतीय संस्करण, सन् १९२५ ई०, ६. ३१५।

मे और तदनन्तर अपभ्रंश महाकाव्यो में भी दिखाई देती है। आदि मे मगलाचरण, सरस्वती वन्दन, खलनिन्दा, सज्जनप्रशसा, कवि का आत्मविनय इत्यादि अपभ्रंश महाकाव्यो मे भी हमे दिखाई देते है। मगलाचरण जैन धर्म के अनुसार जिन पूजादि से किया गया है।

सस्कृत प्रबन्ध काव्य मे नायक के चरित्र के अतिरिक्त उषा काल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सन्ध्या, रजनी, नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतु, युद्ध यात्रा आदि दृश्यो के वर्णन का विधान भी अलकार ग्रन्थो मे किया गया है।[1] इन वर्णनो मे कवियो ने अपना काव्य-चमत्कार भली प्रकार दिखाया। ये वर्णन थोडे या बहुत रूप मे प्राय: सभी प्रबन्ध काव्यो में मिलते हैं चाहे वह सस्कृत का प्रबन्ध काव्य हो चाहे प्राकृत का और चाहे अपभ्रंश का। सस्कृत प्रबन्ध काव्यो मे सभी कवियो ने इन विषयो का वर्णन किया किन्तु उनकी वर्णन शैली में भेद है। किसी ने प्राचीन परपरा का अन्धानुकरण करते हुए इन घटनाओ का वर्णन किया और किसी ने आँखें खोल कर, स्वय इन विषयो का अनुभव करते हुए, हृदय की तल्लीनता के साथ इन का वर्णन किया। जहा भी प्राचीन परिपाटी और रूढि से प्रेरित हो कवि का वर्णन हुआ वहा वह सजीव और सुन्दर न हो सका। जहा कवि का हृदय इन विषयो में रमा और उसने अपनी अनुभूति से इन विषयो का वर्णन किया वहा वर्णन स्वाभाविक, नवीन और सजीव हुआ। यही बात प्राकृत और अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यो के विषय में भी चरितार्थ होती है।

इसके अतिरिक्त प्राकृत-प्रबन्ध काव्यो में उपर्युक्त दृश्यो के वर्णन मे एक नई प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होने लग गई थी। उन काव्यों में कवि ने इन दृश्यो का वर्णन मानव-जीवन के संबन्ध से किया। कल कल ध्वनि वाली मन्द मन्द गति से बहती हुई नदी, कवि की दृष्टि मे कितना भी मधुर सगीत और मादक सौन्दर्य उडेलती जाती हो किन्तु यदि उसका मानव जीवन के साथ कोई संबन्ध नही दिखाई देता तो वह हमारे किस काम की? प्राकृत प्रबन्ध काव्यो में इसी मानव जीवन की धारा हमें दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त प्राकृत-प्रबन्ध काव्यो में कवि ने अनेक स्थलों पर ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र अंकित किये है।[2]

अपभ्रंश-प्रबन्ध काव्यो में भी कवि इस मानव जीवन की भावना को नही भूलता।

---

१. सन्ध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोष ध्वान्त वासराः।
प्रात मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन सागराः॥
संभोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः।
रण प्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।

साहित्य दर्पण, ६०३२२–३२४

२. गौड़वहो, द्वितीय संस्करण, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना, १९२७ ई०, पद्य संख्या ३९२, ४०९, ५९८, ६०१, ६०७, ६०८॥

इन प्रबन्ध काव्यो में अनेक वर्णन ऐसे मिलते है जिनका मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसे अनेक स्थलो की ओर भिन्न भिन्न प्रसगो पर पिछले अध्यायो मे सकेत किया जा चुका है।

सस्कृत-महाकाव्यो मे श्रृङ्गार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस प्रधान रूप से पाया जाता है। अन्य रस गौण रूप से मिलते हैं। सस्कृत के अधिकतर महाकाव्यो में श्रृङ्गार या वीर रस ही प्रधान रूप से दिखाई देता है। किसी प्रेम कथा मे या किसी राजा के शौर्य-पराक्रम के वर्णन मे यद्यपि दोनो रसो का वर्णन होता है तथापि प्रधानता विषय के अनुसार एक ही रस की होती है। दूसरा रस प्रथम रस के पोषक रूप मे ही प्रयुक्त होता है। प्राकृत-महाकाव्यो मे भी इसी प्रकार की परपरा दिखाई देती है।

अपभ्रश-महाकाव्यो मे, इसके विपरीत, शान्त रस की प्रधानता दिखाई देती है। चाहे कोई प्रेम कथा हो, चाहे किसी तीर्थंकर के जीवन का चित्रण, सर्वत्र श्रृङ्गार और वीर रस का प्रदर्शन तो हुआ है किन्तु सब पात्र जीवन के उपभोगो को भोग कर अन्त मे ससार से विरक्त हो जैन धर्म मे दीक्षित हो भिक्षुक का जीवन बिताते हुए दिखाई देते है। इस प्रकार श्रृङ्गार और वीर रस का अन्ततोगत्वा शान्त रस मे ही पर्यवसान दिखाई देता है।

सस्कृत-महाकाव्यो मे सम्पूर्ण नाटक-सन्धियो की योजना का विधान भी आलकारिकों ने किया है। ये सन्धियाँ उत्तरोत्तर क्षीण होती गई और यही कारण है कि अपभ्रश महाकाव्यो मे इन सबका ठीक ठीक मिलना प्राय. असम्भव ही है।

प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन की परिपाटी सस्कृत और प्राकृत काव्यों के समान अपभ्रश काव्यो में भी आई। प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अग है। चिरकाल से प्रकृति का मानव जीवन के साथ सम्बन्ध बना चला आ रहा है। यदि कविता जीवन की व्याख्या है तो कवि प्रकृति की उपेक्षा कैसे कर सकता है ?

प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपो का वर्णन—ऋतु, प्रभात, सूर्योदय, सन्ध्या, चन्द्रोदय, समुद्र, नदी, पर्वत, सरोवर, वन आदि के वर्णन के रूप मे—हमे प्राचीन साहित्य में मिलता है। इन्ही रूपो मे प्रकृति का वर्णन अपभ्रश-काव्यो मे भी पाया जाता है, जैसा कि प्रसगानुसार काव्यो का परिचय देते हुए अनेक उदाहरणो से स्पष्ट किया जा चुका है।

सस्कृत-प्राकृत के समान अपभ्रंश मे भी प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपो का वर्णन कवि ने आलबन रूप में भी किया है। यद्यपि उद्दीपन रूप मे भी प्रकृति का अकन हुआ है तथापि शुद्ध आलबन रूप मे प्रकृति के वर्णनो की भी प्रचुरता है।

भाषा के विषय मे सस्कृत-प्रबन्ध काव्यो मे किसी विशेष नियम का उल्लेख नही किया जा सकता। कवि की शैली के अनुसार प्रबन्धकाव्य की भाषा भी परिवर्तित होती रही।

अपभ्रंश कवियो की भाषा के विषय में कोई विशेषता प्रदर्शित करना सभव नही। भाषा कवि की अपनी शैली पर आश्रित होती है। वैयक्तिक शैली के भेद से कवियो की भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। अतः सामूहिक रूप से अपभ्रश काव्यो की भाषा के विषय मे कोई निर्णय देना संभव नही। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन काव्यों की भाषा में दो धाराये स्पष्ट रूप से बहती हुई दिखाई देती है। कुछ

कवियो ने तत्कालीन संस्कृत-प्राकृत कवियो की भाषा को अपनाया। इसमें समस्त शब्दों तथा अलंकारो की अधिकता है जिससे भाषा अपेक्षाकृत क्लिष्ट हो गई है। यह भाषा शिष्ट और शिक्षित वर्ग की भाषा का रूप है। दूसरी धारा में कवियो ने तत्कालीन संस्कृत-प्राकृत कवियो की भाषा-परम्परा को छोड स्वतन्त्र शैली का प्रयोग किया है। इसमें छोटे-छोटे प्रभावोत्पादक वाक्य, शब्दो की आवृत्ति, वाग्धाराओ और लोकोक्तियो का प्रयोग किया गया है। यह भाषा सरल, चलती हुई और अधिक प्रवाहमयी है और यह सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा प्रतीत होती है। अनेक कवियो ने विषय के अनुसार कही-कही इन दोनो धाराओ का प्रयोग किया है।

संस्कृत कवियो ने प्राय. वर्ण वृत्तो का अधिकता से प्रयोग किया है। प्राकृत कवियो ने मात्रिक छन्दों को अपनाकर वर्ण वृत्तो की जटिलता को कम करने का प्रयत्न किया। प्राकृत कवियो का प्रसिद्ध गाथा छद मात्रिक छन्द ही है। प्राकृत कवियो ने वर्ण वृत्तो का भी प्रयोग किया किन्तु प्रधानता उन्होंने मात्रिक छन्दो को ही दी। अपभ्रंश में आ कर मात्रिक छन्दो की प्रचुरता और भी बढ गई। अनेक नये मात्रिक छन्दो की सृष्टि भी अपभ्रंश कवियो ने की। नाद सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये दो मात्रिक छन्दो को मिला कर अनेक मिश्रित मात्रिक छन्दो का प्रयोग अपभ्रंश कवियो के काव्यो मे मिलता है।

भिन्न-भिन्न सर्गों में भिन्न-भिन्न छन्दो के प्रयोग की प्रथा यद्यपि प्राकृत कवियो में ही लुप्त होने लग गई थी तथापि उसका पूर्ण रूप से लोप अपभ्रश काव्यो मे नही हो सका। एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग हो ऐसा नियम भी अपभ्रश काव्यो में नही दिखाई देता। एक ही सन्धि में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है।

छन्दो के चरणो मे अन्त्यानुप्रास की प्रवृत्ति अपभ्रंश मे दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत में पादान्त यमक के अतिरिक्त अन्यत्र इसका अभाव सा ही था। प्राकृत में भी यह प्रवृत्ति नही दिखाई देती। अपभ्रश कवियो की यह अपनी निराली सूझ है। आगे चल कर हिन्दी काव्य भी अपभ्रश कवियो की इस अनोखी सूझ का ऋणी है।

सस्कृत-साहित्य में गद्य के उदाहरण नाटको मे या चम्पू ग्रन्थो में मिलते है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के ग्रन्थ तो गद्य-काव्य का उदाहरण प्रस्तुत करते है। इस गद्य मे अलंकृत शैली के दर्शन होते है। यह गद्य, समस्त शब्दों और लम्बे-लम्बे वाक्यो से युक्त है। सस्कृत का विशाल कथा-साहित्य भी गद्य मे लिखा हुआ मिलता है। ये कथाये सरस और सरल भाषा में अत्यन्त रोचक ढंग से लिखी गई है।

अपभ्रश में गद्य के अधिक ग्रन्थ उपलब्ध नही। जो भी गद्य मिलता है, उसकी भाषा पद्य से कुछ भिन्न प्रतीत होती है। गद्य मे सभवत' भाषा अधिक विकसित नही हो सकी। अपभ्रंश पद्य में सस्कृत के तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग नही हुआ——सस्कृत और प्राकृत के तद्भव शब्द ही प्रचुरता से प्रयुक्त हुए। किन्तु अपभ्रश-गद्य मे सस्कृत के तत्सम शब्द बहुलता से मिलते हैं। इसी प्रकार संस्कृत के समान समस्त शब्दो का व्यवहार भी अपभ्रश गद्य में दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त गद्य को अलकृत करने के लिये अन्त्यानुप्रास का प्रयोग भी किया गया।

सतरहवां अध्याय

अपभ्रंश-साहित्य का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव

पिछले अध्यायो में अपभ्रश-साहित्य का जो भी विवेचन किया गया है उससे उस साहित्य के रूप का परिज्ञान भली-भाँति हो गया होगा। इस अध्याय में अपभ्रंश-साहित्य ने हिन्दी-साहित्य को किस रूप में प्रभावित किया इस पर संक्षेप से विचार प्रस्तुत किया जायगा। अपभ्रंश-साहित्य का प्रभाव हिन्दी-साहित्य के काव्य रूपो पर, काव्य पद्धतियों पर, काव्य के बाह्य रूप पर तथा हिन्दी-साहित्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष पर पड़ा दिखाई देता है।

जैसा कि पहिले निर्देश किया जा चुका है अपभ्रंश-साहित्य और आधुनिक काल की वर्तमान प्रान्तीय आर्यभाषाये चिरकाल तक समानान्तर रूप से चलती रही। अत-एव उत्तरकालीन अपभ्रश-साहित्य की रचनाये प्राचीनकालीन प्रान्तीय भाषाओ से और प्राचीनकालीन प्रान्तीय भाषाओ की रचनाये उत्तरकालीन अपभ्रश की रचनाओ से प्रभावित हुई हो तो इसमे कोई आश्चर्य नही। इनमे परस्पर भाव, भाषा, शैली आदि का आदान प्रदान या पारस्परिक प्रेरणा से प्रभावित होना संभव ही है। इस प्रभाव के दिखाने का अभिप्राय इतना ही है कि भारतीय साहित्य की अविच्छिन्न धारा भारत में चिरकाल से प्रवाहित होती चली आ रही है। इसी धारा का परंपरागत रूप आज हमें हिन्दी-साहित्य में दिखाई देता है। देश और काल के प्रभाव से इस धारा का बाह्य रूप परिवर्तित होता रहा किन्तु उसका आन्तरिक रूप ज्यो का त्यों, अबाध गति से, निरन्तर आगे आगे प्रवाहित होता रहा।

अपभ्रंश-साहित्य का हिन्दी के काव्य-रूपों पर प्रभाव

अपभ्रंश-साहित्य के प्रबन्धात्मक और मुक्तक काव्यो का पिछले अध्यायो में विवेचन किया जा चुका है। अपभ्रंश के प्रबन्धात्मक महापुराण, पुराण, चरित ग्रन्थ, प्रेमाख्यान, कथा-ग्रन्थ इत्यादि सब धर्म के आवरण से आवृत है इसका भी निर्देश किया जा चुका है।

जहा तक काव्य के लिए चरित शब्द के प्रयोग का प्रश्न है हिन्दी-साहित्य मे राम चरित मानस, वीरसिंह देव चरित, सुदामा चरित, सुजान चरित, बुद्ध चरित आदि काव्य चरित नाम से प्रसिद्ध है। अपभ्रश के चरिउ ग्रन्थो मे किसी जैन धर्मावलम्बी महापुरुष के चरित का वर्णन, अनेक पूर्व जन्म-सम्बन्धी कथाओ और अलौकिक घटनाओं से मिश्रित मिलता है। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य में भी कतिपय चरित ग्रन्थो मे किसी महापुरुष को लेकर उसका चरित अंकित किया गया है और अपभ्रश के चरित ग्रथों

की भाँति इनमे भी धर्म भावना मिलती है। राम चरित मानस मे वैष्णवधर्म के प्रभाव से प्रभावित होकर कवि तुलसी दास, अपने चरित नायक को ईश्वर कोटि तक पहुँचा देते है।

अपभ्रंश काव्यो के प्रेमाख्यानक काव्य हिन्दी-साहित्य मे जायसी की पद्मावत के रूप मे प्रकट हुए। अपभ्रंश मे ये प्रेमाख्यान धार्मिक आवरण से आवृत थे। हिन्दी-साहित्य मे इन प्रेमाख्यान के काव्यो मे अध्यात्म तत्व का व्यग्य रूप मे समावेश हुआ। इसी तत्व को स्पष्ट करने के लिए जायसी को कहना पडा—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत, सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू॥[1]

हिन्दी-साहित्य इन प्रेमकथाओ के लिए अपभ्रंश साहित्य का ऋणी है। किन्तु इन कथाओ के व्यग्य विधान अथवा आध्यात्मिक अभिव्यजना के लिए वह सूफी साहित्य का आभारी और 'मसनवियो' से प्रभावित है।

हिन्दी साहित्य मे प्रबन्धात्मक-वीर काव्य रासो के रूप मे भी मिलते है। इन रासो ग्रथो मे प्रतिनिधि काव्य पृथ्वीराज रासो को माना जाता है। किन्तु रासो का आधुनिक रूप चाहे किसी भौषा मे हो वह अपने प्रारम्भिक रूप मे अपभ्रंश काव्य ही था। इसी के आधार पर आगे अन्य रासो ग्रन्थ लिखे गये। कुछ अन्य रासा ग्रन्थ भी अपभ्रंश मे मिलते हैं, उनमे पृथ्वीराज रासो के समान किसी राजा का जीवन अंकित नही अपितु उनका विषय धार्मिक है। इस प्रकार के कुछ ग्रन्थो का निर्देश पीछे किया जा चुका है।

इस प्रकार प्रबन्ध-काव्यो की वह परम्परा जो सस्कृत प्राकृत से चलती आ रही थी अपभ्रंश मे यद्यपि कुछ शिथिल पड़ गई थी तथापि वह इसके आगे हिन्दी साहित्य मे भी प्रवाहित होती रही। इन प्रबन्ध-काव्यो के दो रूप संस्कृत साहित्य मे ही हो गये थे—एक मे कथानक के विस्तार के साथ-साथ काव्यमय वर्णन और दूसरे मे सक्षिप्त कथानक किन्तु काव्यमय वर्णन की प्रचुरता। इस प्रकार का घटना-बाहुल्य और काव्य-प्राचुर्य हमें कालिदास के काव्यो में दिखाई देता है किन्तु पीछे से कथातत्व सक्षिप्त हो गया, वर्णन का विस्तार हो गया और ये वर्णन अलकृत भाषा मे प्रस्तुत किये जाने लगे। श्रीहर्ष-कृत नैषध चरित, भारविकृत किरातार्जुनीय आदि इसी श्रेणी के काव्य है।

अपभ्रंश काव्यो मे घटना-बाहुल्य तो चलता रहा किन्तु काव्यत्व कुछ दब सा गया। धार्मिक वातावरण के सीमित क्षेत्र मे चलने से कवि की स्वच्छन्दता भी जाती रही।

हिन्दी काव्यो मे घटनावैचिश्य का रूप तो मिलता है किन्तु धर्म का वह आग्रह कवि के आगे नही रहा। उसकी गति अबाध रूप से आगे बढती जाती है। राम-

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित, वि० सं० १९८१, पृ० ३३२।

चरित मानस मे कथा का पूर्ण विस्तार है और काव्यमय वर्णनों का भी पूर्णतया सचार है। पद्मावत मे भी दोनो प्रकार के तत्व मिलते है। कामायनी में कथावस्तु का वह विस्तार नही किन्तु काव्यमय वर्णनो का प्राचुर्य है। कामायनी की कथा भी रूपक तत्व के संमिश्रण से सक्षिप्त नही रह जाती।

अपभ्रंश काव्यो मे कवियो ने चरित नायक के चरित्र को उत्कृष्ट कोटि का अंकित करने का प्रयत्न किया है। चरित्र चित्रण के द्वारा कवि चाहता है कि श्रोता या पाठक उसका आचरण करे। चरित नायक के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर कवि का ध्यान उतना न था।

हिन्दी काव्यो मे चरित्र चित्रणकी परिपाटी पर अपभ्रश काव्यो का प्रभाव पड़ा ऐसी कल्पना असंगत नही। सस्कृत काव्यो मे रसात्मकता ही प्रधान थी चरित्र चित्रण प्राय. गौण था। हिन्दी काव्यो ने रसात्मकता के साथ-साथ चरित्र चित्रण के तत्व का मिश्रण कर इस दिशा मे प्रगति की।

हिन्दी मे अपभ्रशकालीन गीतो की परम्परा मे गीतिकाव्य भी रचे गये। गीति-काव्य मे गेयता होनी चाहिये किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है हृदय के किसी भाव की तीव्र-व्यजना। सस्कृत मे जयदेव का गीत गोविन्द उपलब्ध है किन्तु उसे भी अनेक विद्वानो ने अपभ्रश की छाया के रूप मे माना है। अपभ्रश मे अनेक गीत मिलते भी है जिनका पहले निर्देश किया जा चुका है। सिद्धो के गीतो मे गेयता और भाव-तीव्रता दोनो है। हृदय के भाव को, भाषा की परवाह न कर, तीव्रता से इन कवियो ने अभिव्यक्त किया है। अपभ्रश मे गीतो के महत्व को श्री गोवर्द्धनाचार्य ने भी अपनी 'आर्या सप्तशती' मे मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

ग्रन्थिलतया किमिक्षोः किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य।
किमनार्जवेन शशिनः किं दारिद्र्येण दयितस्य॥२१५॥

'किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य' मे जहाँ अपभ्रश की उपेक्षा है वही उसकी 'गीत' के कारण महिमा भी। इस प्रकार हिन्दी के गीति-काव्यो को हम इन अपभ्रंश के गीतो का परिमार्जित रूप कह सकते है। इसके विनय के पद सस्कृत के स्तोत्रो की आत्मा को लिये हुए राग-रागनियो में बधे प्रचार में आये किन्तु उनका रूप अपभ्रंश के साचे मे ही ढला। विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता में अपभ्रश (अवहट्ठ) की लोकप्रियता का उल्लेख किया है—

सक्कय वाणी बहुअ न भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तैं तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

अपभ्रंश के इस मोह के कारण उसकी पदावली पर सिद्धो के अपभ्रश गीतो का कोई प्रभाव न पड़ा हो कैसे माना जा सकता है? यही गीत परम्परा आगे तुलसी की गीतावली और सूर के पदो मे दिखाई देती है। यद्यपि गीतबद्ध कथात्मक काव्य अपभ्रंश में नही मिलता तथापि इसका बीज रूप में आभास सिद्धों के गानो मे मिल सकता है।

अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों के प्रतिनिधि-कवियों पर प्रभाव

हिन्दी साहित्य प्राय: चार कालो मे बाटा जाता है—वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। इनमे प्रथम तीन कालो पर अपभ्रश साहित्य का जितना प्रभाव परिलक्षित होता है उतना आधुनिक काल पर नही। आधुनिक काल की अनेक प्रवृत्तियाँ पाश्चात्य साहित्य के ससर्ग से हिन्दी साहित्य में आई। हिन्दी के वीरगाथा काल का प्रतिनिधि कवि और काव्य, चन्द और पृथ्वीराज रासो माने जाते हैं। हिन्दी के वीरगाथा काल मे अनेक रासो ग्रन्थो का परिगणन किया जाता है। अपभ्रश साहित्य मे भी कुछ रासा ग्रन्थ मिलते है जिनका पिछले अध्यायो में विवेचन किया जा चुका है। पृथ्वीराज रासो में प्राप्य अपभ्रश प्रवृत्तियो का भी पीछे उल्लेख किया जा चुका है।[1] पृथ्वीराज रासो के अतिरिक्त अन्य रासो ग्रन्थो पर भी अपभ्रश के रासा ग्रन्थो का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पडता है।

नरपति नाल्ह कृत बीसल देव रासो के विषय में डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं। "बीसल देव रासो का व्याकरण अपभ्रश के नियमो का पालन कर रहा है। कारक, क्रियाओं और संज्ञाओ के रूप अपभ्रश भाषा के ही है, अतएव भाषा की दृष्टि से इस रासो को अपभ्रंश भाषा से सद्य विकसित हिन्दी का ग्रन्थ कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नही होनी चाहिये।[2] भाषा की दृष्टि से ही नही किन्तु भावधारा और शैली की दृष्टि से भी इस पर अपभ्रश का पर्याप्त प्रभाव है। अपभ्रश की उन प्रवृत्तियो के अतिरिक्त जो पृथ्वीराज रासो में पाई जाती है, और जिनका पीछे उल्लेख किया जा चुका है, बीसलदेव रासो में अपभ्रश के रासा ग्रन्थो की अन्य प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती है।

बीसलदेव रासो अन्य रासो ग्रन्थो से भिन्न, आकार में लघुकाय रचना है। कथा-वस्तु संक्षिप्त है। यह गीतात्मक काव्य है और सारे काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। इन विशेषताओ के कारण इस पर अपभ्रश के "उपदेशरसायन रास" का प्रभाव अनुमित किया जा सकता है।

रासो काव्यों में भाग्यवाद का प्रभाव है। कवि ईश्वर और भाग्य को सबसे बडा मानता है। इन पर पूर्ण विश्वास करते हुए वह कर्म पथ पर बढता जाता है। ध्यान देने की बात है कि भाग्य पर भरोसा रखते हुए भी कवि निष्कर्मण्यता का चित्र अंकित नही करता। जब भाग्य में जो कुछ लिखा है वह होगा ही फिर डर किस का? मृत्यु से भयभीत होना कायरता है। क्षत्रिय हँसते हँसते रण-भूमि में मृत्यु का आलिंगन करता है। 'मरण प्रकृति. शरीरिणा विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः." की यथार्थता इन क्षत्रिय वीरों

---

१. देखिये पीछे छठा अध्याय, अपभ्रंश महाकाव्य, पृ० १०९।

२. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रयाग, १९४८ ई०, पृ० २०८।

में मिलती है।

इन रासो ग्रन्थों की दूसरी विशेषता है कि इनमें वीर और शृङ्गार का मिश्रण मिलता है। राजाओ का जीवन भोगप्रिय था और युद्धप्रिय। भोग, कामुकता की कोटि तक पहुँचा हुआ न था। राज्य सुखोपभोग करते हुए आवश्यकता पड़ने पर वीरता से प्राणो का बलिदान, इनका चरम लक्ष्य था। अपभ्रंश काव्यों में शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीन रसो का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। रासो ग्रन्थो में, अन्ततोगत्वा भोगो का त्याग युद्ध भूमि में होता था, चरित ग्रन्थो मे भोगो का त्याग विरक्ति में था। अतएव इन ग्रन्थो में शृङ्गार और वीर रसो का ही राज्य है। शान्त रस की चिन्ता इनके रचयिताओ को नही है।

रासो ग्रन्थो की एक अन्य विशेषता है, छन्दों की विविधता। यह छन्दो की विविधता हमें सदेश रासक में दृष्टिगत होती है। भिन्न-भिन्न छन्दो का प्रयोग रासा के लिये आवश्यक माना गया था।

इनके अतिरिक्त पीछे जिन भी प्रवृतियो का पृथ्वीराज रासो में दिग्दर्शन कराया गया है वे सब अन्य रासो ग्रन्थों में मिलती है। उनके यहां दोहराने की आवश्यकता नही। उन प्रवृत्तियों से अपभ्रंश के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। हाँ रासो की एक प्रवृत्ति का वहाँ निर्देश नही किया गया था। परमाल रासो के रचयिता ने ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग के अतिरिक्त ध्वनि सौन्दर्य को उत्पन्न करने का एक नया ढंग निकाला। वर्णमालानुक्रम से अनेक व्यंजनो की ध्वनि को रखते हुए एक विचित्र नाद सौन्दर्य उत्पन्न किया :—

कह कह सुबीर कहंत। खह खह सु संभु हसंत॥
गह गह सु गौरिय गंग। घह घह सु घमड़ि तरंग॥
टह टह सु बुल्लिय मोर। ठह ठह सुखन मुख सोर॥
डह डह सु डौरव बज्जि। ढह ढह सु सिव वृष सज्जि॥८१॥

अपभ्रंश में भी यह प्रवृत्ति 'सिरि सालिभद्द कक्का' आदि कृतियों में मिलती है, जिन में वर्णमालानुक्रम से अक्षरो का छन्दो में प्रयोग किया गया है। आगे चलकर 'अखरावट' में भी यही प्रवृत्ति जायसी ने प्रदर्शित की।

वीरगाथा काल के अनन्तर हिन्दी साहित्य में भक्ति काल आता है। भक्ति काल की विभिन्न धाराओं और शाखाओं के प्रतिनिधि कवि है :—

कबीर, जायसी, सूर और तुलसी।

कबीर आदि सतों की विचारधारा पर अपभ्रंश कवियो की आध्यात्मिक और उपदेशात्मक प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कबीर और उसके अनुगामी सन्तों के काव्य की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :—

१. निर्गुण राम की भक्ति,

२. रहस्यवाद की भावना,

३. रूपको का प्रयोग,

४ बाह्य कर्म-कलाप का खडन,

५. गुरु की महत्ता,

६. शान्त रस की अभिव्यक्ति,

७ भावो की अभिव्यक्ति के लिये दोहो और पदो का प्रयोग।

अपभ्रंश-साहित्य के जैनधर्माचार्यों और सिद्धो की आध्यात्मिक और उपदेशात्मक प्रवृत्ति दो रूपो मे दिखाई देती है—रचनात्मक और ध्वसात्मक रूप मे। कुछ गुणो के ग्रहण का उन्होने आदेश दिया और कुछ बाह्य कर्म-कलाप इत्यादि के परित्याग का। ये दोनो प्रवृत्तियाँ हिन्दी के सन्त-काव्य मे भी दिखाई देती है। सिद्धो की रहस्यमयी उक्तियो ने कबीर आदि सन्तों की उलट बासियो को जन्म दिया। जिस प्रकार वज्रयानियो ने जान बूझ कर अपनी भाषा को गूढ रखा इसी प्रकार कबीर की भाषा भी गूढ है। यदि ढेण्ढणपाद कहते है—

"वलद विआअल गबिया बांझे", "निति सिआला सिहे सम जूझअ"

अर्थात् बैल बियाया और गैया बाझ रही तथा नित्य शृगाल सिह के साथ युद्ध करता है। इत्यादि—

तो कबीर कहते है—

"है कोइ गुरु ज्ञानी जगत मइँ लटि वेद बूझै।
पानी महँ पावक बर, अंधहिं आँखिन्ह सूझै।।
गाय तो नाहर को धरि खायो, हरिना खायो चीता।।"

इसी प्रकार—

"नैया बिच नदिया डूबति जाय" इत्यादि अनेक वाग्वैचित्र्य के उदाहरण मिलते है।

पहले बताया जा चुका है कि सिद्धो ने अपनी कविता मे अनेक रूपको का प्रयोग किया है[1]—रुई धुनने का, विवाह का, नौका का, हरिण का, चूहे का रूपक आदि।

कण्हपा ने महासुख का विवाह के रूपक द्वारा वर्णन किया—

भव निर्वाणे पटह मादला।
मण पवण वेणि करण्ड कशाला।।
जअ जअ दुन्दुहि साद उछलिला।
काण्ह डोम्बी विवाहे चलिला।। चर्या० १९।

कबीर भी कहते है—

दुलहनीं गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार[2]।।

बाह्य कर्म-कलाप का खडन जिस प्रकार सिद्धो ने किया इसी प्रकार इन सत कवियो

---

१. देखिये पीछे दसवां अध्याय, पृ० ३१८।

२. कबीर ग्रंथावली, संपादक श्याम सुन्दर दास, इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९२८ ई०, पृ० ८७।

ने। यद्यपि उतना अक्खड़पन सिद्धो की कविता मे नही जितना कि कबीर की कविता मे किन्तु कर्मकाण्ड का विरोध सिद्धो और सन्तो दोनो मे मिलता है।

जैन धर्माचार्यों ने बाह्य कर्म-कलाप की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि पर अधिक बल दिया है। कबीर भी इसी भाव धारा के पोषक हैं। मुनिराम सिंह पाहुड दोहा मे कहते हैं—

"मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिरु मुंडिउ चित्त ण मुंडिया।
चित्तहं मुंडणु जि कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ॥"१३५

कबीर कहते हैं—

"दाढ़ी मूंछ मुड़ाय के, हुआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहीं मूड़िये, जामे भरिया खोट॥"

इसी प्रकार मुनि रामसिंह और कबीर प्रभृति सन्त ऐसे ज्ञान को व्यर्थ समझते हैं जिस से आत्मज्ञान नही होता। मुनि रामसिंह कहते हैं—

"बहुयइं पढियइं मूढ़ पर तालू सुक्कइ जेण।
एक्कु जि अक्खर तं पढहु सिव पुरि गम्मइ जेण॥"९७

कबीर कहते है—

"पढ़ पढ़ के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकौ आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥"

इसी प्रकार गुरु की महत्ता का प्रतिपादन जैनाचार्यो और सिद्धो ने किया है। सुगुरु और कुगुरु को क्रमशः गौ के दूध और आक के दूध के समान वताया गया है।[1] वही गुरु की महत्ता इन सन्त कवियों मे भी मिलती है।[2]

जाति का भेद भाव सिद्धो मे नही था। वज्रचार्यों ने तो नीचजाति की स्त्री को महामुद्रा बनाने का आदेश दिया। यही जात पांत विरोधी भावना इन सत कवियो में भी मिलती हैं।

जिस प्रकार प्रेमी और प्रेमिका की भावना कबीर ने अभिव्यक्त की है वही भावना सिद्धो के पदो में और जैनों के दोहो मे मिलती है।[3]

जिस प्रकार जैनो और सिद्धो ने अपनी धर्म भावना और उपदेशात्मक प्रवृत्ति के प्रसार के लिये मुख्यतया दोहों और गीतो को चुना इसी प्रकार इन सन्त कवियो ने भी अपने भाव को अभिव्यक्त करने के लिये दोहो और पदों को चुना।

---

१. देखिये पीछे नवां अध्याय, अपभ्रंश मुक्तक काव्य (१), पृ० २९०।

२. कबीर कहते हैं:—

"गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो बताय॥"

३. "हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिहु ण अंगहिं अंगु॥"

पाहुड़ दोहा, १००

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी का सत काव्य सिद्धो की विचार धारा का ही परवर्ती विकास है। हमे तो सत शब्द की उत्पत्ति का स्रोत भी अपभ्रश साहित्य की मुक्तक काव्य धारा ही प्रतीत होती है जिस में अनेक पद्यो में "शान्त" शब्द के स्थान पर सत शब्द का प्रयोग मिलता है।

भक्ति काल की दूसरी धारा जायसी आदि प्रेमाश्रयी कवियो के काव्य मे दिखाई देती है। इन कवियो ने निराकार ब्रह्म मे प्रेम तत्व का समिश्रण कर भक्ति को सरस और हृदयग्राह्य बनाया। इन के प्रेमाख्यान, लौकिक आख्यान होते हुए भी आन्तरिक प्रेम या आध्यात्मिक तत्व की ओर ही सकेत करते दिखाई देते है। जायसी के पद्मावत के ढंग पर कुतुबन की मृगावती, मझन की मधुमालती आदि कथाये भी लिखी गईं। इन सब की विशेषता है, लौकिक प्रेम कथा के साथ आध्यात्मिक तत्व की ओर सकेत। ये प्रेम कथाये प्राचीन प्रेम कथाओ की परंपरा मे से है किन्तु दोनो की परिणति में भेद है। अपभ्रंश मे जैनियो की प्रेम कथाओ का पर्यवसान वैराग्य में होता है। हिन्दी में सूफियो की शैली की प्रेम कथाओ का आधार अध्यात्मवाद है। कथा रूपक मात्र है जो आध्यात्मिक अर्थ की छाया है। इस धारणा से लौकिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम का प्रतीक मात्र है जिस का पर्यवसान वैराग्य मे न होकर आध्यात्मिक प्रेम मे परिपक्व होता है।

इन कथाओ की कुछ अन्य बाते भी अपभ्रंश में मिलती है :—

नायक को नायिका की प्राप्ति के लिये समुद्र यात्रा करना, सिंहल यात्रा करना आदि का पहले अपभ्रश-कथाओ के प्रकरण मे उल्लेख किया जा चुका है।

समुद्र यात्रा कर सिंहल द्वीप की किसी सुन्दरी कन्या और धन संपत्ति को प्राप्त करना—यह कथाश प्राचीन साहित्य में भी उपलब्ध होता है। संस्कृत-भाषा में लिखित रत्नावली नाटिका में रत्नावली सिंहल की राजकुमारी थी।[1] प्राकृत भाषा में लिखित कौतूहल कृत लीलावती कथा[2] की नायिका लीलावती भी सिंहल की राजकुमारी थी। अपभ्रंश-भाषा में लिखित धनपाल कृत भविसयत्त कहा[3] में व्यापार के लिये समुद्र-यात्रा का वर्णन मिलता है। कनकामर कृत करकंडचरिउ[4] में भी करकंडु का सिंहल जाना और वहाँ रतिवेगा नामक सुन्दरी से विवाह करना वर्णित है। इसी प्रकार जिनदत्त चरिउ में[5] नायक सिंहल द्वीप की यात्रा करता है और वहा की राजकुमारी लक्ष्मीवती को प्राप्त करता है। इन विविध उल्लेखो के आधार पर ऐसा अनुमान किया गया है कि सिंहल यात्रा का सम्बन्ध संभवतः किसी परपरागत लोक कथा से होगा जिसके

---

१. रत्नावली नाटिका, अंक ४।
२. डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा संपादित, भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित, १९४९ ई०।
३. देखिये छठा अध्याय पृ० ९५
४. देखिये सातवाँ अध्याय पृ० १८१।
५. देखिये वही, पृ० २२६।

अनुकरण पर इन कवियो ने वहाँ जाकर अनुपम सुन्दरी और प्रभूत धन सम्पत्ति की प्राप्ति का उल्लेख किया है। जायसी भी उसी कथा से प्रभावित हुआ है।

जायसी के पद्मावत और अन्य अपभ्रंश काव्यो के सादृश्य के अतिरिक्त जायसी की रचना-शैली, वर्णन, शैली और सदेश रासक की शैलियों में बहुत साम्य है।[1] दोनो के मंगलाचरण भाव की दृष्टि से एक रूप है। एक में विस्तार है दूसरे मे संक्षेप। इसी प्रकार दोनो के वियोग वर्णनो मे भी पर्याप्त साम्य है। अतएव जायसी के सामने संदेश रासक था, ऐसी कल्पना असगत नही प्रतीत होती।

जायसी की वस्तु-वर्णन-शैली और अब्दुल रहमान की वस्तु-वर्णन-शैली में एक और समानता मिलती है। दोनो ने वस्तु वर्णन मे कही कही वस्तु गणना मात्र करदी है। जायसी ने बादशाह-भोज-खंड मे[2] अनेक व्यंजनों, पकवानों, सब्जियों, मिठाइयों इत्यादि की लंबी सूची दी है। इसी प्रकार अब्दुल रहमान ने उद्यान वर्णन मे अनेक प्रकार की वनस्पतियो के नामो की सूची दे दी है।[3] इस प्रकार की वस्तुगणना की प्रवृत्ति पुष्प दन्त के जसहर चरिउ में भी पाई जाती है।

उपरिनिर्दिष्ट सकेतो के आधार पर जायसी का अब्दुल रहमान के संदेश रासक से प्रभावित होना स्पष्ट प्रतीत होता है।

बाह्य रूप की दृष्टि से ये प्रेमाख्यानक काव्य चौपाई-दोहा शैली मे लिखे गये है। कुछ चौपाइयों के अनन्तर एक दोहे का प्रयोग वैसा ही है जैसा कि अपभ्रंश काव्यों में कडवको के अन्त में घत्ता का प्रयोग। अपभ्रश काव्यों मे कड़वको में पद्धरी—पज्झटिका—पद्धड़िया, पादाकुलक, अलिल्लह इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया गया है। ये सब छन्द १६ मात्राओं के हैं और चौपाई से बहुत मिलते हैं। धवल ने अपने हरिवश पुराण में कुछ कडवकों में चौपाई का प्रयोग किया है किन्तु इनके अन्त में घत्ता दोहा नही। कही कही कड़वक में चौपाई का प्रयोग नहीं किन्तु अन्तिम घत्ता कही दोहे के समान और कही साक्षात् दोहा है।[4] अमर कीर्ति रचित छक्कम्मोवएस की आठवीं सन्धि के प्रत्येक कड़वक के आरम्भ में दोहा प्रयुक्त हुआ है और कड़वक मे चौपाई का प्रयोग किया गया है।[5] कवि देव सेन गणि ने अपने सुलोचना चरिउ नामक काव्य की १८वी सन्धिके कडवकों के आरम्भ में दोहय—दोहे का प्रयोग किया है।[6] कवि धनपाल के बाहुबलि चरिउ काव्य की ११ वी सन्धि के कड़वकों के आरम्भ में दोहड़ा—

१. प्रो० एच० सी० भायाणी, अब्दुल रहमान्स संदेश रासक एंड जायसीज् पद्मावती, भारतीय विद्या, भाग १०, १९४८ ई०, पृ० ८१।
२. जायसी ग्रंथावली, पृ० २६९।
३. संदेश रासक पृ० २४।
४. दे० छठा अध्याय, पृ० १०९।
५. दे० तेरहवां अध्याय, पृ० ३५६।
६. दे० सातवां अध्याय, पृ० २२०।

दोहा प्रयुक्त हुआ है।[1] कवि यशकीर्ति ने अपने पाडव पुराण की २८वी सन्धि के कडवको के आरम्भ मे दोहउ दोधक—दोहा—प्रयुक्त किया है। कडवक मे कही कही चौपाई मिल जाती है।[2]

इस प्रकार अभी तक प्राप्त अपभ्रश ग्रन्थो मे यद्यपि कोई ऐसा काव्य उपलब्ध नही हो सका जिसमे चौपाई-दोहा पद्धति का स्पष्ट प्रयोग हुआ हो तथापि ऐसी आशा की जा सकती है कि सभवत कोई ऐसा काव्य भविष्य मे उपलब्ध हो जाय जिसमे इस पद्धति के दर्शन हो। अद्यावधि प्राप्त अपभ्रश सामग्री से ऊपर दिये गये उदाहरणो के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जायसी के पद्मावत की चौपाई दोहा शैली का बीज अपभ्र श-साहित्य मे था उत्तर कालीन हिन्दी कवियो ने नवीनता की दृष्टि से कडवको के आरम्भ में प्रयुक्त दोहे को अन्त मे रखना प्रारम्भ कर दिया।

भक्तिकाल की तीसरी धारा, सगुण रूप की राम भक्ति शाखा मे दिखाई देती है। इसके मुख्य कवि तुलसीदास है और उनकी मुख्य कृति रामचरित मानस है। रामचरित मानस मे धार्मिकता का ध्यान इतना अधिक है कि तुलसी के राम भगवान् के रूप मे हमारे सामने आते है।

राम कथा का तुलसीदास ने एक सरोवर और एक सरिता के रूप मे वर्णन किया है। रामचरितमानस यह नाम भी इसके सरोवर की ओर संकेत करता है। सरोवर का रूपक देखिये :—

दोहा—सुठि सुन्दर संवाद वर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ वर बारि अगाधा॥
राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जल चर चारु तड़ागा॥[3]

---

१ वही, पृ० २३८।
२ दे० छठा अध्याय पृ० १२१।
३ कल्याण, मानसांक, बालकांड, ३७।

इसी प्रकार रामकथा का सरिता के रूप मे वर्णन भी तुलसीदास ने किया है।[1]

स्वयंभू के पउम चरिय में भी रामकथा का सरिता के रूप में उल्लेख मिलता है —

वड्ढमाण मुह कुहर विणिग्गय राम कहाणइ एह कमागय।
अक्खर पास जलोह मणोहर सुअलंकार सद्द मछोहर।
दीहसमास पवाहा वंकिय सक्कय पायय पुलिणालंकिय।
देसी भासा उभय तडुज्जल कवि दुक्कर घण सद्द सिलायल।
अत्थ बहल कल्लोलाणिट्ठिय आसासय सम तूह परिट्ठिय।
एह रामकह-सरि सोहंती गणहर देवहिं दिट्ठ वहंती।

पउम चरिउ, १.२.

अर्थात् यह रामकथा रूपी सरिता क्रम से चली आ रही है। इसमें अक्षर समूह सुन्दर जल समूह है, सुन्दर अलकार और शब्द मत्स्य गृह है, दीर्घ समास वक्रप्रवाह है, सस्कृत और प्राकृत अलकृत पुलिन है, देशी भाषा दोनो उज्ज्वल तट है, कवि से प्रयुक्त कठिन और सघन शब्द शिलातल के समान है, अर्थ बहुलता उठती हुई तरगे है·· इस प्रकार यह रामकथा शोभित होती है।

रामचरितमानस की चौपाई दोहा की शैली भी स्वयभू के पउम चरिउ की कड़वक शैली के समान है। चौपाई और इतर छद के व्यवधान की शैली जिसको जायसी और तुलसी ने अपने प्रबन्ध काव्यो मे स्वीकार किया, वह अपभ्रश शैली का अनुकरण है। अतर केवल यह है कि हिन्दी काव्य मे व्यवधान दोहा अथवा सोरठा द्वारा होता है और अपभ्रश काव्य में सोलह मात्राओ के छन्दो मे व्यवधान "घत्ता" का है। इन कुछ समानताओ को देखकर कतिपय विद्वानो ने कल्पना की है कि तुलसीदास रामचरित की रचना मे सम्भवतः स्वयंभू से प्रभावित थे। रामायण के आरम्भ मे ही

"नाना पुराण निगमागम संमतं यद्।
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि"।

बालकांड १.

इत्यादि पद्य मे "क्वचिदन्यतोऽपि" से तुलसी बाबा ने स्वयभू की रामायण की ओर ही सकेत किया है, ऐसा राहुलजी का विचार है।[2]

सदेश रासक और रामचरित मानस के निम्नलिखित पद्यो की तुलना से प्रतीत होता है कि तुलसी दास सदेश रासक से परिचित थे।

मह हिययं रयण निही, महियं गुरु मंदरेण तं णिच्चं।
उम्मूलियं असेसं, सुहरयणं कड्ढियं च तुह पिम्मे॥

सं० रा० २ ११९

अर्थात् मेरा हृदय समुद्र है, उसे तुम्हारे विशाल विरह-मदर ने नित्य मथ-मथ कर

---

१. वही, बालकांड ३९-४१।
२. हिन्दी काव्यधारा, भूमिका, पृ० ५२।

उसमें से सम्पूर्ण सुखरूपी रत्न निकाल दिया।

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित कृपासिंधु रघुबीर॥

रामचरित मानस २.२३८

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढहीं भगति मधुरता जाहिं॥ (वही ७.१२०)

भक्तिकाल की चौथी धारा, कृष्णभक्ति शाखा, के प्रतिनिधि कवि सूरदास है। इन्होने अपने सूर सागर की रचना पदो में की है। इसमे पदबद्ध कृष्णकथा का रूप मिलता है। सूर से पूर्व भी सिद्धों के गानो मे पदो का रूप दृष्टिगोचर होता है। उनके पद और गान यद्यपि मुक्तक रूप में उपलब्ध है किन्तु इस प्रकार की कोई प्रबन्धात्मक पदरचना अपभ्रंश मे भी रही हो तो कोई आश्चर्य नही। स्थिति कुछ भी हो किन्तु इतना तो प्रकट ही है कि सूर की यह गीति धारा विद्यापति और जयदेव से आगे बढकर सिद्धो के मूल स्रोत तक पहुँचती है और किसी न किसी रूप मे उनके स्रोत को स्वीकार करती है।

सूर के, प्राचीन अपभ्रंश कवियो से प्रभावित होने की सम्भावना सूर के अनेक पदो से की जा सकती है। पीछे संकेत किया जा चुका है कि सिद्धो की उपमाओ को और अपभ्रंश कवियो के पद्यो को सूर ने धार्मिक रूप देकर अपनी भक्ति का विषय बना लिया।[1]

हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण मे एक दोहा उद्धृत किया है·

"बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवँइ को दोसु।
हिअय-ट्ठिअ जइ नीसरहि जाणउं मुंज स रोसु॥[2]

अर्थात् हे मुंज! तुम बांह छुडाकर जा रहे हो तुम्हे क्या दोष दू? यदि मेरे हृदय में से निकल जाओ तो मूज में जानूगी कि तुम सरोष हो।

इस दोहे की शृङ्गार-भावना को सूर ने भक्ति भावना मे ढाल दिया। सूर अपने भगवान् से कहते है --

बांह छोड़ाये जात हो निबल जानि को मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे सबल जानूगो तोहि॥

सिद्धो ने बार-बार विषयो की ओर जाते मन की उपमा जहाज पर बैठे पक्षी से दी है किन्तु सूर ने उसी उपमा का प्रयोग, गोपियो के बार-बार कृष्ण की ओर जाते मन को लक्ष्य कर किया।[3]

सरह का एक दोहा है :—

विसअ विसुद्धे णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ।
उड्डी वोहिअ काउ जिमु, पलुटिअ तह वि पड़ेइ॥

---

१. दे० तीसरा अध्याय, पृ० २४।
२. श्री परशुराम वैद्य द्वारा संपादित प्राकृत व्याकरण, पूना, १९२८ ई० पृ० १७३।
३. दे० दसवां अध्याय पृ० ३०७।

सूर ने इसी उपमा का निम्नलिखित रूप में प्रयोग किया :—

अब मन भया सिन्धु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन ॥

(भ्रमरगीत ४६)

थकित सिन्धु नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत ।

(वही ६०)

भटकि फिर्यौ बोहित के खग ज्यों पुनि फिरि हरि पै आयो ।

(वही, ११९)

इसी प्रकार अन्य पद भी सूर के पदो में खोजने से मिल सकते है।

सूर के सूरसागर में कुछ दृष्ट कूट भी मिलते है। सूर के इन दृष्ट कूटो का बीज सिद्धों की सन्ध्याभाषा के अनेक पदों से मिल सकता है।

इस प्रकार उपरिलिखित संकेतो से हिन्दी-साहित्य में भक्तिकाल के प्रतिनिधि कवियों पर अपभ्रंश-साहित्य के प्रभाव का कुछ आभास मिल सकता है।

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल की निम्नलिखित विशेषतायें मिलती है :—

१. अपने आश्रयदाता की प्रशंसा,
२. शृङ्गार-भावना की प्रमुखता,
३ नायिका भेद,
४. ऋतु वर्णन, बारह मासा वर्णन,
५. नखशिख वर्णन,
६. कवित्त, सवैया और दोहा छन्दो का प्रयोग।

अपभ्रंश साहित्य के चरितग्रन्थो में प्रायः कवियो ने अपने आश्रयदाता का पूर्ण वर्णन किया है। उनमे शृङ्गार-भावना की प्रमुखता नही दिखाई देती किन्तु शृङ्गार का अभाव नही। प्राय सभी चरित नायक यौवन में भोगविलासमय जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई देते है। जैनाचार्यों ने धार्मिक दृष्टि से ही इन चरित ग्रन्थो की रचना की थी अतः रस, नायिकाभेद, शृङ्गार आदि पर स्पष्ट रूप से विवेचन असम्भव था। फिर भी इन चरित ग्रन्थों मे बीच-बीच में हमे रीतिकाल के काव्य स्वरूपो के सकेत मिल ही जाते है।

नयनंदी कृत 'सुदसण चरिउ' में धार्मिकता के अतिरिक्त, बीच-बीच में ऋतु, विवाह, नखशिख, रति, शृङ्गार आदि का वर्णन भी उपलब्ध होता है। इसमें नायिका भेद के भी दर्शन हो जाते है।[1] अपभ्रश में लिखित इस ग्रन्थ में तथा संदेशरासक, स्थूलिभद्र कथा आदि ग्रन्थो में भी नखशिख वर्णन मिलता है। सदेशरासक का षड् ऋतु वर्णन रीतिकालीन षड् ऋतु वर्णन के समान विरह की भावना से ओतप्रोत है। सब वस्तुएँ विरहिणी के हृदय में वियोग को पीड़ा को द्विगुणित करती हुई प्रतीत होती है। बारहमासे का वर्णन भी रीतिकालीन परंपरा में वियोग के प्रभाव को प्रकट करने के लिये ही किया

---

१. देखिय सातवां अध्याय, अपभ्रंश खंड काव्य, पृ० १६९।

जाता है। यह बारहमासे का वर्णन हमे अपभ्रश साहित्य मे भी मिलता है । "नेमिनाथ चतुष्पदिका"[1] मे भी हमे बारहमासे का यही रूप मिलता है। "धर्मसूरि स्तुति"[2] मे हमे बारहमासे का धार्मिक रूप मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य की रीतिकालीन प्रवृत्तियो की परपरा अपभ्रश-साहित्य से होती हुई हिन्दी मे आई। वर्तमान उपलब्ध अपभ्रश साहित्य से स्पष्ट है कि रीतिकालीन परपरा की एक धारा अपभ्रश काव्य में भी वर्तमान रही होगी।

रीतिकाल की नखशिख आदि परपरा का रूप जो हिन्दी साहित्य में हमे दिखाई देता है उसकी मूल प्रेरणा सस्कृत साहित्य से ही चली। सस्कृत के काव्यो मे अग प्रत्यग का वर्णन मिलता ही है। कालिदास ने अपने कुमार सभव मे पार्वती के नखशिख का मनोरम वर्णन किया है। इसी वर्णन में यह नियम विधान करना पडा कि देवता वर्णन चरणो से और मानव वर्णन सिर से प्रारम्भ हो। इस प्रकार अग प्रत्यग का यह वर्णन या नखशिख वर्णन सस्कृत साहित्य से अपभ्रश साहित्य मे होता हुआ हिन्दी साहित्य में आया।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के भिन्न-भिन्न कालो पर अपभ्रश-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रभाव से हमारा यह तात्पर्य नही कि हिन्दी-साहित्य मे अनेक प्रवृत्तियाँ एकदम नई थी या ये प्रवृत्तियाँ सीधी अपभ्रंश-साहित्य में आविर्भूत हुईं और वे उसी रूप मे हिन्दी साहित्य मे प्रविष्ट हो गई। प्रभाव से हमारा यही अभिप्राय है कि भारतीय-साहित्य की एक अविच्छिन्न धारा चिरकाल से भरत खड मे प्रवाहित होती चली आ रही है। वही धारा अपभ्रश-साहित्य से होती हुई हिन्दी-साहित्य मे प्रस्फुटित हुई। समय-समय पर इस धारा का बाह्यरूप परिवर्तित होता रहा किन्तु मूलरूप मे परिवर्तन की सभावना नही।

अपभ्रंश-साहित्य और हिन्दी-काव्य का बाह्य रूप

हिन्दी मे प्रबन्ध-काव्यो की रचना शैली के उदाहरण स्वरूप रामचरितमानस और रामचन्द्रिका इन दो प्रबन्ध काव्यो का स्वरूप देखे तो उनकी रचना शैली पर कुछ प्रकाश पडेगा। मानस के आरम्भ मे मगलाचरण, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, आत्म-विनय आदि दिखाई देता है। इसके अनन्तर कथा प्रारम्भ होती है । अपभ्रश-साहित्य मे भी यही प्रणाली हमे प्राय. सब प्रबन्ध काव्यो मे दिखाई देती है, इसका निर्देश पीछे महाकाव्य और खंडकाव्य के अध्यायो मे किया जा चुका है। यह प्रणाली एकदम नई नही। बाण, कादम्बरी मे मंगलाचरण के अनन्तर खल-निन्दा और सज्जनो का स्मरण करते है।[3]

---

१. देखिये चौदहवां अध्याय, अपभ्रंश स्फुट साहित्य, पृ० ३६६ ।

२. देखिये वही, पृ० ३७१।

३. कादम्बरी, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९२१ ई० पृ० ३ ।
अकारणाविष्कृत वर दारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते ।

हर्ष चरित में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है।[1] भवभूति भी मालतीमाधव मे दुर्जनों को नही भूलते।[2]

इसी प्रकार आत्म-विनय की भावना भी नई नही। सस्कृत के कवियों मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। कालिदास रघुवश के प्रारम्भ मे ही सूर्यवशी-राजाओ के वर्णनप्रयास को ऐसा कठिन समझते है जैसे कोई छोटी सी नौका से महासागर को पार करने का प्रयत्न करे।[3]

अतएव स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस तथा अन्य हिन्दी प्रबन्धकाव्यो की मंगलाचरण, सज्जन-प्रशंसा, खल-निन्दा, आत्म-विनय आदि की प्रणाली सस्कृत-साहित्य से अपभ्रंश मे होती हुई हिन्दी-साहित्य मे आई। इस प्रकार अपभ्रश-साहित्य ने हिन्दी-साहित्य को प्रभावित किया।

रामचरितमानस की चौपाई-दोहा पद्धति का बीज अपभ्रश के चरिउ ग्रन्थो की कडवक शैली मे निहित है इसका ऊपर उल्लेख किया ही जा चुका है। इसी प्रकार रामचरितमानस की रामकथा का सरोवर या नदी रूप में वर्णन भी स्वयभू के पउम चरिय में मिलता है इसका भी ऊपर निर्देश किया जा चुका है। साराश यह कि अपभ्रशकाव्य का हिन्दी काव्य के बाह्य रूप पर पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है।

महाकाव्य का लक्षण करते हुए आलकारिको ने बताया है कि प्रत्येक सर्ग मे भिन्न-भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिये और सर्गान्त मे छन्द परिवर्तित हो जाना चाहिये। इस छन्द-विविधता की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में केशव की रामचन्द्रिका एक साहित्यिक महाकाव्य कहा जा सकता है। अपभ्रश प्रबन्धकाव्यो मे यद्यपि कडवक शैली में कुछ एक-रूपता ही है तथापि इस छन्द विविधता का भी अभाव नही। नयनन्दी के सुदंसण चरिउ,

---

विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं संनिहितं सदा मुखे ॥५
कटु क्वणन्तो मल दायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धन शृंखला इव।
मनस्तु साधु ध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणि नूपुरा इव ॥६

१. हर्ष चरित, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९१८ ई० पृ० २।
प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठित दृष्टयः।
कोकिला इव जायन्ते वाचाला कामकारिणः॥

२. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते ऽस्ति मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥
मालती माधव, प्रथम अंक

३. क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
रघुवंश, प्रथम सर्ग

देवसेनगणि के सुलोचना चरिउ और पडित लाखू के जिणदत्तचरिउ मे छन्दों की विविधता के दर्शन होते है।[१] इस प्रकार ये अपभ्रश काव्य केशव की रामचन्द्रिका के इस अश मे पूर्व रूप कहे जा सकते है।

अपभ्रंश-साहित्य और हिन्दी-काव्य का कलापक्ष

अलकार योजना की दृष्टि से अपभ्रश-साहित्य मे एक विशेषता दिखाई देती है कि अपभ्रश कवियो ने अप्रस्तुत विधान के लिए पुरानी रूढि का ही अन्धानुकरण नही किया। उन्होने लौकिक जीवन से संबद्ध उपमानो का प्रयोग कर अपनी उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ को सरल और सुबोध बना दिया। इस प्रकार के उपमानो के प्रयोग से कविता का क्षेत्र प्राचीन परम्परा की संकीर्णता से निकल कर विस्तृत हुआ। कविता सर्व-साधारण की वस्तु बनी—वह सर्व-साधारण के हृदय तक पहुँची। अपभ्रंश की यह प्रवृत्ति हिन्दी मे भी दिखाई देती है। जयशकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पन्त के अनेक लाक्षणिक प्रयोगो मे यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

अपभ्रंश कवियो की एक और विशेषता का पीछे निर्देश किया जा चुका है, वह है अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग। भिन्न-भिन्न क्रियाओ और भावो को सूचित करने के लिए तदनुकूल शब्द-योजना के अनेक उदाहरण प्रबन्ध-काव्यगत अध्यायो मे दिये जा चुके है। कुछ उदाहरणो से हमारा अभिप्राय स्पष्ट हो जायगा।

"तड़ि तडयडइ पड़इ घण गज्जइ
जाणइ रामहो सरणु पवज्जइ" म० पु०
तोडइ तडत्ति तणु बंधणइं मोडइ कडत्ति हड्डइं घणइं।
फाडइ चडत्ति चम्मइं चलइं घुट्टइ घडत्ति सोणिय जलइं॥
(जस० च० २. ३७. ३ ४)
"झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति"
(सिरि थूलिभद्द फाग)

निम्नलिखित युद्धोद्यत सेना का दृश्य भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है:

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ,
ण ण ण ण गिदि करि तुरअ चले।" (प्राकृत पैंगल)

इस प्रवृत्ति की अधिकता यद्यपि हिन्दी साहित्य मे नही दिखाई देती किन्तु न्यूनाधिक रूप मे जहाँ कही भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है वह अपभ्रंश के प्रभाव की ही सूचक है।

शब्दो और वाक्याशो की आवृत्ति से कथन को प्रभावोत्पादक बनाने की प्रवृत्ति भी अपभ्[redacted] मे दिखाई देती है। पुष्पदन्त के महापुराण मे इसके अनेक उदाहरण मिलते है। हिन्[redacted]ाहित्य मे भी जहाँ कही इस प्रकार के उदाहरण मिलते है, उन पर अपभ्रश सा[redacted] के [redacted]प्रभाव की कल्पना की जा सकती है।

अपभ्रंश कवियों ने नवीन छन्दो की सृष्टि के समान कुछ नवीन अलंकारो की भी सृष्टि की, इसका पीछे निर्देश किया जा चुका है।[1] इसमे कवि दो दृश्यो या घटनाओ की समता का प्रदर्शन करता है। इसके उदाहरण पुष्पदन्त के महापुराण मे अनेक मिलते है। इस प्रकार के अलंकार का नाम ध्वनित-रूपक रखा जा सकता है। इसके उदाहरण रासो ग्रन्थो मे भी मिलते है।

परमाल रासो का रचयिता वीर और शृङ्गार का साथ-साथ वर्णन करता हुआ "सूर" तथा "परी" की समानता का चित्र उपस्थित करता है—

इतै टोप टंकार सिरकस उतंगं। उतै अच्छरी कंचुकी कस्सि अंगं।।
इतै सूर मोजा बनावंत भाए। उतै अपसरा नुपुरं पहिर पाए।।
उतै सूरमा पाग पर झिलम डारै। उतै झुंड रंभं सु माँगै समारै।।
कही कवि चन्द निरष्षी सुसोऊ। बरन्नै समानं परी सूर दोऊ।।[2]

हिन्दी के वीर काव्यो मे इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी मिल सकते है।

अपभ्रंश मे लोकोक्तियो और वाग्धाराओ की प्रचुरता है। हिन्दी तथा उर्दू ने वाग्धाराओ तथा लाकोक्तियो का प्रयोग अपभ्रंश-साहित्य से प्राप्त किया है।

अपभ्रंश-साहित्य का हिन्दी-साहित्य पर जो प्रभाव पडा उसमे छन्दो का विशेष महत्त्व है। सस्कृत मे वर्णवृत्तो का अधिकतर प्रयोग होता था। प्राकृत मे वर्णवृत्तो के बन्धन को हटा कर मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया। प्राकृत का "गाथा" छन्द मात्रिक छन्द ही है। अपभ्रंश कवियो ने भी उस प्रवृत्ति को बनाये रखा। इन्होने भी मात्रिक छन्दो का बहुलता से प्रयोग किया। अपभ्रंश की यह प्रवृत्ति हिन्दी-साहित्य मे भी आई। हिन्दी-साहित्य मे भी वर्णवृत्त उस सुन्दरता से न ढल सके जिस सुन्दरता से मात्रिक छन्द। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने प्रिय प्रवास मे वर्णवृत्तो का प्रयोग किया है। अन्यत्र काव्यो मे इनका प्रयोग बहुत कम है।

अपभ्रंश छन्दो की दूसरी विशेषता है कि इन मे अन्त्यानुप्रास का प्रयोग मिलता है। इस प्रवृत्ति का संस्कृत मे भी प्राय. अभाव था और प्राकृत में भी। यह अपभ्रंश कवियो की अपनी सूझ थी। हिन्दी छन्दो मे यह प्रवृत्ति अपभ्रंश छन्दो से ही आई।

अपभ्रंश कवियो ने जहा प्राचीन वर्णवृत्तो का प्रयोग किया वहा भी उनमे एक नवीनता उत्पन्न कर दी। उदाहरण के लिए निम्नलिखित मालिनी छन्द देखिये—

खलयण सिरसूलं, सज्जणाणंद मूलं।
पसरइ अविरोलं, मागहाणं सुरोलं।
सिरि णविय जिणिंदो, देइ वायं वणिंदो।
वसु हय जुइ जुत्तो, मालिणी छंदु वुत्तो।। सुदं०च०३.४.

संस्कृत के पिंगल शास्त्र के नियमो के अनुसार जहा यति होनी चाहिये वहा पर भी

---

१. देखिये पीछे छठा अध्याय, पृ० ९१ और ११५।
२. उद्धरण निर्देश के लिये लेखक डा० ओम्प्रकाश का कृतज्ञ है।

कवि ने अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर मालिनी के एक चरण के दो चरण बना डाले। इस प्रकार सम चतुष्पद मालिनी अर्धसम अष्टपद मालिनी बन गई। प्राचीन रूढि को उसी रूप मे स्वीकार न कर उसमे परिवर्तन ला कर नवीनता उत्पन्न करने की प्रकृति अपभ्रंश कवियो मे स्वभाव से ही थी।

अपभ्रंश कवियों की इसी प्रवृत्ति के निम्नलिखित दोहे में भी दर्शन होते है—

सील रयणु वय किति धरु, सव्व गुर्णेहिं सउण्णु।
सो धणवंतउ होइ णरु, सो तिहुयण कय पुण्णु॥

सुलोचना च० १८.११

वर्णवृत्तो मे भी इन कवियो ने नियमो का कठोरता से पालन नही किया। एक दीर्घ अक्षर के स्थान पर दो लघु अक्षरो का प्रयोग कर के भी वर्णवृत्तो का निर्वाह कर लिया गया है। जैसे—

अस्सथामो मुऊ तेहि ता उत्तऊ।
मुच्छिऊ दोणु धणु बाणु हत्थह चुऊ।
चेयणा लहिवि कासा वि णउं पत्तिउ।
सच्च वाई य तउ धम्म सुउ पुच्छिउ।
सच्चु कहि पुत्त किं मज्झ पुत्तो मुऊ।
कण्ह सिक्खाइ णरणाहु ता जंपिउ।
मुउ ण तुह णंदणो किं तु गउ दिट्ठऊ।
अस्सथामुत्ति णामेण रणि णिट्ठिउ॥

यशः कीर्त्ति कृत हरि० पु० ११.९.

इस चार रगण स्रग्विणी या कामिनी मोहन छन्द मे रेखाकित अक्षर एक दीर्घ अक्षर के स्थान पर प्रयुक्त किये गये है।

अपभ्रंश कवियो ने अपनी उपरिनिर्दिष्ट प्रकृति के अनुसार अनेक नवीन छन्दों की सृष्टि की। इसके लिये उन्होने नये नये छन्दो का निर्माण किया। दो छन्दो के मेल से बन अनेक संकीर्ण-वृत्तो का उल्लेख छन्दकोषो मे मिलता है। अपभ्रंश मे सकीर्ण-वृत्त उल्लाला, दोहा, गाथा, आभाणक, मात्रा, काव्य (रोला) और कामिनी मोहन के मिश्रण से बनाये गये है। कुण्डलिक (दोहा+काव्य), चन्द्रायन (दोहा+कामिनी मोहन), रासाकुल (आभाणक या प्लवगम+उल्लाला), रड्डा या वस्तु (मात्रा+दोहा), छप्पय (काव्य+उल्लाला) इत्यादि इसी प्रकार के छन्द है।[१]

अपभ्रंश-साहित्य और हिन्दी की विविध काव्य-पद्धतियाँ

हिन्दी-साहित्य की भिन्न भिन्न काव्य पद्धतियाँ जो छन्दो पर आश्रित है और जिन

३४. प्रो० वेलणकर, अपभ्रंश मीटर्स, जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी आफ बम्बे, जिल्द २, भाग ३, नवं० १९३३ पृ० ३२-६२।

का उल्लेख स्वर्गीय शुक्ल जी ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में किया है[1], वे सब अपभ्रंश से प्रभावित हुई हुई प्रतीत होती है।

हिन्दी-साहित्य की काव्य पद्धतियो मे एक दोहा पद्धति भी दिखाई देती है। अपभ्रंश मुक्तक साहित्य मे जैनियो और बौद्ध सिद्धो, दोनो ने अपनी आध्यात्मिक और उपदेशात्मक रचनाओ के लिये दोहा छन्द का प्रयोग किया था, जो दूहा नाम से प्रसिद्ध है। यह दोहा या दूहा अपभ्रंश का प्रिय छन्द रहा है। १३ और ११ मात्राओ की विषम और सम चरणो की दो पक्तियो का दोहा छन्द होता है। कुछ छन्द शास्त्रियो ने यह क्रम १४ और १२ मात्राओं का बताया है। मुक्तक रचनाओ के अतिरिक्त संदेश रासक, सुलोचना चरिउ, बाहुबलि चरिउ और कीर्तिलता जैसे खण्डकाव्यो मे भी दोहा छन्द का बीच बीच मे प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यो मे से यशः कीर्त्ति के पाडव पुराण मे भी इस छन्द का प्रयोग दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य मे अपभ्रंश-मुक्तक साहित्य की आध्यात्मिक और उपदेशात्मक धाराओ के प्रभाव स्वरूप हिन्दी-साहित्य के कबीरादि सन्त कवियो ने दोहा छन्द को अपनाया। उनकी नैतिक और उपदेशात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल तुलसी, रहीम आदि न भी दोहो को अपनाया। अपभ्रंश के शृङ्गार परक दोहो का प्रभाव विहारी पर पड़ा और उसने अपने शृङ्गारिक भावो को अभिव्यक्त करने के लिये दोहा छन्द का ही आश्रय लिया।

दूसरी काव्य पद्धति दोहा-चौपाई की है। इसका प्रयोग जायसी और तुलसी ने अपने प्रबन्ध काव्यो मे किया। यह अपभ्रंश के चरित ग्रन्थो की कडवक शैली के अनुकरण पर हिन्दी में प्रचलित हुई। इसमे कडवक की समाप्ति पर घत्ता के स्थान पर दोहा का प्रयोग किया गया है। इन प्रबन्धकारो ने अपने काव्यो में कही कही दोहा के समान सोरठा का भी प्रयोग किया है। सोरठा का अपभ्रंश मे भी प्रयोग हुआ है।[2] अपभ्रंश के कडवक बद्ध शैली मे रचित इन चरित ग्रन्थो मे छन्दो की विविधता प्राय नही मिलती। इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य मे लिखे चरित काव्यों मे भी इस विविधता का अभाव सा ही है। सूदन का सुजान चरित इस का अपवाद है।

विद्यापति और सूर की गीत-पद्धति का आदि स्रोत सिद्धो के चर्या गीतो मे देखा जा सकता है।

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, इंडियन प्रेस प्रयाग, वि० सं० १९९७, पृ० १६२-१६५

२. प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ५८ पर

को जाणइ तुह नाह चीतु तुहालउं चक्कवइ।
लहु लंकइ लेवाह मग्गु निहालइ करणउत्तु॥
धाई धौअइ पाय जेसल जलनिहि ताहिला।
तइं जीता सवि राय एकु विभिषणु मिल्हि मह्नु॥

इसी प्रकार योगीन्द्र के परमात्म प्रकाश में भी सोरठा मिलता है।

हिन्दी-साहित्य में वीरगाथा काल की छप्पय-पद्धति का छप्पय भी अपभ्रश म प्रयुक्त हुआ है। छप्पय अपभ्रश का सकीर्णवृत्त है। छप्पय का प्रयोग १० वी शताब्दी से पूर्व नही हुआ। स्वयभू छन्द मे इसका लक्षण मिलता है।[1] कुमारपाल प्रतिबोधान्तर्गत अपभ्रश पद्यो मे इसका प्रयोग पाया जाता है।[2] सदेश रासक मे छन्दो की विविधता मिलती है। छन्दो के आधिक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि छन्दो के उदाहरण स्वरूप इस की रचना की गई। सुदसण चरिउ, सुलोचना चरिउ और जिणदत्त चरिउ की छन्द विविधता का पीछे निर्देश किया जा चुका है। हिन्दी के वीर काव्यो मे भी इस छन्द-बहुलता के दर्शन होने है।

अपभ्रश कवियो ने जिन मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है उनमें उन्होंने स्वतंत्रता का परिचय दिया है। चतुष्पदी छन्दो का कही द्विपदी के समान, कही अष्टपदी के समान, स्वेच्छा के प्रयोग किया है। किसी बधन को इन्होने स्वीकार नही किया।

अपभ्रश कवियो के पादाकुलक, पज्झटिका, हरिगीत, भुजगप्रयात, ताटक, छप्पय, रोला, दोहा, सोरठा आदि अनेक मात्रिक छन्दो का प्रयोग हिन्दी के संत और भक्त कवियों ने इन्ही नामो से या कुछ परिवर्तित नामो से किया है।

अपभ्रश के छन्दो के प्रभाव के अतिरिक्त छन्दो मे आलाप के लिए किसी अक्षर के प्रयोग की शैली भी अपभ्रश के अनेक छन्दो मे मिलती है। जयदेव मुनि के भावना सधिप्रकरण के कुछ पद्यो मे इसका आभास मिलता है। वहा ए का प्रयोग इसी उद्देश्य से किया गया है।[3] कुछ रासा ग्रन्थो में तु का प्रयोग भी इसी ओर सकेत करता है।[4]

इसके अतिरिक्त हिन्दी कविता में "कह गिरिधर कविराय" "कहैं कबीर" आदि कवि के नाम प्रयोग की प्रणाली भी अपभ्रश से ही आई। सिद्धो के गीतों मे उनके नाम का निर्देश मिलता है। सुप्रभाचार्य ने अपने वैराग्य सार मे अनेक पद्यो मे अपने नाम का प्रयोग किया है। स्थान स्थान पर "सुप्पउ भणइ" प्रयोग मिलता है।[5]

अपभ्रश के हिन्दी पर प्रभाव के परिणाम स्वरूप अनेक अपभ्रश और हिन्दी के कवियों मे शब्द साम्य दिखाई देता है। कुछ उदाहरण देखिये ––

(i) **मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिर मंडिउ चित्तु ण मंडिया।**
चित्तहं मुंडणु जि कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ॥

(पाहुड दोहा)

केसन कहा बिगारिया जो मुंडो सौ बार।
मन को क्यों नहीं मुंडिये जामे विषै विकार॥ (कबीर)

---

१. श्री विपिन विहारी त्रिवेदी, विशाल भारत, अक्तू० १९५०।
२. देखिये पीछ चौदहवाँ अध्याय पृ० ३६४।
३. देखिये पीछे नवाँ अध्याय, पृ० २९३।
४. देखिये पीछे चौदहवाँ अध्याय पृ० ३६४।
५. देखिये पीछे नवां अध्याय पृ० २७९-२८२।

(ii) जे मइँ दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसंतेण
ताण गणंतिए अंगुलिउ जज्जरिआउ णहेण ॥

(हेमचन्द्र प्रा० व्या०)

सखि मोर पिया अजहुँ न आओल कुलिश हिया।
नखर खोआयलु दिवस लिखि लिखि,
नयन अँधायलु पिय-पथ पेखि ॥ (विद्यापति)

(iii) जहि मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेस।
तहि बट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेस ॥

(सरहपा)

जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उड़ै नहिं जाय।
रैनि दिवस का गम नहीं, तहँ कबीर रहा लौ लाइ ॥ (कबीर)

(iv) बहु पहरेंहि सूरु अत्थमियउ, अहवा काइ सीसए।
जो वारुणिहे रत्तु सो उग्गुवि, कवणु ण कवणु णासए ॥

(नयनन्दी)

जहीं वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन, संपति सोभा साज ॥

(केशव)

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यही कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के विभिन्न काव्यरूपो, भिन्न भिन्न कालो के प्रतिनिधि कवियो के काव्यो और काव्य-पद्धतियो की रूप रेखा के दर्शन सक्षेप से हमें अपभ्रंश साहित्य मे मिल जाते है। हिन्दी साहित्य के विविध काव्यरूपो में प्राप्त भावधारा भी बीज रूप से अपभ्रश साहित्य में मिलती है। हिन्दी साहित्य के काव्यो मे कही काव्य का बाह्य रूप, कही काव्य पद्धति, कही भावधारा, कही इनमे से एक और कही एक से अधिक तत्व, अपभ्रश काव्यो के आधार पर विकसित हुए, इस कथन मे कोई अतिशयोक्ति नही। अपभ्रश के छन्दो का भी हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पडा। हिन्दी साहित्य का कला पक्ष भी अपभ्रश साहित्य का ऋणी है।

इस विवेचन से अपभ्रश साहित्य की महत्ता हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है। हिन्दी साहित्य के विकास में अपभ्रश साहित्य का जो हाथ है उसको ध्यान मे रखते हुए अपभ्रश साहित्य की उपेक्षा करना हिन्दी साहित्य के लिए घातक होगा।

अन्त मे इस महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान दिलाना परम आवश्यक है कि वर्तमान राष्ट्रभाषा का विकास अपभ्रश से ही हुआ। कतिपय उर्दू भक्तो का यह कथन है कि हिन्दी की खडी बोली उर्दू भाषा का रूपान्तर है। उर्दू प्राचीन है और हिन्दी की खडी बोली नवीन। कहते है कि उर्दू मे से फारसी अरबी के शब्द निकाल कर उनके स्थान पर सस्कृत के शब्दो का प्रयोग कर हिन्दीवालो ने खडी बोली बना ली। इस मत का खडन करने के लिए अपभ्रश से बढ कर कोई सबल प्रमाण नही। अपभ्रश भाषा के

अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है कि हिन्दी की खडी बोली इस युग में अपभ्रश भाषा ही का रूपान्तर है। इसका अकाट्य प्रमाण १२ वी शताब्दी के हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत तथा मुनि राम सिंह के निम्नलिखित पद्य है—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एन्तु॥
(प्राकृत व्याकरण, ८.४.३५१)

तथा चः
विसया चिंति म जीव तुहुं विसय ण भल्ला होंति।
सेवंताहं वि महुर वढ़ पच्छइं दुक्खइं दिंति॥
अक्खर चढिया मसि मिलिया पाढंता गय खीण।
एक्क ण जाणी परमकला कहिं उग्गउ कहिं लीण॥
(पाहुड़ दोहा, पद्य संख्या, १६३, २००.)

इन सब दोहो मे आकारान्त पदो का रूप पाया जाता है जैसे भल्ला, मारिआ, भग्गा, चडिया, मिलिया इत्यादि। यह आकारान्त प्रयोग खडी बोली का विशेष लक्षण है। यह बोली दिल्ली प्रान्त मे अपभ्रंश काल से प्रचलित रही है। परिस्थिति इस प्रकार है कि मुगल शासको की राजधानी दिल्ली की खडी बोली को फारसी अरबी के शब्दो के सम्मिश्रण से उर्दू का स्वरूप दिया गया। यदि इन परदेशी शब्दो को खडी बोली से अलग कर दिया जाय और उनके स्थान में स्वदेशी तद्भव अथवा तत्सम शब्दो का प्रयोग जो पहिले से चला आ रहा है, पुन: प्रचलित किया जाय तो खडी बोली का स्वाभाविक रूप निखर आयगा।

किसी भाषा के कुल का सम्बन्ध उसकी केवल शब्दावली से नहीं किया जा सकता। शब्द तो उधार भी लिये जा सकते है। जैसे हिन्दी की खडी बोली ने फारसी अरबी शब्दो को अपने में सम्मिलित करके उर्दू का रूप धारण किया। किसी भाषा के कुल-साम्य का निर्णय उस भाषा की पद-योजना अथवा वाक्य-विन्यास से होता है। खडी बोली का यह साम्य अपभ्रंश के आकारान्त प्रयोगो से स्पष्ट है। साराश यह है कि उर्दू तथा हिन्दी दोनो ही अपभ्रंश के ऋणी है। इसलिए यह कहना सर्वथा निर्मूल है कि हिन्दी की खडी बोली उर्दू से निकली। तथ्य तो यह है कि उर्दू, हिन्दी की खडी बोली से उत्पन्न हुई है। खडी बोली जिसको हम नागरी भाषा भी कहते है प्राचीन नागर अपभ्रश से उत्पन्न हुई दिखाई देती है। दिल्ली नगर की भाषा होने के कारण कदाचित् यह अपभ्रश नागर अपभ्रश के नाम से प्रसिद्ध हुई हो। संभव है कि नगर की भाषा होने के कारण यह भाषा जिसे हम खडी बोली कहते है कदाचित् उस समय की खरी बोली हो। निष्कर्ष यह है कि यह खडी बोली अथवा खरी बोली नागर अपभ्रंश की सन्तति है, जो अखण्ड रूप से प्रवाहित होती हुई हमारे पास आधुनिक हिन्दी के रूप में पहुँचकर अब राष्ट्रभाषा के रूप में सिंहासनारूढ़ है। हिन्दी भाषा का यह श्रेय वस्तुत: इसकी जननी अपभ्रंश को ही प्राप्त है।

परिशिष्ट (१)

ग्रन्थकार, ग्रन्थ, रचना-काल तथा ग्रन्थ विषय

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	रचना-काल	विषय
सरहपा	दोहाकोष एव चर्यापद से सगृहीत पद	७वी – १०वी शताब्दी	रहस्यवाद, पाखंड-खंडन, सहज-माग, तन्त्र-मन्त्र, देवतादि की व्यर्थता, गुरु महिमा, हठयोग इत्यादि
शबरपा		७वी – १०वी शताब्दी	
लुईपा		वि० स० ८२६ – ८६६	
दारिकपा		? ?	"
कण्हपा		वि० स० ८६६ – स. ९०६	"
शान्तिपा		वि० स० १०५७	"
योगीन्दु-योगीन्द्र	परमप्पयासु, योगसार	८वी – ९ वी शताब्दी	अध्यात्म-आत्म परमात्म चिन्तन, मोक्ष-स्वरूप
स्वयभू	पउम चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ	८वी – ९वी शताब्दी	जैन धर्मानुकूल रामायण और महाभारत की कथा
देवसेन	सावयधम्म दोहा	वि० स० ९९०	नीति एव सदाचार संबधी धर्मोपदेश तथा गहस्थोचित कर्त्तव्यो का उपदेश
पुष्पदन्त	महापुराण-तिसट्ठी महापुरिस गणालकार, नायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ	वि० स० १०१६–१०२२	जन साहित्य के २४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव, और ९ बलदेव-६३ महापुरुषो का चरित्र वर्णन । नागकुमार और यशोधर का चरित्र वर्णन ।
हरिषेण	धम्म परिक्खा	वि० स० १०४०	नाना पौराणिक आख्यानो की असंगति, ब्राह्मण-धर्म पर व्यंग्य, जनधर्म की महत्ता ।
मुनिराम सिंह	पाहुड दोहा	वि० सं० १०५७ के आस-पास	अध्यात्म चिन्तन—बाह्य कर्मकाड की अपेक्षा आत्मानुभूति एव सदाचरण की महत्ता ।

धनपाल	भविसयत्त कहा	११ वी–१२वी शताब्दी	भविष्यदत्त के कथानक द्वारा श्रुत पचमी व्रत का माहात्म्य-प्रदर्शन
वीर	जम्बुसामि चरिउ	वि० स० १०७६	अन्तिम केवली जबू स्वामी का चरित्र-वर्णन
धवल	हरिवश पुराण	वि० स० ११वी शताब्दी	महाभारत कथा
नयनंदी	सुदंसण चरिउ, सकल विधि-विधान काव्य	वि० स० ११००	सुदर्शन चरित्र द्वारा पच नमस्कार का माहात्म्य नाना विधिविधानो एव आराधनाओ का विवेचन
मनि कनकामर	करकड चरिउ	वि० सं० ११२२	करकडु महाराज के चरित्र द्वारा जैनधर्म के सदाचारमय जीवन का दिग्दर्शन
श्री चन्द्र	कथा कोष तथा रत्न करड शास्त्र	वि० स० ११२३	धार्मिक एव उपदेशप्रद कथाएँ
पद्मकीर्ति	पासचरिउ—पार्श्वपुराण	वि० स० ११३४	२३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित्र
धाहिल	पउम सिरी चरिउ	वि० सं० ११९१ से पूर्व	पद्मश्री का जीवन-चरित्र
चन्दवरदाई	पृथ्वीराज रासो	१२वी – १३वी शताब्दी	चौहानवशी पृथ्वीराज तृतीय का जीवन
श्रीधर	पासणाह चरिउ	वि० स० १२वी–१३वी शताब्दी	पार्श्वनाथ का चरित्र
	सुकुमाल चरिउ		सुकुमाल स्वामी के पूवजन्म का वर्णन
	भविसयत्त चरिउ		श्रुत पचमी व्रत के फल और माहात्य का प्रदर्शन करने के लिये भविष्यदत्त का चरित्र-वर्णन
देवसेन गणि	सुलोयणा चरिउ	वि० स० १०२९-१३७२	चक्रवर्ती भरत के प्रधान सेनापति जय-कुमार की धर्मपत्नी सुलोचना का चरित्र
जिनदत्त सूरि	उपदेश रासायन रास	वि० सं० ११३२–१२१० वि.	नीति एव सदाचार संबधी धर्मोपदेश
	काल स्वरूप कुलक		”
	चर्चरी		जिनदत्त सूरि के गरु जिनवल्लभ सूरि का गुणगान तथा नाना चैत्य विधियो का विधान
सुप्रभाचार्य	वैराग्यसार	११वी–१३वी शताब्दी	धर्मतत्त्व विवेचन द्वारा वैराग्य भाव प्रचार
शालिभद्र सूरि	भरतबाहुबलिरास	वि० स० १२४१	ऋषभ पुत्र भरत और भरत के छोटे भाई बाहुबलि के जीवन-सघष का वर्णन

जिनपद्म सूरि	सिरि थूलिभद्द फाग	वि० सं० १२५७ के आस-पास	स्थूलीभद्र और कोशा की कथा
विनयचन्द सूरि	नेमिनाथ चतुष्पदिका	वि० स० १२५७ के आस-पास	२२व तीर्थंकर नेमिनाथ की कथा
सिह	पज्जुण्ण चरिउ	वि० स० १३वी शताब्दी	२४ कामदेवो म से २१वे कामदेव कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र
अब्दुल रहमान	सन्देश रासक	वि० सं० १२वी, १३वी शताब्दी	एक विरहिणी का अपने प्रवासी प्रियतम को एक पथिक द्वारा सन्देश भेजना
धर्म सूरि	जम्बू स्वामि रास	वि० स० १२६६	जबू स्वामी का चरित्र
विजयसेन सूरि	रेवत गिरि रास	वि० सं० १२८८	रेवत गिरि की प्रशसा, नेमिनाथ की स्तुति, गिरिनार के जन मन्दिरो का जीर्णोद्वार
हरिभद्र	सनत्कुमार चरित	वि० सं० १२१६	ऋषि सनत्कुमार का चरित्र-वर्णन
सोमप्रभ	जीवमनः करण संलाप कथा, स्थूलि भद्र कथा, द्वादश भावना	वि० सं० १२४१	धार्मिक कथाबद्ध रूपक-काव्य स्थूलिछभद्र और कोशा की कथा ससार की अनित्यता और क्षणभगरता बतलाते हुए द्वादश भावनाओ के पालन का महत्त्व
अमरकीर्ति	छक्कम्मोवएस	वि० स० १२४७	गृहस्थोचित देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्रा-भ्यास, सयम, तप और दान नामक छह कर्मो के पालन का उपदेश
विनयचन्द्र	उवएस माल कहाणय छप्पय,	१३वी शताब्दी	प्राचीन तीर्थंकरो और धार्मिक पुरुषो के उदाहरणो द्वारा धर्माचरण का उपदेस
जयदेव मनि	भावना सन्धिप्रकरण	१३वी—१४वी शताब्दी	नैतिक और धार्मिक जीवन का उपदेश
देल्हण	गय-सुकुमाल रास	वि० सं० १३००	कृष्ण भगवान के छोटे सहोदर भाई गज-सुकुमाल का चरित्र
लाख या लक्खन	जिणदत्त चरिउ	वि० सं० १३१३	जिनदत्त का चरित्र वर्णन
	अणवय रयण पईय		श्रावकोचित व्रतों-अणव्रतों-एवं कर्तव्यो के स्वरूप और स्वभाव का वर्णन

लक्खनदेव या लक्ष्मणदेव	णेमिणाह चरिउ	वि० सं० १५१० से पूर्व	२२ व तीर्थंकार नमिनाथ का चरित्र-वर्णन
अम्बदेव	समरारास	वि० स० १३७१	संघपति देसल के पुत्र समरसिह को दान-वीरता का वर्णन
धनपाल	बाहुबलि चरित	वि० सं० १४५४	प्रथम कामदेव बाहुबलि का चरित्र-वर्णन
विद्यापति	कीर्तिलता	वि० स० चौदह-पन्द्रह शताब्दी	राजा कीर्त्तिसिह का यशगान
यश.कीर्ति	पाडव पुराण	वि० स० १४९७	पाडवो की कथा का वर्णन
	हरिवश पुराण	वि० स० १५००	महाभारत की जैनधर्मानसार कथा
रयधू	बलभद्र पुराण,		जैनधर्मानुकल पाडवो की कथा
	पद्म पुराण (?)		,, राम कथा
	सुकौशल चरित,	पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी	सुकौशल मनि का चरित्र वर्णन
	आत्म सबोध काव्य,		अध्यात्म
	धनकुमार चरित,		महापुरुषो के चरित्र
	मेघेश्वर चरित,		
	श्रीपाल चरित, सन्मतिनाथ चरित		अन्तिय तीर्थंकर महावीर के चरित्र का वणन
श्रतकीर्ति	हरिवश पुराण	वि० स० १४९७	जैन धर्मानकूल महाभारत की कथा
	परमेष्ठि प्रकाश सार	वि० स० १५५३	धर्मोपदेश
नरसेन	श्रीपाल चरित,	वि० स० १५१२ से पूर्व ?	श्रीपाल का चरित्र-वर्णन
	वर्द्धमान कथा		तीर्थंकर महावीर की कथा
जयमित्र हल्ल	वर्द्धमान चरित्र	वि० सं० १५४५ से पूर्व ?	तीर्थकर महावीर का चरित्र-वर्णन
माणिक्य राज	अमरसेन चरित्र	वि० स० १५७६	अमरसेन का चरित्र-वर्णन
	नागकुमार चरित्र	वि० सं० १५७९	नागकुमार की कथा
महिन्दु	शान्तिनाथ चरित्र	वि० सं० १५८७	शान्तिनाथ का चरित्र-वर्णन
बच्चराय	मयण जुज्झ	वि० स० १५८९	भगवान् पुरुदेव द्वारा किये मदन-पराजय का वर्णन
भगवतीदास	मृगाकलेखा चरित्र	वि० स० १७००	चन्द्रलेखा एव सागरचन्द्र का चरित्र-वर्णन तथा चन्द्रलेखा के शीलव्रत का माहात्म्य

आनन्द या महानन्दी	आनन्दा या आनन्द स्तोत्र	?	?	?	धार्मिक साधना का उल्लेख, अध्यात्म चित्रन्तन
मुनिमहचन्द	दोहा पाहुड	?	?	?	अध्यात्म-गुरुमहत्ता, आत्मज्ञान, विषय त्याग आदि
महेश्वर सूरि	सयम मजरी	?	?	?	सयम का महत्त्व
विनय चन्द	चूनडी	?	?	?	धार्मिक भावनाओ एवं सदाचारो की रँगी चूनडी धारण करने का उपदेश
	कल्याणक रासु	?	?	?	जैन तीर्थंकारो की पच कल्याणकारी तिथियो का वर्णन
	णिझर पचमी विहाण	?	?	?	
	कहाणक	?	?	?	
हरिदेव	मयण पराजय चरिउ	?	?	?	मदन पराजय कथाविषयक रूपक कृति
राजशेखर सूरि	श्री नेमिनाथ फागु	?	?	?	नेमिनाथ की कथा
?	धर्म सूरि स्तुति	?	?	?	धार्मिक बारहमासे का वर्णन
पउम ?	सालिभद्द कक्क	?	?	?	वर्णमाला के अक्षरो के क्रम से धार्मिक दोहे
?	दूहा मातृका	?	?	?	वर्णमाला के अक्षरो के क्रम से दोहो में धर्माचरण का उपदेश
अभयदेव सूरि	जय तिहुयण स्तोत्र	?	?	?	

परिशिष्ट (२)

कतिपय प्रसिद्ध लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ तथा वाग्धारायें

"वरि एक्कलओ वि पचाणणु णु सारंग-णिवहु वुण्णाणणु
वरि एक्कलओ वि मयलञ्छणु ण य णक्खत्त-णिवहु णिल्लछणु ।
वरि एक्कलओ वि रयणायरु णिउ जलवाहिणि-णियरू स-वित्थरु ।
वरि एक्कलओ वि वइसाणरू णउ वण-णिवहु सरुक्खु सगिरिवरु ।"

परमचरिउ ३८.२

जहि पहु दुच्चरिउ समायरइ,
तहि जणु सामण्ण काइ करइ । (रिट्ठणेमि चरिउ)
भुक्कउ छणयंदहु सारमेउ । (महापुराण १ ८ ७.)
उट्ठाविउ सुत्तउ सीहु केण । (वही, १२ १७ ६.)
माणभगु वर मरणु न जीविउ । (वही, १६ २१ ८.)
को तं पुसइ णिडालइ लिहियउ । (वही, २४. ८ ८)
भरियउ पुण रित्तउ होइ राय । (वही, ३९. ८ ५)
लूयासुत्ते वज्झउ मसउ ण हत्थि णिरुज्झइ । (वही, ३१.१०.९.)
जो गोवालु गाइ णउ पालइ
सो जीवन्तु दुद्धु ण णिहालइ ।
जो मालारु वेल्लि णउ पोसइ
सो सुफल्लु फल कव लहेसइ ॥ (वही, ५१ २.१.)
इह ससार दारुण बहु सरीर संघारणे ।
वसिऊणं दो वासरा के के ण, गया णर वरा ॥ (वही, ७. १)
मुच्छं गइ दिज्जइ सलिलु पवणु उवसंतहो किज्जइ धम्म सवणु ।
किं सुक्के रुक्खे सिंचिएण अविणीय किं संबोहिएण ॥

(जस० च०, १ २०. १–२)

अणइच्छयइं होंति जिमि दुक्खइ
सहसा परिणवति तिह सोक्खइ ।

(भवि० कहा, ३ १७.८.)

जोव्वण वियार रस वस पसरि सो सूरउ सो पंडियउ ।
चल मम्मण वयणु ल्लावएहिं जो परतियहिं न खडियउ ॥

(वही, ३ १८. ९)

परहो सरीरि पाउ जो भावइ त तासइ बलेवि सतावइ।
(वही, ६ १० ३)
अहो चंदहो जोन्ह किं मइलज्जइ दूरि हुय ॥ (वही, ११.३ १७)
जहा जेण दत्तं तहा तेण पत्तं इमं सुच्चए सिट्ठ लोएण वुत्तं ।
सुपायन्नवा कोद्दवा जत्त माली कहं सो नरो पावए तत्थ साली ॥
(वही, पृ ८४)
कच्चे पल्लट्टइ को रयणु, पित्तलइ हेमु विक्कइ कवणु।
(जम्बू सामि चरिउ, २ १८)
को दिवायर गमणु पडिखलइ । जम महिस सिंग कूखणइ।
(वही, ५४)
करे ककणु कि आरिसे दीसए। (सुद० च०, ७ २)
जं जसु रुच्चइ त तस्स भल्लउ। (वही, ७ ५.)
एके हत्थ ताल कि वज्जइ,
कि मारवि पचम गाइज्जइ। (वही, ८३)
पर उवएसु दिंतु बहु जाणउ। (वही, ८८)
वर सुवण्ण कलसहो उवरि,
ढकण कि खप्परु दिज्जइ। (वही, ८.६)
अह ण कवण णेहे संताविउ। (वही, ७ २)
सग्गु मएवि णरउ कि वछहि। (वही, ८५)
तं खज्जइ जं घरिणइ पावइ। (वही, ८५)
दुद्ध सुद्ध किं कजिउ पूरइ। (वही, ८८)
देवह वि दुलक्खउ तिय चरित्तु । (वही, ९ १८)
जोव्वणु पुणु गिरिणइ वेयतुल्ल,
विद्धत्ते होइ सव्वगु ढिल्ल। (वही, ९. २१)
गुरुआणु सगु जो जण वहेइ,
हिय इच्छिय सपइ सो लहेइ। (कर० च० २.१८७.)
विणु केरइ लब्भइ णाहि मित्त,
एह मेइणि भुजहुं हत्थमेत्त। (वही, ३ ११ १)
लोहेण विडविउ सयलु जणु भणु
किं किर चोज्जइं णउ करइ। (वही, २ ९ १०)
ओसहु निरुमिट्ठ विज्जुवइट्ठ,
अहुजण कासु न होइ पिउ। (प० सि० च, २ ७. ८८.)
उइइ चदि कि तारियह। (वही, १. १० ३३)
अलि वचेवि केयइ वउले लग्गु,
ज जसु मणिट्ठु तं तासु लग्गु। (वही, २ ५ ५७.)

कउ मित्त-वियोउ न दुक्ख देइ। वही, (३ १७)
उव्वेव करडइ फुट्टइ भंडइ
काइ मि किज्जइ घरि थियइ। (वही, ११४ १८४)
कि तेण पहूवइ बहु धणई, ज विहडियह ण उद्धरइ।
कव्वेण तेण कि कइयणेण, ज ण छइल्लह मणुहरइ॥
(पज्जण्ण चरिउ से उद्धृत)

'कि विज्जए जाए ण होइ सिद्धि'।
'कि णिज्जलेण घण गज्जिएण'।
(बाहु० चरिउ से उद्धृत)

एयाण वयण तुल्लो होमि ण होमित्ति पुण्णिमादियहो।
पियमडला हिलासी चरइ व चदायण चदो॥
(जम्बू० चरित, ४ १४)

सयलज्ज सिरेवणु पयडियाइ अगाइं तीय सविसेस।
को कवियणाण दूसइ, सिट्ठ विहिणा वि पुणरुत्त॥
(सदेश रासक, २ ४०)

उत्तरायणि वड्ढहि दिवस,
णिसि दक्खिण इहु पुव्व णिउइउ।
दुन्चिय वड्ढहि जत्थ पिय,
इहु तीयउ विरहायण होइयउ॥ (वही, २ ११२)
सप्पुरिसह मरणाअहिउ पर परिहव सताउ। (वही, २ ७६)
पुरिसत्तणेन पुरिसओ नहि पुरिसओ जम्ममत्तेन।
जलदानेन हु जलओ नहु जलओ पुञ्जिओ धूमो॥
सो पुरिसओ जसु मानो सो पुरिसओ जस्स अज्जने सत्ति।
इअरो पुरिसाआरो पुच्छ विहूना पसू होइ॥
(कीर्तिलता, पृष्ठ ६)

अण्णु जि तित्थ म जाहि जिय अण्ण जि गरुअ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहु अप्पा विमलु मुएवि॥
(पर० प्रकाश, १ ९५)

देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरजण णाणमउ सिउ सठिउ सम चित्ति॥
जे दिट्ठा सूरुग्गमणि ते अत्थवणि न दिट्ठ।
ते कारणि वढ धम्म करि धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ॥
(वही, २ १३२)

बहुए सलिल-विरोलियइ करु चोप्पडउ ण होइ। (वही, २ ७४)
मूल विणट्ठइ तरुवरह अवसइ सुक्कहिं पण्ण। (वही, २ १४०)

मरगउ जे परियाणियउ तहु कच्चे कउ गण्णु । (वही, २ ७८)
मुडिय मुडिय मुडिया सिरु मुडिउ चित्तु ण मडिया ।
चित्तह् मडणु जि कियउ ससारह् खडणु ति कियउ ॥
(पाहुड दोहा, पद्य १३५)
वहुयइ पढियइ मूढ पर तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कु जि अक्खरु त पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण ॥ (वही, ९७)
जसु कारिणि धणु संचइ, पाव करेवि गहोरु ।
त पिछहु सुप्पउ भणइ, दिणि दिणि गलइ सरीरु ॥
(वैराग्य सार, पद्य ३३)
मुवउ मसाणि ठवेवि लहु, बधव णिय घर जति ।
वर लक्कड सुप्पउ भणइ, जे सरिसा डज्झति ॥ (वही, पद्य १०)
जज्झरि भडइ नीरु जिमु, आउ गलति पेच्छि । (वही, पद्य २०)
दुज्जण सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसे वासरु तमिण जिम मरगउ कच्चेण ॥
(सावय धम्म दोहा, पद्य २)
मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि भोयहं पेरिउ जेण ।
इधण कज्जे कप्पयरु मूलहो खडिउ तेण ॥ (वही पद्य २१९)
जहि साहस तहि सिद्धि । (वही, पद्य ७१)
धम्मिउ धम्मु कज्जु साहतउ ।
परु मारइ कीवइ जज्झतउ ।
तु वि तसु धम्मु अत्थि न हु नासइ
परम पइ निवसइ सो सासइ ॥
(उपदेश रसायन रास, पद्य २६)
धमु न करेसि वछेसि सुह मुत्तिए,
चणय विक्केसि वछेसि वर मुत्तिए ।
ज जि वाविज्जए त जि खल लज्जए,
भुज्जए ज जि उग्गार तस्स किज्जए ॥
(भावना सन्धि प्रकरण, पद्य ५२)
घरि पलित्तमि खणि सकइ को कूवए ॥ (वही, पद्य ५७)
कि लोहइ घडिउ हियं तुज्झ ॥ (वही, पद्य २५)
गय मय महुअर झस सलह नियं निय विसय पसत्त ।
इक्किक्केण इ इन्दियण दुक्ख निरतर पत्त ॥
इक्किणि इदिय मक्कलिण लब्भइ दुक्ख सहस्स ।
जसु पुण पचइ मुक्कला कह कुसलत्तणु तस्स ॥
(सयम मजरी, पद्य १७-१८)

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्ब भणन्ति ।
मुद्धि णिहालहि गयणयलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥
(प्राकृत व्याकरण, ८.४.३७६)

जे निअहिं न पर दोस । गुणिहिं जि पयडिअ तोस ।
ते जगि महाणुभावा । विरला सरल सहावा ॥
परगुण गहणु स दोस पयासण । महु महुरक्खरहि अमिउ भासण ।
उवयारिण पडिकिओ वेरिअणहं, इअ पद्धडी मणोहर सुअणह ॥
(छन्दोऽनुशासन)

जे परदार-परम्महा ते वुच्चहिं नरसीह ।
जे परिरभहि पर रमणि ताह फसिज्जइ लीह ॥
(कुमारपाल प्रतिबोध, पृष्ठ १५५,)

जइवि हु सूरु सुरूवु विअक्खणु
तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु ।
पुरिस गणागुण मुणण परम्मुह
महिलह बुद्धि पयपहिं ज बुह ॥ (वही, पृ० ३३१)
जा मति पच्छइ संपज्जइ सा मति पहिली होइ ।
मज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ॥ (प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० २४)
कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसण वाडी ।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ पग बेहु झाडी ॥ (वही, पृ० ५१)
कुमारपाल ! मन चिंत करि चिंतिहि किपि न होइ ।
जिणि तुहु रज्ज सम्मप्पिउ चित करेसइ सोइ ॥ (प्रबन्ध कोश, पृ० ५१)
उवयारह उवयारडउ सव्वु लोउ करेइ ।
अवगुणि कियइ जु गुण करइ विरलउ जणइ जणेइ ॥ (वही, पृ० ८)
सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण ।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥ (प्राकृत पैंगल पृ० १३९)

परिशिष्ट (३)

संभव जिणणाह चरिउ

तेजपाल रचित 'सभव जिणणाह चरिउ' का वर्णन अपभ्रंश काव्यो के प्रसंग में असावधाणी से छूट गया। उसका सक्षिप्त वर्णन यहाँ परिशिष्ट मे दिया जा रहा है।

यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति श्री चन्द्र प्रभु, दिगम्बर जैन सरस्वती भवन श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, दीवाण अमर चन्द जी, जयपुर से प्राप्त हुई थी। इसकी रचना तेजपाल ने थील्हा के आश्रय मे की थी।[1] कवि के जीवन और रचना-काल के विषय मे कुछ विवरण उपलब्ध नही।

ग्रंथ मे छह सन्धियाँ और १७० कड़वक है। प्रत्येक सन्धि के अन्त मे कवि ने अपने नाम का निर्देश किया है। ग्रथ का आरम्भ निम्नलिखित मगलाचरण से हुआ है—

ओ३म् नम. सिद्धेम्य. ॥

सासय सुहकारणु कुगइ णिवारणु चरिउ परम गुण गणणियरु।

सभव जिण केरउ सति जणेरउ भणमि भव्व आणंदयरु ॥

मगलाचरण के अनन्तर चौबीस तीर्थकरो का स्तवन किया गया है। तदनन्तर कवि ने अपने आश्रयदाता थील्हा का परिचय दिया है। ग्रथ में परपरागत सज्जन प्रशंसा और दुर्जन निन्दा भी मिलती है—

घत्ता-अहवा किं दुज्जण धम्म विहजणु जइ विडप्पु वियरंतु णहि।

सोलह कल भासउ ससि अमियासउ णउ चुक्कइ जतु पहि ॥१.७

तदनन्तर जंबु द्वीप और तत्रस्थ भरत क्षत्र का उल्लेख कर कवि मगध देश का वर्णन करता है। वहाँ श्रेणिक महाराज के गणधर से पूछने पर वह जिणसंभव पुराण सुनाना आरम्भ करते है।

कवि ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर इस ग्रंथ का निर्माण किया है। निशि भोजन निषेध, दान, अहिसा आदि षट्कर्मोंपदेश प्रभृति भावना ही प्रमुख है—

घत्ता—

रय रयणि दिवायर गुणरयणायर जो छक्कम्म समायरइ।

---

१. इय संभव जिण चरिए सावयायार विहाण फल सरिए
सिरि तेजपाल विरइए, सज्जण संदोह समणि अणुमण्णिए,
सिरि महाभव्व थील्हा सवण भूसणे सिरिविमल वाह
णिव धम्मायण्णणो णाम पढमो परिछेउं समत्तो ॥

सन्धि १ ॥

सो कम्म वियारिवि सिव बहु धारिवि भवसायरु लीलइ तरइ ।।१ ३९

ग्रथ मे कवित्व की प्रधानता नही । काव्यमय वर्णनो का प्राय अभाव है । वर्णन सामान्य कोटि के है । एक नमूना देखिये—

इह जव दीउ दीवह पहाणु, गिरि दरि सरि सरवर सिरि णिहाणु ।
तहि मज्झि सुदसण णाम मेरू, ण विहिणा किउ जय मज्झि मेरु ।
तहो सेल्लहु दाहिणी दिसि विचित्तु, सिरि सकुल णामे भरहखेत्तु ।
तहो मज्झि मगहु णामेण देसु, तहो वण्णहु पार गउ ण सेसु । इत्यादि १ ८

वर्णनो का चलता करने का प्रयत्न किया गया है । मगध देश का वर्णन शेष भी न कर सका अत कवि ने भी चुप रहना उचित समझा ।

अनुक्रमणिका

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

(काले टाइप के अंको पर विशेष विवरण है। अंक पृष्ठ सख्या के सूचक है।)

अ

अकलंक–१७५, १८१, २२९

अखरावट–३९१

अगरचन्द नाहटा–११०, २४८, २९०, ३५९, ३७९

अणथमी कहा–३५९

अणन्त वय कहा–३६०

अणुवय रयण पईउ–**३५६–३५८**

अद्दहमाण (अब्दुल रहमान)–४२, ५०, २४७, ३९५

अनन्त व्रत कथानक–३५९

अनन्त नारायण–३३५

अन्तरग रास–४२, ३६७

अभयदेव सूरि–४२, ३७२

अभिनव गुप्त–१

अमर कीर्त्ति–४१, ३५४, ३५९, ३९५

अमरचन्द्र–५, ६

अमरसेन चरित–२४३

अमित गति–३४४

अम्बदेव–३७०

अयोध्यासिंह उपाध्याय–४०३

अर्थशास्त्र–१३३

असग–१०४

आ

आकाश पंचमी–३५९

आदिनाथ नेमिनाथ 'उपाध्ये'–१७, २६८, २७४, ३६१,

आनन्द वर्धन–३१९

आनदा–आनन्द स्तोत्र–२८३

आर्या सप्तशती–३२०, ३८९

ई

ईशान–२२९

उ

उक्ति व्यक्ति–३८०

उक्ति व्यक्ति विवृत्ति–३८०

उद्योतन सूरि–४, २१७, ३४२, ३७६

उद्धरण कथा–३५९

उपदेश तरगिणी–३३२

उपदेश रसायन रास–४२, ४३, २८८-२८९, ३६३, ३६७, ३९०

उपमिति भव प्रपंच कथा–३६, ३३४, ३४२

उपाध्ये–दे० आदिनाथ नेमिनाथ

उवएस माल कहाणय छप्पय–३६०, ३६८

ऋ

ऋग्वेद–८

ऋषभ जिन स्तोत्र–४२

क

कण्हपा (कृष्णपाद)–३०५, ३१२–३१५, ३१८, ३९२

कथा कोष–४१, ३४८–३५०

कथा कोष प्रकरण–३३२, ३४२

कनकामर–३४, १८१, ३९४

कबीर–२१, २७६, २७७, २९७, ३१८, ३९१, ३९२, ३९३, ४०५

करकंड चरिउ—११४, १८१—१९६, ३९४
कर्णपूर—३३५
कल्याणक रासु—२९६, ३५९
कस्तूरचन्द कासलीवाल—१०३
कात्रे—२४८
कादबरी—६३, ३७६, ४००
कामताप्रसाद जैन—३६०
कामायनी—३३९, ३८९
कालस्वरूप कुलक—४३, २८९, २९०—२९२, ३६३
कालिदास—१६, ३६, ६०, ६१, ६२, ७१, ७४, ७५, ९८, १७५, २१६, २२९, ३१९, ३२०, ३६३, ३८८, ४००, ४०१
काव्य मीमासा—४
काव्य लता परिमल—५
काव्यालकार—४, ५, १६, ३१९
किरातार्जुनीय—३६, ३८८
कीर्तिलता—४२, ४७, २५९—२६५, ३७८, ३८९, ४०५
कुमारपाल चरित—३६, ३२२, ३२६
कुमारपाल प्रतिबोध—४२, २९४, ३१९, ३२०, ३२६, ३३५, ३५२, ३६४
कुमार सभव—३६, ६०, ४००
कुवलय माला कथा—४, २१७, ३४२, ३६२, ३७६
कृष्ण मिश्र—३३४
केशवदास—१७४, ४०१
केशवप्रसाद मिश्र—२४
कौतूहल—१६, १७५, ३९४

ग

गय सुकुमालक—२९३
गय सुकुमाल रास—३६१
गाथा सप्तशती—१३, ३२०
गीत गोविन्द—३८९
गीतावली—३८९
गुणचन्द्र—५
गुणचन्द्र मुनि—३३२
गुणभद्र—३८, ४०, १७५
गुणसिंह—१७५
गुणाढ्य—१४
गुणे पाडुरग दामोदर—९५
गोवर्धनाचार्य—३८९
गोविन्द—१७५,२१६
गौडवहो—१६, ३८२, ३८३
गौतम चरित्र कुलक—२९०
ग्रियर्सन सर जार्ज—८, ११

च

चड—१,२६८
चदप्पह चरिउ (चन्द्रप्रभ चरित)—३६,११८ २३८-२४०
चउमुह (चतुर्मुख)—१०४, १७५, २१६, २१९
चन्दवरदाई—१०९, ३९०
चन्दन षष्ठि—३५९
चन्द्रलेखा दे० मृगाक लेखा चरित्र
चर्चरी—४३, २८९, ३६१-३६३
चूनरी—चूनड़ी—४३, २९६-२९७, ३५९
चैतन्य चन्द्रोदय—३३५

छ

छक्कम्मोवएस—४१, २५४-२५६, ३९५
छन्दोऽनुशासन—३१९, ३२२, ३२६
छान्दोग्य उपनिषत्—३३४

ज

जबु सामि चरिउ—१४७-१५७, १६९, ३६२

जबू स्वामि रास–४२,३६८
जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला–३७७
जयदेव–१७५, १८१
जयदेव (गीतगोविन्दकार)–३८९, ३९८
जयदेव मुनि–४३, २९१, २९४, ४०६
जयराम–१७५,३४४
जयशकरप्रसाद–३३९, ४०२
जय मित्र हल्ल–२४३
जय शेखर सूरि–३३५
जय तिहुयण स्तोत्र–४२, ३७२
जस कित्ति–६७
जस चन्द्र–१७५
जसहर चरिउ–४०,७३, ११४, १३७-१४७
जातक निदान कथा–३३४
जायसी मलिक मोहम्मद–२१, १६८, २२८, ३६२, ३८८, ३९१, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ४०५
जालन्धर पाद–३१२, ३१३
ज्ञान पचमी कथा–३४२
ज्ञान सूर्योदय–३३५
जिणदत्त चरिउ–४९, २२६-२३१, ३५७, ३९४, ४०२, ४०६
जिनदत्त सूरि–४२, ४३, २८८, ३६१
जिन पद्म–३६५
जिन प्रभ–४२, २९०,३६७
जिन पुरन्दर कथा–३५९
जिन रत्ति कहा–३५९
जिन रात्रि विधान कथानक–३५९
जिन सेन–१७५, २१७
जिनेश्वर सूरि–२९०, ३३२, ३४२
जीव मन. करण सलाप कथा–४२, ३३५-३३७
जीवानन्दन–३३५
जोमिचन्द्र–दे० योगीन्दु

ड

डेगी पा–३१२

ण

णाय कुमार चरिउ–७३, १३०–१३७
णिज्झर पंचमी विहाण कथानक–२९६, ३५९
णेमिणाह चरिउ–४० २३२–२३४

त

तत्त्व विचार–३७९
तरग वती–३४२
तारानाथ–६
तिलक मजरी–३४२, ३७९
त्रिभुवन–५३
त्रिविक्रम–१७
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित–३८३
तुलसीदास–३८८, ३८९, ३९१, ३९६, ३९७, ४०५

द

दडी–३, ५३, १७५
दलाल-चिमनलाल डाह्याभाई–९५
दशरथ शर्मा–११०
दश रूपक–३१९
दशकुमार चरित–३४०, ३७६
दामोदर–३८०
दारिक पा–३१२
दुधारसी–३५९
दूहा मातृका–३७२
देवप्रभ–३८३
देवसेन–४३, ४६, २७४, २८३
देवनन्दि मुनि–३५९
देवदत्त–३६०
देवसेन गणि–२१६, ३९५, ४०२
देशी नाम माला–३२२

दोहा पाहुड–२८३
द्रोण–२२९
द्वादश भावना–२९४

ध

धनपाल–३४, ९५, २००, २३४, ३४२, ३७९, ३८३, ३९४, ३९५
धनपाल कथा–३७९
धनंजय–३१९
धम्मपद–६
धम्भ परिक्खा–३४२-३४८
धर्म परीक्षा–३४४
धर्म विजय–३३५
धर्म सूरि–३६८
धर्म सूरि स्तुति–४२, ३७१, ४००
धवल–३४, २१७, ३८३, ३९५
धाहिल–३४, १९७
धूर्त्ताख्यान–३४४
ध्वन्यालोक–३१९

न

नमि साधु–५, १७
नयनन्दी–३४, १५७, १७४, ३६२, ३९९, ४०१
नरसेन–२४३
नरपति नाल्ह–३९०
नरोत्तम दास–११०
नल चरित–२५०
नवकार फलकुलक–२०९
नागकुमार चरित–२४३
नागदेव–३३५
नाट्य-दर्पण–५, ६
नाट्य-शास्त्र–१, २
निद्दुह सप्तमी कहा–३५९
निर्दोष सप्तमी कथानक–३५९
नीतिसार–१३३
नेमिचन्द–३६०
नेमि निर्वाण–३६, ३८३
नेमिनाथ चरित–२२३
नेमिनाथ चतुष्पदिका–३६६-३६७, ४००
नेमि रास–४२, ३६७
नैषध चरित–३८८

प

पचमी चरिउ–५२
पउम चरिउ–५२, ५३-६७, ३९७, ४०१
पउम सिरी चरिउ–४०,४७,११५, १९७-२०७, ३४२
पज्जुण्ह कहा–४१, ३४२
पज्जुण्ण चरिउ (प्रदयुम्न चरित)–२२०-२२३
पतंजलि–१, २, १७५
पद्म पुराण–५३, ११६-११८, २१७
पद्म कीर्ति–२०७
पद्मावत–२२८,३६२, ३८८, ३८९,३९४, ३९५, ३९६
परमप्पयासु–४३, १८०, २६७-२७२, २७८, २८४
परमानन्द जैन–२२१, २२२, २२७, ३५९
परमाल रासो–३९१, ४०२
परमेष्ठि प्रकाश सार–१२७, ३७३
पश्चात्ताप कुलक–२९०
पाडव चरित–३८३
पाडव पुराण–११८-१२१, २३९, ३५९, ३९६, ४०५
पाणिनि–११, १२, १७५
पादलिप्त सूरि–१७५, ३४२
पार्श्वनाथ स्तुति–३६४
पास चरिउ (पार्श्वपुराण) २०७-२०९

पासणाह चरिउ—४०, २१०-२१२
पाशवइ कथा—३५९
पाहुड दोहा—४३, २७४-२७८
पिगल—१७५
पुरदर विहाण कहा—३५९
पुरातन प्रबध सग्रह—४७, ३१९,३३२
पुरषोत्तम देव—१६
पुष्पदन्त—४, ३३, ३४, ४०, ४५, ५३, ७२-९४,९८, ११४, ११५, १३०, १३७, १७५, १८१, २००, २१६, २१७, २२९, ३६३, ३७४, ३८३, ४०२, ४०३
पुष्पाजलि—३५९
पूर्णभद्र—२४३, ३७४
पृथ्वीचन्द्र चरित्र—३८०
पृथ्वीराज रासो—४२, १०९-११६, ३८८, ३९०, ३९१
पेम प्रकाश—३६७
प्रबन्ध चिन्तामणि—३१९, ३२०, ३२८, ३३५
प्रबन्ध कोश—३१९, ३२९
प्रबोध चन्द्रोदय—३३४
प्रबोधचिन्तामणि—३३५
प्रबोधचन्द्र बागची—३००, ३०५
प्रभाचन्द्र—१७५
प्रवरसेन—१३, १७५
प्राकृत पैंगल—३१९, ३३०
प्राकृत सर्वस्व—१६
प्राकृतानुशासन—१६
प्राकृत लक्षण—२६८
प्राकृत द्वयाश्रय काव्य—३१९, ३२२
प्राकृत व्याकरण—३१९,३२०, ३२२, ३२६ ३२७, ३९८
प्रिय प्रवास—४०३

ब

बाण—५३, ६३, ७२, ८९, १७५, २१६, २२५, २२९, ४००
बाहुबलि चरित—२३४-२३८, ३९५, ४०५
बिहारी—४०५
बीसलदेव रासो—३९०
बुद्ध चरित—३८७
बृहत्कथा—१४
बृहदारण्यक उपनिषद्—३३४

भ

भगवतीदास—१७, २४४
भरत—१, २, ६
भरत बाहुबलि रास—३६३, ३६७
भरह—१७५
भवभूति—६३, ४०१
भविसयत्त कहा—४१, ४७, ९५-१०२, ३४२, ३८३, ३९४
भविसयत्त चरिउ—४०, २१०, २१४-२१५
भर्तृहरि—१
भागवत पुराण—२९६
भानुदत्त—३३
भामह—३, १६, ५३, १७५
भायाणी हरिवल्लभ—५३, ९५
भारवि—३६, १७५, ३८८
भारत जननी—३३९
भारत दुर्दशा—३३९
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—३३९
भावना कुलक—२९०
भावना सधि प्रकरण—४३, २९१-२९४, ४०६
भुवन सुन्दरी कथा—३४२
भूदेव शुक्ल—३३५
भूपाल—२१६

भोज—३२, ३३, ४७, ३१९

म

मदन पराजय—४२, ३३५, ३३९
मनु—१७५
मनमोहन घोष—१३
मम्मट—५
मयण जुज्झ—३३९
मयण पराजय चरिउ—३३८-३३९
मयूर—१७५, २१६
मल्लिनाथ चरित—२२३
महाभाष्य—१, ६
महापुराण (तिसट्ठि महापुरिस गुणालकार)—७२-९४, ११५, ३६३, ३८३, ४०२, ४०३
महासेन—२१७
महाभारत—१३२
महाणदि—२८३
महावीर चरित—३३२
महिन्दु—२४४
महेश्वर सूरि—२९५, ३४२
माघ—१९७
माणिक्य सूरि—३६
माणिक्य चन्द्र सूरि—३८०
माणिक्य राज्य—२४३
मातृका चउपइ—३७४
माया विजय—३३५
मार्कण्डय—१६, १७
मालती माधव—४०१
मुज—३३, ४७
मुक्तावलि विधान कथा—३५९
मुनि जिनविजय—४७, २४८
मनि मह चद—२८३
मुनि रामसिह—२७४, ३९३, ४०८
मेघ दूत—७५, ९८
मेरु तुगाचार्य—३१९, ३२७, ३२८, ३३५
मृगाक लेखा चरित्र—२४४-२४६
मृगा पुत्र कुलक—२९०
मोह पराजय—३३४

य

यश कीर्ति—११८, १२२-१२६, १२७, २३८, ३५९, ३९६, ४०५
यश पाल—३३४
यशोधर चरित्र—३६
याकोबि—९५
याज्ञवल्क्य—१७५
योगवासिष्ठ—२८२
योग शास्त्र—३७३
योगसार—४३, २७३, २७८, २८४
योगीन्दु—४३, ४६, १८०, २६७-२६८, २७३, २७४, २७८, २८३, २८४

र

रघुवश—७४, ४०१
रत्न करण्ड शास्त्र—३५०-३५१, ३६२
रत्नावली—३६२, ३९४
रयधू—११७, २४०-२४१, २४३, ३५९
रविषेण—३८, ५३, २१७
रविवउ कहा—३५९, ३६०
रसखान—२८६
रहीम—४०५
राजकुमार जैन—३३९
राजशेखर—४, ५, ४७, १७५
राजशेखर सूरि—३१९, ३२९, ३७०
रामचन्द्र—५
रामचन्द्रिका—१७४, ४००, ४०१
रामचन्द्र शुक्ल—५१, ४०५
रामकुमार वर्मा—३९०

रामचरित मानस–३८७, ३८८, ३९६, ३९७, ४००, ४०१
रामसिंह–४३, ४६
रामसिंह तोमर–१६९
रामायण–७१, ७५, ७८, ९८, १३२, २५०
रावण वध–१३
राहुल साकृत्यायन–२८६, ३००, ३०५, ३०६, ३०९, ३११, ३१२, ३९७
रिट्ठ णेमि चरिउ–५२, ६७-७२
रुद्र–१७५
रुद्रट–४, १६, १७, ३१९
रेवन्त गिरि रास–४२, ३६८
रोहिणि विधान कथा–३५९

ल

लक्खण (लाखू)–२२७, ३५६-३५७, ४०२
लखमदेव (लक्ष्मणदेव)–२३२
लक्ष्मण गणि–३३२
लक्ष्मीचन्द–३७४
लक्ष्मीधर–१७
ललित विस्तर–६
लीलावती कथा–१६, ३९४
लूई पा–३०५, ३०९, ३११

व

वड्ढमाण चरिउ–४०
वररुचि–१७५
वसुदेव हिण्डि–४१, ३४२
वर्धमान कथा–२४३
वर्धमान चरित–२४३
वाक्पतिराज–३६३
वाग्भट–५, ३६, ३८३
वादिचन्द्र सूरि–३३५
वामन–१७५
वारायण–१७५
वाल्मीकि–७१, ७५, ७८, १७५, २१६, २२९
वासवदत्ता–३४०, ३७६
विक्रमोर्वशीय–१६, ६०, ३१९, ३२०, ३६२
विजय सूरि–३४२
विजयसेन सूरि–३६८
विद्यापति–४२, ४७, १६८, २५९, ३७८, ३८९, ३९८, ४०५
विद्यापरिणयन–३३५
विनयचन्द्र–४३, २९६, ३५९, ३६६, ३६८
विनयतोष भट्टाचार्य–३०५, ३०६, ३१२
विमल कीर्त्ति–३६०
विमल सूरि–३८, ४०, ५३
विष्णु धर्मोत्तर–५
वीर–१४८, ३६२
वीर चरित–१०४
वीर नन्दी–३६
वीरसिंह देव चरित–३८७
वीरसेन–१७५
वुच्चराय–३३९
वेकटनाथ–३३५
वैराग्य सार–४३, २७९-२८२, ४०६
व्यास–१०४, १७५, २१६, २२९

श

शबर पा–३०५, ३०९-३१०
शब्दानुशासन–२६८
शहीदुल्ला–३००
शान्ति पा–३०५, ३१६-३१७, ३१८
शान्तिनाथ चरित–२४४
शारदातनय–१६
शालिभद्र–३६३

शाह बरकत उल्ला—३६७
शिशुपाल वध—१९७
श्रावकाचार—३७४
श्री कुमार—१७५
श्री चन्द्र—४१,१७५,३४८,३५०,३६२
श्री नेमिनाथ फागु—३७०
श्रीधर—२१०, २१३, २१४
श्री पाल चरित—२४३
श्री हर्ष—५३, १७५, २१६, २१९, ३८८
श्रुत कीर्त्ति—१२७, ३७३

स

संकल्प सूर्योदय—३३५
सघदास गणि—३४२
सयम मजरी—४३, २९५-२९६
सकल विधि निधान काव्य—१५७, १७४—१८०
सनत्कुमार चरित—२२३-२२६
सन्देश रासक—४२, ५०, ११६, २४७-२५८, २६४, २६५, ३९१, ३९५, ३९७, ४०५, ४०६
सन्मति नाथ चरित—२४३
सप्त क्षेत्रि रासु—३७४
समरा रास—४२, ३६५, ३७०
समराइच्च कहा—४१, ३४२, ३६२
सम्यकत्व माई चउपइ—३७४
सरह पा—३०५, ३०६—३०९, ३९८
सरस्वती कठाभरण—३१९
सालिभद्द कक्क—३७१, ३९१
सावयधम्म दोहा—४३, २७४, २८३—२८७
सिंह—२२०
सिंह नन्दी—१७५
सिद्ध—२२१
सिद्धर्षि—३६, ३३४, ३४२
सिद्ध सेन—१८१
सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन—३२२
सिरि थूलि भद्द फाग—३६५—३६६
सुअध दसमी कहा—३५९, ३६०
सुकुमाल चरिउ—२१०, २१३-२१४, २४३, ३७४
सुकौशल चरित—२४०—२४३
सुजान चरित—३८७, ४०५
सुदय वच्छ कथा—२५०
सुदामा चरित—३८७
सुदसण चरिउ—४०, ४७, १५७-१७४, १८०, ३६२, ३९९, ४०१, ४०६
सुनीति कुमार चैटर्जी—११, १३, १८, २१, ३०५
सुपास नाह चरिउ—३३२
सुप्रभाचार्य—४३, २७९, ४०६
सुभट चरित—२९३
सुभाषित कुलक—२९०
सुभाषित रत्नावली—३२०
सुमित्रानन्दन पन्त—४०२
सुलोचना कथा—२१७
सुलोचना चरिउ—२१६-२२०, ३९५, ४०२, ४०५, ४०६
सुसमन्त भद्र—१७५, १८१
सूदन—४०५
सूरदास—२४, ३०७, ३८९, ३९१, ३९८, ३९९, ४०५
सूर सागर—३९८, ३९९
सेतु बन्ध—१३, ३८२
सोखवई विहाण कथा—३६०
सोमप्रभ—४२, २९४, ३१९, ३२०, ३२६, ३३५—३३६, ३५२

सोलण–४३
सोलह करण जयमाल–३५९
स्थूलिभद्र कथा–४१, ३५२-३५४, ३९९
स्वयभू–३३, ३४, ४०, ५२-७२, ७८, ९५, ९८, १०५, १७५, १८१, २१६, २२९, ३९७, ४०१
स्वयभू छन्द–५२, ५३, ४०६

ह

हजारी प्रसाद द्विवेदी–२१, ३५, ११६, २४८, ३७६
हर प्रसाद शास्त्री–३००, ३०५
हरिदेव–४२, ३३८
हरि भद्र–२२३, ३४२
हरि भद्र सूरि–३४४
हरि षेण–३४३
हरिवश पुराण–१०२-१०९, ११८, १२०, १२७, २१७, २३९, ३५९, ३७३, ३८३, ३९५
हर्ष चरित–४०१
हलिय–२१६
हाल–१३
हिन्दी काव्यधारा–३००
हिन्दी साहित्य का आदिकाल–११६, ३७६
हिन्दी साहित्य का इतिहास–४०५
हीरालाल जैन–६७, १०२, १८१, २२१, २२२, ३५७, ३५९, ३६१
हेमचन्द्र–१, ५, १७, २१, २३, २४, ३६, ९५, १८०, २६८, २७४, ३१९, ३२०, ३२१-३२२, ३२७, ३८३, ३९८, ४०८

सहायक ग्रन्थों की सूची

ग्रन्थों के प्राप्ति-स्थान, प्रकाशक आदि का विवरण पाद-टिप्पणियो मे यथास्थान दे दिया गया है। यहाँ केवल सूची दी जा रही है । अप्रकाशित ग्रन्थो का इस सूची में निर्देश नही किया गया । उनका विवरण भी ग्रन्थ मे यथास्थान मिलेगा ।

अपभ्रंश काव्य त्रयी (अपभ्रश)	गायकवाड सिरीज, स० ३७, बडौदा, १९२७।
अपभ्रंश पाठावली (अपभ्रश)	सपादक श्री मधुसूदन चिमनलाल मोदी, १९३५ ई० ।
अपभ्रंश मीटर्स (अग्रेजी)	प्रो० वेलणकर।
इंडो-आर्यन एंड हिन्दी (अग्रेजी)	डा० सुनीति कुमार चटर्जी, १९४२ ई०।
इडियन बुधिस्ट आकोनोग्रेफी (अंग्रेजी)	श्री बी० भट्टाचार्य, १९२४ ई०।
इतिहास प्रवेश (हिन्दी)	श्री जयचन्द्र विद्यालकार, इलाहाबाद, १९४१ ई०।
उत्तर रामचरित (सस्कृत)	भवभूति।
उत्तरी भारत की संत परम्परा (हिन्दी)	श्री परशुराम चतुर्वेदी, वि० स० २००८।
उपदेश तरंगिणी	काशी।
ऋतम्भरा (हिन्दी)	डा० सुनीति कुमार चटर्जी, १९५१ ई०।
ओरिजिन एंड डेवलेपमेंट आफ बंगाली लैंग्वेज (अग्रेजी)	डा० सुनीति कुमार चटर्जी ।
कथा कोष प्रकरण	स० मुनि जिनविजय जी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४९ ई०।
कबीर ग्रन्थावली (हिन्दी)	सपादक बा० श्यामसुन्दरदास, १९२८ ई० ।
करकंड चरिउ (अपभ्रश)	सपादक डा० हीरालाल जैन, कारजा, बरार, १९३४ ई०।
कविदर्पण	सपादक प्रो० वेलणकर ।
कादम्बरी (सस्कृत)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२१ ई०।
काव्य मीमांसा (सस्कृत)	राजशेखर कृत, गायकवाड सिरीज, सख्या १, बडौदा, १९२४ ई० ।
काव्यादर्श (संस्कृत)	दण्डिन्, भण्डारकर ओरयटल इन्स्टिट्यूट, १९३८ ई०।
काव्यालंकार (सस्कृत)	रुद्रट ।
काव्यालंकार (सस्कृत)	भामह, चौखम्भा सस्कृत सिरीज ऑफिस, १९२८ ई०।
कीर्तिलता (अपभ्रश)	विद्यापति, सपादक डा० बाबूराम सक्सेना, प्रयाग, वि० स० १९८६ ।

कुमारपाल प्रतिबोध (प्राकृत) — मोमप्रभ, सपादक मुनि जिन विजय जी, बडौदा, १९२० ई०।

कुमारपाल प्रतिबोध (जर्मन) — लुडविग आल्सडर्फ, जर्मनी, १९२८ ई०।

केशव-कौमुदी (हिन्दी) — सपादक ला. भगवानदीन, वि० सं० १९८६ ई०।

कैटेलोग आफ संस्कृत एंड प्राकृत मनुस्क्रिप्टस् इन दी सी. पी. एंड बरार — नागपुर १९२६ ई०।

कैटेलोग आफ मैनुस्क्रिप्टस् इन दि जैन भण्डारस एट पाटण (पत्तन), भाग १ — बडौदा १९३७ ई०।

गौडवहो (प्राकृत) — वाक्पतिराज कृत, भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२७ ई०।

गाथा सप्तशती (प्राकृत) — बम्बई १९३३ ई०।

जसहर चरिउ (अपभ्रश) — सपादक डा० पी० एल० वैद्य, कारंजा, बरार, १९३१ ई०।

जायसी ग्रन्थावली (हिन्दी) — संपादक प० रामचन्द्र शुक्ल, काशी, सन् १९२४।

जिन रत्न कोष, प्रथम भाग (अग्रेजी) — संपादक प्रो. हरि दामोदर वेलणकर, पूना, १९४४ ई०।

जैन गुर्जर कवियो प्रथम भाग (गुजराती) — सपादक, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेस, बम्बई वि० स० १९८२।

जैन साहित्य और इतिहास (हिन्दी), — पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९४२ ई०।

णायकुमार चरिउ (अपभ्रश) — पुष्पदन्त कृत, सपादक डा० हीरालाल जैन, कारजा, बरार, सन् १९३३ ई०।

दोहा कोष (अपभ्रश) — सपादक प्रो० प्रबोधचन्द्र बागची।

दोहा पाहुड (अपभ्रश) — सपादक डा० हीरालाल जैन।

धूर्ताख्यान (प्राकृत) — सपादक प्रो० आ० ने० उपाध्याय, बम्बई, १९४५ ई०।

नाट्य-दर्पण (सस्कृत) भाग १ — गायकवाड सिरीज सख्या ४८, १९२९ ई०।

नाट्यशास्त्र (सस्कृत) भरतकृत — बडौदा, १९२६ ई०।

नाट्यशास्त्र (सस्कृत) भरतकृत — काशी, १९८५ वि० स०।

नाथ संप्रदाय (हिन्दी) — श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद, १९५० ई०

पउम चरिउ, स्वयंभूदेव विरचित (अपभ्रश) प्रथम भाग—विद्याधर-कांड द्वितीय भाग-अयोध्या कांड एवं सुन्दर कांड — संपादक डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी, सिघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि० स० २००९।

पउम चरिय (प्राकृत) — विमल सूरि कृत, भावनगर, १९१४ ई० ।
पउम सिरी चरिउ (अपभ्रंश) — सपादक श्री मोदी और श्री भायाणी बम्बई, वि० स० २००५ ।
पत्तन भंडार, ग्रन्थ-सूची
परमप्पयासु (अपभ्रंश) — सपादक प्रो० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, बम्बई, १९३७ ई० ।
पाहुड दोहा (अपभ्रंश) — सपादक प्रो० हीरालाल जैन, कारजा, बरार, वि० स० १९९० ।
पुरानी हिन्दी (हिन्दी) — प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, काशी, वि० स० २००५ ।
पुरातत्व निबन्धावली (हिन्दी) — श्री राहुल साकृत्यायन, १९३७ ई० ।
पुरातन प्रबन्ध संग्रह — सपादक श्री मुनि जिन विजय, कलकत्ता, वि० स० १९९२ ।
पृथ्वीराज रासो — नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण, काशी ।
पेम प्रकाश — डा० लक्ष्मीधर शास्त्री, दिल्ली, १९४३ ई० ।
प्रबन्ध चिन्तामणि — मेरुतुगाचार्य विरचित, सपादक श्री जिन विजय मुनि, शान्ति निकेतन, वि० स० १९८९ ।
प्रबन्ध कोश — राजशेखर सूरी कृत, सपादक श्री मुनि जिन विजय, शान्ति निकेतन, वि० स० १९९१ ।
प्रशस्ति संग्रह — श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा सपादित, जयपुर, १९५० ई० ।
प्राकृत व्याकरण (संस्कृत) — हेमचन्द्र कृत, सपादक डा० परशुराम वैद्य, पूना १९२८ ई० ।
प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव (हिन्दी) — डा० रामसिंह तोमर (अप्रकाशित) ।
प्राकृत लक्षण — चड ।
प्राकृत पैंगल — सपादक श्री चन्द्रमोहन घोष, १९००-१९०२ ई०
प्राकृत लैंग्वेज एंड देअर कन्ट्रीब्यूशन टु इंडियन कल्चर, (अग्रेजी) — डा० एस. एम. कत्रे, बम्बई, १९४५ ई०
प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह — गायकवाड सिरीज सख्या १३, १९२० ई० ।
प्राचीन हिन्दी — चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वि० स० २००५ ।
प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ
बृहत्कथा कोष (सस्कृत) — संपादक प्रो० आ० ने० उपाध्याय ।
बौद्धगान ओ दोहा (अपभ्रंश) — सपादक म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री ।

भरत बाहुबलि रास (अपभ्रश) — सपादक प० लालचन्द्र भगवान गान्धी, अहमदाबाद, वि० स० १९९७।
भविसयत्त कहा (अपभ्रश) — धनपाल कृत, सपादक श्री दलाल और श्री गुणे, बडौदा, १९२३ ई०।
भाव प्रकाशन (सस्कृत) — शारदातनय कृत, गायकवाड सीरीज़ संख्या ४५, बडौदा, १९३० ई०।
भावना संधि प्रकरण (अपभ्रश) — सपादक एम० सी० मोदी।
मदन पराजय (सस्कृत) — नागदेव कृत प्रो० राजकुमार जैन, काशी, वि० स० २००४।
महापुराण—तिसट्ठिमहापुरिस गुणालकार, (अपभ्रश) — पुष्पदन्त भाग १–३, सपादक डा० पी० एल० वैद्य, बम्बई।
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (हिन्दी) — श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा, प्रयाग, १९२८ई०
मानसांक (हिन्दी) — कल्याण, गोरखपुर।
मालती माधव (सस्कृत) — भवभूति।
मेघदूत-कालिदास (सस्कृत)
मोह पराजय — यश पाल, गायकवाड सिरीज़, बड़ौदा।
योगसार (अपभ्रश) — सपादक प्रो० आ० ने० उपाध्ये, बम्बई, १९३७ ई०।
रघुवंश (सस्कृत) — कालिदास कृत।
रत्नावली नाटिका (सस्कृत) — श्री हर्ष कृत।
राम कथा (हिन्दी), — रेवरेड फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् वि० वि० प्रयाग, १९५० ई०।
रामायण (सस्कृत) — वाल्मीकि।
रावण वहो—सेतुबन्ध (प्राकृत) — लदन, १८८० ई०।
लाइफ आफ हेमचन्द्र (अग्रेजी अनुवाद) — डा० मणिलाल पटेल, १९३६ ई०।
लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया (अग्रेजी) — ग्रियर्सन, १९२७ ई०।
लीलावती कथा (प्राकृत) — कौतूहल कृत, सपादक प्रो० आ० ने० उपाध्याय, बम्बई १९४९ ई०।
वाग्भटालंकार (सस्कृत), — श्री वेकटेश्वर प्रेस, बबई।
विक्रमोर्वशीय (सस्कृत) — कालिदास कृत।
विद्यापति की पदावली — रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सकलित, द्वितीय सस्करण, पुस्तक भडार, लहेरिया सराय और पटना।
वैराग्यसार (अपभ्रश) — सुप्रभाचार्य कृत, सपादक प्रो० वेलणकर।
षड्भाषा चन्द्रिका (संस्कृत) — लक्ष्मीधर रचित, सपादक राव बहादुर कमला प्राण शकर, बम्बई, १९१६ ई०।

सनत्कुमार चरित (अपभ्रंश) — संपादक डा० हरमन याकोबी, जर्मनी, १९२१ ई०।
साधनमाला — गायकवाड सिरीज, सख्या ४१।
सामान्य भाषा विज्ञान (हिन्दी) — डा० बाबूराम सक्सेना, प्रयाग, वि० सं० २००६।
सावयधम्म दोहा — देवसेन कृत, संपादक डा० हीरालाल जैन, वि० स० १९२९।
साहित्यदर्पण (सस्कृत) — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९१५ ई०।
सुपासणाह चरिउ (प्राकृत) — लक्ष्मणगणि कृत, सपादक श्री गोविन्ददास सेठ, काशी, १९१८ ई०।
संदेश रासक (अपभ्रंश) — सपादक श्री मुनि जिन विजय तथा श्री हरिवल्लभ भायाणी, बबई, वि० स० २००१।
संयम मंजरी (अपभ्रंश) — महेश्वरी सूरि कृत, सपादक श्री गुणे तथा श्री दलाल
स्वयभू छन्द — प्रो. वेलणकर द्वारा सपादित।
हर्ष चरित (सस्कृत) — वाण कृत, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९१८ ई०।
हिन्दी काव्यधारा (हिन्दी) — श्री राहुल साकृत्यायन, प्रयाग, १९४५ ई०।
हिन्दी साहित्य की भूमिका (हिन्दी) — श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई १९४०।
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास (हिन्दी) — डा० भगीरथ मिश्र, लखनऊ, वि०सं० २००५।
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग (हिन्दी) — श्री नामवरसिंह, साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, १९५२ ई०।
हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (हिन्दी) — श्री कामताप्रसाद जैन, काशी, १९४६ ई०।
हिन्दी भाषा का इतिहास (हिन्दी) — डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग, १९४० ई०।
हिन्दी साहित्य (हिन्दी) — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२ ई०।
हिन्दी साहित्य का आदिकाल (हिन्दी) — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पटना सन् १९५२ ई०।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (हिन्दी) — डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, १९४८ ई०।
हिन्दी साहित्य का इतिहास (हिन्दी) — प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रयाग, वि० सं० १९९७।
हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (अग्रेजी) — मैकडोनेल, १९२८ ई०।
हिस्ट्री आफ बंगाल, (अग्रेजी) भाग १, — डा० रमेशचन्द्र मजुमदार।
हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर, भाग १–२ — मौरिस विन्टरनिज, (अंग्रेजी अनुवाद) कलकत्ता, १९३३ ई०।
हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इंडिया (अग्रेजी) भाग २ — श्री सी० बी० वैद्य पूना, १९२४ ई०।
वही भाग ३ — १९२६ ई०।
हिस्टोरिकल ग्रैमर आफ अपभ्रंश (अग्रेजी) — डा० तगारे, पूना, १९४८ ई०।
हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण — डा० परशुराम वैद्य, पूना, १९२८ ई०।

पत्र-पत्रिकाएँ

अनेकान्त
इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज भाग १
इडियन एटिक्वेरी
इडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली
एनल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, भाग २३
ओरियन्टल जर्नल, कलकत्ता
कारनाटिक हिस्टोरिकल रिव्यू
गगा पुरातत्त्वाक
जर्नल आफ दि डिपार्टमेट आफ लैटर्स, कलकत्ता
जर्नल आफ दि रौयल एशियाटिक सोसायटी
जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, बाम्बे ब्राच
जनल आफ दि युनिवर्सिटी आफ बाम्बे
जैन एटिक्वेरी
जैन सिद्धान्त भास्कर
नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल, १९४२ ई०
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
प्रोसीडिंग्स ओरियटल कान्फरेन्स
भारतीय विद्या
राजस्थान भारती
विशाल भारत